महाभारत के पात्र

[दूसरा भाग]

लेखक
आचार्य नानाभाई

प्रस्तावना लेखक
श्री हरिभाऊ उपाध्याय

सस्ता साहित्य मण्डल
दिल्ली :: लखनऊ

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री
सस्ता साहित्य मण्डल दिल्ली

संस्करण
अगस्त १९५९ २०००
मूल्य
आठ आना

मुद्रक
एम. एन भारती,
हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस,
नई दिल्ली

इसकी विशेषता

मनुष्य दैनिक जीवन में जितना देखा जाता है उससे कहीं अधिक प्रसंग विशेष पर यह अधिक चमक के साथ देखा, परखा और पहचाना जा सकता है। दैनिक जीवन क्रम में ऐसी एक रागिता होती है कि सूक्ष्म दृष्टि ही किसीको जल्दी पहचान पाती है। मगर जीवन की विशेष घटनायें और विशेष प्रसंग ऐसे होते हैं कि जो मनुष्य को बरबस खींचकर आँखों के सामने चमका देते हैं और राह पर चलनेवाला भी उसे अपनी आँखों में उतार लेता है। इसलिए चरित्र चित्रण वर्णनात्मक की अपेक्षा घटनात्मक अधिक प्रभावकारी होता है।

महाभारत के पात्र का दूसरा भाग—भीम और अर्जुन—मैंने पढ़ा। चरित्र चित्रण का यह खास नमूना है। श्री नानाभाई की समर्थ लेखनी ने भीमसेन और अर्जुन को चलता-बोलता हमारे सामने खड़ा कर दिया है। इनका जीवन पढ़ते हुए उपन्यास से भी अधिक तन्मयता का अनुभव होता है और पाठक प्रभावित होता चला जाता है।

इसका पहला भाग भी मैंने पढ़ा है। ये सब पात्र अपने संस्कार और स्वभाव के वशवर्ती हो बरतते तो हैं परंतु प्रत्येक के जीवन में एक ऐसा समय आता है जब वह गहरे आत्म निरीक्षण में डूबता है और अपने दुष्कर्मों पर पश्चात्ताप करता है। प्रत्येक मनुष्य जब कोई काम करता है तब अधिकांश में वह उसे अच्छा समझ करके ही करता है, परंतु सभी समय, सभी अवसरों पर उसकी बुद्धि समतोल और निर्विकार नहीं रहती। ऐसी सात्विकता मनुष्य की बुद्धि में तभी आ सकती है और रह सकती है जब वह उसे स्वार्थ, अहम्, या रागद्वेष के भाव से दूर रख

सके । जबतक मनुष्य में कुछ भी लोकैषणा या महत्वाकांक्षा बाकी है या उसे कुछ भी लोकसिद्धि करना है तब तक उसके विचारों भावों और कार्यों का सर्वांश में निर्दोष रहना असंभव है । लेकिन जाग्रत, साधनाशील कर्तव्य-पालक और लोकसेवक के जीवन में ऐसे प्रसंग आते ही रहते हैं जब वह क्षुद्रताओं से मलिनताओं से और बाहरी उपाधियों से ऊपर उठ कर अंतरतम में प्रवेश करता है और हंसकी तरह दूध और पानी को अलग करता है । जो मनुष्य ऐसी प्रवृत्ति रखते हैं वे गिरते-पड़ते भी आगे बढ़ते चले जाते हैं और अन्त में शान्ति और समाधान पाते हैं । इसके विपरीत जो बाह्य जगत् में उसकी उपाधियों और आकर्षणों में ही डूबता उतराता रहता है वह महान् दिखते हुए भी महान् कार्यों का कर्ता कहलाते हुए भी, किसी भी क्षण धड़ाम से गिर सकता है । कौरवों और पांडवों में यही फ़र्क था । पांडव सभी सुसंस्कृत, निर्दोष निर्विकार और धर्मात्मा थे सो बात नहीं । इसी प्रकार कौरवों में सभी नराधम और दुरात्मा थे ऐसा नहीं कह सकते, परन्तु पांडवों को जब कभी धर्मपथ छोड़ना पड़ा तो उनके मन को उस समय भी कष्ट हुआ, क्योंकि वे अपने कर्तव्य और धर्म के प्रति जाग्रत थे । युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण के-जैसे मार्ग-दर्शकों के निकट रहने के कारण । उधर कौरव, भीष्म और विदुर के जैसे नीतिज्ञों के रहते हुए भी अन्याय और अत्याचार करने में उलटा अभिमान-समझते थे, क्योंकि वे लोकैषणा में डूबे हुए थे और इसलिए मदान्ध हो गये थे । पांडवों के सामने जहाँ कर्तव्य-पालन तथा न्यायोचित अधिकार की प्राप्ति मुख्य थे वहाँ कौरवों के सामने येनकेन प्रकारेण राज्याधिकार, राज्यविस्तार और राज्योपभोग मुख्य था । पांडवों में न्याय धर्म और परमार्थ की प्रवृत्ति मुख्य थी कौरवों में भोग ऐश्वर्य की भूमि । इसीलिए कौरव भीष्म और विदुर के सदुपदेशों और

श्रीकृष्ण के सत्परामर्शों से लाभ न उठा पाये और पाण्डवों ने हर महत्व पूर्ण और आन-बान के प्रसंग पर श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर के निर्णयों का स्वागत किया और उनसे लाभ उठाया। तिस पर भी श्रीकृष्ण तक के लिए यह नहीं कह सकते कि उनसे धर्म या आत्मा के प्रतिकूल कोई बुरा काम न हुआ हो। मगर श्री नानाभाई के इन चरित्र-चित्रणों की खूबी यही है कि प्रत्येक पात्र किसी-न-किसी अवस्था में आत्मनिरीक्षण करता है और पश्चात्ताप की पुन स्थिति में अपने-अपने कृत-कर्मों का विश्लेषण आप ही करता है। यह 'महाभारत के पात्रों' का अमूल्य धन और देन है।

एक और विशेषता इसमें है। जो घटनायें अगम्य और रहस्यपूर्ण हैं उन्हें बुद्धिगम्य बनाने का प्रयत्न इसमें किया गया है। बुद्धि का यह स्वभाव ही है कि वह हर चीज को अपनाना चाहती है और अपनी पहुँच के परे की वस्तुओं के विषय में भी अपनी शक्ति पर कुछ निर्णय करना पसंद करती है। बुद्धिशील श्री नानाभाई ने भी इन पात्रों के रहस्यपूर्ण और दुर्बोध प्रसंगों का बौद्धिक स्पष्टीकरण करने का समर्थ प्रयत्न किया है।

अनुवाद में मूल गुजराती के भावों की ओर प्रवाह की अच्छी रक्षा की गई है और पहले भाग में भाई वियोगी हरिजी ने जिस 'गुजरातीपन' की तरफ इशारा किया था, वह भी इस दूसरे भाग में नहीं पाया जाता। मुझे आशा है कि हिन्दी-संसार इसकी भी उचित क़द्र करेगा।

देहली
४—७—३९

—हरिभाऊ उपाध्याय

पात्र-परिचय

१ भीमसेन १—८०

लाक्षागृह—हिडिबाराक्षसी—बकासुर का वध—द्यूत-सभा में प्रतिज्ञा—भीमसेन का क्षात्रधर्म—सैरंध्री का गन्धर्व—रुधिरपान—अभिमान दूर होता है—

२ अर्जुन ८१—२०८

एक लक्ष्य—द्रौपदी का स्वयंवर—अर्जुन का वनवास—यह कैसा कुलधर्म—खाण्डव-वन में आग—सारथी बृहन्नला—युद्ध की तैयारी—धर्म-संकट—कुरुक्षेत्र के मैदान में—भगदत्त वध—शतरंज के सभी मोहरे एकत्र—

भीमसेन

: १ :

लाक्षागृह

"खड़ा रह, दुष्ट! खड़ा रह! अभी तेरी मरम्मत करता हूँ।" वारणावत के राजमहल में पलंग पर पड़े-पड़े भीमसेन सपने में चिल्ला उठा।

"क्यों, बेटा भीम! क्या है?" माता कुन्ती ने उठकर उसके शरीर पर हाथ फेरते हुए कहा।

कुन्ती के हाथ का स्पर्श होते ही भीमसेन जग पड़ा और कुन्ती की ओर एकटक देखने लगा।

"बेटा! क्या है?"

"माँ! कौन, तू है?" कहकर भीम कुन्ती के गले लिपट गया।

"कहो, क्या था? बेटा, तुम चौंक क्यों गये?"

"कुछ नहीं, माँ। मुझे एक स्वप्न आया था। कोई राक्षस तुम्हें और भाईसाहब को उठाकर ले जा रहा था। इसलिए मैं उसके पीछे भागा।"

"मैं तो यह तुम्हारे पास ही हूँ।"

"लेकिन भाई साहब? वह कहाँ हैं?"

"देख यहाँ, किसी गहरे विचार में पड़ा हो ऐसे बैठा है।"

"लेकिन माँ, सच कह दूँ? अब हम लोगों को इस महल में

नहीं रहना चाहिए। वारणावत गाँव में रहे, तबतक व दिन कब और कैसे बीत गये यह मालूम भी नहीं पड़ा। लेकिन जबसे इस महल में आये हैं तबसे एक रात भी एसी नहीं बीती जो कोइ सपना न दीखा हो।" भीम उठकर बैठ गया।

"स्थान परिवर्त्तन होने पर बहुत बार ऐसा हो जाता है।" कुन्ती बोली।

"स्थान परिवत्तन क्या? इस महल में कोइ एसी बदबू आती है कि सिर भिन्ना उठता है। यों तो यह महल बिलकुल नया है, सुविधा भी इसमें हर बात की है, लेकिन पता नहीं कहांस काइ ऐसी अजीब बदबू आती है कि चैन नहीं पड़ती।" भीम न मुँह बनाकर कहा।

"पुरोचन तो कहता था कि महल की भीतें अभी हाल की ही बनी हुइ हैं और उनका रङ्ग-रोग़न भी अभी सूखा नहीं है, इसलिए बदबू आती है। थोड़े दिन के बाद यह बदबू-वदबू कुछ भी नहीं रहगी।" कुन्ती न भीम क बालो को सँवारत हुए समझाया।

"लेकिन माँ, ताज्जुब तो यह है कि जब पुरोचन मरे पास आता है तब यह बदबू और बढ़ जाती है!" भीम बोला।

"बटा, यह तू क्या कहता है। यह बेचारा तो हमारी हाजिरी में हमशा कमर कस तैयार रहता है, यह तू नहीं दखता?" कुन्ती न भीम क माथे पर हाथ फरत हुए कहा।

"माँ।" युधिष्ठिर अपने विचारों म चौंक पड़े हों एस बोले—"भीमसन ठीक कहता है। शास्त्र में लिखा है कि जैस

पदार्थों में बदबू आती है वैसे ही आदमियों में भी आती है।"

"चूल्हे में जाय तुम्हारा शास्त्र। आदमी में यों ही कहीं बास आती है? भीम, तू तो निरा पागल ही रहा। दुर्योधन ने जब लड्डू में ज़हर खिलाया था तब तो लड्डू में ज़हर की बास नहीं आई, और इस पुरोचन में तुझे बास आती है। तेरी नाक में भर गया है।" कुन्ती ने भीम के नथनों को सहलाते हुए कहा।

"माँ। तुम मानो या न मानो, लेकिन ज़हर के लड्डू खाने बैठा था उस समय मुझे अन्दर-ही-अन्दर जैसी घिन आरही थी, उसी तरह की जबसे हम लोग इस महल में आये तबसे आ रही है।" भीम बोला।

"यह तो यों ही। लो यह सहदेव भी आगया। कहो, क्या खबर है?" कुन्ती ने पूछा।

"हस्तिनापुर से एक आदमी आया है, वह भाईसाहब से मिलना चाहता है।" सहदव ने कहा।

"किसने भेजा है?" भीम ने पूछा।

"वह कहता है कि मुझे महात्मा विदुर ने भेजा है।" सहदव बोला।

"अच्छा, उसको यहाँ भेज दो। अर्जुन क्या कर रहा है?" युधिष्ठिर बोले।

"शहर के मेले में थोड़ा सा जो देखने को रह गया था उसको देखने के लिए वह तो कमीके नकुल के साथ वहाँ गये।" सहदव जवाब देकर चला गया।

मनुष्य के जाने के थोड़ी देर बाद विदुर का भेजा हुआ आदमी आया।

"कहो, कहाँसे आये हो ?" युधिष्ठिर ने पूछा।

"हस्तिनापुर से, महाराज।"

"तुमको विदुर चाचा ने भेजा है ?"

"हाँ, महाराज।"

"तुमको विदुर चाचा ने ही भेजा है या हमारे किसी दुश्मन ने, इसकी क्या पहचान ?" भीम ने आनेवाले आदमी की नज़र-से-नज़र मिलाकर कहा।

"पहचान है। आप सब जब हस्तिनापुर से रवाना हुए उस समय महात्मा विदुर ने युधिष्ठिर को एक गुप्त बात कही थी, उसकी निशानी मुझे विदुरजी ने दी है।" उस आदमी ने मरदक जवाब दिया।

"भाई साहब ! वह कौन-सी गुप्त बात थी ?" भीम ने पूछा।

"क्या उस बात का अब वक्त आ गया ?" युधिष्ठिर ने चिन्तातुर होकर आने वाले से पूछा।

"हाँ, महाराज ! उस आपत्ति का समय अब आ गया है।" उस आदमी ने गम्भीर होकर कहा।

"फिर आपत्ति !" कुन्ती घबराई।

"भाई साहब चाचाजी ने क्या कहा है ? मेरी समझ में तो कुछ भी नहीं आया।" भीम बोला।

"लो, भीमसेन ! इसे तो सुनो। हम लोगों को जिस महल में

रक्खा गया है इस महल के साथ ही हम छहों को जिन्दा जला देने का दुर्योधन का मनसूबा है।" युधिष्ठिर ने समझाया।

"बेटा! तुम यह क्या कह रहे हो?" कुन्ती व्याकुल हो गई।

"मैं सच कहता हूँ। इस महल की तमाम दीवारें घी, तेल, मांस, चरबी, राल, सन, लाख आदि ऐसी चीजों से बनाई गई हैं जो तुरन्त जल उठनेवाली हैं।" युधिष्ठिर कहने लगे।

"तब तो यही कहो न कि इन दीवारों में से ही बास आती है?" भीम बोला।

"और हम लोगों को अपने विश्वास में भुलाये रखकर जिन्दा जला देने के लिए ही पुरोचन को यहाँपर रक्खा गया है।" युधिष्ठिर ने सब बात खोलकर रखदी।

"मुए पुरोचन! तेरा सत्यानाश हो। तेरे घर में कोई दिया जलाने वाला भी न रहे।" कुन्ती के मुँह से सहसा निकल पड़ा।

"ये सारी बातें जब हम लोग हस्तिनापुर से चले तो विदुर चाचा ने मुझे दूसरा कोई न समझ सके ऐसी भाषा में जतला दी थीं।" युधिष्ठिर फिर बोले।

"और फिर भी हम लोग वारणावत में आये।" भीम भभक उठा।

"भाई भीमसेन! दूसरा रास्ता ही नहीं था। अभी हमें हस्तिनापुर में आये ही कितने वर्ष हुए हैं? राज्य का सारा खज़ाना दुर्योधन के हाथ में है, पितामह, द्रोण आदि हमें कितना ही चाहते हों, फिर भी जिसका अन्न खाते हैं उसीको आशीर्वाद

देंगे। ऐसी हालत में हम वारणावत में न आए होते तो हस्तिनापुर में ही दुर्योधन छिपकर हम लोगों का काम तमाम कर देता।" युधिष्ठिर दुःख के साथ कहने लगे।

भीमसेन से न रहा गया "तो हम क्या हमेशा ही दुर्योधन से डरते रहेंगे? भाई साहब! आप यह क्या कह रहे हैं? मुझे अगर यह मालूम होता तो मैं यहाँ आता ही नहीं, और हस्तिनापुर ही में दुर्योधन से लड़ लेता।"

"बेटा, ज़रा शान्त हो। जिस पापी ने तुझे लड्डू में जहर खिलाकर गंगा में फेंक दिया वह और क्या नहीं कर सकता? मैंने तो उसी दिन तेरी आशा छोड़ दी थी।" कुन्ती बोली।

"पाण्डु-पुत्र क्या इतनी आसानी से मरने के लिए पैदा हुए हैं?" भीम बोला।

"तुम तो मेरे अनेक अरमानों और उमंगों को पूरा करने के लिए ही पैदा हुए हो। बेटा! दुनिया में माँ लड़के को नौ महीने पेट में रखती है और मौत को भी भुलानेवाली प्रसूति का कष्ट उठाती है, वह यह सब किन आशाओं को लेकर करती है, यह तुम पुरुष क्या जानो? मुझे अच्छी तरह याद है कि पुत्र का मुँह देखने के लिए तुम्हारे पिता कितने आतुर हो रहे थे। मैं तो तुम्हारी जानती हूँ। तुम पैदा हुए तब तुम्हारे पिता को कितनी खुशी हुई थी।" कुन्ती उन दिनों को याद करती हुई बोली।

"तो फिर माँ! मुझे तो आज्ञा दो। मैं आज ही हस्तिनापुर जाकर दुर्योधन के साथ लड़ लूँ।"

"बेटा, इतनी जल्दी न कर।" कुन्ती बोली।

"भाई भीमसेन। अभी हम लोगों को कुछ समय तरकीब से काम लेना पड़ेगा।" युधिष्ठिर धीरे-से समझाने लगे। "थोड़े समय बाद हम लोग अपने पैरों पर खड़े होजायेंगे। दस-पाँच वीर राजा हमारे साथ हो जायेंगे द्रव्य की भी थोड़ी अनुकूलता होगी और लोगों पर हमारा प्रभाव भी ज्यादा पड़ने लगेगा। तब फिर हम जो कुछ करना चाहेंगे वह करा सकेंगे। इसी विचार से उस दिन मैंने विदुर चाचा का कहना मान लिया और हम सब लोग यहाँ आ गये।"

"तो फिर, आप बड़े हैं, सोच-समझकर जो ठीक समझें वही करें।" भीम न धीमी आवाज़ में कहा।

भीम को शान्त करके युधिष्ठिर उस आदमी की ओर फिरे "तो कहो, तुम हमारी क्या मदद करोगे? विदुर ने तुमसे क्या कहा है?"

"महात्मा विदुर का मुझे हुक्म है कि पुरोचन कृष्णपक्ष की चतुदशी के दिन लाख के महल में आग लगावेगा, इसलिए तुम पहले जाकर एक बड़ी-सी सुरङ्ग बनाओ। उस सुरग का एक मुँह महल में रखना और दूसरा सीधा गंगा नदी के किनारे निकले, ऐसा करना।"

"दूसरा मुँह तो आवेगा दुर्योधन के महल के बीचोंबीच।" भीम बोला।

"भीमसेन, शान्त रहो। अच्छा, तो तुम सुरंग तैयार करो।

इसकी तैयारी में कितने दिन लगेंगे?" युधिष्ठिर ने पूछा।

"दस दिन काफ़ी हैं।"

"तो फिर आज से ही काम शुरू कर दो।"

"जैसी महाराज की आज्ञा।" कहकर वह आदमी चला गया।

"बेटा युधिष्ठिर, जबसे यह बात सुनी है तभीसे मेरा हृदय काँप रहा है। अभी तुम्हारे नसीब में ऐसे और कितने दिन लिखे होंगे, इसका जब मैं विचार करती हूँ तो आँखों के आगे अँधेरा छा जाता है। मैं वसुदेव की बहन और पाण्डु की रानी हूँ। जब तुम लोगों को लेकर वन से हस्तिनापुर आने के लिए रवाना हुई तब ऋषि-मुनियों ने तुम लोगों को आशीर्वाद दिया था कि इन पुत्रों के भाग्य में चक्रवर्ती राज्य लिखा है। यह भीम छोटा ही था, तब एक बार मेरी गोदी में से नीचे गिर गया तो फ़र्श का पत्थर टुकड़े टुकड़े हो गया था। इसी मेरे बलवान भीम को आज दुश्मन के भवन के लिए लकड़ियाँ सौंपनी पड़ती हैं। इससे मेरा हृदय छिदा जाता है।" कुन्ती की आँखें भर आईं।

"और ये नकुल-सहदेव!" कुन्ती की आँखों में से आँसू टपकने लगे। "इससे तो अच्छा होता कि मैं भी माद्री की तरह तुम्हारे पिता के साथ चली जाती। लेकिन मेरे भाग्य में तो यह सब देखना बदा था।"

"माँ, माँ! इस तरह क्यों रोती हो?" भीम दीन बन गया।

"रोऊँ नहीं तो क्या करूँ? अपने बच्चों को तड़पते देखकर बेचारी माँ रोए नहीं तो क्या करे?"

"माँ। ऐसी अधीर मत बन। हम तेरी कोख से पैदा हुए हैं। हमारी नसों में क्षत्रिय का खून बह रहा है। आज अगर रात है तो कल सुबह अवश्य होगी और पूर्व दिशा में नवप्रभात की लाली निकलेगी।" युधिष्ठिर उत्साह में आकर बोले।

"माँ। अगर तू कहे तो कुलाम डंडे के खेल में जिस तरह नीम के पेड़ पर से तमाम निम्बोलियों को गिरा देता था उसी तरह इन सब भाइयों को गिरादूँ और तेरी गोदी में सारे हस्तिनापुर का राज्य रख दूँ।" भीम से न रहा गया।

"बेटा भीम। तुम नहीं जानते। तुमने मेरे पेट से जन्म लिया है और बचपन से ही जंगलों में ऋषि-मुनियों के सहवास में रहे हो, इसलिए तुम छल-कपट की बातें बिलकुल नहीं जानते। हस्तिनापुर के भव्य महल के अन्दर रोज कितने षड्यंत्र रचे जाते हैं, यह जानना हो तो जाकर माता गंगा-यमुना से पूछो। उनका गहरा नीर इन बातों का पुराना साक्षी है। इसलिए आज तो जिस तरह बचा जा सके उस तरह बचना ही एक मार्ग है।" कुन्ती बोली।

"तब फिर, अब सुरङ्ग तैयार हो जाय तो हम लोग ही क्यों न इस महल में आग लगा दें?" युधिष्ठिर बोले।

"ठीक है भाई साहब, बिलकुल ठीक। मैं सारे महल में आग लगा दूँगा और उस पापी पुरोचन को तो सबसे पहले जलाऊँगा।" भीम बोला।

"जरूर। महल में आग लगाकर हम सब उस सुरङ्ग के

रास्ते बाहर निकल जायेंगे। वहाँ गंगा के किनारे विदुर ने नाव तैयार कर रक्खी होगी, उसमें बैठकर हम सब गंगा के उस पार पहुँच जायेंगे।" युधिष्ठिर ने कहा।

"चलो, अब मन कहीं शान्त हुआ।" कुन्ती बोली।

"तो भीम! अब सुरङ्ग के तैयार होने का ध्यान रखना। तबतक हमारी बातों की किसीको कानोंकान खबर न हो, इसका पूरा ध्यान रहे।" युधिष्ठिर ने कहा।

सुरङ्ग तैयार हो जाने पर किस तरह महल जलाया जाय और किस तरह पुरोचन को खत्म किया जाय, इसके मनसूबे बाँधता हुआ भीमसेन बगीचे में घूमने लगा। कुन्ती रसोई के अपने काम में लगी और युधिष्ठिर महाराज नगर में अर्जुन और नकुल को खोजने चले गये।

: २ :

हिडिंबा राक्षसी

वारणावत के लाख के महल को जलाकर पाँचों पाण्डव तथा कुन्ती सुरंग के रास्ते गंगा के किनारे पहुँचे और वहाँसे नाव में बैठकर उस पार गये। वहाँ से उन्हें जंगलों में होकर जाना था।

उस जमाने में यह सारा प्रदेश बीहड़ झाड़ियों से भरा हुआ था और इसपर राक्षसों का राज्य था। राक्षस थे तो आर्यों से भिन्न जाति के, लेकिन थे मनुष्य ही, और हमारे देश के अनेक भागों में फैले हुए थे।

पाण्डव ऐसे प्रदेश से बिलकुल अनभिज्ञ थे। उनको कहाँ जाना है, इसका उन्हें ज्ञान न था, न घने जंगलों के रास्तों की ही उन्हें कोई जानकारी थी। इन घने जंगलों में कहीं तो बड़े-बड़े गड्ढे थे और कहीं बड़ी-बड़ी टेकरियाँ, कहीं बिलकुल उजाड़ वीरान जगह, तो कहीं सूर्य की किरणों का भी प्रवेश न हो सके ऐसी घनी झाड़ियाँ, कहीं फूलों की सुगंध तो कहीं बड़े-बड़े काँटे, कहीं मनोहर घास और उसपर चरनेवाले हरिण थे, तो कहीं बड़े-बड़े पेड़ों से अजगर लिपटे हुए पड़े थे।

चलने में सबसे आगे भीमसेन था, उसके पीछे युधिष्ठिर और कुन्ती, उनके पीछे नकुल और सहदेव की जोड़ी, और सबसे पीछे अर्जुन। रास्ता भूल जायें, काँटे और झाड़ियाँ रास्ते में

आड़े आयें, पेड़ों की दीवार-सी सामने आजायें, पैर में खरोंच लग जाय, पेड़ों की दीवारों को तोड़कर रास्ता बनाते-बनाते भीम की जाँघें एकदम लाल-सुर्ख हो जायें, वह थककर चूर हो जायें, कभी-कभी तो पीने को पानी न मिलने से मुँह भी सूख जाये, लेकिन पाण्डव तो बस भीमसेन के पीछे-पीछे चले आते थे।

"बेटा भीम, तू तो चला ही जा रहा है। अब तो तेरे पैर दुखने लगे होंगे। देख, तेरी ये जाँघें कैसी होगई हैं ?" कुन्ती बोली।

"माँ, मेरी फिक्र मत कर। तू भी तो कभीसे चल रही है। आ, तुझे मैं अपने कन्धे पर बिठा लूँ।" भीम कुन्ती को लेने के लिए रुका।

"मुझे तो नहीं बैठना है। सुरङ्ग में से निकलते समय जो तेरे कन्धे पर बैठी हूँ वह इस जीवन में तो मैं कभी नहीं भूलूंगी। कन्धे पर मैं,कमर पर दोनों तरफ़ दो भाई और दोनों हाथों पर दोनों भाई और फिर तू भी वायु के समान वेग से दौड़ा जा रहा था। यह मैं भूल नहीं गई हूँ। यह तो मैं तेरी माँ नहीं कोई दूनदार निकली, जो कन्धे पर से नीचे न उतर पड़ी।" कुन्ती की आँखों में पानी आगया।

"माँ, तू फ़िज़ूल रंज करती है। मुझे इस तरह कभी थकावट नहीं होती।" भीम ने कहा।

"तुम्हें थकावट क्यों लगेगी ? हम सब तो ठहरे आदमी, हमें शरीर है और शरीर में खून और मांस है, इसलिए हमें थकावट लगती है। और तू तो पत्थर का बना हुआ है, जिससे तुझे न

तो थकान होती है और न भूख-प्यास ही लगती है। मुझे तो कुछ भी नहीं लगता।" कुन्ती ने जवाब दिया।

"माँ, मेरी बात तो सुन।"

"ले, सुनती हूँ। बोल।"

"थकान-थकान में फ़र्क़ है। जो बात मन को अच्छी न लगती हो फिर भी किसी कारण करनी ही पड़े, उसकी थकान एक तरह की होती है। जो बात मन को अच्छी लगती हो, इतना ही नहीं बल्कि उसे करने से मन की एक तरह की भूख तृप्त होती हो, तो उसको करने मे थकावट मालूम पड़ने पर भी मन उसे थकान के रूप में स्वीकार नहीं करता। उल्टे जब तब उसीको करने की इच्छा हुआ करती है।" भीमसेन बोला।

"भीमसेन। तू ऐसी बुद्धिमानों की-सी बातें करना कबसे सीख गया ? यह शास्त्र तुझे किसने सिखाया ?" युधिष्ठिर बोले।

"पिछले पन्द्रह दिनों से पैरों को शान्ति न मिलने से शास्त्र अपनेआप पैदा नहीं हो जाता ?" कुन्ती बोली।

"भाईसाहब। शास्त्र-वास्त्र तो मैं जानता नहीं, लेकिन सच कहता हूँ जंगलों में भटकना, दस-पाँच आदमियों को पीठ पर लादकर भागना, बड़े-बड़े वृक्षों को जड़-मूल से उखाड़ फेंकना, खड्डे और टेकरियों को लाँघ जाना, जंगल में काली अँधेरी रात साँय-साँय करती हो और शेर गरजता हो तो भी उसमें से निडर होकर चला जाना, इन सबमें कुछ और ही आनन्द आता है। ऐसे ही प्रसंगों में मुझे जीवन का मज़ा आता है। माँ। सच जानो,

सामने के सुदूर हिमाच्छादित शिखरों की तरफ़ जो नज़र डालता हूँ तो मेरे मन में न जाने क्या-क्या खयाल उठते हैं और ऐसा लगता है मानों पहाड़ मुझे बुला रहे हैं। और मैं उनकी ओर खिंचा चला जाता हूँ। तुम जब मानसरोवर की ओर कुबेर के गंधर्वों की बातें किया करती हो, तब मेरा मन छटपटाता रहता है, और मैं कब वहाँ जाऊँगा यही विचार मन में आते रहते हैं। इन जंगलों में कहीं मदोन्मत्त हाथी मिलें तो कितना अच्छा हो। मेरा मन उनको पाने के लिए ही डोलता रहता है। रात के समय जब तुम सब लोग सो जाते हो तब मैं जग जाता हूँ, और ख्याल किया करता हूँ कि कोई भयंकर राक्षस आजाय तो कैसा अच्छा हो। तुम लोगों को जो दुःख मालूम देता है वही मेरे मन के आनन्द की चीज है; और ऐसे मौक़ों से खाली, सादा, सरल जीवन मुझे बिल्कुल सूखा ही लगता है। इसलिए माँ, मेरी थकान का विचार मत करो।" भीमसेन दोनों को मात कर दिया हो इस तरह हँस पड़ा।

"भीमसेन। तुम्हारी बात तो बिल्कुल ठीक है। लेकिन माँ अब खूब थक गई हैं, और नकुल-सहदेव भी पीछे रह गये हैं, इसलिए हम लोग यहीं कुछ देर आराम कर लें तो ठीक होगा।" युधिष्ठिर बोले।

"बेटा, मुझे प्यास लगी है, तू थोड़ा पानी तो ले आ।" कुन्ती बोली।

"माँ, इस पेड़ के नीचे बैठो। यहाँ सारस बोल रहे हैं, इस-

लिए नजदीक ही कहीं जलाशय होना चाहिए। मुझे पानी लेकर आया ही समझो।"

इतना कहकर भीम पानी लेने चला गया और चारों भाई और माता कुन्ती पेड़ के नीचे आराम करने के लिए ठहर गये।

× × × ×

जिस वन में पाण्डव विश्राम करने बैठे, वह हिडिंबा नाम की राक्षसी का था। उस वन के पास ही एक दूसरा वन उसके भाई हिडिंब का था। जिस समय पाण्डव पेड़ के नीचे सुस्ताने बैठे, हिडिंब दूर के एक पेड़ पर से उनको देख रहा था। इस तरह अपने हाथ में इतने पास मनुष्य के आजाने से वह बहुत प्रसन्न हुआ और हिडिंबा से कहने लगा, "बहन, तू जा और उस पेड़ के नीचे कौन बैठे हैं इसकी खबर ले आ। मुझे वहाँ मनुष्य की गन्ध आती है और मेरे मुंह में पानी आरहा है। आज कितने दिनों से मुझे मनुष्य का खून और मांस नहीं मिला, इसलिए आज हम खूब पेट भर के खावेंगे। तू जा और पता लगाकर जल्दी वापस आ।"

इधर भीमसेन सरोवर के पास गया, वहाँ जाकर पानी पिया, पानी में उतरकर खूब नहा-धोकर अपनी थकान मिटाई और दूसरों के लिए पानी लेकर वापस चला। लेकिन आकर क्या देखता है कि माँ और चारों भाई गहरी नींद में सो रहे हैं। भीम ने पानी को ढककर रख दिया और माँ और भाइयों की रखवाली के लिए बैठ गया।

सामने के सुदूर हिमाच्छादित शिखरों की तरफ़ जो नज़र डालता हूँ तो मेरे मन में न जाने क्या-क्या ख़याल उठते हैं और ऐसा लगता है मानों पहाड़ मुझे बुला रहे हैं। और मैं उनकी ओर खिंचा चला आता हूँ। तुम जब मानसरोवर की ओर कुबेर के गंधर्वों की बात किया करती हो, तब मेरा मन छटपटाता रहता है, और मैं कब वहाँ जाऊँगा यही विचार मन में आते रहते हैं। इन जंगलों में कहीं मदोन्मत्त हाथी मिलें तो कितना अच्छा हो। मेरा मन उनको पाने के लिए ही डोलता रहता है। रात के समय जब तुम सब लोग सो जाते हो तब मैं जग जाता हूँ, और ख़याल किया करता हूँ कि कोई भयंकर राक्षस आजाय तो कैसा अच्छा हो। तुम लोगों को जो दुःख मालूम पड़ता है वही मेरे मन के आनन्द की चीज़ है, और ऐसे मौक़ों से ख़ाली, सादा, सरल जीवन मुझे बिलकुल सूखा ही लगता है। इसलिए माँ, मेरी थकान का विचार मत करो।" भीमसेन दोनों को मात कर दिया हो इस तरह हँस पड़ा।

"भीमसेन! तुम्हारी बात तो बिलकुल ठीक है। लेकिन माँ अब ख़ूब थक गई हैं, और नकुल सहदेव भी पीछे रह गये हैं, इसलिए हम लोग यहीं कुछ देर आराम कर लें तो ठीक होगा।" युधिष्ठिर बोले।

"बेटा, मुझे प्यास लगी है, तू थोड़ा पानी तो ले आ।" कुन्ती बोली।

"माँ, इस पेड़ के नीचे बैठो। यहाँ सारस बोल रहे हैं, इस-

लिए नजदीक ही कहीं जलाशय होना चाहिए। मुझे पानी लेकर आया ही समझो।"

इतना कहकर भीम पानी लेने चला गया और चारों भाई और माता कुन्ती पड़ के नीचे आराम करने क लिए ठहर गये।

× × × ×

जिस वन में पाण्डव विश्राम करने बैठे, वह हिडिंबा नाम की राक्षसी का था। उस वन क पास ही एक दूसरा वन उसके भाई हिडिंब का था। जिस समय पाण्डव पड़ के नीचे सुस्ताने बैठे, हिडिंब दूर के एक पेड़ पर से उनको देख रहा था। इस तरह अपने हाथ में इतन पास मनुष्य के आजाने से वह बहुत प्रसन्न हुआ और हिडिंबा से कहन लगा, "बहन, तु आ और उस पेड़ क नीचे कौन बैठे हैं इसकी खबर ले आ। मुझे वहाँ मनुष्य की गन्ध आती है और मेरे मुह में पानी आरहा है। आज कितन दिनों से मुझे मनुष्य का खून और मांस नहीं मिला, इसलिए आज हम खूब पेट भर के खावेंगे। तू जा और पता लगाकर जल्दी वापस आ।"

इधर भीमसेन सरोवर के पास गया, वहाँ जाकर पानी पिया, पानी में उतरकर खूब नहा-धोकर अपनी थकान मिटाई और दूसरों के लिए पानी लेकर वापस चला। लेकिन आकर क्या देखता है कि माँ और चारों भाइ गहरी नींद में सो रहे हैं। भीम ने पानी को ढककर रख दिया और माँ और भाइयों की रखवाली क लिए बैठ गया।

इतने ही म थोड़ी दूर पर हिडिंबा दिखाई दी। हिडिंबा ने दूर से भीमसन को देखा और देखत ही उसपर आसक्त होगई। भीमसेन का वज्र जैसा शरीर, हाथी के सूँड जैसे हाथ, उसकी विशाल छाती, बड़े-बड़े पड़ों को उखाड़ देनेवाली उसकी जाँघें, आँखों का नूर और उसके सार शरीर में से निखरता हुआ मद यौवन—इस सबने हिडिंबा जैसी स्त्री को मोह लिया। हिडिंबा क शरीर पर मानो वसन्तऋतु का असर होगया। उसक अवयवों में, उसकी आँखों में, उसके मुँह पर, उसकी वाणी म, उसके हाव-भाव में निखरती हुई जवानी स्पष्ट दिखाई द रही थी। युवती क अनुरूप अपना वेश बनाकर और कपड़े पहनकर हिडिंबा आगे आई और बोली—"ओ अजनबी आदमी! मैं तुमको पहचानती तो नहीं, लेकिन तुमको देखत ही मेर सारे शरीर में एक अजीब तरह का परिवतन मालूम होरहा है। मेरा सारा शरीर और मन तुम्हारी ओर बड़ी तज़ी के साथ खिंचा चला जारहा है और न जाने क्यों मैं परवश सी बनी आरही हूँ। अब तुम कृपा करक मुझे स्वीकार करो। मैं इस वन की मालकिन हूँ, तुमको मैं राक्षसों क त्रास से बचाऊँगी। मेरी इस याचना को तुम ज़रूर स्वीकार करो।"

यह कहत हुए हिडिंबा ने भीम की तरफ़ कनखियों से देखा। भीम को कुछ एसा रोमांच हो आया जैसा पहले उसन कभी अनुभव नहीं किया था। थोड़ी दर भीम अपनेको भूल गया। कुछ देर बाद स्वस्थ होकर उसन हिडिंबा की नज़र-से-नज़र मिलाई और कुछ कहना ही चाहता था, इतने म हिडिंबा क पीछे हिडिंब दिखाइ दिया।

"दुष्ट हिडिंबा। मैंने तुझे इन लोगों का पता लगाने के लिए भेजा था या रूपवती बनकर इस मोटल्ले के साथ बातें करने के लिए ? तूने आज हमारे राक्षस-कुल की लाज लुटाई है। ऐसे आर्य तो हम राक्षसों का भोजन होते हैं। अब तू सामने से हट जा, मैं इन लोगों को देख लेता हूँ। अरे ओ मोटल्ले! चल खड़ा हो। काल न मालूम होता है तुझे मेरे लिए ही पैदा किया है। इस बुढ़िया को जगाकर इससे मिलले। फिर तो ये लोग भी मेरे ही पेट में पड़नेवाले हैं, इसमें कोई शक नहीं।" इस तरह कहते हुए हिडिंब ने अपने सिर के लाल बालों को ज़ोर से हिलाया और अपनी पीली आँखों से भीम की ओर देखा।

"दुष्ट राक्षस। तुझे अगर अपनी जान प्यारी हो, तो दूर भाग जा। यह दूसरी बात है कि तूने आजतक कई आर्यों को हज़म कर लिया होगा, लेकिन यह जान लेना कि इस भीम को हज़म करना मुश्किल है। हिडिंबा। अगर अपने पिता के वंश को क़ायम रखना हो, तो अपने इस भाई को समझा ले। नहीं तो मुझे इसका काल दिखाई दे रहा है।" भीम ललकार कर खड़ा होगया।

हिडिंबा अपने भाई के कन्धे पर हाथ रखकर उसे समझाने लगी—"भाई। तू गुस्से मत हो। तू मेरा सगा भाई है। यह पुरुष मेरे अन्तर का स्वामी बन चुका है। कुल-परम्परागत ख़ून के सम्बन्ध का बन्धन ऐसे अन्तर के सम्बन्ध के सामने किस प्रकार टूट जाता है, यह तू नहीं जानता। भाई। मैं तेरे पैरों पड़कर प्रार्थना करती हूँ कि तू इस पुरुष को छोड़दे—मेरे अच्छे स्वामी। आपने मुझे परवश

बना लिया है, फिर भी मुझे आपसे कुछ कहने का अधिकार हो, तो मैं आपसे यही चाहती हूँ कि आप मेरे इस भाई को मारें नहीं।" हिडिंबा ने कहा।

"लेकिन यह तेरा भाई तो अपनेआप ही अपनी मौत बुला रहा है, तब मैं क्या करूँ? मैं उसे कहाँ बुलाने गया था?" भीम ने जवाब दिया।

"दुष्टा! मुझे नहीं पता था कि तेरी वासना तुझे इतना मूर्ख और निर्लज्ज बना देगी। अगर मुझे ऐसी खबर होती, तो पहले मैं तुझीको खतम करता और तब यहाँ आता। अब सामने से हट जा। पहले इस तेरे अन्तर के स्वामी को खतम करता हूँ, उसके बाद तुझे देख लूँगा।"

"भैया! मेरी इतनी-सी बात नहीं मानोगे? मेरा कोई अधिकार नहीं?" हिडिंबा गिड़गिड़ाने लगी।

"दूर हट कलमुँही! मैं तेरा भाई नहीं हूँ। हिडिंब की बहन ऐसी बेशर्म नहीं हो सकती।" इतना कहकर हिडिंब ने बहन को ज़ोरसे धकेल दिया।

और भीम और हिडिंब का युद्ध शुरू हुआ।

युद्ध की तड़ाक-पड़ाक की आवाज़ होरही थी। पेड़ एक के बाद एक टूटते जारहे थे। दोनों एक-दूसरे पर ज़ोरों से घूँसों के प्रहार करते थे। युद्ध के जोश में दोनों ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाते जाते थे। दोनों नीचे ऊपर गिरते-पड़ते, लोट लगाते, जाँघ से जाँघ रगड़ते और दोनों की छाती-से-छाती टकराती थी। इतने

में अर्जुन जग गया और देखता है कि थोड़ी ही दूर पर हिडिंब के साथ भीम युद्ध कर रहा है।

अर्जुन ने सबको जगाया। यह देखकर सबको चिन्ता होने लगी। इधर शाम होन का समय भी आगया था, इसलिए युधिष्ठिर न सोचा "शाम होने से पहले यह राक्षस खतम होजाना चाहिये, नहीं तो शाम के बाद राक्षसों का जोर बढ़ जाने से भीम को कठिनाइ होगी।"

अर्जुन आगे बढ़कर बोला, "भीम भाई। तुम थक गये होग। लो, मैं आया।"

"नहीं, अर्जुन। तरी कोइ जरूरत नहीं। मैं अकेला ही काफ़ी हूँ।"

इतना कहत ही भीम ने हिडिंब को पृथ्वी पर दमारा और उसकी कमर पर पैर रखकर शरीर के एकदम दो टुकडे कर दिये। हिडिंब चीख मारकर मर गया और सार जंगल में सूनसान होगया।

हिडिंब को मारकर पाण्डव अपने रास्ते चलने लगे। हिडिंबा भी उनके पीछे-पीछे चलदी। थोड़ी दूर जाने के बाद भी किसीने उसकी ओर नहीं देखा, तब हिडिंबा ही बोली, "माताजी। मैं आपके पीछे-पीछे चली आ रही हूँ, यह आपको मालूम है न?"

"कौन कहता है कि तुम चली आओ? तुम अपने वन में ही रहो न? मरे बेटे को कितना पिटवाया, यह नहीं कहती।" कुन्ती घमंका रही हो ऐसे बोली।

बना लिया है, फिर भी मुझे आपसे कुछ कहने का अधिकार था, सो मैं आपसे यही चाहती हूँ कि आप मेरे इस भाई को मारें नहीं।" हिडिंबा ने कहा।

"लेकिन यह तेरा भाई तो अपनेआप ही अपनी मौत बुला रहा है, अब मैं क्या करूँ ? मैं उसे कहाँ बुलाने गया था ?" भीम ने जवाब दिया।

"दुष्टा! मुझे नहीं पता था कि तेरी वासना तुझे इतना मूर्ख और निर्लज्ज बना देगी। अगर मुझे ऐसी खबर होती, तो पहले मैं तुझीको खतम करता और तब यहाँ आता। अब सामने से हट जा। पहले इस तेरे अन्तर के स्वामी को खतम करता हूँ, उसके बाद तुझे देख लूँगा।"

"भैया! मेरी इतनी-सी बात नहीं मानोगे ? मेरा कोई अधिकार नहीं ?" हिडिंबा गिड़गिड़ाने लगी।

"दूर हट कलमुँही! मैं तेरा भाई नहीं हूँ। हिडिंब की बहन ऐसी बेशर्म नहीं हो सकती।" इतना कहकर हिडिंब ने बहन को जोरसे धकेल दिया।

और भीम और हिडिंब का युद्ध शुरू हुआ।

युद्ध की तड़ाक-फड़ाक की आवाज होरही थी। पेड़ एक के बाद एक टूटते जारहे थे। दोनों एक-दूसरे पर जोरों से घूँसों के प्रहार करते थे। युद्ध के जोश में दोनों जोर-जोर से चिल्लाते जाते थे। दोनों नीचे ऊपर गिरते पड़ते, लोट लगाते, जाँघ से जाँघ रगड़ते और दोनों की छाती-से-छाती टकराती थी। इतने

में अर्जुन जग गया और देखता है कि थोडी ही दूर पर हिडिंब के साथ भीम युद्ध कर रहा है।

अर्जुन ने सबको जगाया। यह देखकर सबको चिन्ता होने लगी। इधर शाम होने का समय भी आगया था, इसलिए युधिष्ठिर ने सोचा "शाम होने से पहले यह राक्षस खतम होजाना चाहिये, नहीं तो शाम के बाद राक्षसों का जोर बढ़ जाने से भीम को कठिनाई होगी।"

अर्जुन आगे बढ़कर बोला, "भीम भाई! तुम थक गये होगे। लो, मैं आया।"

"नहीं, अर्जुन। तेरी कोई जरूरत नहीं। मैं अकेला ही काफ़ी हूँ।"

इतना कहते ही भीम ने हिडिंब को पृथ्वी पर दमारा और उसकी कमर पर पैर रखकर शरीर के एकदम दो टुकड़े कर दिये। हिडिंब चीख मारकर मर गया और सार जंगल में सूनसान होगया।

हिडिंब को मारकर पाण्डव अपने रास्ते चलने लगे। हिडिंबा भी उनके पीछे-पीछे चलदी। थोड़ी दूर जाने के बाद भी किसीने उसकी ओर नहीं देखा, तब हिडिंबा ही बोली, "माताजी। मैं आपके पीछे-पीछे चली आ रही हूँ, यह आपको मालूम है न?"

"कौन कहता है कि तुम चली आओ? तुम अपने वन में ही रहो न? मेरे बेटे को कितना पिटवाया, यह नहीं कहती।" कुन्ती धमका रही हो ऐसे बोली।

"तुम भी मुझे ऐसा कहोगी। मैं तुम्हारे कहने से नहीं आ रही हूँ, बल्कि किसी धक्के के वश खिंची चली आ रही हूँ। तुम्हारे इस पुत्र ने मुझे अपने वश में कर लिया है। मैं अपने मन में इनको वर चुकी हूँ।"

"ओ चुड़ैल! वर भी चुकी? अरे ओ भीम! यह क्या कहती है?" कुन्ती आश्चर्य से बोली।

"माताजी, आप भी मेरे जैसी स्त्री हैं, इसलिए सब समझ सकती हैं। जवानी में यह धक्का लगने पर मनुष्य कैसा दीन और निर्लज्ज बन जाता है, उसका तुमको किसी समय तो अनुभव हुआ ही होगा। इसलिए मेरी बात मानो और ऐसा करो जिससे तुम्हारा यह पुत्र मुझे स्वीकार करले। तुम जो कहोगी वह मदद मैं करूँगी, राक्षसों से तुमको बचाऊँगी, जहाँ जाना होगा वहाँ मैं सबको ले जाऊँगी और अपनी सारी मिल्कियत तुम्हारे पैरों पर रख दूँगी।" हिडिंबा ने कहा।

"युधिष्ठिर! बताओ अब मैं क्या करूँ?" कुन्ती ने पूछा।

"मुझे ऐसा लगता है कि यह राक्षसी कामातुर है। दूसरे इस समय हमारा सहायक कोई नहीं है, इसलिए ऐसे राक्षसों के साथ भी सम्बन्ध कायम होजाय तो समय पड़ने पर काम ही आयगा।"

"लेकिन," तुरन्त ही कुन्ती बोली, "भीम जैसे बेटे को इस तरह राक्षसी के साथ ब्याह दूँ तो मैं तो कहीं की न रही।"

यह सुनकर हिडिंबा बीच में ही बोल उठी, "माताजी! ऐसा

न मानो। हम राक्षस लोग आप लोगों की तरह जिन्दगी-भर के लिए ब्याह करते हों ऐसी बात नहीं है। हमारे शास्त्रकारों ने कहा है कि स्त्री को सन्तान की वासना होना स्वाभाविक है, इसलिए एक सन्तान होजाय तबतक विवाह-सम्बन्ध रखकर बाद में वे अलग हो सकते हैं। मैं भी ऐसे ही विवाह की भूखी हूँ। हमारा इस प्रकार का विवाह पूरा होजाने के बाद मैं तुम्हारे पुत्र को तुम्हारे पास सुरक्षित पहुँचा दूँगी।"

"क्यों भीम, तेरा क्या विचार है?" कुन्ती ने पूछा।

"मुझे इसकी पागलों की-सी व्यर्थ बातों और इसके शास्त्रों की बात तो कुछ समझ में नहीं आती। लेकिन अगर इसके साथ रहूँ तो जङ्गलों में भटकने, विमानों में उड़ने, पहाड़ों की चोटी पर पहुँचने, समुद्र के ठेठ तले में डुबकियाँ लगाने, उत्तर ध्रुव से ठेठ दक्षिण ध्रुव जाने, ज्वालामुखियों के मुँह में हाथ डालने, और सामान्य पुरुष कल्पना भी नहीं कर सकते ऐसे पृथ्वी के गर्भभागों में प्रवेश करने आदि का खूब मौक़ा मिलेगा। इस बात का ख़याल आने पर थोड़ी देर के लिए मन होजाता है कि इस मौक़े को न छोड़ूँ। लेकिन तुम्हें इस घोर जंगल में अकेले छोड़कर भीम कैसे जासकता है?" भीमसेन ने जवाब दिया।

"माँ। भीम को जाने दो। वह चाहे तो हिडिंबा के साथ विवाह करले। देख हिडिंबा। तू रोज़ दिन में भीमसेन के साथ रहना और शाम के पहले हम जहाँ हों वहाँ हमारे पास उसे पहुँचा दिया करना। राक्षसों पर विश्वास तो नहीं किया जासकता,

लेकिन तुमपर विश्वास रखकर मैं यह कहता हूँ। जाओ, तुम्हारा कल्याण हो।" युधिष्ठिर ने आशीर्वाद दिया।

हिडिया कुन्ती और युधिष्ठिर के पैरों पर पड़ी और बोली, "प्रभु आपका भला करे। माताजी, आपको प्रणाम करती हूँ। आपने मुझपर विश्वास रखकर मुझे आभारी बना लिया है। इस उपकार का बदला चुकाना मैं कभी नहीं भूलूँगी।"

"अखण्ड सौभाग्यवती हो। मेरे भीम-जैसे पुत्र की माँ होना। भीम। ईश्वर तुम्हारा भला करे।" कुन्ती गद्‌गद होगई।

"तो माँ। भीम भाई आयेंगे?" नकुल बोला।

"आज आयगा तो कल आजायगा। तुम समझना कि वह शिकार करने गया है।" कुन्ती ने जवाब दिया।

कुन्ती और उसके चारों पुत्र आगे चले। जबतक सब दिखाई देते रहे तबतक भीम वहीं खड़ा रहा। बाद में जब वे आँखों से ओझल होगये तब वन की रानी के साथ उसके महल की तरफ़ चला।

: ३

बकासुर का वध

"हाय मेरे बेटे! मैं तुम सबको कैसे छोड़ सकूँगा?"

कुन्ती और भीमसेन एकचक्रानगरी में एक ब्राह्मण के घर दालान में बैठे हुये थे, वहाँ उन्हें यह आवाज़ सुनाई दी।

"माँ! यह किसकी आवाज़ होगी?" भीम न पूछा।

"आवाज़ तो ब्राह्मण की-सी लगती है। जा ज़रा जाकर देख तो, क्या बात है? मैं भी यह आई।" कुन्ती बोली।

भीम और कुन्ती गये तो वहाँ ब्राह्मण और ब्राह्मणी दोनों सिर पर हाथ रखकर रो रहे थे। उनका लड़का ब्राह्मणी की गोद में बैठा हुआ होठ हिला रहा था और लड़की दूर कोन में खड़ी आँसू बहा रही थी।

ब्राह्मण रो पड़ा—"हाय मेर बेटे! मैं तुम सबको कैसे छोड़ सकूँगा?"

"अर भाई!" कुन्ती ने ब्राह्मण के सिर पर हाथ रखकर पूछा, "यों क्यों रोरहे हो? तुम्हें हो क्या गया है, यह तो बताओ।"

"हुआ क्या, बहन! मुझ अभाग की तक़दीर फूट गई।" ब्राह्मण ने सिर पीटते हुए कहा, "मैं इससे कहता था कि चलो इस एकचक्रानगरी को छोड़कर हम किसी दूसरे राज्य मे रहने चले जाय, लेकिन यह नहीं मानी। टस-से-मस नहीं हुई। मैंने इसी

ब्राह्मण ने अपनी बात जारी रक्खी, "एकचक्रा के ऊपर कोई दुश्मन चढ़ाई न करे, या कोई जंगली शेर या सिंह वगैरा तकलीफ़ न दे, यह देखने की सारी जिम्मेदारी बकासुर के ऊपर है।"

"तो बकासुर जबरदस्त मालूम पड़ता है।" भीम बोला।

"वह अकेला ही बड़ा जबरदस्त है। इसपर वह यहाँ अपनी फ़ौज के साथ रहता है, इसलिए उसका क्या पूछना?" ब्राह्मण बोला।

"जब यह सारा भार बकासुर के सिर पर है, तो फिर वह तो एक तरह से तुम्हारा राजा है, यह कहो न?" कुन्ती बोली।

"नहीं, नहीं। हमारा राजा तो दूसरा है। वह यहाँ से थोड़ी दूर पर नेत्रकीय गृह मे रहता है। लेकिन राजा में दम हो तब न? वह तो राजगद्दी पर एक प्रकार से पुतले के समान है।" ब्राह्मण ने समझाया।

"माँ। राजा तो बकासुर ही बन बैठा होगा। किसी पराक्रम की खातिर उसकी रखवाली थोड़े ही करता होगा?" भीम बोला।

"हाँ, भाइ। तुम समझ गये। परोपकार का तो नाम है, दर-असल तो यह पेट-उपकार है।"

"बकासुर जो हमारी सब लोगों की रखवाली करता है उसके बदले में एकचक्रा नगरी के लोगों को हमेशा आहार के लिए एक गाड़ी अनाज, दो भैंसे और एक मनुष्य देना पड़ता है।" ब्राह्मण बोला।

"रोज़? हमेशा?" भीमसेन ने पूछा।

"हाँ, रोज़। जैसे सूर्य का उगना निश्चित है वैसे ही यह रसद भेजना भी निश्चित ही है।"

नगर में ही जन्म लिया है और यहीं मी यहीं हुई हूँ। मर सग सम्बन्धी भी यहीं रहते हैं। इसलिए मुझे दूसरे गाँव में जाना अच्छा नहीं लगता।' यह कहकर घर से नहीं निकली। अब नतीजा सामने है। तेरी माँ भी मर गई, बाप भी मर गया, तू भी बूढ़ी हो गई और अब आज मर भी मौत के मुँह में जाने की बारी आगई है।" ब्राह्मण की आँखों में से आँसुओं की धारा बह रही थी।

"लेकिन," कुन्ती ने कहा, "तुम ज़रा शान्त होकर अपनी बात तो समझाकर कहो।"

"उस बात को समझकर भी क्या होगा? यह दुःख ऐसा थोड़े ही है जिसमें कोई हिस्सा बँटाले।" ब्राह्मण ने जवाब दिया।

"लेकिन अपनी बात तो सुनाओ। बेटी इधर आओ। कोने में क्यों खड़ी हो?" कुन्ती ने लड़की को पुचकारकर अपने पास बुलाया।

"बहन! तुम नई-नई हो, इसलिए लो मैं तुम्हें बतलाए देता हूँ। भाई, तुम भी बैठ जाओ। इस एकचक्रनगरी के बाहर दूर एक बड़ा वन है, उसमें बक नाम का एक राक्षस रहता है।" ब्राह्मण बोला।

"क्या नाम बताया? बक?" भीम ने पूछा।

"हाँ, बक। लोग उसे बकासुर कहते हैं।" ब्राह्मण ने जवाब दिया।

"उस बक के बारे में क्या बात है?" कुन्ती बोली।

"यह बकासुर इस एकचक्रनगरी की रखवाली करता है।"

ब्राह्मण ने अपनी बात जारी रक्खी, "एकचक्रा के ऊपर कोई दुश्मन चढ़ाई न करे, या कोई जंगली शेर या सिंह वगैरा तकलीफ़ न दे, यह देखने की सारी ज़िम्मेदारी बकासुर के ऊपर है।"

"तो बकासुर ज़बरदस्त मालूम पड़ता है।" भीम बोला।

"वह अकेला ही बड़ा ज़बरदस्त है। इसपर वह यहाँ अपनी फ़ौज के साथ रहता है, इसलिए उसका क्या पूछना ?" ब्राह्मण बोला।

"जब यह सारा भार बकासुर के सिर पर है, तो फिर वह तो एक तरह से तुम्हारा राजा है, यह कहो न ?" कुन्ती बोली।

"नहीं, नहीं। हमारा राजा तो दूसरा है। वह यहाँ से थोड़ी दूर पर नेत्रकीय गृह में रहता है। लेकिन राजा में दम हो तब न ? वह तो राजगद्दी पर एक प्रकार से पुतले के समान हैं।" ब्राह्मण ने समझाया।

"माँ। राजा तो बकासुर ही बन बैठा होगा। किसी पराक्रम की ख़ातिर सबकी रखवाली थोड़े ही करता होगा ?" भीम बोला।

"हाँ, भाई। तुम समझ गये। परोपकार का तो नाम है, दर-असल तो यह पेट-उपकार है।"

"बकासुर जो हमारी सब लोगों की रखवाली करता है उसके बदले में एकचक्रा नगरी के लोगों को हमेशा आहार के लिए एक गाड़ी अनाज, दो भैंसे और एक मनुष्य देना पड़ता है।" ब्राह्मण बोला।

"रोज़ ? हमेशा ?" भीमसेन ने पूछा।

"हाँ, रोज़। जैसे सूर्य का उगना निश्चित है वैसे ही यह रसद भेजना भी निश्चित ही है।"

"इस एकचक्रा में कितने घर हैं ?" भीम ने पूछा।

"होंगे कोई सात-आठ हजार। हरेक घर की पन्द्रह-बीस बरस में एक बार बारी आती है। लेकिन जब बारी आती है तब होश फ़ाख्ता होजाते हैं।" ब्राह्मण ने कहा।

"तो मालूम होता है आज तुम्हारी बारी है ?" कुन्ती ने पूछा।

"हाँ, कल मेरी ही बारी है।" ब्राह्मण ने कहा।

"लेकिन मान लो कि अपनी बारी हो और उसका पालन न करें, तो ?" भीम ने सवाल किया।

"अगर कोई अपनी बारी पर न जाय, तो बकासुर और उसके आदमी आकर उसके घर को बरबाद कर डालते हैं और बाद में जितने आदमियों को उठाकर ले जाते हैं।" ब्राह्मण ने कहा।

"अपनी जगह किसी दूसरे आदमी को कोई बकासुर के पास भेज दे, तो ?" भीम ने पूछा।

"घर में से एक आदमी को जाना चाहिए। चाहे जो चला जाए। अपने बदले किसी आदमी को ख़रीदकर भी भेज सकते हैं।" ब्राह्मण ने जवाब दिया।

"ऐसा है ?" भीम ने आश्चर्य से पूछा। "तो क्या एकचक्रा के बाजार में मरने के लिए आदमी ख़रीदे जा सकते हैं ?"

"ज़रूर। मेरे पास धन नहीं है, नहीं तो मैं भी किसीको ख़रीद कर भेजदूँ और फिर मुझे कोई झंझट न हो।" ब्राह्मण ने बताया।

"वाह। यह बकासुर तुम्हारी रखवाली करे, इसके बदले तुम खुद ही अपनी रक्षा क्यों नहीं कर लेते ?" भीम ने पूछा।

"इतनी शक्ति हमारे राजा में भी नहीं है, और न हममें ही है। हमारे गाँव में एकता तो बिल्कुल नहीं है, जैसा कि कुछ दिन यहाँ रहने पर—तुम्हें अपनेआप मालूम होजायगा।" ब्राह्मणने कहा।

"तो फिर तुम लोग बकासुर को इस प्रकार कबतक खाना देते रहोगे ?"

"पिछले चालीस बरसों से दत आरहे हैं। इसलिए अब तो सब आदी ही बन गये हैं और जिसका नम्बर होता है उसके सिवा औरों को इसके त्रास का खयाल भी नहीं होता।" ब्राह्मण ने कहा।

"तुम लोगों की तादाद तो तीस-पैंतीस हजार है, फिर भी एक बकासुर के त्रास को दूर नहीं कर सकते। तुम अगर ठानलो तो अपनी रक्षा खुद ही कर सकते हो और बकासुर को बतादो कि अब तुम्हारे संरक्षण की हमें जरूरत नहीं है।" भीम बोला।

"हम खुद अपनी रक्षा कैसे कर सकते हैं, यह तो हमारी समझ में ही नहीं आता। बकासुर न हो, तब तो दूसरे दुश्मन हमें मार ही न डालें ?" ब्राह्मण ने कहा।

"अरे भले आदमी, तुम तो बहुत डरपोक मालूम होते हो। लेकिन यह तो बताओ कि जहाँ बकासुर न हो वहाँ के लोग कैसे जीते होंगे ?" भीम बोला।

"लेकिन मानलो कि हम बकासुर को कहलावें कि अब उसके संरक्षण की हमें कोई जरूरत नहीं है, तो क्या बकासुर सीधी तरह हमारी बात मान लेगा ?" ब्राह्मण ने कहा।

"नहीं क्यों मानेगा ? अगर न माने तो तुम अनाज, भैंसे और मनुष्य उसके पास भेजना बन्द करदो ।" भीम ने कहा ।

"ऐसा करने पर तो बस एकचक्रानगरी का खातमा ही समझो ।" ब्राह्मण बोला ।

"भाई ! सारे गाँव ने कभी ऐसा कुछ करके देखा भी है ?" कुन्ती ने पूछा ।

'सारे गाँव का इकट्ठा होना तो सपने में भी संभव नहीं है । लेकिन मुझे याद आता है कि जब मैं छोटा था तब एक योगी ने गाँववालों से कुछ कहा जरूर था ।" ब्राह्मण कुछ याद करता हुआ-सा बोला ।

"योगी ने गाँव के सारे लोगों को इकट्ठा करके कहा था कि तुममें से किसी बत्तीस लक्षणवाले आदमी को खोजकर बकासुर के पास भेजो ।" ब्राह्मण बोला ।

"हाँ, फिर ?" भीम ने पूछा ।

"फिर गाँव के अगुओं ने इकट्ठे होकर यह निश्चय किया कि 'महाराज, हमारे यहाँ तो आप ही बत्तीस लक्षणवाले हैं । आपसे बढ़कर हमारे गाँव में तो और कोई आदमी है नहीं ।' ब्राह्मण ने बताया ।

"फिर क्या हुआ ?" कुन्ती ने पूछा ।

"फिर योगी महाराज गये और बकासुर उन्हें खाने लगा । लेकिन वह तो बकासुर के गले में फँस गये । न अन्दर ही जाते थे और न बाहर ही निकलते थे ।" ब्राह्मण ने कहा ।

"तब तो बड़ा मज़ा हुआ होगा।" भीम बोला।

"थोड़ी देर के लिए सबको ऐसा मालूम होने लगा कि बकासुर अभी छ्रै करके मर जायगा।" ब्राह्मण ने बात को जारी रखते हुए कहा, "लेकिन इतने में तो बकासुर के आदमियों ने अगुओं को इकट्ठा किया और उनपर ऐसा जोर डाला कि सबने योगी महाराज की आरज़ू-मिन्नत करके उन्हें बाहर निकाल लिया और बकासुर के लिए भोजन वगैरा की पहले-जैसी बारी बाँध दी गई। उस समय मैं बालक था। लेकिन मेरी माँ और पिताजी यह बात अक्सर हमसे कहा करते थे।" ब्राह्मण ने अपनी बात पूरी की।

"तब तो तुम्हें अपनी बारी का यह काम करना ही पड़ेगा, क्यों?" भीम ने पूछा।

"हाँ, यह तो करना ही पड़ेगा। अभीतक हमारी बारी नहीं आई थी, इसलिए किसकी बारी आई और किस माता ने अपने पुत्र को बकासुर को समर्पण किया इसका विचार ही हम नहीं करते थे। आज हमारी बारी है, इसलिए हममें से जो एक आदमी जायगा उसके लिए रो-पीट लगे और हताश होकर बैठ जायँगे। बरस-छः महीने बाद फिर भूल जायँगे। सारी एक-चक्रनगरी की यही मनोदशा है।" ब्राह्मण बोला।

"क्या आज तुम्हारी इस एकचक्रानगरी में ऐसा एक भी आदमी नहीं है, जो तबतक सुख से नींद न ले जबतक कि बकासुर का यह त्रास दूर न हो जाय?" भीम ने पूछा।

"मुझे तो ऐसा कोई नहीं मालूम पड़ता।"

"पैंतीस हजार की बस्ती में एक भी ऐसा नहीं, जिसके हृदय में बकासुर के त्रास से छुटकारा पाने की आग निरन्तर जला करती हो और जबतक वह शान्त न हो तबतक उसे चैन न मिले ?" भीम ने फिर से पूछा।"

"नहीं।"

"अरे भाई! तुम क्या कहते हो ? इस असुर का यहाँ इतना आतंक छाया हुआ है कि किसी का दिमाग भी गरम नहीं होता ? किसी आदमी की आँख फूट नहीं जाती ? किसीके हाथ में खुजली नहीं चलती ? किसी का हृदय बेचैन नहीं होता ?" भीम का खून उबलने लगा।

"भाई, तुम जो-कुछ पूछते हो वह सब मैं समझ गया। जो बात तुम पूछते हो, वह इस एकचक्रानगरी में नहीं है। हम सब मानव देहधारी मिट्टी के पुतले बन गये हैं। कोई महापुरुष आगे आकर हमारे अन्दर प्राण फूँक तभी कुछ हो तो हो। आज तो हम जैसे बने वैसी अपनी जिन्दगी के दिन काटनेवाले पामर मनुष्य हो गये हैं।" ब्राह्मण ने अपनी दीनता बताई।

"तब तो यही कहो न कि तुम लोग बकासुर को मारना ही नहीं चाहते।" कुन्ती बोली।

"मारना तो है ही लेकिन किसी मनुष्य के किये यह काम होगा, ऐसा हमें नहीं लगता। ईश्वर करे कि किसी प्रकार इस राक्षस की मौत होजाय, तो हम प्रभु का बड़ा उपकार मानेंगे।" ब्राह्मण ने कहा।

"तो भाइ, अब रोते क्यों हो ? कल किसी एक को तो जाना ही है।" कुन्ती बोली।

"हममें से पहले कौन जाय, यही तो सवाल है।" ब्राह्मण ने कहा।

तुरन्त ही ब्राह्मणी बोल उठी, "मैं तो कहती हूँ कि मुझे जाने दो। तुम दोनों बच्चों को पीछे से सम्हाल लेना।"

"लेकिन तुझे भेजकर मुझसे जिन्दा रहा जायगा ?" ब्राह्मण बोला।

"पिताजी !" कुन्ती के पास खड़ी हुई ब्राह्मण की लड़की बोली, "मुझे ही भेज दो न। मैं यों भी तो पराये घर जाने वाली हूँ। फिर दो दिन पहले या दो दिन बाद। यहाँ से तो जाना ही है।"

"मैं तो बहुत चक्कर में पड़ गया हूँ। तुम सबको खोकर मैं पीछे जिन्दा रहना नहीं चाहता, इसी तरह खुद मरकर तुम लोगों को दुःख में भी नहीं डालना चाहता।" ब्राह्मण दीन होकर बोला।

इस प्रकार बातचीत चल ही रही थी कि इसी बीच कुन्ती और भीम थोड़ी देर के लिए अपने कमरे में गये और जल्दी ही वापस आ गये।

"कहो भाई। तो फिर क्या निश्चय किया ?" कुन्ती ने पूछा।

"अभी इनकी तबीयत तो ठीक हुई नहीं। तो फिर तय भी कैसे हो ?" ब्राह्मणी बोली।

"तो भाई, मेरी एक बात सुनोगे ? कल तुममें से कोई भी न जाय। मेरे पाँच लड़के हैं, इसलिए तुम्हारी बारी म

मेरा यह लड़का चला जायगा।" कुन्ती ने अपनी तजवीज़ रक्खी।

"अरे, यह क्या कह रही हो ? किसीके हाथ बड़े हों तो क्या उसकी बाँह बना लेनी चाहिए ?" ब्राह्मणी बोली।

"ऐसी बात नहीं है। हम निराश्रितों को तुमने अपने घर आश्रय दिया है, उस उपकार का बदला मैं और किस तरह चुका ऊँगी ? फिर मेरे लड़के ने कितने ही राक्षसों को देखा है, कई को तो मार भी डाला है। उसका शरीर भी मज़बूत है। तुम जानते हो कि रोज़ भिक्षा में से आधा हिस्सा इसका होता है और बाकी के आधे हिस्से में हम पाँचों अपना काम चलाते हैं। इसलिए बरए इसे ही जाने दो। यह ज़रूर बकासुर को मार डालेगा।" कुन्ती ने आग्रहपूर्वक कहा।

"हम तो बच जायें और तुम्हारे पुत्र को राक्षस से भिड़ायें यह हमारे लिए कितनी बुरी बात है ?" ब्राह्मण ने कहा।

"परन्तु यह सब तो मैं अपनेआप ही तुमसे कह रही हूँ।" कुन्ती बोली। "क्यों बेटा, ठीक है न ?" उसने भीम से पूछा।

"माँ, मैंने तो जबसे यह बात सुनी है तभीसे मेरे रोंगटे खड़े हो रहे हैं। मेरे हाथों में खुजली चलने लगी है। मेरी आँखें बकासुर को देखने के लिए छटपटा रही हैं। जिस गाँव में हम रहें वहाँ बकासुर का ज़ुल्म जारी रहे और हम लोग बैठे रहें, यह हमें कैसे शोभा दे सकता है ? अतः कल तो मैं ही जाऊँगा।" भीम ने जवाब दिया।

"जैसी तुम लोगों की इच्छा हो।" ब्राह्मण अपने आँसू पोंछते हुए बोला, "सो मैं निरुपाय हूँ। भाई, तुम खुशी से कल जा सकते हो। लेकिन देखना, समय पर अगर नहीं पहुँचे तो बकासुर सीधा यहीं आकर हम सब लोगों का खात्मा कर देगा। तुमने अभी उसका क्रोध देखा नहीं है। वह जब अपनी आँखें निकालता है, तब ऐसे वैसे का तो दम ही निकल जाता है।" ब्राह्मण बोला।

"ठीक। वक्त पर ही जाऊँगा। अब तुम उसकी फ़िक्र न करो।" भीम ने कहा।

माँ-बेटे अपने कमरे में चले गये।

× × ×

सवेरे भीम दो भैंसों की गाड़ी में अनाज भरकर जल्दी ही शहर से बाहर निकल गया, और बकासुर के वन के पास जाकर ज़ोर-शोर से चिल्लाने लगा। भीम की ज़ोर की चिल्लाहट सुनकर बक बाहर आया और क्या देखता है कि भीम ने गाड़ी में से भैंसों को तो बक के बगीचे में चरने के लिए छोड़ दिया है और खुद गाड़ी में रक्खे हुए अनाज में से मुट्ठी भर-भर के फंकी लगाता हुआ मस्ती से इधर-उधर घूम रहा है।

"यह कौन दुष्ट यहाँ घूम रहा है?"

पर भीम क्यों सुनने लगा था?

"अरे ओ बदमाश। जवाब दे, नहीं तो अभी तुझे पीस डालता हूँ।"

"भीम ने मानों कुछ सुना ही न हो, इस तरह फिर गाड़ी में से

दो मुट्ठी अनाज लिया और फकी लगाकर घूमने लगा।"

"अरे कमबख्त! सुनता नहीं? क्या इस बकासुर को नहीं जानता?" बकासुर ज़ोर से चिल्लाया।

भीम ने दोनों मुट्ठी अनाज शान्तिपूर्वक खाया और निश्चिन्तता से पानी पिया।

इतने में बकासुर ने पीछे से आकर भीम की पीठ पर दो घूँसे जमाये। भीम ने बकासुर की तरफ़ देखा और दोनों लड़ने को तैयार होगये। बकासुर ने भीम के ऊपर एक के बाद एक पत्थर बरसाने शुरू किये, और भीम एक-एक पेड़ को लेकर तोड़ने लगा। थोड़ी ही देर में भीम ने बक को थकाकर जमीन पर दे मारा और गर्दन दबोचकर मार दिया। मरते समय बकासुर ने ज़ोर से चीखें मारीं, और उसके मुँह से खून की तीन धारें छूटीं।

बकासुर की आवाज़ सुनकर उसकी सेना के सब राक्षस एकदम दौड़ आये, लेकिन यहाँ देखते हैं तो बकासुर धरती पर मरा पड़ा था।

बकासुर के साथी राक्षसों को देखकर भीम ने उनसे कहा—"देखो, तुम्हारे मालिक का यह हाल हुआ है। तुम भी आगे से कभी इस शहर में किसी आदमी को सताओगे, तो जो हाल इस बक का हुआ है वही तुम्हारा भी होगा, यह समझ लो। इस वन में तुम्हें रहना हो तो खुशी से रहो, लेकिन ये भैंसे और गाड़ी भरकर अनाज और आदमी अब तुम लोगों को नहीं मिलेगा। एकचक्रा के लोग जिस तरह जी-तोड़ मेहनत करके खाते हैं, उसी तरह

तुम भी मेहनत करके खाओ। या तो यह मंजूर करो, नहीं तुम सबका भी बक जैसा ही हाल करता हूँ।"

बक के राक्षस एक-दूसरे की तरफ़ देखने लगे, मरे हुए बक को देखा, बक को मारनेवाले को देखा और अन्त में लाचारी के साथ बोले "आप जो-कुछ कहते हैं वह हमें मंजूर है।"

"देखो, इस एकचक्रा के लोग जैसे हैं वैसे ही तुम भी हो, उनसे ऊँच या नीचे बिलकुल नहीं हो।" भीम ने समझाकर कहा।

"मंजूर है।"

"लुक छिपकर भी आदमियों को मत खाना।"

"मंजूर।"

"जाओ, अपने वन में सुख से रहो। इस बकासुर के शरीर को मैं शहर के दरवाज़े के बीचोंबीच रखनेवाला हूँ, ताकि लोग जान लें कि असुरों का त्रास सचमुच ही दूर होगया। तुम लोगों के त्रास का अन्त लोग अपनी आँखों न देख लें तबतक उनको विश्वास नहीं होगा। उसके बाद फिर अपने मालिक का शव तुम ले जाना चाहो तो भले ही ले जाना।"

बकासुर के खास आदमी ने जवाब दिया, "बकासुर जब खुद ही चले गये, तो फिर उनका निर्जीव शरीर हमारे पास हो या आपके, हमारे लिए यह एकसा है। इस शरीर में नया प्राण आ सकता होता तब तो हम लोग जरूर इसको सम्हालते, लेकिन यह तो सम्भव मालूम नहीं होता। ऐसी हालत में राक्षस मात्र के मुर्दे को सम्हाल के रखने की हमें तो कोई इच्छा नहीं है।"

सारे राक्षस अपने घर को लौट गये और भीमसेन एकचक्र के दरवाजे पर बकासुर के शव को रखकर चुपचाप घर गया और सारी हकीकत अपनी माँ तथा भाइयों को सुनाई।

पाण्डव खुद ही कहीं एकचक्र में जाहिर न हो जायें और पापी दुर्योधन कहीं उनका पीछा न करे, इस डर से वे एकचक्रनगर में से चुपचाप चल दिये। द्रुपद राजा के यहाँ उनकी लड़की का स्वयंवर था, उसे देखने के लिए पहले वे वहीं के लिए रवाना हुए।

• ४ •

द्यूत-सभा में प्रतिज्ञा

हस्तिनापुर के राजमहल में जुए के दांव पर दांव लग रहे थे। सफेद दाढ़ीवाले भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य वगैरा जमीन पर निगाह गढ़ाये मूर्ति के समान एक ओर बैठे थे, जुए की जीत से उन्मत्त शकुनि, दुर्योधन और कर्ण एक ओर थे, धधकते हुए ज्वालामुखी के समान क्रुद्ध पाण्डव एक ओर थे, हाथी की सूंड के समान बलवान हाथों से वस्त्र को खींचनेवाला दुःशासन और कमल से भी कोमल हाथों से अपने वस्त्र का रक्षण करनेवाली सती द्रौपदी एक ओर थे। और इन सबके बीच पड़े हुए हाथीदांत के पांसे कौरव-कुल का भविष्य आंकते हुए ऐसे पड़े थे मानों अभी जोरों का अट्टहास करके थक गये हों।

भीम से न रहा गया "अर्जुन! युधिष्ठिर ने हमारी सारी धन-दौलत दांव में लगादी, अपने दास-दासियों को दांव में रक्खा, तुझे और मुझे दांव में लगाया, माद्री माता के इन पुत्रों को भी दांव में लगाया और अन्त में खुद अपनेको भी दांव में लगा दिया। यह सब असह्य होते हुए भी सहा जा सकता है। लेकिन युधिष्ठिर ने हमारी पांचाली को दांव में लगाते हुए जरा भी संकोच न किया, यह मुझसे नहीं सहा जा सकता। सहदेव! जरा कहींसे आग तो ले आ। जिस हाथ से युधिष्ठिर जुआ

खेलते हैं उसी हाथ को मैं जला दूं।" भीम की आँख लाल हो गईं और उसकी आवाज़ में भारीपन आगया।

"भाई भीमसेन! शान्त रहो। तुम पहले तो इस तरह नहीं बोलते थे। आज ऐसी बातें क्यों कह रहे हो? युधिष्ठिर हमारे बड़े भाई हैं।" अर्जुन बोला।

"युधिष्ठिर बड़े भाई? जिनको जुआ खेलते हुए शर्म नहीं आई वह बड़े भाई? जो जुए के नशे में अपना सब-कुछ खो बैठे वह बड़े भाई? जुए के दांव में जो अपने छोटे भाइयों को गुलाम बनाये, वह बड़ा भाई? जो अपनी धर्मपत्नी को साधारण चीज़ समझकर उसे भी दांव में लगाते समय ज़रा भी संकोच न करे, वह बड़ा भाई? हमारा बड़ा भाई तो वह जो कुन्ती माँ की कोख का नाम करे, जो स्वाभिमान की रक्षा करे और करना सिखावे; जो हमारे सिरों पर छत्र की तरह रहे और हमें अँधेरे में रास्ता दिखावे। अर्जुन! युधिष्ठिर आज बड़े भाई के रूप में अयोग्य साबित हुए हैं। और जिस हाथ से युधिष्ठिर ने जुआ खेला है उस हाथ को अग्नि भी पवित्र कर सकगी या नहीं, इसमें मुझे संदेह है।" भीम का क्रोध बढ़ता ही गया।

"भाई भीमसेन! ज़रा शान्त रहो। धीरज रक्खो।"

"शान्त कैसे रहूँ? मैं तो बहुत कोशिश करता हूँ, लेकिन पांचाली की यह चोटी मर डंक मार रही है। अर्जुन! कोई भी क्षत्रिय का पुत्र अपनी प्यारी पत्नी की चोटी की ऐसी दशा देखकर कैसे शान्त रह सकता है?" भीम की आँखें लाल हो रही थीं।

"भीमसेन ! जरा सब्र करो ! ईश्वर पांचाली के सहायक हैं।" अर्जुन ने कहा।

"अरे, पांचाली तो खुद अपनी रक्षा कर सकती है। लेकिन हमारा भी तो कुछ फ़र्ज़ है न ?"

भीम यह कह ही रहा था, इतने में दुश्शासन द्रौपदी का वस्त्र खींचते-खींचते थककर बैठ गया और द्रौपदी ने उपस्थितजनों को लक्ष्य करके कहा—"इस सभा में कुरुकुल के सब बड़े-बूढ़े बैठे हुए हैं। आप लोगों से मैंने जो प्रश्न किया था उसका जवाब अभी तक मुझे नहीं मिला है। ऐ बड़े-बूढ़ो ! मेरे प्रश्न का जवाब दीजिए। आप सब लोग धर्मप्रवीण हैं, इसलिए मेरा समाधान कर दें।"

द्रौपदी की बात सुनकर भीष्म पितामह जवाब देने के लिए उठ ही रहे थे कि भीमसेन एकाएक उठा और गरजकर बोला—"इस कौरव-सभा में बैठे पुतलो ! बेचारी द्रौपदी यह नहीं जानती कि आप सभी न तो बुजुर्ग ही हैं और न यह सभा ही सच्ची सभा है। आप सचमुच ही बुजुर्ग होते तब तो कभीके सत्य को समझकर यह जुआ बन्द कर देते, नहीं सभा को छोड़कर चले जाते। द्रुपद राज की इस पुत्री को क्या मालूम कि आप लोगों का धर्म ज्ञान खाली पुस्तकों तक ही सीमित है और आप लोग खाली जबान चलाना ही जानते हैं। ऐसा धर्म ज्ञान भला क्षत्रियों के किस काम का ? आपके अन्दर ऐसा क्षत्रिय वीर मुझे कोई नहीं दीखता, जो तलवार की धार से निकलनेवाले खून से शास्त्र लिखता हो। मैं समझता था कि दुश्शासन के पांचाली की चोटी

को स्पर्श करते ही आपकी कमर पर लटकती हुई तलवार एक-साथ अपनी म्यानों मे निकल पड़ेंगी, लेकिन आज मुझे मालूम पड़ा कि आप लोगों की कमरों पर लटकती हुई तलवारों पर जंग लग गया है और भारतवर्ष में से क्षत्रियत्व का खात्मा हो चुका है। कौरव-सभा के पुतलो! यह मत समझना कि आज दुःशासन ने केवल पांचाली की ही चोटी खींची है। दुःशासन ने तो आज सारी भारतमाता की चोटी खींची है। जिस चोटी को आर्य स्त्रियाँ हमेशा स्नेह सिंचन करके सौभाग्य के परमचिन्ह के रूप में पूजती हैं, जिस चोटी में फूलों को गूँथकर आर्य गृहस्थजीवन में रसिकता उत्पन्न करते हैं, जिस चोटी को खोलकर आर्य माता अपने बालक को दूध पिलाती हो तब उस बालक के दर्शन के लिए देवता भी तरसते हैं, उस चोटी का अपमान होना सारे भारत की स्त्रियों का अपमान है। आप सबकी माताओं, पत्नियों, बहनों और स्त्रियों का इसमें अपमान है। आप सब इस अपमान को देखकर भी शान्त होकर बैठे हुए हैं, इसीसे तो मैं कहता हूँ कि दुष्ट की दुष्टता को देखकर खून खौला देनेवाला क्षत्रियत्व आज नहीं रहा।

"लेकिन दुःशासन! याद रख! यह मत समझना कि भीम तुझे भूल जायगा। आज तो मैं लाचार हूँ। लेकिन एक दिन आवेगा जब मैं तेरी छाती चीरकर उसमें से निकलते हुए गरम खून को पीकर अपनी तृप्ति करूँगा। और एक दिन मैं तुझे यह दिखा दूँगा कि पांचाली की चोटी को अपने जीवन की क़ीमत चुकाकर ही छुआ जा सकता है।"

भीमसेन जोश में आकर बोल रहा था, उस समय अर्जुन बार-बार उसे बैठ जाने का इशारा कर रहा था। लेकिन भीम तो तभी शान्त हुआ जब कि उसके दिल का गुबार निकल गया। भीम के वाक्य भीष्म और द्रोण के कलेजे में तीर की तरह चुभ गये। दुर्योधन और कर्ण तो जब भीम बोल रहा था तभी उसका मज़ाक उड़ा रहे थे। आख़िर कर्ण बोला—"यह जितना बोल ले उतना ही अच्छा है। बोलकर अपना गुबार निकाल लेने के बाद यह कुछ नहीं कर सकेगा, इसलिए चाहे जितना बोल ले। मुझे भीम से कोई डर नहीं है। इससे तो कुछ भी न बोलनेवाला अर्जुन मेरे लिए ज़्यादा ख़तरनाक है। हमें अगर सावधान रहना है तो सिर्फ़ अर्जुन से ही।"

इसके बाद भीष्म पितामह ने द्रौपदी के प्रश्नों का यथाशक्ति यथामति जवाब दिया। लेकिन भीष्म का जवाब स्पष्ट और निर्भय न था। उन्होंने जो जवाब दिये वे दुर्योधन और कर्ण के तो अनुकूल थे, पर द्रौपदी के दुःखी दिल को और वेदना ही पहुँचा सकते थे।

कर्ण बोला—"द्रौपदी! अब पाण्डव तेरे पति नहीं रहे, इसलिए अपने लिए कोई दूसरा पति चुन ले।"

कर्ण की बात सुनकर भीम एकदम क्रोध से काँप उठा। इतने में दुर्योधन ने अपनी दाहिनी जाँघ खोली और द्रौपदी को उसपर बैठने का इशारा करता हो इस तरह का अश्लील मज़ाक द्रौपदी के साथ किया।

तब तुरन्त ही भीमसेन उबल पड़ा "अबे ओ अन्धे के लड़के!

पापी दुर्योधन ! द्रौपदी तो इस समय ईश्वर की गोदी में बैठी हुई है। तेरी इन जाँघ पर बैठने के लिए मेरी इस गदा ने ही जन्म लिया है। ओ कौरव-सभा के पुतलो ! मैं भीमसेन आज तुम सबके सामने प्रतिज्ञा करता हूँ कि एक दिन मैं दुर्योधन की इस जाँघ को तोड़ दूँगा, और जो दुर्योधन इस सभा में जुए में जीतकर अपना सिर ऊँचा किये बैठा है उसके सिर पर अपने इस पैर की ठोकर लगाऊँगा। स्वर्ग के देवताओ ! अगर मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी न करूँ तो तुम मुझे घोर नरक में डालना।"

भीमसेन के वचनों को सुनकर सारी सभा में सन्नाटा छा गया। चारों ओर इन शब्दों की मानों प्रतिध्वनि होने लगी और सभा-भवन की दीवारों को छेदकर भीम के वचन ठेठ धृतराष्ट्र और गांधारी तक भी पहुँच गये।

५

भीमसेन का क्षात्र-धर्म

"अर्जुन। मैं क्या करूँ? मैं बहुत कोशिश करती हूँ, लेकिन फिर भी भीमसेन को किसी तरह शान्ति नहीं मिलती। रोज़ आधी-आधी रात तक बिस्तर पर पड़े पड़े जागते रहते हैं, और कभी-कभी तो नींद में भी रोने लगते हैं।" द्रौपदी बोली।

"लेकिन भीम की ऐसी हालत रही तो वह बीमार पड़ जायगा।" अर्जुन चिन्तित होकर बोला।

"बात तो ठीक है। इस लम्बे वनवास से और महाराज युधिष्ठिर के जब-तब क्षमा का उपदेश देने से उन्हें बड़ी चोट लगी है।" पाञ्चाली बोली।

"यही तो बात है। सिंह को अगर पिंजरे में बन्द करके रक्खो तो वह घुर-घुरकर ही मर जाता है।" अर्जुन ने कहा।

"अर्जुन।" द्रौपदी बोली, "कल रात को भीमसेन नींद में एकदम हड़बड़ाकर उठ बैठे और कहने लगा—'पाञ्चाली। मेरी गदा तो ले आ। इस दुष्ट की जाँघ को तोड़ डालूँ।' फिर जब जगे, होश आया और मैं दिखाई दी, तो एकाएक रो पड़े।"

"देवी। उसे अगर कोई शान्त कर सकता है तो केवल तुम ही।" अर्जुन बोला।

"देखो न, वहाँ दूर एक पत्थर पर अपने पैरों के बीच में सिर डाल कर बैठे हैं।" द्रौपदी बोली।

"अब तो वनवास को पूरा महीना भी नहीं रहा। फिर भी भीमसेन को ऐसा क्यों होता है?" अर्जुन परेशानी के साथ सोचने लगा।

दोनों इस प्रकार बातें कर रहे थे कि इतने में भीमसेन वहां आगया। उसका पहाड़ जैसा शरीर ढीला पड़ गया था, आंखों में नींद की खुमारी थी; नाक में से गरम सांस निकल रही थी; पैर अस्त-व्यस्त पड़ रहे थे। वह किसी गहरे विचार में पड़ा हो, ऐसा दिखाई देता था।

"क्यों, भाई भीमसेन। तबीयत तो ठीक है न?" अर्जुन ने पूछा।

भीमसेन कोई जवाब दिये बग़ैर उसकी तरफ़ देखने भर लगा।

"भीमसेन। क्यों, बोलते नहीं? तबीयत तो ठीक है न?" द्रौपदी बोली।

"भीमसेन की तबीयत ठीक है या नहीं, इसका विचार मत करो। धर्मराज की तबीयत कैसी है, यह पूछा कि नहीं?" भीम द्रौपदी के सामने देखकर बोला।

"ऐसा उल्टा जवाब क्यों देते हो, भाई।" अर्जुन ने कहा।

"अर्जुन। एक माँ के पेट से पैदा हुए भाई अर्जुन। उल्टा जवाब न दूँ तो कैसा दूँ? जिसकी जिन्दगी का सारा रस सूख गया है, वह उल्टा जवाब न दे तो कैसा दे?" भीमसेन दीन होकर बोला।

"प्यारे भीमसेन। मैं तुम पाँचों भाइयों की धर्मपत्नी हूँ, पर

मेरे हृदय की बातों को पूरा करनेवाले तो तुम एक ही हो। भरी सभा में जब मेरी लाज लुट रही थी, तब मेरी पीड़ा अकेले तुम्हीं-को अनुभव हुई थी। इस वनवास में जयद्रथ ने जब मुझपर कुदृष्टि डाली, तब इन अर्जुन के साथ तुम्हीं जयद्रथ के पीछे दौड़े थे। मैंने जब एक नवोढ़ा स्त्री के समान सोने के कमल की इच्छा की, तब तुमने अपनी जान को खतरे में डालकर भी कुबेर के तालाब में से उसे लाकर ही चैन लिया। इस वन में भी जब मेरा हृदय व्याकुल हो जाता है तब तुम्हीं अकेले मेरे हृदय को सान्त्वना देते हो। भीमसेन। पिछले कुछ दिनों से तुम बहुत अस्वस्थ दिखाई दे रहे हो। यह देखकर मैं बहुत दुःखी हो जाती हूँ और मेरा शरीर एकदम सुस्त पड़ जाता है। अब जब वनवास के दिन ज्यों-त्यों पूरे होने को आ रहे हैं, तुमको इस प्रकार देखकर मैं कैसे धीरज धरूँ?" द्रौपदी ने भीमसेन का हाथ पकड़कर अपने पास बैठाया और उसके मुँह पर अपना हाथ फेरा।

"भीम। पांचाली ठीक कह रही है।" अर्जुन ने कहा।

"यह तो ठीक ही कह रही है। लेकिन हमारे कुटुम्ब में तो सच-झूठ का तराजू अकेले धर्मराज के ही हाथ में है न?" भीम अकुलाकर बोला।

"भीमसेन। ऐसा कहकर भाईसाहब को क्यों नाहक कष्ट पहुँचाते हो? अब तो बारह वर्ष खतम ही होने आये, एक वर्ष के बाद तो फिर हम लोग वापस हस्तिनापुर में पहुँच जावेंगे।" अर्जुन बोला।

"अरे भाई, उसके पहले फिर दूसरे बारह वर्ष वन में बिताने पड़ेंगे। अपना विचार प्रकट करने के पहले धर्मराज से जाकर पूछ आओ।" भीमसेन बोला।

"भीमसेन! तुम्हारी गिनती ठीक नहीं है। इस तरह वर्ष के अन्त में तो कोई तुम्हारे साथ न आवेगा। अकेली द्रौपदी ही तुम्हारे साथ होगी, यह समझ लो।" द्रौपदी बोली।

"पांचाली! अबके जुए में तो पहले तुम्हींको दाँव में रक्खा जायगा, जिससे शास्त्रियों को शास्त्रार्थ भी न करना पड़े। तुम जाकर पहले अपने धर्मराज से जाकर पूछ आओ, फिर मुझसे बात करना।" भीम की आँखों में क्रोध की लपटें-सी मालूम पड़ने लगीं।

"यह सब तो पूछ लिया। देखो महाराज इसी तरफ़ आरहे मालूम पड़ते हैं।" पांचाली बोली।

"वहाँ आराम से बैठे हरिण के बच्चों को हरी-हरी दूब खिला रहे थे, वहाँसे यहाँ भला क्यों आये ?" भीम से बिना बोले न रहा गया।

"आइए भाईसाहब!" अर्जुन ने नमस्कार किया। द्रौपदी ने युधिष्ठिर के लिए आसन बिछाया और वह उसपर बैठ गये।

"कहो भाई भीमसेन! आज तो तबीयत ठीक है न।" युधिष्ठिर ने पूछा।

"रोज से तो आज कुछ ठीक मालूम होती है।" अर्जुन बोला।

"मन को खूब शान्त रखना चाहिए। मन की समतोलता को

जरा भी नहीं खोना चाहिए। मानव-जीवन में यही एक बड़ा पुरुषार्थ है।" युधिष्ठिर ने कहा।

"इसीलिए तो दुर्योधन ने हम लोगों को जंगल में भेज रक्खा है।" भीम ने कठोरता के साथ कहा।

"यह बड़ा-सा जंगल, जंगल के बड़े-बड़े वृक्ष, उस बादल के साथ बातें करनेवाले ये पहाड़, विश्वास से निर्भय होकर चलनेवाले ये पशु, वृक्षों पर किल्लोल करनेवाले ये पक्षी, यह अनन्त आकाश, पहाड़ की गोदी को चीरकर निकलती हुई नदियाँ, नदी के दोनों किनारों पर कूदनेवाले ये हरिण, इस सारी सृष्टि के बीच निवास करना—ऐसा तो किसी सम्राट् के भाग्य में भी नहीं होता।" युधिष्ठिर बोले।

"ठीक है महाराज।" भीमसेन ने कहा, और यह कहते-कहते वह घुटनों के बल बैठ गया, "महाराज युधिष्ठिर। हस्तिनापुर में जाकर किसी कुशल वैद्य से अपने दिमाग की परीक्षा करालें तो दुर्योधन को और शकुनि को यह निश्चय होजाय कि हम लोगों को जंगल में भेजने में उनका जो उद्देश्य था वह पूरी तरह सिद्ध होगया है।"

"भाई भीम, ऐसा क्यों?" अर्जुन ने पूछा।

"श्रीकृष्ण, श्रीकृष्ण। आपकी बात बिलकुल ठीक है।" भीम इस प्रकार बोला मानों कोई बात उसे याद आ रही हो, "दूसरे लोग बिलकुल समझ न सकें ऐसी बहुत-सी बातें आप भावी के गर्भ में पहुँचकर देख सकते हैं। इसीलिए आप ईश्वर हैं।"

"भीमसेन। तुम्हारे कहने का मतलब मैं नहीं समझ सकी।" पांचाली बोली।

"हम लोगों को कौरवों ने वनवास दिया," भीमसेन कहने लगा, "उसके बाद तुरन्त ही श्रीकृष्ण हम लोगों से मिलने के लिए वन में आये थे, यह प्रसंग याद है न?"

"हाँ, आये तो थे।" अर्जुन ने जवाब दिया।

"उस समय एक बार वह भोजन करके बिछौने पर लेट रहे थे, और सात्यकि पास में बैठा हुआ था। सात्यकि ने श्रीकृष्ण से पूछा—'महाराज, इन पाण्डवों को वन में भेजकर कौरव कौन-सा लाभ प्राप्त करना चाहते हैं? मुझे तो ऐसा लगता है कि पाण्डव जब वनवास में से वापस लौटेंगे तब कौरवों के प्रति ज्यादा वैर-भाव लेकर ही आवेंगे। शकुनि जैसे चालाक आदमी ने भी अपने हिसाब में कुछ गलती की है, ऐसा मालूम होता है।'"

"ऐसी बातें हुई थीं?" युधिष्ठिर ने पूछा।

"हाँ, मैं उस समय पास ही के कमरे में था।" भीमसेन ने कहा।

"फिर श्रीकृष्ण ने क्या कहा?" अर्जुन ने पूछा।

"फिर श्रीकृष्ण ने मुस्कराते हुए कहा—'सात्यकि, तू अभी राजनीति के दांव पेच में होशियार नहीं हुआ है। जिस युक्ति से यह वनवास दिया गया है, अगर वह सफल होगई तब तो फिर उनकी चाँदी है। शकुनि ने यह हिसाब लगाया होगा कि पाण्डवों को बारह वर्ष के लम्बे समय तक वनवास में धकेल देने से उनका क्षात्र-धर्म जड़-मूल से नष्ट होजायगा। मनुष्य का क्षात्रतेज चाहे

जैसा कम हो तो भी उस तेज को क़ायम रखने और उसका विकास करने के लिए उसके आसपास अनुकूल वातावरण की ज़रूरत है। पाण्डव इन्द्रप्रस्थ या हस्तिनापुर में रहें तो उन्हें हमेशा यही लगेगा कि हम पाण्डु के पुत्र हैं और संसार के स्वामी बनकर उसपर राज्य करने के लिए हमने जन्म लिया है। राजधानी में हर रोज़ उनके कानों पर उनके पूर्वजों के पराक्रमों की बातें आ-आकर टकराती हों, रोज़ दिनभर में अमुक घण्टे रथ हाँकने, घोड़ों को दौड़ाने, शस्त्रास्त्र चलाने में आदि युद्ध-कलाओं में लगे रहते हों, हर रोज़ ऐसी ही योजनाओं पर विचार करना पड़ता हो कि आज महाराज अमुक देश को जीतेंगे, रोज़ एक-दो छोटे-मोटे राजाओं के मुकुट युधिष्ठिर के चरणों में पड़ते हों, रोज़ दश-विदेश के राज्यों में कोई-न-कोई उथल-पुथल मचा ही करती हो, और रोज़ तिजोरी में कहीं-न-कहीं से अपार धन आकर इकट्ठा होता हो, तो क्षत्रियपुत्र का शरीर और मन स्वाभाविक रूप से अपने क्षात्रतेज का स्मरण करेगा और उसे अनायास ही पोषण मिलता रहेगा। वनवास ऐसे क्षात्र-जीवन के लिए अनुकूल नहीं है। वनवास की हवा ब्राह्मण-जीवन की हवा है। वनवास में युधिष्ठिर को छोड़कर दूसरे चारों भाई तो बिलकुल निस्तेज हो जानेवाले हैं, और उसमें भीम तो ख़ास करके।' श्रीकृष्ण ने सात्यकि से इस प्रकार जो कहा था वह सब मुझे सच होता जान पड़ता है। महाराज शकुनि का हिसाब सच होजाय तो फिर क्या कहना है। सखी,अर्जुन। बस, फिर तो सब ख़त्म ही समझो।" भीम ने एक ठण्डी साँस ली।

"भाईभीमसेन, तुम तो बड़े उतावले हो रहे हो। भाईसाह
जो कहते हैं उसे भी तो ज़रा समझ लो।" अर्जुन ने चिढ़कर कहा।

"भाईसाहब क्या कहते हैं ?" भीम ने गुस्से से पूछा।

"मैं तो यह कहता हूँ कि मन को समतोल रक्खो और जि
समय जो धर्म लगे उसके अनुसार काम करो।" युधिष्ठिर बोल

"अच्छी बात है। यह मन का समतोलपन भी कर लिया
लेकिन, बतलाइए, अब वनवास के अन्त में हमारा क्या धर्म है ?
भीम ने पूछा।

"कहिए, महाराज। आप ही कहिए।" अर्जुन बोला।

"वनवास के अन्त में धर्म तो लड़ने का ही है। इसमें औ
अब पूछना क्या बाक़ी रह गया है ?' द्रौपदी बोली।

"वनवास के अन्त में हमें दुर्योधन से अपने राज्य की माँ
करनी चाहिए।" युधिष्ठिर बोले।

"माँग किस बात की ?" पाञ्चाली बोल उठी।

"अपने हक़ों की।" युधिष्ठिर बोले।

"दुर्योधन हमारी माँग मंजूर करेगा ? दुनिया में किसीने श
की माँग स्वीकार की है ?" भीम ने पूछा

"मंजूर क्यों नहीं करेगा ? हमारी माँग ठीक हो, प्रतिष्ठि
पुरुष की मार्फ़त उसे पेश किया जाय, और भीष्म, द्रोण जैसे कुरु
वृद्ध दुर्योधन की सभा में मौजूद हों, तो हमारी माँग क्यों न मंजू
होगी, यह बात मेरे गले नहीं उतरती।" युधिष्ठिर ने कहा।

"महाराज, मुझे माफ़ कीजिए। पर दुनिया में किसीने कि

निर्वीर्य माँग को मंजूर किया हो, ऐसा सुना नहीं गया। हमारी माँग के पीछे अगर हमारी तलवारों का बल होगा तो त्रैलोक्यपति को भी उसे मंजूर करना पड़ेगा। नहीं तो ऐसी कितनी ही माँगों को दुनिया के सम्राट् घोलकर पी गये हैं, यह क्या आप नहीं जानते ?" द्रौपदी भी जोश में आगई।

महाराज। अब अगर माँग ही करनी हो,तो भीम और अर्जुन अपनी गदा और अपने गाण्डीव से ऐसा करेंगे।" भीम उबल पड़ा।

भीमसेन। ज़रा शान्ति से बोलो।" अर्जुन ने कहा।

"शान्ति से कैसे बोलूं ? हृदय जब अन्दर से जल रहा हो तब फिर बाहर की शान्ति कहांसे लाऊँ ? तुम सब लोगों ने इस वनवास में शान्ति सीख ली होगी, लेकिन मैंने इस वनवास में सब जगह साँप और नेवलों की लड़ाई ही देखी है। इसलिए मैं तो शान्ति सीख ही नहीं सका।" भीम बोला।

"भीमसेन का कहना बिल्कुल ठीक है।" पाञ्चाली ने कहा।

"देखो पाञ्चाली। भीम जो कुछ कहता है उसका अर्थ मैं समझता हूँ। लेकिन जिस धर्मबुद्धि से आजतक हम लोग चलते आये हैं उसीके अनुसार आगे भी चलेंगे तो विजय अन्त में हमी लोगों की है।" युधिष्ठिर बोले।

"महाराज। मुझे माफ़ कीजिए। अब मुझ आपकी धर्मबुद्धि में विश्वास नहीं रहा।" भीम ने कहा।

"अगर यह बात है, तो हम श्रीकृष्ण की सलाह लेंगे।" युधिष्ठिर ने कहा।

"यह भी ठीक है। अब थोड़े ही दिनों में श्रीकृष्ण हमारे प
आनेवाले हैं। महाराज द्रुपद और धृष्टद्युम्न भी आवेंगे। सब
साथ बातचीत और सलाह-मशविरा करके हम लोग इसका निर्
करेंगे।" अर्जुन ने विवाद को समाप्त किया।

"अच्छा, तो यही ठीक है।" पाञ्चाली बोली, "भीमसेन
शाम होने में अब थोड़ी ही देर है, इसलिए चलो हम लोग च
उन पहाड़ों की तरफ़ एक चक्कर लगा आयें।"

पाञ्चाली और भीमसेन पास वाले पहाड़ों की तरफ़ चल दि
नकुल और सहदेव जिधर वंसी बजा रहे थे उधर महार
युधिष्ठिर गये और अर्जुन धनुष-बाण लेकर पास के वन में गय

: ६ :

सैरेन्ध्री का गन्धर्व

सुदेष्णा विराट राजा की रानी थी। कीचक उसका भाई था। कीचक विराट राजा की सेना का सेनापति था और पुलिस विभाग का प्रधान भी वही था। कीचक के सौ भाई भी विराट राज में ही थे।

एक बार सुदेष्णा और कीचक महल में बैठे हुए बातचीत कर रहे थे।

"भाई कीचक!" रानी बोली, "उस कुलटा से कितनी बार कहा, लेकिन मानती ही नहीं। मैं कहती हूँ कि 'भय्या को खाना दे आ, भय्या के लिए ये जो नई तरह के तेल-इत्र लिये हैं, वे उन्हें दे आ।' लेकिन वह तो खिसकती ही नहीं।"

"खैर। देखा जायगा।" कीचक बोला।

"पर तू उसके लक्षण तो देख। उस कुलटा का हौसला तो राजा के पलंग पर बैठने का है। लेकिन सुदेष्णा को वह नहीं पहचानती। मैंने तो जिस दिन वह आई उसी दिन उसका रूप देखकर कह दिया था, कि 'तू बहुत सुन्दर है बाबा, तेरे लिए मेरे यहाँ गुंजाइश नहीं है', पर उसने कहा कि 'रानीजी, मेरे लिए चिन्ता न करें। पाँच गन्धर्व मेरी रक्षा करते हैं, इसलिए राजा भी मुझपर नजर नहीं डाल सकते।' लेकिन अब तो राजा के आते ही वह न

जाने कहाँ से दौड़ आती है, और वृहन्नला के साथ वो न मान क्या घुसपुस-घुसपुस करती रहती है।" रानी ने कहा।

"बहन, तू फ़िक्र न कर।" कीचक बोला।

"फ़िक्र कबतक नहीं करूँगी? दूसरी पद्मिनी जैसी स्त्रियाँ तेरा नाम सुनते ही वश हो जाती हैं, और यह कुल्टा इतनी-इतनी मिन्नतें करने पर भी नहीं मानती। इसे अपने रूप का जो घमण्ड है उसे तो नष्ट करना ही चाहिए।" रानी ने अपने दाँत पीसे।

"इसीलिए तो कल भरी सभा में मैंने उसे चोटी पकड़कर घसीटा था।" कीचक बोला।

"हाँ, मुझे मालूम हो गया था। लेकिन फिर उसके गंधर्व पति आये या नहीं?" रानी ने पूछा।

"कौन आता है उसका बाप।" कीचक ने कहा।

"भय्या। तूने उसकी ऐसी किरकिरी करदी, यह ठीक ही किया। वहाँ राजा भी थे या नहीं?"

"उनके सामने ही मैंने उस धर पटका।" कीचक ने बताया।

"राजा ने इसपर क्या कहा?" रानी ने पूछा।

"राजा क्या कहते? अब राजा के कहने जैसा रहा भी क्या है। राजा का काम तो सिर्फ गद्दी पर बैठ रहना है, राज्य चलाने का सारा भार मेरे इन बलिष्ठ कन्धों पर ही है।" कीचक ने छाती तानते हुए कहा।

"शाबास भय्या! अब इस कुल्टा से तू एक बार हमेशा के लिए निपट ले तो मुझे शान्ति मिले।" रानी बोली।

"बहन, एक बात कहता हूँ। लेकिन वह बहुत ही गुप्त है। किसीसे कहना मत।" कीचक बोला।

"भय्या। मैं और किसीसे कहूँगी। मेरा विश्वास नहीं है?" रानी ने कहा।

"विश्वास तो बहुत है। लेकिन बात कुछ ऐसी ही है, इसलिए ज्यादा आग्रह करके गुप्त रखने के लिए कहता हूँ।" कीचक ने समझाया।

"मैं किसीसे कहनेवाली नहीं हूँ, भय्या।" रानी बोली।

"तो सुन। कल मैंने सैरंध्री को भरी सभा में घसीटा था, उसके बाद आज सुबह वह मेरे पास आई थी।" कीचक बोला।

"ऐसा। तो मेरे बिना कहे ही वह खुद अपनेआप तेरे पास आई?" रानी बोली।

"अब भी न आवेगी?"

"कैसे आई थी?" रानी ने पूछा।

"आकर मुझे कहने लगी—देखो, मैं तुम्हारे पास आने को राजी हूँ, लेकिन मेरे गंधर्व पति यह जानने न पावें, इसीलिए आज रात को हम नई संगीतशाला में मिलेंगे। यह बात तुम किसी-से भी मत कहना। नहीं गंधर्व पति जान जावेंगे तो बड़ा अनर्थ हो जायगा।"

"तो अब यह कुलटा ठिकाने पर आई। पहले तो रोज 'मेरे गंधर्व पति!', 'मेरे गंधर्व पति!' कहकर मुझे डराती रहती थी।

गंधर्व होत क्या हैं ? पत्थर। गंधर्व हो तो उसकी ऐसी दशा होती ?" रानी उछल-उछलकर बात करने लगी।

"बहन, यह तो मैं पहले से ही जानता था। हम पुरुष तो स्त्रियों को उनके पैरों पर से ही परख लेते हैं। लेकिन यह सैरंध्री तो तुम कहती हो वैसी नहीं लगती। उसकी आँखों में कुल्टा स्त्रियों जैसी चपलता नहीं है। इसलिए अगर मान जाय तो मैं तो उसे अपने अन्तःपुर में रखने की सोचता हूँ।" कीचक ने अपने मन की बात कही।

"भय्या। कितने ही खसम इसने किये होंगे और कितने ही करेगी यह। आज तो तेरा अपना स्वार्थ है न, इसलिए तुझे यह अच्छी दिखाई दे रही है। मेरी ओर से तो तू इसे लेजाय तो मेरे सिर की बला टले। फिर मुझे विराट राजा के लिए कोई डर न रहे।" रानी ने कहा।

"तो आज रात को संगीतशाला में उसे भेजना। साथ में दूसरा कोई न हो।" कीचक उठता-उठता बोला।

"अच्छी तरह बनाव श्रृंगार कराके भेजूँगी।" रानी ने कहा।

"नहीं, नहीं, रोजमर्रा के ही वेश में। नहीं तो व्यर्थ ही और किसीको शंका होजायगी।" कीचक ने आग्रहपूर्वक जताया।

"हाँ, यह भी ठीक है। तो भय्या, इस कुल्टा को एक बार किसी तरह अपने वश में करले। फिर तो बस बेड़ा पार है। अच्छा भय्या, चल दिया ? ईश्वर तेरा भला करे।" रानी

कीचक को विदा करने के लिए खड़ी हुई। कीचक अपने महल की ओर चल दिया।

अँधरी रात थी। संगीतशाला और उसके आसपास के दीये बुझा दिये गये थे। शाला के बाहर के रास्तों पर पहरा देनेवाले पुलिसवाले बीच-बीच में गश्त लगाकर अपनी नौकरी बजा रहे थे। संगीतशाला के पलङ्ग पर लेटा हुआ भीमसेन विराट् राजा के साले की राह देख रहा था।

रात के नौ-दस बजे का समय होगा। ऐसे समय में विराट राजा के साले, सेनापति और पुलिस के प्रधान कीचक ने संगीत-शाला में प्रवेश किया। आज उसकी खुशी का ठिकाना नहीं था, क्योंकि आज उसकी वासना तृप्ति का अवसर आया था। सैरेन्ध्री से मिलने के लिए आज उसने अपनेको खूब सजाया था। उसके कपड़ों में से सुगन्ध की लपटें उठ रही थीं। उसका मुँह सुवासित हो रहा था, आँखों में गहरा अंजन लगा हुआ था, और शराब ने मानों उसके शरीर में नवचेतन भर दिया था। सिवाय सरन्ध्री के और कुछ उसे दिखाई ही नहीं देता था।

कीचक संगीतशाला में दाखिल हुआ। दरवाज़ा खोला और बन्द किया। दीया तो वहाँ था ही नहीं, इसलिए काम के वशीभूत होकर अँधेरे में टटोलते-टटोलते वह पलङ्ग की ओर गया।

पलङ्ग के पास आकर भीम के शरीर पर हाथ फेरते हुए उसने कहा—"प्यारी सैरेन्ध्री। आज मेरा जीवन धन्य हुआ। मेरा घर, मेरे दास-दासी, मेरा धन, यह सब आज मैं तुझे अर्पण करता हूँ।"

पलङ्ग पर सोया हुआ भीमसेन स्त्रियों की-सी आवाज़ में बोला—"राजकुमार कीचक। ईश्वर का उपकार मानो कि आज हम लोग मिले। तुम्हारा रूप देखकर किसे मोह न होगा?"

"प्यारी सैरेन्ध्री। बैठो तो सही। यह कीचक कामशास्त्र में कितना निपुण है, यह आज तुम्हें मालूम होगा।" कहकर कीचक ने भीम के ऊपर का कपड़ा उठाया कि इतने में भीम छलाँग मार कर पलङ्ग पर से नीचे कूद पड़ा और कीचक का गला पकड़ लिया।

"दुष्ट कीचक। तू मुझे कामशास्त्र सिखावे, उसके पहले तो तुझे मृत्युशास्त्र पढ़ना पड़ेगा।" भीम गरजकर बोला।

"सैरेन्ध्री, सैरन्ध्री। तू कौन है?" कीचक घबरा गया।

"और दूसरा कौन होगा? सैरेन्ध्री तो है सुदेष्णा के महल में।" यह कहकर भीम ने कीचक को ज़मीन पर धर पटका।

कीचक भी मज़बूत था। उस कमरे में दोनों वीरों का युद्ध होने लगा और कीचक ने भी भीम को अच्छी तरह थका दिया। पर कहाँ भीम और कहाँ कीचक? भीम ने कीचक के सारे शरीर को चटाकर ज़मीन पर दे मारा और उसकी छाती पर घुटने टेककर उसका गला पकड़ते हुए कहा—"पापी कीचक। पहचाना मुझे?"

"नहीं।" बड़ी मुश्किल से कीचक ने कहा।

"मैं सैरन्ध्री का गन्धर्व। अब तू ईश्वर को या जिसे किसीको चाहे याद करले। मैं अभी ही तुझे यमराज के पास भेजता हूँ।" भीम बोला।

"गन्धर्वराज ! मुझे मारना हो तो जल्दी ही मार डालो। मुझे बड़ी तकलीफ़ हो रही है।" कीचक ने कहा।

"तो ले मैं तेरा गला जरा ढीला कर देता हूँ। तुझे कुछ कहना हो तो कहले।" भीम बोला।

"मेरा गला ढीला कर दने से मरा दुःख दूर हो जायगा, ऐसी बात नहीं है। यह मेरी आँखों के सामन कितनी ही स्त्रियाँ अपन सिर क बालों को खोलकर और बड़ी-बड़ी आँखें दिखाकर मुझे डरा रही हैं। गन्धर्वराज ! विराट की इन स्त्रियों पर अत्याचार करते समय मुझे मालूम नहीं था कि अन्त समय मुझे वे इस तरह डरावेंगी। गन्धर्वराज ! मैं अपनी आँखों को बन्द करता हूँ तो वे भी अपनेआप खुल जाती हैं और मरे सार शरीर में पसीना आरहा है। विराट की माँ और बेटियो ! तुम शान्त हो जाओ। इस गन्धर्व न तुम्हारा बदला ले लिया है।" कीचक पागल-सा होकर बड़बड़ाने लगा।

"कीचक ! यहाँ तो कोई नहीं है।"

"है, है। वह देखो वहाँ खड़ी है। वही तो है। उसका मैंने आधी रात को, जब वह अपने बालक को दूध पिला रही थी, उसके घर से अपहरण करवाया था। हाँ, वही है। बहन ! तू अपनी आँखें बन्द करले। मुझे डरा मत।"

"कीचक ! अब जल्दी कर, रात बीत रही है।" भीम बोला, "गन्धर्वराज ! अब मुझे जल्दी ही मार डालो, ताकि मैं इस पीड़ा

से छूट जाऊं। मुझसे अब यह सब देखा नहीं जाता।" कीचक
गिड़गिड़ाते हुए कहा।

"लेकिन तुझे कुछ कहना था न?" भीम बोला।

"हां, कहना तो बहुत कुछ है। मेरे जैसे राजाओं के
अगर कुछ कहने लगें तो पुराण भर जाय। लेकिन तुम इतना
कहां सुनने बैठोगे?" कीचक बोला।

"तो भी इधर-उधर की बातें करता है, इसके बजाय तो
कहना चाहता हो वही कह डाल न।" भीम ने कहा।

"मैं इधर-उधर की कोई बातें नहीं करता, लेकिन न ज
क्यों अपनआप मुंह से निकली जा रही हैं। विराट की
बेटियां गईं?"

"कौन? यहां तो कोई नहीं है।"

"तो गंधर्वराज, सुनो। तुम अपने वश से आर्यवर्त के
राजाओं को कहलाना कि कोई भी राजा अपने राज्य में
साले को राज्य का अधिकारी न बनाये। राज्य की रानियें
कहलाना कि अगर वे अपने भाई का भला चाहती हों तो
भाई को अपने राज्य में न रक्खें। गंधर्वराज! सब बात
मैं आज जो मर रहा हूं, वह अपनी बहन के पापों के कार
सुदेष्णा ने अगर मुझे इतना न चढ़ाया होता तो मैं निश्चिन्त
विराट में अपना गुजर करता और बुढ़ापे में मरता। ले
मेरी बहन ने मुझे उल्टे रास्ते चलाया और मैं उस ओर
पड़ा। गंधर्वराज! विराट राजा को मेरा यह अंतिम प्रणाम।

पारे को हम भाई-बहनों ने नामर्द बना डाला है। भगवान उनका भला करें। सुदेष्णा। पापी बहन। तुझे क्या कहूँ? राजमहलों की सफेद दीवारों के पीछे कितने काले काम होते रहते हैं, उनका लोगों को पता भी नहीं चलता। अच्छा विराट के सारे नगर को, विराट की सेना को, विराट के पुलिस वालों को और सैरेन्ध्री को भी मेरा अन्तिम नमस्कार। सैरेन्ध्री। क्षमा करना मुझे। अगले जन्म में मालूम होता है मैं शूकरयोनि में जन्म लूँगा। लेकिन अगर किसी पुण्य से मानव योनि में जन्म लूँ, तो भगवान, मुझे सैरेन्ध्री के पेट से पैदा करना—यही तुमसे प्रार्थना है।" कीचक ने बोलना बन्द किया।

"तेरे जैसे पुत्र को पैदा कर तब तो सैरन्ध्री के नसीब का क्या कहना।" भीमसेन से न रहा गया।

कीचक के चुप होते ही भीमसेन ने उसके सिर में इतने जोर से घूँसा मारा कि उसका सिर धड़ में घुस गया। इसी तरह उसके हाथ और पैरों को भी धड़ के अंदर घुसा दिया और कीचक के सारे शरीर को मांस की एक गेंद जैसा बनाकर और उसे वहीं लुढ़काकर भीमसेन वहाँसे पाकशाला चला आया।

बाद में जब कीचक की मृत्यु की खबर मिली और कीचक के भाई उसमें सैरेन्ध्री का ही दोष बताकर सैरेन्ध्री को कीचक के साथ ही एक चिता में जला देने को तैयार हुए तब भीमसेन गंधर्वों का विचित्र वेश पहनकर स्मशान में आया और सैरेन्ध्री को वहाँसे छुड़ाकर रानी के महल में पहुँचा दिया।

: ७ :

रुधिर-पान

कौरव पाण्डवों का युद्ध शुरू हुए आज सत्रह दिन हो गए। दुर्योधन की सेना के स्तम्भ-रूप भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य तो कभी के रणभूमि में सोगये थे। सिन्धुराज जयद्रथ कौरवों की एकमात्र बहन दुःशला को रोती हुई छोड़कर मृत्यु के मुख में चले गये थे। पाण्डवों की तरफ़ के भी कितने ही महारथी स्वर्ग सिधार गये थे। वीर अभिमन्यु छः महारथियों से टक्कर लेते-लेते वीरशय्या में सो चुका था। भीमसेन का राक्षस पुत्र घटोत्कच कौरव-सेना में हाहाकार मचाकर अन्त में कर्ण के हाथ मृत्यु को प्राप्त हुआ था। अठारह अक्षौहिणी सेना का बड़ा हिस्सा तो मृत्यु के मुख में कभी का पड़ चुका था।

फिर भी

फिर भी इस काल-युद्ध में ख़ास-ख़ास लोग रणभूमि में घूम रहे थे। कुरुक्षेत्र के मैदान में सत्रह-सत्रह बार सूर्य उदय हुए और सत्रह लम्बी-लम्बी रात बीत गईं। सत्रह दिनों से भीम और दुःशासन तथा भीम और दुर्योधन एक-दूसरे को खोजते फिरते थे, मौक़ा मिलने पर एक-दूसरे के साथ लड़ते थे, एक-दूसरे को पछाड़ते थे, एक-दूसरे को घायल करते थे, एक-दूसरे के रथ को तोड़ते थे, एक-दूसरे के सारथियों को घायल करते थे, फिर भी अभीतक वे जिन्दा थे।

कर्ण कौरव सेना का सेनापति हुआ। उसके रथ के सारथी मद्रदेश के राजा शल्य थे। पाण्डुपुत्र अर्जुन को मारकर दुर्योधन की विजय कराना कर्ण का मनोरथ था।

लेकिन सत्रहवें दिन का सवेरा कुछ और ही तरह का हुआ। युद्ध शुरू होने पर कर्ण अर्जुन को खोजता हुआ एक ओर निकल गया। दूसरी ओर भीमसेन और दुःशासन की भेंट हो गई।

युद्ध म भीम और दुःशासन की यह कोई पहली ही भेंट नहीं थी। आज से पहले सोलह दिनों में वे क   बार एक दूसरों से भिड़ चुके थे। कई बार दाँत किटकिटाकर उन्होंने एक-दूसरे को घूरकर देखा था। और कई बार ऐसा भयंकर युद्ध भी किया था मानों एक-दूसरे के प्राण अभी लेलेंगे।

लेकिन आज का दिन तो फिर आज का ही दिन ठहरा। दोनों पक्षों की सेनायें लगभग क्षीण हो गई थीं, दोनों पक्षों के अगुलि पर गिन जाने जितने ही धुरन्धर वीर जिन्दा बाकी रह गये थे। ऐसे समय भीम और दुःशासन एक-दूसर के आगे आये और अपने वैर का अतिम बदला लेलेने के इराद से आपस में भिड़ पड़े।

"दुष्ट दुःशासन! खड़ा रह! आज तू मेरे झपट्टे में से छूट नहीं सकता!" भीमने गरजकर कहा।

"अब रहने दे, अघोरी कहीं के। अपनी बकवास अपने ही पास रख। अरे, जो मनों नाज खा जाता है, ऐसे आदमी से कभी कोई बड़ा पराक्रम होते भी सुना है?" दुःशासन भीम की खिल्ली उड़ाता हुआ बोला।

घायल सिंह जिस तरह से क्रुद्ध होता है उसी तरह क्रुद्ध होकर भीमसेन बोला, "अरे, ओ अन्धे के बच्चे दुःशासन! आज तक भीमसेन ने जितने पराक्रम किये हैं, इसका तुझे कैसे पता चल सकता है? पिछले सोलह दिनों में भीम के हाथों हाथियों की कितनी सेना का नाश हुआ, इसका हिसाब लगाया है? इस अकेले भीमसेन ने खुद तेरे ही कितने भाइयों को मार डाला है, इसका हिसाब लगाया है? इस बकवास करनेवाले भीमसेन ने कितने रथों को तोड़ डाला है, इसका हिसाब करने के लिए तुझे अभी गुरु द्रोणाचार्य के पास ही भेजे देता हूँ। चल तैयार हो जा। भीम के पराक्रम के बारे में अब तुझे सुनना पड़ेगा, बल्कि स्वयं ही अनुभव होजायगा।" भीम ने ललकारा।

भीम और दुःशासन का युद्ध शुरू हुआ। गंगा नदी के किनारे किसी जंगल में मानों साठ-साठ वर्ष के दो मदोन्मत्त हाथी लड़ते हों, इस प्रकार वे लड़ने लगे। दोनों वीर थे, दोनों में हजार-हजार हाथियों का बल था, दोनों युद्ध-प्रवीण थे, और दोनों एक-दूसरे के प्रति गहरे द्वेष से भरे हुए थे।

दुःशासन के दोनों तरफ़ कुरु-योद्धा उसकी रक्षा को खड़े थे। अश्वत्थामा, दुर्योधन, कृपाचार्य आदि सब वहाँ आगये थे। बाद में कर्ण भी कुछ दूरी पर आगया।

दोनों एक-दूसरे को थका रहे थे, इतने में भीम ने अपनी गदा जोर से दुःशासन पर फेंकी। गदा के इस तीव्र प्रहार से दुःशासन का रथ चूर-चूर हो गया, उसकी ध्वजा टूट गई और सारथी भी

ार गया। गदा के प्रहार से वह खुद भी बेहोश होकर नीचे गिर
ड़ा। यह देखकर सिंह जैसे अपने शिकार के पास पहुँच जाता
, उसी प्रकार भीम भी उसके पास पहुँचा और उसकी छाती पर
ैर रखकर खड़ा हो गया।

"ओ कुरु योद्धाओ। यह भीमसेन तुम्हारे दुःशासन को मार रहा है, अब जिस किसीकी हिम्मत हो वह यहाँ आकर इसकी रक्षा करे।" भीम ने गर्जना की, "सूतपुत्र कर्ण। अपने इस दुर्योधन के भाई को बचाओ न। तुम कौरवों को विजय दिलाने की बड़ी बड़ी बातें तो करते हो, पर आज भीम के चंगुल में से अपने इस दुःशासन को तो छुड़ाओ। दुर्योधन, दुर्योधन। अब कहाँ जाकर छिप गया? द्रौपदी को बुलाने के लिए तूने इस दुःशासन को भेजा था, तो अब आकर तू और शकुनि इसको बचाते क्यों नहीं? मामा शकुनि। क्यों तुम्हारे हिसाब में कुछ फ़र्क पड़ गया क्या?"

भीमसेन इस प्रकार अण्ट-शण्ट चिल्ला रहा था, इतने में दुःशासन को कुछ होश आया और उसने भीम की तरफ़ देखा। भीम उसे होश में आता देखकर और भभक उठा "पापी दुःशासन। तूने जिस हाथ से सती द्रौपदी की चोटी पकड़ी थी और जिस हाथ से तूने उसका चीर खींचा था, वह हाथ तो बता।"

भीम के मुँह से ये शब्द सुनते ही वीर की तरह हिम्मत करके दुःशासन ने अपना दाहिना हाथ ऊँचा किया और कहा, "ले पांचाली की चोटी पकड़नेवाला, उसके चीर को खींचनेवाला, धृतराष्ट्र

की पुत्र वधू का पाणिग्रहण करनेवाला और हजारों सुवर्ण मुद्राओं का दान देनेवाला यह रहा मेरा हाथ।"

दुःशासन ने अपना दाहिना हाथ ऊँचा किया कि तुरन्त ही भीमसेन ने उसे पकड़ लिया और कहा, "दुःशासन। मैं तुझे अब मार डालता हूँ। तेरा अन्त समय अब नज़दीक ही है। अन्त समय तुझे किसीसे कुछ कहना हो तो कहले।"

"भीमसेन। तू खुशी से मुझे मार डाल। तुझे दुःख देने में मैंने कुछ उठा नहीं रक्खा था। उठ बचपन से ही तुझे देखते ही मेरी आँखों में ज़हर उतर आता था। द्रौपदी के आने के बाद यह ज़हर और भी बढ़ा, और वह आज तक क़ायम है। आप जैसे वीर के हाथों वीर की तरह मरते हुए मुझे बड़ा आनन्द है। लेकिन एक बात मेरे मन में उठ रही है।" दुःशासन बोला।

"अपने मन में जो हो वह कह डाल।" भीम ने कहा।

"भीमसेन। मैं तो अब मौत के दरवाज़े बैठा हूँ, इसलिए दुनिया का ईर्षा द्वेष मेरे मन से जारहा है और कोई नई सृष्टि मेरी नज़रों के सामने खड़ी हो रही है। तू अपनी दुश्मनी भूलकर मेरी बात सुनेगा? क्या तू यह नहीं मानता कि मनुष्य चाहे जैसा पापी हो, पर अन्त समय जब उसके जीवन का चित्र उसकी आँखों के सामने आता है तब वह झूठ नहीं बोल सकता?" दुःशासन बोला।

"दुःशासन। तुझे जो-कुछ कहना हो वह खुशी से कह।" भीम ने कहा, "तू जो भी कुछ कहेगा, उसपर आज तो मुझे विश्वास है।"

"भीमसेन। जरा मेरे इस हाथ को तो छोड़। अरे, कैसी बदबू
तमें आरही है। इस बदबू को मैं आजतक पहचान न सका
।। भीमसेन। द्रौपदी से कहना कि तेरी चोटी पकड़नेवाले और
ा चीर खींचनेवाले हाथ की आज कैसी दुर्गत हुई। भीमसेन।
क बात करोगे?" दुःशासन बोला।

"तू मेरे इस हाथ को धड़ से जुदा करके इन दोनों सेनाओं
ो अच्छी तरह दिखाना। द्रौपदी के अपमान का यह मेरा
ायश्चित्त है।" दुःशासन की आँखों में पानी भर आया।

"दुर्योधन से कुछ कहना है?"

"भाईसाहब से क्या कहूँ? कृष्ण से भी क्या कहूँ? मैं तो
ाज जारहा हूँ। वे लोग भी मेरे पीछे आरहे हैं। भीम। कोई
हाँ रहनेवाला नहीं है। तुम अगर यह मानते हो कि कौरवों के
रने के बाद पृथ्वी तुम्हें मिल जायगी, तो यह तुम्हारी भूल है।
ुम्हें भी मैं अपने पीछे आता हुआ देख रहा हूँ। भीमसेन। अब
ाँखों के आगे अँधेरा छारहा है।" दुःशासन का बोल बन्द
ोगया।

दुःशासन का बोल बन्द होते ही भीम ने उसका दाहिना हाथ
ड़ में से खींचकर अलग किया और उस हाथ को दोनों सेनाओं
े योद्धाओं को दिखाया।

भीमसेन ने जब दुःशासन का हाथ ऊंचा किया तो आकाश
ें से एक दिव्यवाणी सुनाई दी —

"दुनिया-भर की स्त्रियों के केशपाश खींचनेवाले लोगो।

दुःशासन का यह संदेशा सुनो। तुम लोग जब-जब दुनिया की माताओं, पत्नियों तथा बहन-बेटियों को सताओ, उनका अपमान करो, उनकी चोटियों को खींचो, उनके चीर खींचो, उस समय यह भी याद रखना कि पृथ्वी के किसी हिस्से में एकाध भीमसेन भी तुम्हारे हाथों को धड़ से जुदा करने के लिए तैयार ही बैठा है। जबतक इस जगत् में पांचाली के समान स्त्रियाँ हैं और जबतक दुनिया में दुःशासन-जैसे लोग हैं, तबतक संसार के किसी हिस्से में भीमसेन भी पैदा होता रहेगा और पांचालियों का बदला लेगा। जगत् का कोई भी दुःशासन इस बात को न भूले।"

दुःशासन की आखिरी बातों को सुनकर भीमसेन का हृदय भी थोड़ी देर के लिए पिघल गया, और उसके हृदय में से वैर भाव भी मिट गया। लेकिन अपनी प्रतिज्ञा का पालन करने और कौरवों की सेना में भय व आतंक पैदा करने के खयाल से वह दुःशासन के शव का गरम-गरम खून पीने लगा और बोला "कुरुक्षेत्र के मैदान में एकत्र वीर क्षत्रियो! भीम ने भरी सभा में जो प्रतिज्ञा की थी, आज दुःशासन का खून पीकर वह उसे पूरी कर रहा है। जो मिठास शहद, शक्कर, अंगूर, अमृत या माता कुन्ती के दूध में है उससे भी अधिक मिठास आज मुझे इस खून में मालूम होती है। प्यारी पांचाली! आज भीम कृतार्थ हुआ।"

भीम का यह भयंकर कृत्य सैनिक देख न सके।

थोड़ी ही देर में फिर पहले जैसा ही युद्ध होने लगा।

अभिमान दूर होता है

महाभारत का युद्ध खत्म हुआ और विजय के अन्त मे महाराज युधिष्ठिर का हस्तिनापुर में राज्याभिषेक हुआ। खून से सने हुए इन काँटों के राजमुकुट को कुछ वर्षों तक तो युधिष्ठिर ने किसी तरह अपने सिर पर धारण किया। लेकिन बाद में तो उसके काँटे पाण्डवों के अन्तर में ऐसी वेदना करने लगे कि अन्त में युधिष्ठिर ने राजमुकुट अपने सिर पर से उतारकर अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित के सिर पर रक्खा और खुद पाण्डवों तथा द्रौपदी के साथ हिमालय जाने का निर्णय किया।

महाराज परीक्षित न छत्र-चँवर धारण किया और राजमुकुट उनके तरुण सिर पर शोभा देने लगा। अभिमन्यु के पुत्र को राजगद्दी पर बैठा देखकर राजमाता उत्तरा के हर्ष का पार न रहा और सारे हस्तिनापुर में परीक्षित का जयजयकार होने लगा।

पर भीमसेन इस मगल-प्रसंग पर महल के एक कमरे में किसी गहरे विचार में लीन था।

"तुम यहाँ कैसे बैठे हो, भीमसेन। सब लोग आनन्द मना रहे हैं, तब तुम यहाँ कैसे छिपे पड़े हो?" द्रौपदी न आकर भीम को छेड़ा।

भीम ने द्रौपदी की ओर देखा "सखी। तुम्हारे सिर पर से

आज साम्राज्ञी का भार दूर हुआ, इससे हृदय हल्का हुआ होगा न ?"

"भीमसेन इस तरह क्या बोलते हो ? हमारा वंशज गद्दी पर बैठे और हम उन लोगों को सुखी छोड़कर अपने रास्ते लगें, इससे अच्छा और क्या होगा ? कल सुबह तो हम लोग हिमालय पर चलनेवाले हैं, यह तुम जानते ही हो।" द्रौपदी ने कहा।

"द्रौपदी। तुम आओ। मेरी तबीयत आज अच्छी नहीं है। इसीसे थोड़ा यहाँ एकान्त में बैठना चाहता हूँ।" भीमसेन बोला।

"क्या हुआ है ? किस विचार में पड़ गये ?" द्रौपदी ने पूछा।

"देवी, एक बात पूछना चाहता हूँ। पूछूँ ?" भीम बोला।

"प्यारे भीमसेन। आज तुम इस प्रकार क्यों बोल रहे हो ?" द्रौपदी ने कहा।

"आज मुझे किसी तरह भी चैन नहीं पड़ता। हस्तिनापुर का यह राज्य, यह महल, यह बगीचा, यह वैभव, सब आज न जाने क्यों मुझे अच्छा नहीं लगता, और थोड़ी-थोड़ी देर में मेरा जी ऐसा मालूम होता है मानों किसी गहराई में उतरता हो। मेरा अपना शरीर ही मुझे भार-रूप मालूम होता है और साँप जैसे केंचुल उतारकर फिर स्वस्थ होजाता है उसी तरह इस शरीर को फेंक कर कब शान्ति अनुभव करूँ यही मन में आता है।" भीम ने कहना शुरू किया।

"यह तो यों ही, तुम यहाँ बहुत देर से बैठे हो न, इसलिए

इसने विचार आगये। चलो, सब तुम्हारी राह देख रहे होंगे।" द्रौपदी बोली।

"सब कौन ?"

"महाराज युधिष्ठिर, अर्जुन, सहदेव वगैरा।"

"देवी। एक बात कहूँ ? मानोगी ?" भीम ने कहा।

"तुम्हारी बात न मानूँगी तो फिर किसकी मानूँगी ? कहो न।" द्रौपदी बोली।

"आजतक मैं यह मानता था कि मैं डर जैसी किसी चीज को जानता ही नहीं।" भीम कहने लगा।

"जरूर। मेरे भीमसेन के पास डर टिके ही कहाँसे ? यह तो बिल्कुल ठीक बात है।" द्रौपदी बोली।

"पर पाञ्चाली। आज मेरी आँखें खुलीं और मालूम पड़ा कि मैं तो बहुत डरपोक हूँ।" भीम तनकर बैठ गया।

"तुम और डरपोक। इतने राक्षसों को मारनेवाला, शत्रुओं का संहार करनेवाला, दुश्शासन का खून पीनेवाला, दुर्योधन का नाश करनेवाला भीमसेन डरपोक। यह नया नुसखा तुम कहाँसे ले आये ? दिमाग फिर गया है क्या, पागल तो नहीं होगये ?" द्रौपदी ने मजाक करते हुए कहा।

"देवी। मेरा दिमाग बिल्कुल नहीं फिरा है। मैं पागल भी नहीं हूँ। मैं खुद ही ऐसा मानता था कि भीमसेन तो डर का भी बाप है। लेकिन देवी, आज मेरी भूल मुझे मालूम होगई है।" भीमसेन ने कहा।

"कैसे मालूम हुई ?"

"आज महाराज युधिष्ठिर न अपन सिर का राजमुकुट अब परीक्षित क सिर पर रक्खा तब मैं वहाँ मौजूद था। जब महाराज मुकुट उतार रहे थ, मेरी आँखों के सामन मानों दुर्योधन आखड़ा हुआ। दुर्योधन—हाँ, दुर्योधन। उसका सिर खुला हुआ था, उसकी जाँघ में स खून बह रहा था, उसक सिर क दाहिनी ओर मेरी लात क निशान थे। वह आकर मुझ अपनी जाँघ बताने लगा।" भीम बोल रहा था और उसकी साँस फूल रही थी।

"यह क्या कहत हो ? या तो जब मैं साम्राज्ञी हुई थी उस रात को खुद मुझे भी भानुमती सपने में दिखाई दी थी। लेकिन मैंने तो तुमस इस बार में कुछ नहीं कहा।" द्रौपदी बोली।

"देवी! यह बात नहीं है। दुर्योधन को इस प्रकार देखने क बाद मेरे मन में तरह-तरह की उथल-पुथल हो रही है। कभी मैं द्रोण को देखता हूँ, तो कभी जरासंध सामने आता है, और थोड़ी दर में कौरवपुत्र मर सामन आत हैं। इन सबको देखकर मैं डरता नहीं। लेकिन इन सभीको मैंने मारा, यह विचार करत करत दिल जरा गहर में चला जाता है। तब अन्दर स कोई कहता है—'भीम, और गहर म मत जा। यह गहराई बहुत भयंकर है।' अन्दर की यह आवाज सुनकर मैं उन विचारों स बचन की कोशिश करता हूँ, और फिर स अन्दर नजर डालत हुए डरता हूँ। इस डर क मार मुझ ऐसी कँपकँपी आती है जैसी मैंने अपने जीवन में पहले कभी अनुभव नहीं की। मेरी आँखें चढ़ जाती हैं,

शरीर पसीने पसीने होजाता है, मैं कांपने लगता हूँ। और ऐसा लगता है कि कोई मुझे मार डाले तो ठीक हो।" भीम न कहा।

"तुम भी बड़े अजीब हो। इन फिजूल की बातों में अपना दिमाग क्यों खराब करते हो ?" द्रौपदी बोली।

"देवी। तुम्हारे जीवन में भी कभी ऐसे मानसिक तूफान आय हैं ?" भीम ने पूछा।

"आये तो हैं, लेकिन जब आते हैं तब दो घड़ी रो-धोकर मन हल्का कर लेती हूँ, और फिर अपने काम में लग जाती हूँ।" द्रौपदी बोली।

"द्रौपदी। मेरे जीवन में तो यह पहला अनुभव है। और अन्तर में डुबकी मारकर अब देखता हूँ, तो जिनका मुझे सपने में भी कोई खयाल नहीं था ऐसी बुरी-बुरी चीजें दीखती और मुझे चकित कर देती हैं। द्रौपदी, मुझे तो यह सारी सृष्टि ही नई मालूम पड़ती है और इस सृष्टि के आगे हजार हाथियों के जितनी ताकतवाला मैं बिलकुल दीन बन जाता हूँ।" भीम दीन बनता हुआ बोला।

"खैर, अभी तो यहांसे चलो। फिर यहां आजाना।" द्रौपदी बोली।

"नहीं, पाञ्चाली। डरते-डरते भी मन में तो यही आता है कि मैं अपने अन्दर दृष्टि डालता ही रहूँ। अंदर न जाने कितना मैल और कूड़ा-करकट जमा होगया होगा। ऐसा करने से वह

बाहर आजायगा और भीमसेन को नई दुनिया का दर्शन करायगा।" भीम बोला।

"पर ऐसा करने से तो पागल हो जाओगे।" द्रौपदी बोली।

"मुझे तो ऐसा लगता है कि ऐसा न करने दोगी तो मैं पागल होजाऊँगा।" भीम बोला।

"पर अभी तो महाराज के पास चलो।" द्रौपदी ने भीमसेन को हाथ पकड़कर उठाया।

"देवी। चलो चलता हूँ, पर महाराज युधिष्ठिर के सामने भी अपने मन की यह उथल-पुथल कहे बिना मेरे मन को चैन नहीं पड़ेगा।" भीमसेन बोला।

"कल से तो हम सब साथ ही हैं। हिमालय की तरफ चलते चलते रास्ते में यही बातें करेंगे।" द्रौपदी बोली।

"अच्छा, देवी। तो चलो, चलें।"

भीमसेन खड़ा हुआ और मण्डप में जहाँ सब भाई उसकी राह देख रहे थे, वहाँ जाकर बैठ गया।

× × ×

दूसरे दिन पाँचों पाण्डव और द्रौपदी हिमालय की ओर चल दिये। रास्ते में सहदेव गिरा, नकुल गिरा, पाञ्चाली गिरी और अर्जुन भी गिर पड़ा।

आगे युधिष्ठिर, पीछे भीमसेन और सबके पीछे एक कुत्ता—बस, ये तीन अब चले जा रहे थे। इतने में भीमसेन को चक्कर आया और वह बैठ गया।

"महाराज, महाराज। तुम्हारा भीमसेन भी अब यहीं रुका जाता है।" भीम ने पुकारा।

युधिष्ठिर ने पीछे घूमकर देखा "भाई भीमसेन। तुम भी गिर पड़े?"

"भाईसाहब! अपने मन की उथल-पुथल मैं आपको बता ही चुका हूँ। आज मैं उसीके वश होकर यहाँ पड़ा हूँ। जो अक्ल परीक्षित के अभिषेक के दिन आई वह उससे ले आता तो, महाराज, आपके वचनों को मैं ज्यादा समझ सकता। लेकिन भाई-साहब। मुझे माफ़ करें। मनुष्य के पास अन्तरात्मा जैसी कोई चीज़ भी है, यह मैं कहाँ जानता था? अगर यह मालूम होता तो द्रोण को मारने के लिए झूठ न बोलता, दुर्योधन की जाँघ में गदा न चलाता, क्षमा के लिए कही हुई आपकी बातों का उपहास न करता, और शत्रुओं की हत्या करके सुख बिताने की इच्छा न रखता। लेकिन महाराज। मैंने तो अपने बल के अभिमान में दूसरी किसी बात का विचार ही नहीं किया और शरीर बल को ही सब-कुछ माना। आज भीमसेन का यह शरीर अब उसका नहीं रहा।" भीम अत्यन्त दीन होकर बोल रहा था।

"भाई भीमसेन। व्यर्थ का शोक मत कर। तुझे जो ठीक लगा वह तूने किया। आज इतनी देर में भी तुझे यह भान हुआ, यही अपना सद्भाग्य समझ। भाई, तेरा कल्याण हो। तुम सब भाई और पाञ्चाली हमेशा के लिए यहाँ सो गये और मैं अकेला चला जारहा हूँ। मेरे भाग्य में आगे क्या लिखा है, यह ईश्वर ही

जाने। भाई भीमसेन। तुम्हें परमात्मा शान्ति दे।"

युधिष्ठिर आगे चले और भीमसेन का शरीर वहीं पड़ा रह गया।

कुन्ती का पुत्र, दुर्योधन और कौरवों का कट्टर शत्रु, पाण्डवों को अनेक विपत्तियों से छुड़ानेवाला, द्रौपदी का रसिक पति, राक्षसों का संहार करनेवाला, शरीरबल की साक्षात् मूर्ति और हजार हाथियों की ताकत रखनेवाला भीमसेन देवताओं के दरबार में पहुँच गया।

अर्जुन

एक लक्ष्य

द्रुपद के दरबार में अपमानित होने के बाद घूमते फिरते द्रोण हस्तिनापुर आ पहुँचे। हस्तिनापुर के एक कुए के पास राजकुमार खेल रहे थे। उनकी गेंद उस कुए में गिर गई थी, और वे उसे निकाल नहीं पाते थे। द्रोण ने अपनी अस्त्रविद्या के प्रभाव से कुए में से गेंद बाहर निकाल दी। कुमारों ने यह बात जाकर भीष्म पितामह और महाराजा धृतराष्ट्र से कही, जिसपर विचार कर उन्होंने द्रोण को राजकुमारों को शस्त्रास्त्र विद्या सिखाने के लिए उनके गुरु के रूप में नियुक्त कर दिया।

उन दिनों गुरु-सेवा विद्यार्थी जीवन का एक आवश्यक अंग समझा जाता था। विद्यार्थी गुरुकुल में रहते हुए गुरुकुल के छोटे-बड़े सब काम खुद ही कर लेते, और इस प्रकार जीवन में स्वाश्रय की अमूल्य शिक्षा पाते थे। आश्रम में दाखिल होनेवाले नये विद्यार्थी आश्रम की गायों को जंगल में चराने ले जाते, आश्रम के वृक्षों को पानी देते और गुरु के यज्ञ के लिए समिधा माँग लाते। जीवन के ऐसे-ऐसे कामों को पार कर जाने के बाद ही उनका नियमित विद्याध्ययन शुरू होता था। गुरुकुल में गरीब-अमीर सभी विद्यार्थियों के साथ एक-सा व्यवहार होता था। यहाँतक कि बड़े बड़े राजकुमार भी गुरुकुल के लिए लकड़ी काटने या गुरु के

लिए ऐसे-वैसे काम करने में कोई हीनता नहीं समझते थे। गुरु द्रोण का अपना कोई आश्रम तो था नहीं, और राजकुमारों के सिवा दूसरों के लिए उनकी शाला के दरवाजे बन्द थे, फिर भी कौरव पाण्डवों को द्रोण की सेवा की शिक्षा तो मिली ही थी।

राजकुमार रोज सुबह नहाने और पानी भरने के लिए तालाब पर जाते। पानी भरने के लिए हरेक को एक-एक घड़ा मिला हुआ था।

एक रोज भीम और अर्जुन तालाब की ओर जा रहे थे। अर्जुन जरा जल्दी-जल्दी पैर उठाकर आगे बढ़ने लगा। यह देख भीमसेन बोला—"भाई अर्जुन। पानी तो मुझे भी भरना है। तू अकेला ही पानी भरने आया है और हम खाली घड़े लेकर वापस जायेंगे, ऐसा तो है नहीं।"

"भीमसेन। तुम धीरे धीरे आना। मैं तो चलता हूं। मुझे जरा जल्दी है।" अर्जुन ने कहा।

"जल्दी क्या है? और फिर आज तो पढ़ने की छुट्टी है इसलिए और मौज है।" भीम बोला।

"ऐं छुट्टी है? यह तो मुझे पता ही नहीं था।" अर्जुन खड़ा रह गया।

"तुझे कैसे मालूम हो? तू तो रोज जल्दी-जल्दी नहा धोकर पानी भरके चला जाता है। न किसीसे बोलना न खेलना, न डुबकियां ही लगाता है और न तैरता ही है। तू भला और तेरा अभ्यास भला। भला यह भी कोई बात है? दुनिया में कुछ घूम-

मस्ती भी तो चाहिए। आज देखना मैं क्या मज़ा करता हूँ। मैं दुःशासन का गला पकड़कर उसे पानी में डुबोऊँगा और फिर उसकी पीठपर ऐसा घोड़ा दौड़ाऊँगा कि हज़रत को नानी-दादी याद आजायगी।"

"भाई भीमसेन! सच बता दूँ? बहुत दिनों से मैं तुमसे बात करने की सोच रहा था, लेकिन कोई मौका ही नहीं मिलता था।" अर्जुन बोला।

"भला ऐसी क्या बात है? कह तो सही।" भीम ने कहा।

"सुनो, हमारे गुरु द्रोण जब हमें पानी भरने के लिए भेजते हैं तब पीछे से अपने पुत्र अश्वत्थामा को चुपचाप विद्या सिखा देते हैं।" अर्जुन बोला।

"लेकिन अश्वत्थामा भी तो हमारे साथ पानी भरने आता है?" भीम की समझ में यह बात नहीं आई।

"आता तो साथ ही है, पर फ़ौरन ही वापस चला जाता है। गुरुजी ने हम सबको तो सकड़े मुंह वाले घड़े दिये हैं और अश्वत्थामा को चौड़े मुंह वाला दिया है, जिससे उसका घड़ा जल्दी भर जाता है और वह हमसे पहले पहुँच जाता है।" अर्जुन ने भीम को समझाया।

"यह बात है। अश्वत्थामा जल्दी आता है, यह तो मैं भी देखता हूँ।" भीम ने कुछ सोचते हुए कहा।

"और यह सिर्फ़ इसीलिए।" अर्जुन ने कहा, "मैं अच्छी तरह जानता हूँ, इसीसे कह रहा हूँ।"

"तो भाई अर्जुन!" भीमसेन का क्रोध भभक उठा, "ऐसे पक्षपाती गुरु से हमें नहीं पढ़ना। चलो, पितामह से हम यह सब कहें। अश्वत्थामा को हमसे चोरी-छिपे पढ़ाना तो चोरी हुई।"

"भीम भाई!" भीम के कन्धे पर हाथ रखकर अर्जुन ने कहा, "जरा धीरे बोलो, नहीं तो ये दुर्योधन वगैरा जो आ रहे हैं ये सुन लेंगे। जबसे मुझे अश्वत्थामा सम्बन्धी यह बात मालूम हुई है तभीसे मैं भी जल्दी-जल्दी पानी भरके पहुँच जाता हूँ, जिससे गुरुजी मुझे भी ज्यादा सिखाने लगे हैं।"

"हूँ! अब समझा। इसीसे गुरुजी जब-तब कहा करते हैं कि 'अर्जुन सबसे ज्यादा होशियार है।' अब बात समझ में आई। लेकिन हमारी तरफ से अश्वत्थामा विद्या में पारंगत हो और चाहे तू भी पारंगत हो जा, अपन राम तो मौज से नहा-धोकर घूमामस्ती करते ही आयेंगे। सीखना होगा तो शान्ति से सीखेंगे। द्रोण अगर न सिखायेंगे तो दुनिया में गुरु का कहीं अकाल पड़ा है?" भीम बोला।

"भीमसेन! मगर फिर तो द्रोण जैसा दूसरा गुरु नहीं है इसलिए जैसे भी हो वैसे मैं तो उनसे सारी विद्या सीख लेना चाहता हूँ। अस्त्रविद्या में द्रोण जैसे गुरु आज सारी दुनिया में नहीं हैं। इसलिए मैं तो इधर-उधर के पचड़े में पड़े बगैर उनसे इस विद्या का रहस्य सीख लेना चाहता हूँ।" अर्जुन बोला।

"अर्जुन! जरा विचार तू कर! मुझ सा ऐसे पक्षपाती गुरु को फिर कम मिले तो भी उसमें मेरा क्या नुकसान है? फिर

मुझसे तो पितामह कहते थे कि कुछ दिन बाद मुझे और दुर्योधन को गदायुद्ध की खास तौर से शिक्षा दिलाने के लिए बलरामजी के पास भेजना है।" भीम ने बात का अन्त किया।

"भीमसेन। एक और बात भी तुम्हें मालूम है?" अर्जुन ने पूछा।

"कौन-सी?"

"यही भीलकुमार वाली?" अर्जुन बोला।

"नहीं तो।" भीम ने कहा।

"कल भीलों के राजा का लड़का एकलव्य गुरु द्रोण का शिष्य बनकर अस्त्रविद्या सीखने के लिए आया था।" अर्जुन ने कहा।

"फिर क्या हुआ?"

"गुरु ने पितामह आदि की सलाह लेकर एकलव्य को शिष्य के रूप में स्वीकार करने से इन्कार कर दिया।" अर्जुन ने कहा।

"ठीक ही किया।" भीमसेन बोला, "भला ऐसे-वैसे भीलों को हमारे साथ कैसे रक्खा जा सकता है? हम तो आखिर हस्तिनापुर के राजकुमार न हैं।"

"भीमसेन, भीमसेन।" अर्जुन से न रहा गया, "तुम्हारा कहना ठीक नहीं है। हम लोग राजकुमार हैं यह तो सच है, लेकिन उस भीलकुमार को अगर तुमने देखा होता, तो तुम्हारी आँखें निश्चल रह जातीं। रंग तो उसका काला है, लेकिन शरीर उसका कैसा मनोमोहक है। उसके हाथ देखते तो कहते। बड़े-बड़े देवताओं के धनुष भी ऐसे हाथों में पड़ने के लिए तरसते

होंगे। उसकी आँखों में इतनी तीक्ष्णता कि अन्धेरे में भी निशा न चूके। मुँह पर अडग निश्चय की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। और चेहरे से ऐसा मालूम पड़ता है मानों उसका हृदय अस्त्र विद्या के लिए कितने ही युगों का भूखा है। मुझे तो उसको देखकर ऐसा लगा मानो मेरी विद्या उसके सामने कुछ भी नहीं है, और थोड़ी देर के लिए तो मैं गुरु के पीछे छिप गया। बाद में मन कुछ स्वस्थ हुआ। भीम। उसकी गम्भीर चाल को मैं अभी भी नहीं भूल सकता।"

"अर्जुन।" भीम खिलखिलाकर हँसते हुए बोला, "ऐसे तो कितने ही जानवर हस्तिनापुर में रोज आते और चले जाते हैं। तू तो पागल है जो उनको याद रखता है। हम लोग जब शिकार के लिए जाते हैं वहाँ ऐसे कितने ही भील में घुमते दिख सकता है। ए चलो, अब देर हो रही है। ये लोग पानी में धा लगा रहे हैं, यह देखकर मेरा हृदय भी उछल रहा है। मैं देख अभी-अभी इस दुःशासन का गला पकड़कर इस पानी में डुबाता हूँ।"

इस तरह बातें करते करते दोनों भाई तालाब के किना पहुँच गये।

× × × ×

राजकुमारों की परीक्षा का समय नजदीक आ रहा था दिखाकर चाहते थे कि कुमारों ने द्रोणाचार्य से क्या सीखा है यह हस्तिनापुर की सारी प्रजा देखे, और इसके लिए एक आलीशान

मण्डप बना- कर सारी जनता के सामने राजकुमारों की परीक्षा लेने का विचार चल रहा था।

इसी बीच द्रोणाचार्य ने अपने सन्तोष के लिए शिष्यों की परीक्षा करने का विचार किया। एक रोज़ जब सब कुमार अस्त्र-शाला में मौजूद थे, अचानक आचार्य ने ज़ाहिर किया कि "आज मैं तुम सबकी परीक्षा लेनेवाला हूँ।"

सब राजकुमार तैयार होगये और अपने अस्त्र-शस्त्र लेकर मैदान में आये। मैदान में दूर एक पेड़ पर सफेद रंग का एक नक़ली पक्षी था और लाल रंग के दो रत्नों से उसकी आँख बनाई हुई थीं।

आचार्य ने राजकुमारों से कहा—"उस पेड़ पर जो पक्षी बैठा है, उसकी आँखें तुम्हें बींधना है।"

राजकुमार तैयार हुए; उनके हाथ तैयार हुए, उनकी आँख तैयार हुई, उनके धनुष तैयार हुए, उनके तीर भी तैयार हुए।

आचार्य बोले—"कुमार युधिष्ठिर! सबसे पहले तुम्हारा नम्बर है। देखो, यह मैं खड़ा हूँ, सामने सफेद आसमान है, यह पेड़ है, और उसपर सफेद पक्षी है। तुम इन सबको देख रहे हो?"

युधिष्ठिर खड़े हुए, धनुष-बाण हाथ में लिये और पक्षी की ओर देखकर बोले—"गुरु महाराज! मैं आपको भी देखता हूँ, सफेद आसमान को भी देख रहा हूँ, दूर के उस पेड़ को भी देख रहा हूँ और साथ ही उस नक़ली पक्षी को भी देख रहा हूँ।"

युधिष्ठिर के इस जवाब से खिन्न होकर द्रोण ने कहा, "तुम बैठ जाओ।"

फिर दुर्योधन की बारी आई। "कुमार दुर्योधन! देखो, मैं खड़ा हूँ, सामने सफेद आसमान है, वह सामने पेड़ है, और उसपर पक्षी है। तुम्हें ये सब दीखते हैं?"

दुर्योधन ने हाथ में धनुष-बाण लेते हुए जवाब दिया, "गुरुदेव! मैं इन सब भाइयों को देख रहा हूँ, आपको भी देखता हूँ, सफेद आसमान भी देख रहा हूँ, पेड़ को भी देख रहा हूँ और उसपर बैठे हुए पक्षी के सफेद शरीर को भी देख रहा हूँ।"

द्रोण ने हाथ पटकते हुए कहा, "बैठ जाओ।"

फिर भीमसेन खड़ा हुआ और आचार्य के प्रश्न के जवाब में बोला—"गुरुजी! मैं आप सब लोगों को देख रहा हूँ, आकाश को भी देख रहा हूँ, आकाश में जो बड़े बड़े बादल घूम रहे हैं उनको भी देखता हूँ, पेड़ को भी देखता हूँ, पेड़ के नीचे मैं बिलाव घूम रहा है उसको भी देख रहा हूँ और पेड़ पर कुछ सफेद-सा जो रक्खा हुआ है उसको भी देख रहा हूँ।"

द्रोण निरुत्तर हुए और भीम को भी बैठा दिया। गुरु ने सबसे पूछा, लेकिन किसीके उत्तर से उनको सन्तोष नहीं हुआ। तब अन्त में अर्जुन की तरफ मुड़े—"बेटा अर्जुन! अब तेरी बारी है। तुझीपर मेरी सब आशाओं का दारोमदार है। इन सबको तो मुझे जबरदस्ती पढ़ाना पड़ता है, जबकि तू विद्या का भूखा रोज मुझे खोजता हुआ आता है। उठ, तैयार हो। देख यह मैं

खड़ा हूँ, सामने सफेद आसमान है, दूर पर वह पेड़ है, और उसपर पक्षी बैठा हुआ है। तू इन सबको देखता है ?"

द्रोण अपना वाक्य समाप्त कर ही रहे थे कि अर्जुन बोल उठा—"गुरुदेव। न मैं आपको देखता हूँ न आकाश को, पेड़ भी मुझे नहीं दिखाई देता, मुझे तो सिर्फ वहाँ एक पक्षी दिखाई देता है। तीर चलाने की आज्ञा दीजिए।"

"बेटा अर्जुन।" द्रोण बोले, "इनमें से कोई दिखाई नहीं देता ? अकेले पक्षी को ही देखते हो ?"

"महाराज। अब तो सारा पक्षी भी नहीं दिखाई देता।" अर्जुन ने जवाब दिया, और द्रोण कुछ बोलने ही वाले थे कि अर्जुन फिर बोल उठा—"महाराज। अब तो पक्षी का सिर भी मुझे नहीं दीखता, सिर्फ दो लाल तारे वहाँ टिमटिमाते हुए दिखाई दे रहे हैं।"

"बेटा, उन्हींको बींध।"

द्रोण के शब्द मुँह से बाहर निकले न निकले कि अर्जुन का तीर सन-सन करता हुआ निकला और पक्षी की आँखों को बींधता हुआ पार होगया।

"शाबाश बेटा, शाबाश। तू मेरा सच्चा शिष्य है। तुझपर मैं आज बड़ा प्रसन्न हुआ हुआ हूँ। बेटा। आज मैं तुझे वरदान देता हूँ कि अस्त्र विद्या में मेरा कोई भी शिष्य तुझसे बढ़कर नहीं हो सकेगा।"

द्रोणाचार्य ने अर्जुन को छाती से लगाया और उसका सिर

सूँघा। चारों भाइयों ने अर्जुन को घेर लिया और खुशी मनाने लगे और कौरव सब एक कोने में इकट्ठे होकर घुस-पुस करने लगे।

× × ×

राजमहल के एक सुन्दर बगीचे में द्रोणाचार्य और दुर्योधन इधर-उधर घूम रहे थे, दुःशासन और कर्ण थोड़ी दूर पर उनके पीछे पीछे चल रहे थे।

"कुमार दुर्योधन।" द्रोण बोले, "विद्या सिखाने में तुम्हारे और अर्जुन के बीच मैंने कोई भेद नहीं रक्खा। तुम्हें ऐसा लगता हो कि मैंने कोई भेद रक्खा है तो यह तुम्हारा भ्रम है।"

"हम सबको तो ऐसा ही लगता रहा है।" दुर्योधन ने बताया।

"ऐसा मानने का कोई खास कारण भी है?" द्रोण ने पूछा।

"कारण एक-दो नहीं, अनेक हैं। देखिए, आप हम सबको तो दिन में तीर चलाना सिखाते थे, पर अर्जुन को अँधेरी रात में भी तीर चलाना सिखाया। यह सच है न?" दुर्योधन ने पूछा।

"पूरा सच तो नहीं, पर अर्धसत्य जरूर है। एक बार अर्जुन अँधेरे में भोजन करने बैठा तब उसका ग्रास इधर-उधर न जाकर सीधा मुँह में ही चला गया, इसपर उसे लगा कि रोज की आदत यानी अभ्यास ही जीवन में बड़ी चीज है। बस, उस दिन से वह रात के अँधेरे में तीर चलाने का अभ्यास करने लगा। खुद मुझे भी इस बात की बहुत दिन बाद खबर लगी। अर्जुन की तरह तुमने भी अगर अभ्यास करना शुरू किया होता तो तुम भी इसी तरह कर सकते थे।" द्रोण ने जवाब दिया।

"दूसरी बात", दुर्योधन द्रोण की ओर देखकर बोला, "यह है कि अर्जुन सब पानी का घड़ा भरकर पहले आजाता तो आप उसे थोड़ी-बहुत रहस्यविद्या सिखाते थे। बोलिए, यह सच है न ?"

"बिलकुल सच।" द्रोण ने निधड़क जवाब दिया।

"यही आपका पक्षपात है। यही अर्जुन के और हमारे बीच आपका पक्षपात है।" दुर्योधन अपने साथियों को कनखियों से देखकर बोला।

"कुमार! अर्जुन को तुम्हारी बनिस्बत विद्या की भूख ज्यादा है। वह अपने दूसरे कामों से जल्दी निपटकर विद्या प्राप्त करने के लिए उत्सुक रहे और इस कारण वह तुम्हारी बनिस्बत ज्यादा सीख ले, यह स्वाभाविक नहीं है क्या ? अर्जुन की जठराग्नि तुम-से ज्यादा प्रबल है, यह द्रोण का दोष है या तुम्हारा अपना ?" द्रोण ने पूछा।

"गुरुदेव! विद्या की भूख तो हमें भी अर्जुन जितनी ही थी, लेकिन आपने हमारी उस भूख को प्रोत्साहन कहाँ दिया ? आप तो अर्जुन को देखते ही पागल होजाते थे।" दुर्योधन ने कटाक्ष किया।

"कुमार दुर्योधन! अपनी विद्या का सच्चा अधिकारी शिष्य मिले तो गुरु का हृदय कितना प्रसन्न होता है, इसका अनुभव मैं तुम्हें कैसे कराऊँ ? मनुष्यमात्र सन्तति के लिए तरसता है, यहाँ तक कि सन्तति के लिए लोग प्राण तक दे देते हैं। पर अधिकारी

शिष्य ही हमारी सन्तति है। सत्पुत्र के प्रति पिता का अधिक प्रेम दोष हो, तो ऐसा दोष द्रोण ने भी ज़रूर किया है।" द्रोण बोले।

"गुरुदेव! इतना ही नहीं। इस अर्जुन की खातिर ही आप भीलकुमार एकलव्य का अँगूठा काटने के लिए खुद गये। परीक्षा के मण्डप में कर्ण कहीं अर्जुन को हरा न दे, इस डर से आपने कर्ण को द्वन्द्व में उतरने ही नहीं दिया। आपके शत्रु द्रुपद को पकड़ने के लिए हम सब साथ गये थे, लेकिन द्रुपद को पकड़ने का श्रेय अकेले अर्जुन को ही मिला। और यह सारी गुरु-दक्षिणा जैसे अकेले अर्जुन ने ही आपको दी हो, इस तरह उसीको आपने अपना ब्रह्मास्त्र दिया। ये और ऐसी छोटी मोटी अनेक बातें एक साथ मिलाकर देखिए, तब कहिए कि आप अर्जुन का पक्षपात करते हैं या नहीं?" दुर्योधन ने द्रोण की ओर देखा।

"तो कुमार! साफ़ ही कह दूँ?" द्रोण निडर होकर बोले, "अर्जुन के प्रति शुरू से ही मेरा पक्षपात था, है और रहेगा। जिस विद्या की उपासना मैं जीवन-भर करता रहा हूँ, उसका सच्चा अधिकारी तुम सबमें एक अर्जुन ही है। इतना ही नहीं, बल्कि मैं तो यह भी देखता हूँ कि अर्जुन आगे चलकर कहीं मेरा भी गुरु न होजाय। मेरे जैसे ब्राह्मण को अगर विद्या के सच्चे शिष्य न मिलें, तो जीवन-भर हृदय में सन्ताप ही रहा करता है और जीवन के अंत में ब्रह्मराक्षस का अवतार लेना पड़ता है, यह तुम्हें मालूम है? कुमार! मुझे तो तुम्हारी इन बातों में अर्जुन के प्रति तुम्हारे द्वेष के सिवा और कुछ नहीं मालूम पड़ता। कुमार!

द रक्खो, ऐसे द्वेष से तुम अर्जुन से बढ़कर नहीं होसकते।"
ण की आवाज में तेजी आने लगी।

"आचार्य! आप किससे बातें कर रहे हैं, यह भी ध्यान में
? मैं दुर्योधन हस्तिनापुर का भावी महाराजा हूँ। आप मेरे गुरु
, लेकिन आपको मुझे सब-कुछ कहने का अधिकार नहीं है।"
दुर्योधन अकड़कर बोला।

"दुर्योधन द्रोणाचार्य को चाहे जो कह सकता है, और द्रोण
दुर्योधन को कुछ भी नहीं कह सकता, यह बात है क्या? कुमार!
तुम अभी बच्चे हो। आगे से पितामह और धृतराष्ट्र से पूछकर
तब मेरे साथ बात करने आना।" द्रोण ने उसे चेताया।

"दुःशासन! चलो। कर्ण! चलो। गुरुजी! आप जितना
चाहें अर्जुन के साथ पक्षपात करें। अब हम भी सब विद्या सीख
रहे हैं। अब देखूँगा कि यह अर्जुन आपके गुरुत्व को कितना
निभाता है।"

यह कहकर दुर्योधन मुँह फेरकर चल दिया। कर्ण और
दुःशासन आचार्य की हँसी उड़ाते हुए दुर्योधन के पीछे-पीछे गये।

२

द्रौपदी का स्वयंवर

लाक्षागृह से भाग निकलने के बाद पाण्डव गंगा किनारे के जंगलों में चले गये। युधिष्ठिर का कुछ समय तक इस तरह घूमने का निश्चय था, जिससे कोई पहचान न सके। जंगलों में भटकते हुए भीमसेन ने हिडिंब राक्षस का वध किया और हिडिंबा के साथ शादी की। आगे बढ़ते हुए वे एकचक्रानगरी में जा पहुँचे। वहाँ पर भीमसेन ने बकासुर को मारकर सारी एकचक्रानगरी को राक्षसों के त्रास से मुक्त किया। परन्तु भीमसेन के ऐसे अद्भुत पराक्रमों से प्रकट होजाने का डर युधिष्ठिर को हमेशा लगा रहता था। इस कारण बकासुर को मारकर तुरन्त ही वे एकचक्रानगरी से भी चले गये। रास्ते में उन्हें द्रुपद राजा की लड़की के स्वयंवर की खबर मिली, इसलिए माता कुन्ती तथा पाँचों भाई द्रुपद की राजधानी की तरफ चल दिये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने एक कुम्हार के घर डेरा डाला और ब्राह्मण के वेश में अपने दिन काटने लगे। दिन में सब भाई गाँव में से भिक्षा माँगकर लाते और रात को माँ-बेटे किसी तरह सुकड़-सुकड़कर कुम्हार के कोठे में पड़े रहते।

एक दिन चारों पाण्डव भिक्षा लेने गये थे और अकेला अर्जुन कुन्ती के पास रह गया था।

कुन्ती बोली—"अर्जुन! इन दो-चार दिनों में तू इस तरह

आलसी होकर क्यों पड़ा रहता है ? भिक्षा लेने के लिए भी नहीं जाता।"

"माँ।" अर्जुन ने जवाब दिया, "जब एकचक्रानगरी में थे तब तो भीम को रोज तू अपने पास रखती थी। यहाँ भीम लेने जाता है तो मैं रहता हूं, ऐसा क्यों नहीं मानती ?"

"एकचक्रानगरी की बात और थी। वहाँ तो मुझे अकले अच्छा नहीं लगता था और भीम को अगर खुला छोड़ देती तो न जाने क्या उखाड़-पछाड़ करबैठता, पर यहाँ ऐसा कुछ नहीं है। तू सारे दिन टाँग पसारकर पड़ा रह और अपने भाइयों का लाया हुआ खाये, यह मुझे बिलकुल अच्छा नहीं लगता। तू अपने भाइयों का इतना भी खयाल नहीं करता ?" कुन्ती बोली।

"माँ। मुझपर क्या बीत रही है, यह तुम्हें और भाईसाहब को क्या मालूम ?" लेटा हुआ अर्जुन उठकर बैठ गया।

"तुझपर ऐसी क्या बीत रही है, जो मुझे मालूम नहीं ?" कुन्ती ने जरा सख्ती से पूछा।

"तुम कुछ नहीं जानतीं। आज कितने महीनों से इस ब्राह्मण के वेश में छिपकर घूमते फिरते हैं, और कोई पहचान न जाय इस डर से इस कुम्हार के घर में छिपे पड़े हैं। इससे मेरे हृदय को कैसी चोट लग रही है, इसका तुम्हें क्या पता है ?" अर्जुन ने सिर उठाकर कहा।

"मुझे और तुम्हारे बड़े भाई को फिलहाल यही आवश्यक मालूम पड़ता है।" कुन्ती बोली।

"माँ। ऐसा गलत जवाब क्यों देती है? इससे तो मुझे और भीमसेन को हिमालय पर ही छोड़कर तू हस्तिनापुर आई होती तो ज्यादा अच्छा होता।" अर्जुन गरम होकर बोलने लगा, "माँ! बचपन में ऋषि मुनियों के आश्रम में तुमने अपनी क्षत्राणी की छाती से हमें दूध पिलाया, जब हम पालने में सोते थे तब पाण्डु-पुत्र के रूप में ऊँची भावनायें हमारे अन्दर भरी गई, हस्तिनापुर के राजमहलों में राजकुमारों के रूप में हम बड़े हुए, भीष्म पितामह, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, विदुर आदि महापुरुषों के वातावरण में हम जवान हुए, द्रुपद जैसे राजा को पकड़कर द्रोणाचार्य के चरणों में हमने भेंट किया। ऐसे तुम्हारे पुत्रों को दुर्योधन की ईर्ष्या के कारण इधर-उधर छिपते हुए मारे-मारे फिरना पड़े तो दिलों में क्या बीतती होगी, इसका तुम्हें कुछ खयाल आता है?"

"हाँ, आता है।" कुन्ती बोली।

"नहीं, नहीं आता।" अर्जुन जरा गरम होकर बोलने लगा—"अगर यह खयाल आता होता, तो उस दिन भीम के कहने पर हमें वारणावत से हस्तिनापुर वापस जाने दिया होता; तब दुर्योधन भी जान जाता कि पुरोचन के पाण्डवों को जलाने से पहले दुर्योधन को स्वयं श्मशान-शय्या पर सोना पड़ता है। माँ, द्रोण को गुरु-दक्षिणा देने के लिए जब हम यहाँ आये तो उस पेड़ के पास हम पाँचों भाई खड़े रह गये थे। दुर्योधन आदि जब हाथ झाड़कर वापस लौट गये, तब हमने द्रुपद पर हमला किया और उसको बाँधकर गुरु के चरणों में ला रक्खा। माँ! आज जब यह दिन

। आता है तब हृदय में न जाने क्या क्या विचार उठते हैं।
। दुर्योधन आदि कल राजकुमार की हैसियत से स्वयंवर में
मिल होने को स्वर्ण के सिंहासनों पर आकर बैठेंगे, और द्रुपद
पराजय करनेवाले तुम्हारे ये वीर पुत्र गरीब ब्राह्मणों के वेश
इधर उधर धक्के खाते होंगे और जगह पाने के लिए जिस-
ज के निहोरे खायँगे। माँ। यह बिलकुल असह्य है। ऐसे विचारों
मेरा दिल कितने दिनों से बिंध रहा है। कोई भी काम करने
जब मैं विचार करता हूँ तभी मेरा मन मानों अपंग होजाता
और वह मेरे सारे शरीर को अपंग कर देता है।"

"बेटा अर्जुन।" कुन्ती अर्जुन के पास आई और उसको
प्रसा दती हुई बोली, "तेरे मन की व्यथा को मैं जानती हूँ।
के अन्दर क्या-क्या मंथन चल रहे हैं, इसकी मुझे खबर है।
सात में आकाश में बादलों का गर्जना सुनकर सिंह का बच्चा
द्रता हुआ पर्वतों के साथ सिर टकराकर कैसे मर जाता है,
क्या मैंने हिमालय के जंगलों में नहीं देखा?"

"माँ। अकेले मेरे ही अन्दर ऐसा मन्थन चल रहा हो, सो
। नहीं है। भीम का तो मुझसे भी बुरा हाल है। वह तो कहता
कि अब हम किसीको भी दो हाथ दिखाकर प्रकट होना ही है।"

"हाँ", कुन्ती ने कहा, "युधिष्ठिर भी कहता था कि अब हमें
प्रश्न को हल करना होगा।'

"भाईसाहब इसको हल करें या न करें, मैं तो मौक़ा देख
हूँ। और ऐसा करते हुए हम प्रकट होजायँ तो इसका भी

मुझे कोई डर नहीं है। दुर्योधन से डरकर हमेशा अंधेरे में रहना कैसे हो सकता है ? दुनिया तो समझे कि पाण्डव लाक्षागृह में जलकर मर गये, दुर्योधन वगैरा ऐसा मानकर मूंछों पर ताव देते हुए घूमें और हम अपने शरीरों को बचाते हुए इधर उधर छिपते फिरें, यह सब अब अर्जुन से नहीं होसकता। माँ तू आज भाईसाहब से ये बातें कह देना।" अर्जुन ने अपना निश्चय बताया।

"अभी कल तो तुम लोग स्वयंवर में जानेवाले हो। बाद में निश्चिन्ताई से सब बातों पर विचार करेंगे।" कुन्ती ने कहा।

"मैंने तो आज ही तय कर लिया है कि मैं कल स्वयंवर में नहीं जाऊँगा।" अर्जुन बोला।

"स्वयंवर देखने के लिए ही तो खासतौर से यहाँ आये और फिर उसमें न जाना, यह कैसे हो सकता है ?" कुन्ती ने कहा।

"उसमें देखने जैसी क्या बात है, और उसे देखने में क्या रस है ?" अर्जुन ने पूछा।

"बेटा !" अर्जुन के सिर के बाल सवारती हुई कुन्ती बोली "रस तो नहीं है यह मैं भी जानती हूँ। देश-विदेश के राजा महाराजाओं की श्रेणी में बैठनेवाले मेरे ये बेटे दक्षिणा के भूखे ब्राह्मणों की पंक्ति में बैठें, और दूसरे क्षत्रियकुमार जब धनुष-बाण चढ़ाने के लिए तैयारी कर रहे होंगे तब मेरे पुत्र अपने हाथ मलते हुए बैठे रहेंगे, इस दुःख की मैं कल्पना कर सकती हूँ। लेकिन बेटा ! कल तो स्वयंवर में जरूर जा। तुझे न जाना हो तो भी

होगी माँ कहती है इसलिए चलाजा। और कभी मैं तुम्हें इस तरह न भेजूँगी। समझा? तो जायगा न? जवाब दे।"

"क्या जवाब दूँ?'

"बस, मुझे यह कहदे कि मैं जाऊँगा। बेटा, तेरी आज की बातों से मुझे बड़ी वेदना हुई है। कल के लिए तो तू मुझे वचन दे दे कि तू वहाँ जायगा।" कुन्ती बोली।

"अच्छा माँ, कल स्वयंवर में चला जाऊँगा। लेकिन वह सिर्फ तेरी खातिर।"

"हाँ, मेरी ही खातिर सही।" कुन्ती ने जवाब दिया। अर्जुन उठकर जहाँ कुम्हार अपने गधे का सिंगार कर रहा था वहाँ चला गया और कुन्ती घर के कामों में लग गई।

× × ×

स्वयंवर के मण्डप में असाधारण शान्ति थी। किसी सागर में आया हुआ बड़े ज़ोरों का तूफ़ान जलदेवता के शब्द मात्र से शान्त होजाय, इस प्रकार पहले जहाँ इतना हाहाकार और शोर-गुल मचा हुआ था वहाँ एकदम यह शान्ति कैसी? सिंहासन से उठकर लक्ष्य-वेध करने जाते हुए जिस जरासन्ध की चाल से धरती डगमगाती थी वही जरासन्ध अपने पैर के अँगूठे से रेशमी गलीचे को क्यों खुरच रहा है? शिशुपाल का जो सिर उसकी मनोहर गर्दन के ऊपर हमेशा स्थिर रहता था, वह आज सिंहासन के ऊपर क्यों ढल पड़ा? द्रौपदी के मण्डप में प्रवेश करने से पहले जो दुर्योधन प्रवेश-द्वार की ओर एकटक देख रहा

था यह अब अपने हाथ के नाखूनों को ही क्यों देख रहा है ? इन वैतालिकों के सुर क्यों बंद होगये ? इन ब्राह्मणों के आशीर्वाद बीच में ही क्यों रुक गये ? धृष्टद्युम्न की सिंह-गर्जना क्यों शान्त होगई ? द्रुपद का चेहरा पीला क्यों होगया ? द्रौपदी की सखियों की नूपुर-झंकार क्यों बंद होगई ? वहाँ दूर बलराम के साथ बैठे हुए श्रीकृष्ण की आँखें चपलता से अपने एकमात्र अभिन्न सखा को तलाश करती हुई अस्थिर क्यों हो उठी हैं ?

हिमालय की किसी गुफा में जहाँ अर्से से शान्ति का साम्राज्य हो और सिंह अपनी एक ही गर्जना से उस शांति को चीर डाले, इस तरह इस सभा की शान्ति को भङ्ग करता हुआ द्रुपद का पुत्र धृष्टद्युम्न बोला—"भारतवर्ष के राजाओ ! आप सब लोग जानते हैं कि मेरी यह बहन द्रौपदी यज्ञ में से उत्पन्न हुई है । आप लोग यह भी जानते होंगे कि ईश्वर के किसी गूढ़ संकेत के अनुसार ही इसका जन्म हुआ है । मेरी बहन हमारे देश के वीर क्षत्रियों के जीवन को उज्ज्वल करे, इस ख़याल से मेरे पिता ने इस स्वयंवर का आयोजन किया है । आप सब दूर-दूर के देशों से इस स्वयंवर में पधारे हैं, इसके लिए मैं फिर से आपका आभार मानता हूँ । लेकिन आप लोगों के यहाँ आने का हेतु सिद्ध नहीं हुआ । इससे मेरा हृदय बहुत दुःखी है । जरासंध और शिशुपाल जैसे शूरवीर भी इस धनुष को न झुका सके, यह देखकर किस-को दुःख न होगा ? अपनी असफलता से आप सबको भी कितना दुःख होरहा है, यह आप लोगों के चेहरों से ही दीख

हा है। अब तो मुझे यह भय होरहा है कि शायद इस सार
रूप में मेरी बहन के हाथ का अधिकारी कोई क्षत्रिय पुत्र मौजूद
ही है। पर मुझे अपनी बहन का दुःख नहीं है। वह तो योग्य
ति के अभाव में आजीवन ब्रह्मचारिणी रहने के लिए तैयार है।
किन्तु इतने बड़े मानव-समुदाय में इस धनुष को लेकर
क्ष्य-वेध करनेवाला एक भी क्षत्रिय वीर न निकला, यह देखकर
रा हृदय जलकर खाक हुआ जाता है। हम सब लोग क्षत्रिय-
त्र हैं। वीरता ही हम लोगों का ईश्वर-प्रदत्त अधिकार है। हमने
म वीरता को—उस अधिकार को खो दिया है, इसका मुझे दुःख
। हे राजा महाराजाओ। सुनो, अभी भी आपमें कोई वीर
र दबा छिपा रह गया हो तो बाहर आजाय और यज्ञ की वेदी
से उत्पन्न हुई मेरी इस बहन को स्वीकार करने की अपनी
ाग्यता का परिचय दे।"

कुमार धृष्टद्युम्न के मुँह से ये शब्द पूरी तरह बाहर निकलने
। नहीं पाये थे कि दूर बैठे हुए ब्राह्मणों की मण्डली में से एक
रूप उठ खड़ा हुआ। उसके खड़े होते ही ब्राह्मणों की मण्डली में
ोलाहल मच गया।

एक ने कहा, "अरे भाई। हम लोग तो ब्राह्मण हैं। यह काम
ारा नहीं है।"

दूसरे ने कहा, "ब्राह्मण हैं तो क्या हुआ ? सूतपुत्र तो नहीं
? परशुराम क्या ब्राह्मण नहीं थे ? हस्तिनापुर के द्रोण ब्राह्मण
ीं हैं ? जाओ भाई, अच्छी तरह जाओ।"

तीसरा बोला, "अरे ओ भाई ! बैठ जा, बैठ जा, शल्य जैसे का यहाँ बस नहीं चला तो तेरे से क्या होना है ? उलटे हँसी होगी और साथ में दक्षिणा भी मारी जायगी।"

महासागर की प्रचण्ड लहरों के निरन्तर टकराव रहने पर भी अचल पहाड़ जैसे खड़ा रहता है उसी प्रकार इस कोलाहल के बीच वह पुरुष खड़ा रहा। कुछ देर पहले राजा-महाराजाओं की जो आँखें निश्चेष्ट हो रही थीं, वे भी सहसा इस कोलाहल की ओर फिरीं।

इस पुरुष को आपने पहचाना ? उसके चेहरे पर शुद्ध क्षत्रियत्व की छाप थी, उसकी आँखों में अनेक दिनों के अज्ञातवास पर रोष भरा हुआ था। बैल के समान उसके कन्धे थे, विशाल छाती थी, लोहे के मोटे सरियों के समान उसके हाथ थे और सिंह-जैसी उसकी चाल थी। इस पुरुष को आपने पहचाना ? यह है लाक्षागृह में से जलते-जलते बच जानेवाला, जंगलों के अनेक दुःखों में भीमसेन का साथी, अज्ञातवास से ऊबा हुआ, कुम्हार के घर में ब्राह्मण के वेश में रहनेवाला कुन्ती का बिचला पुत्र अर्जुन। कुमार धृष्टद्युम्न के वचन उसके कानों में चुभे और उन शब्दों से उसकी वीरता मानों घायल होकर जागृत होगई।

सारा मण्डप अपनी मूर्च्छा में से जागृत होकर अर्जुन की ओर देखे, इतने में तो वह धनुष के पास पहुँच गया और उसे हाथ में लेकर टंकार किया। धनुष की यह टंकार सभाजनों के

कानों तक पहुँचे, उससे पहले ही अर्जुन ने निशान पर तीर चलाया और उसे बींध दिया। ब्राह्मणों ने और धृष्टद्युम्न ने जय-जयकार किया, और लोग आँख उठाकर उधर देखें इतने में तो द्रौपदी की वरमाला अर्जुन के गले में आ पहुँची।

राजा-महाराजाओं के आश्चर्य का तो ठिकाना ही न रहा। "यह क्या जादू का कोई खेल है? हम सब सपना देख रहे हैं या सब सच है?" सब एक दूसरे की ओर देखने लगे और खुद कहीं पागल तो नहीं गये हैं इसका निश्चय करने के लिए वे अपने शरीर और वस्त्राभूषणों पर इधर-उधर हाथ फेरने लगे।

उस बीच, भीम छलांग मारकर अर्जुन के पास आ पहुँचा और युधिष्ठिर भी नकुल, सहदेव के साथ आकर उसके पास खड़े होगये। द्रुपद राजा की आँखों में प्रेमाश्रु भर आये, और अपनी प्यारी बेटी को छाती से लगाकर अर्जुन के पास आ खड़े हुए। कुमार धृष्टद्युम्न इन सबको लेकर दरवाजे की ओर चलने लगा।

अचानक घायल शेर की तरह गरजकर जरासन्ध ने कहा—"ठहरो! धृष्टद्युम्न, ठहरो! यहाँ आये हुए राजा-महाराजाओ! सुनो! द्रुपद ने हम सब लोगों को इस स्वयंवर में निमंत्रण देकर बुलाया और अब हमीं लोगों के सामने वह अपनी लड़की एक उठाईगीर को देकर हमारा भारी अपमान कर रहे हैं। हम इस अपमान का बदला द्रुपद से जरूर लेना चाहिए। या तो द्रुपद राजा स्वयं ही अपनी पुत्री को हममें से किसीको दे दें, नहीं तो हम लोगों को चाहिए कि हम सब मिलकर उनके साथ युद्ध करें

और इस क्षत्रियकुमारी को क्षत्रिय-कुल से बाहर जाने से रोकें।"

जरासन्ध के चुप होते ही चेदिराज शिशुपाल उसका समर्थन करता हुआ बोला—"जरासंध जो कहते हैं वह बिलकुल ठीक है। भारतवर्ष के इतने बड़े राजा-महाराजाओं में से द्रुपद को कोई पसन्द न आया, और अन्त में एक ब्राह्मण को अपनी लड़की दी। अरे ओ ब्राह्मण! इस द्रौपदी का हाथ छोड़ दे। धृष्टद्युम्न इस शहर की किसी अच्छी ब्राह्मणी से तेरी शादी करा देंगे। यह द्रौपदी तो किसी महाराजा के अंतःपुर की शोभा बढ़ाने के लिए पैदा हुई है। तेरे घर भीख माँगकर लाये हुए आटे की रोटियाँ बनाने के लिए इसका जन्म नहीं हुआ।"

कर्ण को भी ठीक मौका मिल गया "बिलकुल ठीक है। द्रुपद की पुत्री किसके साथ ब्याह करे, यह तय करने का काम हम लोगों का है। द्रुपद अगर सीधी तरह न मानें, तो मैं अकेला उसके साथ युद्ध करने के लिए तैयार हूँ। इस तरह का घोर अपमान सहकर कौन वीर अपने घर जायगा?"

जरासंध आदि की ऐसी तीव्र और जोशीली बातें सुनकर और राजाओं की भी बहादुरी जागृत हुई। कोई म्यान में से तलवार निकालने लगे, कोई अपने रथ बाहर तैयार हैं या नहीं यह देखने लगे, कोई अर्जुन को देखकर दाँत किटकिटाने लगे, तो कोई मन में द्रौपदी को ही भला-बुरा कहने लगे।

दूसरी ओर ब्राह्मण आनंद से नाचने लगे, और उनमें जो जवान थे वे लड़ने के लिए भी तैयार होगये।

कुन्ती पुत्र अर्जुन, इस बीच, इस सब विरोध की जरा भी परवा न करते हुए द्रौपदी के साथ अपनी धीर गति से दरवाजे की तरफ़ चला जा रहा था, मानों कोई मस्त हाथी कुत्तों के भोंकने की परवा न करते हुए अपनी सूँड़ को हिलाता हुआ जारहा हो।

बेचारे द्रुपद तो यह सब देखकर एकदम सन्न रह गये। "बेटा धृष्टद्युम्न! बेटी द्रौपदी कहाँ गई? मेरी बेटी ने जिसे वर-माला पहनाई, मैं तो उसका नाम भी नहीं जानता। बेटा! तू इन राजाओं को शान्त कर। ये सब अगर हमारे साथ युद्ध करने लगेंगे तो मैं क्या करूंगा? बेटी द्रौपदी! जरा खड़ी तो रह।"

इस प्रकार बोलते हुए द्रुपद अर्जुन के पीछे पहुँचे और द्रौपदी से कहने लगे—"बेटी द्रौपदी! तुझे अपने योग्य पति तो मिला, लेकिन तेरे इस पिता के तो दुःख का पार नहीं है। ये सब राजा-महाराजा मुझे और तेरे भाई को किस तरह धमका रहे हैं, यह तू सुन रही है न?" बोलते-बोलते द्रुपद की आँखों में पानी भर आया।

अर्जुन ने द्रुपद को सान्त्वना देते हुए कहा—"महाराज! आपको जरा भी घबराने की ज़रूरत नहीं। मैं अकेला ही इन सब राजा-महाराजाओं के साथ युद्ध करने को तैयार हूँ। आप सब यहाँसे हट जाइए।"

अर्जुन बोल ही रहा था, इतने में भीम आगे आया—"महाराज द्रुपद! अब आप सब तमाशा भर देखें। इन सब महाराजाओं को द्रौपदी नहीं मिली तो क्या, मेरे हाथ का मज़ा ही जरा उन्हें चख लेने दें। आप जरा भी चिन्ता न करें।"

यहाँ इस तरह की बातें होही रही थीं, इतने में क्रोध से भरे हुए शिशुपाल आदि राजा वहाँ आपहुँचे और मानों एक-दूसरे को युद्ध का आवाहन करते हों इस प्रकार सब बाहर निकल पड़े।

नकुल और सहदेव को लेकर युधिष्ठिर अपने मुकाम पर चले गये, इधर अर्जुन और भीम राजाओं से लड़ने में लगे। अर्जुन ने स्वयंवर वाला धनुष हाथ में लेकर कर्ण के सामने मोरचा बाँधा और उसे घायल करके लड़ाई में से भगा दिया। भीमसेन पास के एक पेड़ को उखाड़ लाया और सबसे भिड़ पड़ा। उसने जरासंध, शिशुपाल, शल्य आदि को मार भगाया। अर्जुन और भीमसेन का यह युद्ध थोड़ी देर तो अच्छी तरह चला, पर कोई भी राजा ज्यादा देर तक उनका सामना नहीं कर सका, और एक के बाद एक सब अपने-अपने मुक़ाम को चले गये।

अन्त में मानों सब राजा-महाराजाओं की इज्जत बचा रहे हों इस प्रकार एक राजा कहने लगा, कि "जो पुरुष इतने राजाओं के सामने अकेला टिक सकता है और कर्ण जैसों को घायल करके मार भगाने की हिम्मत रखता है, वह अवश्य क्षत्रिय वीर होना चाहिए। द्रौपदी सच्चे क्षत्रिय से ही ब्याह करे, यही हम चाहते थे। हमें विश्वास होगया है कि यह जो-कुछ हुआ है वह ठीक ही हुआ है। इस कारण अब इस युद्ध को ज्यादा बढ़ाने की ज़रूरत नहीं है।"

संग्राम में शत्रुओं के अपनेआप अदृश्य होजाने पर अर्जुन और भीमसेन द्रुपद की आज्ञा लेकर अपने डेरे की ओर चलने

लगा। पाञ्चाल-पुत्री उनके पीछे-पीछे चली जा रही थी।

अपनी प्यारी बहन को पहुँचाकर वापस लौटते हुए धृष्टद्युम्न मन में गुनगुनाया, "ये लोग कौन होंगे ? कहाँ जा रहे होंगे ? वीर धृष्टद्युम्न की बहन किनके पाले पड़ी ? मेरे शहर में तो किसी ब्राह्मण के ऐसे पुत्र हैं नहीं। समझ में नहीं आता कि ईश्वर की क्या माया है।"

३

अर्जुन का वनवास

द्रौपदी के साथ पाँचों पाण्डवों का ब्याह होगया और श्रीकृष्ण भात देकर द्वारिका चले गये। तब धृतराष्ट्र के बुलाने पर पाण्डव वापस हस्तिनापुर गये और वहाँसे थोड़ी ही दूर इन्द्रप्रस्थ में अपनी राजधानी स्थापित करके रहने लगे। कुन्ती तथा द्रौपदी भी उनके साथ ही रहती थीं।

एक बार भगवान् नारद इन्द्रप्रस्थ आये। महाराज युधिष्ठिर ने अर्घ्यादि से उनकी पूजा की और पाँचों भाई तथा द्रौपदी उनके चरणों के पास आकर बैठ गये।

"महाराज युधिष्ठिर! सब ठीक तो है न?" नारद ने पूछा।

"मुनिराज! यहाँ पधारकर आज आपने मुझपर बड़ा अनुग्रह किया है।"

"पाञ्चाल-पुत्री! इन्द्रप्रस्थ का जीवन तुम्हें अनुकूल पड़ा या नहीं?" द्रौपदी की ओर देखकर नारदजी बोले।

"महाराज! ऐसा प्रश्न आप क्या कर रहे हैं?" द्रौपदी ने सहम ही शरमाते हुए कहा।

"बेटी द्रौपदी! खासतौर से इसलिए, कि विवाह होने के पहले विवाहित जीवन जितना मनोहर मालूम होता है उतना मनोहर विवाहित जीवन की पहली रात बीतने के बाद नहीं मालूम पड़ता,

ऐसा मनुष्यों का अनुभव है।" नारद ने जवाब दिया और युधिष्ठिर से पूछा, "क्यों युधिष्ठिर। ठीक है न ?"

"मुनिराज। आपकी बात तो बिलकुल ठीक है। लेकिन ईश्वर की कृपा से हम भाइयों में इतनी एकता है, और पाञ्चाल-पुत्री इतनी शील-सम्पन्न हैं कि हमारे व्यवहार में ज़रा भी कटुता पैदा नहीं होती।" युधिष्ठिर बोले।

"यह तुम लोगों का सद्भाग्य है।" नारद जी ने कहा, "फिर भी युधिष्ठिर। एक सलाह देना चाहता हूँ।"

"सलाह क्यों, आपको तो आज्ञा देने का अधिकार है।" युधिष्ठिर ने हाथ जोड़कर पूछा, "कहिए, क्या आज्ञा है महाराज ?"

"तुम सब आजतक माता कुन्ती के स्नेह की शीतल छाया में बड़े हुए हो और खाते-पीते, सोते-बैठते एकसाथ रहे हो, इसलिए तुम्हारे अन्दर फूट पड़े यह डर तो नहीं है।" नारद जी बोले।

"फिर क्या बात है, महाराज ?" युधिष्ठिर बीच ही में बोल उठे।

"फिर भी," नारद अपनी बातें जारी रखते हुए बोले, "काम-वासना बुरी चीज़ है।"

"पर हमारे अन्दर फूट किस तरह पड़ जायगी ?" भीमसेन बोला।"

"भीमसेन। तुम जो कहते हो वह ठीक है, पर काम जब फूट डालने की शुरुआत करता है तब वह मनुष्य की आँखों में ज़हर आँज कर दूर हट जाता है। फिर तो सब-कुछ वह ज़हर वाली

दृष्टि खुद ही कर लेती है।" नारद जी ने खुलासा किया।

"लेकिन हम लोग उसको कारण दें तब न ?" भीमसेन बोला।

"कामदेव ने एक बार आँख में जहर डाला कि बस फिर छोटे एक जरा से तिनके से भी हलके और क्षुद्र कारण बड़ों से भी ज्यादा बजनी मालूम होने लगते हैं, और नित्य-प्रति साथ-साथ खाने पीने, उठने-बैठने वाले एक माँ के जाये दो सगे भाइयों में भी फूट डाल देते हैं। और फूट भी ऐसी कि जिसमें एक-दूसरे का जान तक ले लेने को तैयार होजाते हैं।" नारद जी ने विस्तार से कहा।

"तो आपकी क्या आज्ञा है ?" युधिष्ठिर ने पूछा।

"इसलिए," नारदजी ने गम्भीरता के साथ कहा, "मेरी ऐसी सलाह है कि तुम्हारी आँखों में द्रौपदी के कारण ऐसी सब्जीली आवे उससे पहले तुम्हें द्रौपदी के साथ के अपने सम्बन्धों को व्यवस्थित कर लेना चाहिए।"

"किस तरह की व्यवस्था करने से, आप समझते हैं, हम लोगों में आपस में प्रेम बना रह सकता है ?" युधिष्ठिर ने पूछा।

"तुम पाँचों भाइयों को एक प्रकार की प्रतिज्ञा के बन्धन में बंध जाना चाहिए।"

"कैसी प्रतिज्ञा ?" युधिष्ठिर ने पूछा।

"तुम्हें ऐसा सख्त नियम बना लेना चाहिए कि जब तुममें से कोई द्रौपदी के साथ एकान्त में बैठा हो तो दूसरा वहाँ न जाय।" नारदजी ने कहा।

"महाराज । मुझे आपकी आज्ञा स्वीकार है ।" युधिष्ठिर ने बताया ।

"इस प्रकार नहीं जाना चाहिए, यह तो मुझे भी मंजूर है । लेकिन मान लो कि कोई वहाँ चला गया, तो ?" भीम ने पूछा ।

"तो फिर उसे प्रतिज्ञा भंग का प्रायश्चित्त करना चाहिए ।" नारदजी ने कहा ।

"अगर धर्म-बुद्धि से प्रतिज्ञा का पालन करना हो, तो उसको भंग करने का विचार ही नहीं उठता । फिर भी अगर हमारी कमजोरी से उसका भंग होजाय तो उसकी शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त तो करना ही चाहिए । क्यों ठीक है न अर्जुन ?" युधिष्ठिर बोले ।

"जरूर । प्रतिज्ञा तो प्रतिज्ञा ही है । अपना सिर देकर भी उसका पालन करना चाहिए । यही हमारा निश्चय हो । अगर उसे न पालना हो तो न लेना ही ठीक है । और अगर लेना है तो उसे छोड़ना नहीं चाहिए ।" अर्जुन बोला ।

"लेकिन अगर हम प्रतिज्ञा न लें पर मन में यह मन दृढ़ निश्चय करलें कि हम इस प्रतिज्ञा के अनुसार ही अपना आचरण रक्खेंगे, तो कैसा रहेगा ?" सहदेव ने प्रश्न किया ।

धर्मराज युधिष्ठिर बोले—"भाई सहदेव । तुम जो कहते हो वह ठीक नहीं है । मनुष्य चाहे जितना दृढ़ हो, फिर भी है तो वह हाड़-मांस का पुतला ही । मनुष्य कितनी ही दृढ़ता से निर्णय करे फिर भी उसकी गहराई में खोखलापन रही जाता है, इस कारण ऐन मौके पर मनुष्य का निर्णय इस तरह टूट जाता है कि

जिसकी वह कल्पना भी नहीं कर सकता और वह कहीं-का-कहीं
जा गिरता है। मनुष्य के हृदय की गहराई में इस प्रकार
छिछलापन न रहने देना हो, तो प्रतिज्ञा लेना ही एक मार्ग है।"

"तो ठीक, मैं प्रतिज्ञा लेने को तैयार हूँ।" सहदेव बोला।

"भगवान् नारद जहाँ उपस्थित हों वहाँ मैं भी प्रतिज्ञा करने
के लिए तैयार हूँ।" भीम ने कहा।

"तो महाराज युधिष्ठिर! सबसे पहले तुम प्रतिज्ञा लो और
बाद में ये चारों भाई।" नारदजी बोले।

धर्मराज युधिष्ठिर नारदजी को नमन करके खड़े हुए और
हाथ की अञ्जलि में पानी लेकर बोले "हम पाँच भाइयों में से
किसी एक के साथ एकान्त में अगर द्रौपदी बैठी हो तो वहाँ मैं नहीं
जाऊँगा, और गया तो मुझे बारह वर्ष का वनवास भोगना होगा।
भगवान् नारदजी को साक्षी रखकर मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ।"

इतना कहकर युधिष्ठिर ने अञ्जलि का जल छोड़ दिया और
बैठ गये।

उसके बाद क्रमशः भीमसेन, अर्जुन, सहदेव और नकुल ने
इसी प्रकार प्रतिज्ञा ली। पाण्डवों की प्रतिज्ञा लेने की विधि समाप्त
होजाने के बाद नारदजी सबको आशीर्वाद देकर वहाँसे विदा हुए।

× × ×

"भाई अर्जुन! तुम ऐसे ज़रा से कारण से हम लोगों को छोड़
कर जाते हो, यह मुझसे देखा नहीं जाता।" युधिष्ठिर ने कहा।

"भाई साहब! आप क्या कहते हैं? ज़रा-सा कारण है? आप

ऽ ही तो हम लोगो न प्रतिज्ञा ली है—और वह भी नारदजी
ते मुनि की उपस्थिति में, और आज ही इस प्रतिज्ञा का भंग
ं तो कैसे चलेगा ?" अर्जुन बोला ।

"लेकिन अर्जुन । तुमने प्रतिज्ञा का भंग किया ही नहीं ।"
धिष्ठिर न कहा ।

"भाइसाहब । अच्छे-अच्छे आदमी भूल कर जायँ ऐसे संकट
प्रसंगों में भी आपकी धमबुद्धि जागृत रहती है । पर आज मैं
ख़ता हूँ कि मेर प्रति आपका जो स्नेह है वह आपको भुलाव में
र रहा है ।" अर्जुन बोला ।

"अर्जुन । चोर ब्राह्मणों की गायों को लेगये थे । उन्हें वापस
ने क लिए मैं और द्रौपदी जहाँ बैठे हुए थे वहाँ आने के सिवा
हें कोइ चारा ही न था । क्योंकि जिस कमर म हम बैठे हुए थे
सीम हम लोगों के सब शस्त्रास्त्र रक्खे हुए थे । ब्राह्मणों की गायों
ो रक्षा करन के लिए तुम शस्त्रों को लेन कमरे में दे दे आये ।
सस तो हमार क्षत्रिय धर्म की रक्षा हुइ है । इस कारण तुम्हें जो
न्दिर आना पड़ा उससे क्या हमार राजधर्म का पालन नहीं हुआ ?
समें हमने जो प्रतिज्ञा ली है उसके अक्षरों का तो भंग हुआ
गा, लेकिन उसकी भावना की तो रक्षा ही हुइ है ।" भीमसन
ला ।

"भाई भीमसन । हमारी प्रतिज्ञा के अक्षराथ और भावार्थ की
ो कल्पना तुम्हारे ध्यान में है वह मर भी ध्यान में है । पर मैं
ो सिफ एक ही बात जानता हूँ । वह यह कि जब हम लोगों ने

प्रतिज्ञा ली,उस समय ऐसे प्रसंगों का अपवाद उसमें शामिल न
किया था।" अर्जुन ने कहा।

"वह तो उस समय सूझा नहीं था इसलिए।" भीमसेन
बोला।

"प्रतिज्ञा सचमुच जीवन की एक बड़ी गम्भीर बात है, और
जीवन की उन्नति के लिए उसका ठीक ठीक उपयोग करना हो तो
मनुष्य को प्रतिज्ञा लेने से पहले ही उसके चारों ओर जितनी बाड़
वगैरा लगानी हों लगा लेनी चाहिए।" अर्जुन ने कहा।

"लेकिन उस समय न सूझे तो।" युधिष्ठिर ने पूछा।

"उस समय न सूझे तो फिर प्रतिज्ञा तोड़ने के प्रायश्चित्त से
बचने के बहाने खोजने के बजाय प्रतिज्ञा-भंग के प्रायश्चित्त का सुख
से स्वागत करना चाहिए। भाईसाहब! धर्म का यह रहस्य तो
आपने ही हमें सिखाया है, फिर आज स्नेह के वश होकर इस
तरह क्यों बोल रहे हैं?" अर्जुन ने पूछा।

"अर्जुन! आज तूने मुझे हरा दिया। तू खुशी से जा भाई
देवता तेरी रक्षा करें।" यह कहकर युधिष्ठिर ने अर्जुन का सिर
सूँघा और आशीर्वाद दिया।

"देवी! आज्ञा चाहता हूँ।" अर्जुन ने द्रौपदी से विदा माँगी।

"शब्दों में व्यक्त न होनेवाले ऐसे स्नेह-तन्तु से तुमने मुझे
बाँध लिया है। आज उस तन्तु की खींचतान से मुझे आघात पहुँचा
है। मैं तुम्हारे वनवास का निमित्त बनी, मन में यह विचार आने
पर हम लोगों का भविष्य मेरी नजरों के सामने खड़ा होजाता

और तुम लोगों को मैं न जाने कैसे कैसे दुःखों में तपाने का कारण बनूँगी, इस विचारमात्र से मेरा जी भारी होजाता है।" यह कहते-कहते द्रौपदी गद्गद् होगई।

"बची! जी छोटा न करो। जीवन की कड़वी घूंटों में भी ईश्वर किस तरह अमृत छिपा रखता है, यह किसे मालूम है?" अर्जुन बोला।

"अर्जुन! जाओ! जगदम्बा तुम्हारी रक्षा करें।" द्रौपदी ने विदाई दी।

"भीमसेन! जाता हूँ।"

"अर्जुन! तू तो चला, लेकिन मेरी जोड़ी जो टूट रही है।" भीम बोला।

"भीमसेन! हम लोग महीनों से ऐसी यात्रा का विचार तो कर ही रहे थे। गुरु द्रोण ने हमें अस्त्र-विद्या तो सिखाई, लेकिन राजकुमार को शोभा देने योग्य देश परिचय तो बिलकुल दिया ही नहीं।" अर्जुन बोला।

"बेचारे द्रोण ने स्वयं ही देश का दर्शन कहाँ किया है?" भीम ने कहा।

"आज देश-परिचय प्राप्त करने का सौभाग्य पहले मुझे मिल रहा है, इससे आनन्द होता है। भीमसेन! महाराज युधिष्ठिर को भारतवर्ष के चक्रवर्ती पदपर स्थापित करने के स्वप्न तो तुम और मैं दोनों देखते हैं। लेकिन हमने भारत के अनेक भागों का भ्रमण तो किया ही नहीं है। देश-देशान्तर के वृक्ष, पत्ते,

नदी, समुद्र, पहाड़ आदि तो देखे ही नहीं हैं। भारत के भि
मनुष्यों को देखा नहीं है, उनके अनेक समाजों, उनके रीति रिवा
धर्म, स्थिति आदि को हम जानते ही नहीं हैं। हस्तिनापुर
अस्त्रशाला की खिड़कियों के चारों ओर जो दुनिया दिखाई दे
है उससे विशाल दुनिया चारों ओर मौजूद है, उसका प्रत्य
दर्शन तो हमने किया ही नहीं है। इस तरह हम भारतवर्ष
हृदय पर किस प्रकार साम्राज्य स्थापित कर सकेंगे ?"

"अर्जुन। तेरी बातें तो बहुत ठीक हैं। तो मुझे भी साथ ल
चल न ?" भीम ने कहा।

"आज नहीं। तुम अगर यहाँ न रहोगे तो भाईसाहब को
दिक्कत होगी। यों तो हम लोग साथ ही निकलने का विचार करते
थे, लेकिन मुझे ऐसा मौका जो मिल गया है उसमें बारह वर्ष में
जितना हो सकेगा उतना भ्रमण मैं कर लेना चाहता हूँ। मैं जब वापस
आऊँगा तब फिर तुम्हारी बारी आयगी।" अर्जुन ने जवाब दिया।

"अच्छा भाई, जा। लोकपाल तेरी रक्षा करें।" भीम ने
आशीर्वाद दिया।

"भाई नकुल, सहदेव। मैं जाता हूँ।" अर्जुन ने उनसे विदा
माँगी।

"भाईसाहब। हम आपसे क्या कहें ? आपके बिना हमें तो
सब सूना सा लगेगा। जल्दी ही वापस आना। देश विदेशों में जो
कुछ नई चीजें दीखें व हमारे लिए लेते आयें।" दोनों ने अर्जुन
को नमस्कार किया।

यह हो ही रहा था, इतने में माता कुन्ती भी वहाँ आपहुची।
र्जुन ने कुन्ती के पास जाकर सिर नवाया "माता, आज्ञा दो।"
आँखों के आँसू पोछती-पोछती कुन्ती बोली—"बेटा अर्जुन!
आखिरी समय में दुःख मानने से क्या होगा? अभी ठिकान
थोड़ी दर शान्ति से बैठ भी नहीं पाये थे कि फिर बारह वर्ष
वनवास। तेरा जीवन क्या इस वनवास के ही लिए बना है?
र, आ बेटा। जा। अब तेरा यह वल्कल मुझसे नहीं देखा
ता। देवराज इन्द्र तेरी रक्षा करें।"

धड़कते हुए हृदय और काँपते हुए हाथों से कुन्ती ने अर्जुन
सिर अपनी छाती से चिपटाया, सूँघा और उसे आशीर्वाद
या। थोड़ी दर के लिए उसे चक्कर-सा आने लगा, लेकिन तुरन्त
वह सावधान होगई। और सबसे विदा लेकर और सबको
रज बंधाते हुए, सबके हृदय मे न जाने क्या-क्या विचार
गाता हुआ और सबको स्नेह की निगाह से देखता हुआ, अर्जुन
रह वर्ष के वनवास को निकल पड़ा।

: ४ :

"यह कैसा कुलधर्म ?"

इन्द्रप्रस्थ के महल में एक कमरे के अन्दर बैठे हुए द्रौपदी और अर्जुन बातें कर रहे थे। अर्जुन के सामने की दीवार पर एक बड़ा शीशा टँगा हुआ था।

"देवी पांचाली! अब तो तुम्हारा मन खुश है न?" अर्जुन ने पूछा।

"प्यारे अर्जुन! आज बारह वर्ष बाद अपने अर्जुन को सुरक्षित वापस लौटते देख कौन अभागिन खुश न होगी? फिर तुम तो देश-देशान्तर से मेरे लिए नई-नई चीजें भी लाये हो, भला मेरी खुशी का क्या पूछना?" द्रौपदी ने कहा।

"देवी! माफ करो! वनवास के लिए रवाना हुआ सहदेव ने मुझसे नई-नई चीजें लाने के लिए खास तौर से कहा था। लेकिन आखिर कितनी चीजें लाता? और लाने में भी कितना था। इसलिए, देवी, तुम्हारे लिए मैं कुछ भी न ला सका, इसका मुझे दुःख है।" अर्जुन ने दीनता के साथ कहा।

"झूठ मत बोलो अर्जुन।" द्रौपदी ने ज़रा नाराज होते हुए कहा, "कैसी सुन्दर तो ग्वालिन लाये हो। कैसी अच्छी उसकी पोशाक है। लाल रंग की उसकी ओढ़नी और बढ़िया छींट के लँहगे में वह कैसी सुन्दर लगती है। कौन जाने उसकी सुन्दर

और उसके श्रीकृष्ण की बहन होने के कारण ही तो मेरा क्रोध नहीं मिट गया है। अर्जुन! शीशे में क्या देख रहे हो, मेरी तरफ़ देखो न?"

"सामने क्या देखूँ? तुम सुभद्रा के लिए कह रही हो न? पर सुभद्रा तो तुम्हारी दासी बनकर रहने के लिए आई है।" अर्जुन बोला।

"वह तो कभीकी मेरे पैर छूकर गई। और कह भी गई कि 'मैं तो तुम्हारी दासी हूँ।' वह तो श्रीकृष्ण की बहन है न? भला मोर के पंखों पर कहीं कारीगरी की भी ज़रूरत होती है? पर तुम तो फिसल गये न?" द्रौपदी ने कहा।

"पाँचाली! द्वारिका से मैं तथा श्रीकृष्ण यादवों का मेला देखने के लिए रैवतक पर्वत पर गये थे, वहीं मेरी नज़र उसपर पड़ी।" अर्जुन बोला।

"नज़र क्यों पड़ी?" द्रौपदी की आँखें चढ़ गईं।

"नज़र पड़ी सो पड़ी। देवी! तुम्हें यह मालूम है न, कि हम पुरुषों की नज़र जब इस प्रकार पड़ जाय तो फिर हटाये नहीं हटती?" अर्जुन बोला।

"मुझे भला यह क्यों मालूम हो? मैं कोई पुरुष तो हूँ नहीं। मैं तो स्त्री हूँ, इसलिए मेरी नज़र ऐसी जगह पड़े ही नहीं यह मैं ज़रूर जानती हूँ। यह अधिकार तो तुम पुरुषों ने ही रक्खा है।" द्रौपदी ने व्यंग से कहा।

"देवी! ऐसा कहती हो तो यही सही। नज़र जो पड़ गई

वह तो अय न पड़ी जैसी होने वाली है नहीं।" अर्जुन का स्वर भी कुछ कठोर होगया।

"इन बारह वर्षों में ऐसी कितनी नज़र पड़ी हैं?" द्रौपदी न पूछा।

"जितनी पड़ी होंगी उतनी ही तुम्हारे सामने आजायगी।" अर्जुन ने भी उड़ाऊ जवाब दिया।

द्रौपदी तुरन्त भड़ककर बोली, "मुझसे कुछ छिपा नहीं है। सुभद्रा ने आकर सब बातें कह दी हैं। वह नाग-वहन कहाँ है?"

अर्जुन याद करता हो इस तरह सिर खुजलाता हुआ बोला, "कौन, उलूपी?"

"नाम तो तुम जानो। मैं कोई व्याह में मौजूद थी, जो नाम जानती?" द्रौपदी न कहा।

हाँ, उलूपी ही उसका नाम है। पर वहाँ तो मैं एक ही रात रहा था।" अर्जुन न बतलाया।

"तो उलूपी को उसके पिता के यहाँ ही छोड़ आये?' द्रौपदी ने पूछा।

"हाँ, वह वहीं रहेगी।" अर्जुन ने संक्षेप में कहा।

"और भी कोई रह गई है?" द्रौपदी न जोर देकर पूछा।

"बस, उलूपी का ही जिक्र करना भूल गया था।" अर्जुन कुछ छिपाता हुआ-सा बोला।

"और दूसरी भी तो कोई है?" द्रौपदी ने प्रश्न किया।

"दूसरी? दूसरी यही उलूपी और कौन?" अर्जुन बोला।

"दूसरी नहीं, तीसरी। कोई मणिपुर नामका शहर है न ?" द्रौपदी ने पूछा।

"हाँ, है तो।"

"वहाँ कौन है ? जैसे बिलकुल भूल ही गये हो।" द्रौपदी मज़ाक करती हुई बोली।

"अरे हाँ। चित्रांगदा, चित्रवाहन राजा की पुत्री। उसकी तो याद ही नहीं रही थी।" अर्जुन कुछ याद करता हुआ-सा बोला।

"याद क्यों रहे ? मणिपुर में सिर्फ एक हजार रात ही तो रहे और सिर्फ एक ही पुत्र तो हुआ, इसलिए भूल जाना स्वाभाविक ही है।" द्रौपदी ने और मजाक किया।

"वह चित्रांगदा भी वहीं रहेगी। बभ्रुवाहन बड़ा होने पर आय तो भले ही आजाय।" अर्जुन ने कहा।

अब द्रौपदी से न रहा गया। वह तनकर अर्जुन के सामने बैठ गई और कहने लगी—"अर्जुन। कुन्ती के उदर से पैदा हुए अर्जुन। यह तुम निश्चय समझना कि तुम्हारे वनवास से सुरक्षित लौटने पर मुझे जितनी खुशी हुई है उतनी और किसी-को न हुई होगी। लेकिन इन बारह वर्षों में तुम जो तीन नई गाँठें बाँध लाये हो, उससे मेरे दिल में क्या बीत रही होगी, इसका तुमने कोई खयाल किया है ? सुभद्रा तो श्रीकृष्ण की बहन इसलिए मेरी भी बहन ही है। लेकिन तुम पुरुष लोग ज्यों-ज्यों नई गाँठ बाँधते जाते हो त्यों-त्यों पुरानी गाँठें ढीली होती जाती हैं, यह

खयाल जरूर रखना।"

अर्जुन द्रौपदी को शान्त करते हुए बोला "देवी। क्रोध मत करो। जो होगया वह तो हो ही गया।"

"यह तो मैं समझती हूँ, अर्जुन।" पर अपनी छाती को चीरकर बताऊँ तो तुम्हें पता चले कि यहाँ इस समय कैसा तूफान उठ रहा है।" द्रौपदी बोली।

"मैं उसकी कल्पना कर सकता हूँ।" अर्जुन ने कहा।

"तुम कैसे कल्पना कर सकते हो ?" द्रौपदी गरम हो उठी, "ईश्वर ने ऐसी कल्पना से पुरुषों को बाँझ बनाया है। तुम पुरुष तो हमें अपनी कामना के यंत्र समझते हो। तुम्हारे लेखे तो हमारे न मन होता है न हृदय, न बुद्धि होती है न मानापमान का खयाल। हमारी तो तुमने ऐसी स्थिति बनादी है कि जब तुम चाबी दो तब हम बोलें-चालें और उछल-कूद मचायें, पर जब चाबी निकाल दो तो जहाँ के-तहाँ पड़े रहें। क्यों, बोलते क्यों नहीं ?"

"सखी। तुम तो हमारे कुल की भूषण हो।" अर्जुन ने कहा।

"हाँ, आभूषण तो हैं ही। पर तभी जबतक कि वह तुम्हें अच्छा लगे। एक आभूषण पुराना हुआ नहीं कि तुम उसे पिटारी में रखकर नया खरीद लो, इसी तरह के आभूषण न ?" द्रौपदी ने कटाक्ष किया।

"देवी। इस समय तो तुम जो कहो वह सब सुनने को मैं तैयार हूँ।" अर्जुन बोला।

"सुनोगे नहीं तो जाओगे कहाँ ? पर अर्जुन, सहन तो मुझ

करना पड़ता है न ? आर्यों में किसी स्त्री के पाँच पति होना सुना है ? फिर मैं तो ठहरी द्रुपद की पुत्री और वीर धृष्टद्युम्न की बहन। अपनी कुल-परम्परा छोड़कर और अपनी सगी माँ के कहे पर ध्यान न दे मैंने तुम पाँचों के साथ शादी की। अर्जुन ! तुम सब भाइयों के स्नेह की भूखी होकर मैंने तुम्हारे कुलधर्म के अनुसार आचरण किया। तुम पाँचों भाइयों के बीच रहकर और तुम्हारी वासनाओं को तृप्त करते हुए भी तुम लोगों में कोई भेदभाव पैदा किये बगैर मैं तुम्हारा घर चला रही हूँ। इसमें मेरी क्या गत होती है, यह तुम्हें क्या मालूम ? माता कुन्ती के पाँचों पुत्रों में एका बना रहे इसका मुझपर कितना भार होगा, इसका भी तुम्हें कुछ खयाल है ?" द्रौपदी ने पूछा।

"ज़रूर है।" अर्जुन ने कहा।

"नहीं है। तुम सब भाइयों को मुझ एकसे संतोष नहीं हुआ, इसीसे दूसरे तीसरे ब्याह करने के लिए दौड़ते फिरते हो, मुझे तो यही मानना चाहिए ?" द्रौपदी ने कहा।

"देवी ! ऐसी बात नहीं है। हमारे कुल में पुरुषों के एक से अधिक स्त्रियों के साथ ब्याह करने का रिवाज है, इसलिए इससे तुम्हें बुरा न मानना चाहिए।"

"मैं तो, बाबा, हारी तुम्हारे इस कुल से। एक स्त्री से पाँच पुरुष विवाह करें, तब कहो कि 'यह हमारे कुल का रिवाज है।' और एक पुरुष अनेक स्त्रियों से विवाह करे तब भी वह 'कुल-धर्म।' भला ! यह तुम्हारा कैसा कुल धर्म है ? अर्जुन ! आज

तुम आर्य लोगों के बीच रह रहे हो। स्त्री के विवाह किये हुए पति से पुत्र उत्पन्न न हो तो दूसरे पुरुष से पुत्र उत्पन्न करे, पति मर गया हो तो परपति के साथ नियोग करे, एक पुरुष अनेक स्त्रियों को ब्याह या एक स्त्री अनेक पतियों से विवाह करे—एम अनेक रीति रिवाज आर्य लोगों में पहले किसी जमाने में थे। लेकिन तुम्हें समझना चाहिए कि सुसंस्कृत आर्य इन रिवाजों से मुक्त होते जाते हैं। जब संस्कारी आर्य एकपतिव्रत और एकपत्नीव्रत का शुद्ध आदर्श स्वीकार करने लगे हैं, तब पाँचसौ वर्ष पुराने विवाह के जंगली रिवाजों को कुल धर्म के नाम से पकड़ रहोगे तो तुम्हारा और तुम्हारे कुल का पतन होगा और आर्य तुम्हें पामर समझेंगे। अर्जुन! आज जितनी समझ मुझमें है उतनी जिस दिन तुमसे विवाह किया उस दिन होती, तो जैसे भी होता मैं तुममें से किसी एक के साथ ही विवाह करती और पाण्डवों के ही हाथों पाण्डवों के कहे आनेवाले इस कुल-धर्म का खात्मा कराती।" द्रौपदी ने कहा।

"देवी, देवी! आज तुमने मेरी आँख खोल दी।" अर्जुन ने कहा।

"तुम पुरुष आँखें मूँदकर चाहे जिससे विवाह करते रहो और मैं कुछ न बोलूँ, तो फिर मैं तुम्हारी स्त्री कैसी? अर्जुन! जो-कुछ कह रही हूँ उसके लिए माफ करना। पर गनीमत यही है कि तुम्हें द्रौपदी जैसी आर्य-स्त्री मिली है। दुनिया में आर्य-स्त्री न होती तो तुम्हारे-जैसे पुरुष विवाहित जीवन को पशु-जीवन-सम

मनमें जरा भी न हिचकिचाते।" द्रौपदी ने कहा।

"देवी! तुम जो-कुछ कहती हो वह सब ठीक है। पर आज तो मैं जो भूल कर चुका हूँ वह अब मिथ्या नहीं हो सकती। अब मेरी भूलों की अगर तुम और छानबीन करोगी तो सुभद्रा अपने मन में और दुःखी होगी। गलती अगर किसीकी है तो वह मेरी है, और उसका फल मुझे मिलना चाहिए।" अर्जुन दीन स्वर में बोला।

"अर्जुन! मैं द्रुपद की पुत्री हूँ। सुभद्रा को मैंने अपनी बहन कहा है, वह खाली दिखावे के लिए नहीं है। वह बेचारी तो मेरी ही तरह आई है। मेरा रोष तो तुम सब पर है।" द्रौपदी ने कहा।

"सबपर नहीं, बल्कि अकेले मुझपर।" अर्जुन बोला।

"नहीं, युधिष्ठिर पर भी है, क्योंकि तुम जब सुभद्रा का हरण करने वाले थे उससे पहले तुमने युधिष्ठिर की सलाह पुछवाई थी, यह मैं जानती हूँ।" द्रौपदी ने कहा।

"और भाईसाहब ने उसकी आज्ञा भी तो दी थी ?" अर्जुन बोला।

"हाँ। कोई भी रिवाज जब लम्बे अर्से से जारी हो तो उस रिवाज के पीछे चाहे जैसा अधर्म छिपा होने पर भी वह पुराने रिवाज के नामपर समाज में अपनी प्रतिष्ठा करा लेता है। और सर्वसाधारण तो रिवाज के इस पुरानेपन को ही इसकी योग्यता का प्रमाणपत्र मान लेते हैं। युधिष्ठिर महाराज भी इस कहे जाने वाले कुलधर्म से ऊपर उठकर विवाह का विचार न कर सके,

इसीलिए उस कुम्हार के घर में मेरे पिताजी से कह दिया कि य
तो हमारा कुल-धर्म है' और तुम्हें भी सुभद्रा के लिए माफ़ा द दी
पर अर्जुन । अब मिहरबानी करके अपनी प्रजा को ऐसे कुल-
से बचाना । मैं तो यही चाहती हूँ कि यह कुलधर्म अब यहीं
ख़त्म होजाय और पाण्डवों की संतानों के लिए नया मुर्यादा
कुल-धर्म बने ।" द्रौपदी ने अर्जुन के हाथ जोड़े ।

"देवी । मुझे लज्जित न करो । आज तो मैं तुम्हारी वंद
करना चाहता हूँ ।" अर्जुन विनयपूर्वक बोला ।

"अर्जुन । मेरी वन्दना मत करो । मैंने अगर तुम्हारी भ
बतान के लिए ही यह सब कहा होता तब तो और बात थी, प
मैंने तो शायद बहुत ज्यादा कठोर बातें कही हैं । लेकिन प्य
अर्जुन । मैंने जो कुछ कहा उसमें मेरे दिल का दर्द था, इस कार
मैं तुम्हारी वन्दना करती हूँ । तुम मेरे लिए तीन तीन सौतें ला
उसकी ईर्ष्या के कारण मैं जल रही थी, इस कारण मैं तुम्हा
वन्दना करती हूँ । तुमपर इतना क्रोध करके अब मैं थोड़ी हल
हूँ । मेरी आँखों का ज़हर अब निकल गया है ।" द्रौपदी शा
हुई ।

"देवी पाञ्चाली । तो अब चलें ? महाराज युधिष्ठिर हमा
राह देखते होंगे ।" अर्जुन ने कहा ।

और अर्जुन और द्रौपदी दोनों युधिष्ठिर के पास गये ।

५

खाण्डव वन में आग

सुभद्रा को लेकर अर्जुन इन्द्रप्रस्थ आया, उसके कुछ समय बाद श्रीकृष्ण सुभद्रा के विवाह का भात देने के लिए इन्द्रप्रस्थ आये।

एक बार अर्जुन और श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ के आस-पास का प्रदेश देखते हुए घूम रहे थे, इतने में उन्हें रास्ते में एक ब्राह्मण दिखाई दिया। अर्जुन और श्रीकृष्ण को पास देख, ब्राह्मण गिड़गिड़ाकर उनसे कहने लगा—"महाराज! मैं ब्राह्मण हूँ और कई दिनों से भूखा हूँ। आप कृपा करके मेरी भूख मिटाइए।"

श्रीकृष्ण बोले—"जिसके चेहरे पर इतना तेज दीप्तिमान है, वह भला भूखा कैसे हो सकता है?"

"महाराज!" ब्राह्मण हाथ जोड़कर बोला, "प्राणिमात्र की भूख भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। किसीको अन्न की भूख होती है तो किसीको विद्या की, किसीको धन की भूख होती है तो किसीको कीर्ति की, किसीको स्त्री की भूख होती है तो किसी-को पुत्र की, इसी प्रकार किसीको त्याग की भूख होती है तो किसी को सत्ता की।"

"तुम्हें किस चीज की भूख है?" अर्जुन ने पूछा।

"मुझे सत्ता की भूख है। इस खाण्डव वन पर मैं अपना

आधिपत्य स्थापित करना चाहता हूँ।" ब्राह्मण बोला।

"तू तो इन्द्रप्रस्थ पर भी अपना आधिपत्य चाह सकता है। चाहने का क्या। पर खाण्डव वन के साथ तेरा सम्बन्ध क्या है?" अर्जुन ने पूछा।

"महाराज! आपने मुझे पहचाना नहीं। मैं अग्नि हूँ। कुछ बरस पहले इस सारे प्रदेश को मैंने अपने अधिकार में कर लिया था और खाण्डव वन के नाग लोगों का संहार कर डाला था।" अग्निदेव बोला।

"तो फिर आज यह किसके अधिकार में है?" अर्जुन बोला।

"मैंने नागों का संहार किया, उसके बाद कुछ समय तक वो दबे हुए-से रहे, लेकिन फिर तो देखते-ही-देखते सारे प्रदेश में अराजकता फैल गई और नाग लोगों के नायक तक्षक ने मेरी सत्ता को उखाड़ दिया।" अग्नि ने कहा।

"तो तक्षक बहुत बलवान है, क्यों?" श्रीकृष्ण ने प्रश्न किया।

"बलवान तो है ही। पर साथ ही उसे देवराज इन्द्र की भी बड़ी मदद है। इन्द्र अगर उसकी मदद पर न हो तो इसी घड़ी मैं उन सबको जलाकर भस्म कर दूँ।" अग्नि ने कहा।

"तो अब तुम क्या करना चाहते हो?" श्रीकृष्ण ने पूछा।

"महाराज! क्या करूँ और क्या न करूँ इसीकी उधेड़बुन करता हुआ मैं वरुण के पास गया था। वरुण हमारे देवलोक के पुराने ऋषि हैं। आजतक जगत् में जब-जब प्रलयकाल और संहार हुए हैं तब-तब संहार में काम आनेवाले खास-खास शस्त्र

रूप के यहाँ ही बने हैं। जब कभी संहार का कोई ईश्वरी संकेत होता है तो वरुण उस संकेत के अनुसार बहुत सावधानी से शस्त्रास्त्र तैयार रखते हैं और समय आने पर अधिकारी पुरुष को उन्हें पहुँचाते हैं।" अग्नि ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा।

"तुमने वरुण के पास जाकर क्या किया?" श्रीकृष्ण ने पूछा।

"मैं तो अपनी विपत्ति में उनसे सलाह माँगने गया था। उस समय वरुणदेव किसी भावी संहार के लिए शस्त्रास्त्र तैयार कर रहे थे। मेरी बात सुनते ही वह बोले, 'यह रथ देखा? इसमें दो तरकश ऐसे बनाये हैं जिनमें बाण कभी खत्म ही नहीं होंगे। ये सफ़ेद घोड़े हैं, हनुमान की ध्वजा वाले इस रथ को ये घोड़े खींचेंगे। और यह धनुष? देखो इसमें कैसे-कैसे रत्न जड़े हुए हैं। इस गाण्डीव की टङ्कार मात्र ही शत्रु के लिए काफ़ी है। यह देखा और यह चक्र भी देख। इस समय संसार में थोड़े ही समय बाद एक महासंहार होनेवाला है, उसीके लिए ये दिव्य शस्त्रास्त्र मैं तैयार कर रहा हूँ।" अग्निदेव बोलते-बोलते ज़रा अटक गये।

"लेकिन तुम्हारी बात का उन्होंने क्या जवाब दिया?" अर्जुन बोला।

"मुझे उन्होंने यह बता दिया कि इन साधनों का उपयोग करने के लिए श्रीकृष्ण और अर्जुन पृथ्वीलोक में पैदा हुए हैं, इसलिए तुम उनसे मिलकर मदद माँगो तो ठीक होगा। अगर वे मदद करना स्वीकार करलें तो मेरे ये साधन उनके लिए तैयार हैं।" अग्नि ने अपनी बात समाप्त की।

"तो जो तुम चाहते हो वही वरुणदेव का महासंहार है क्या ?" श्रीकृष्ण ने पूछा।

"अजी नहीं। महासंहार तो कुछ समय बाद होनेवाला है। मुझे खुद इस महासंहार के बारे में कुछ भी मालूम नहीं है। लेकिन पुरातन ऋषि वरुण कहते थे कि इस जगत् में एक महासंहार के बीज लग चुके हैं—उसको अब बहुत समय नहीं है।" अग्नि ने कहा।

"सखा अर्जुन।" "श्रीकृष्ण ने पूछा, "बोलो, क्या इरादा है ?"

"लक्ष्मी अगर बिना माँग आती हो तो उसके लिए इन्कार क्योंकर हो सकता है ? वरुण का दिया हुआ दिव्य रथ मिले, घोड़े मिलें, गाण्डीव धनुष और जिसमें कभी बाणों की कमी न पड़े ऐसा तरकश मिले, इसके अलावा गदा और चक्र भी मिलते हों, तो फिर क्या बात है ? अग्निदेव की मदद करके सखा क्यों हम क्यों न ले लें ? अग्नि को हम अपना मित्र बनायेंगे तो किसी न किसी दिन वह हमारे काम ही आयेंगे।" अर्जुन ने जवाब दिया।

"अच्छा तो, अग्निदेव, आप वरुण के पास से इन सब साधनों को ले आइए और फिर आप चाहें तो खाण्डव वन में आग लगा दें। आप जब आग लगायेंगे तब हम किसीको भागने नहीं देंगे। बतलाइए, कब आप यह काम शुरू करेंगे ?" श्रीकृष्ण ने अग्नि से कहा।

"कल ही क्यों न शुरू कर दें ? इस समय तक्षक कुरुक्षेत्र

ा हुआ है, यह भी सुयोग की ही बात है। वरुण के पास से र सब साधनों को लाने में भला क्या देर लगती है ? महाराज। ापको अनेक नमस्कार।" यह कहकर अग्नि ने विदा ली, और कृष्ण तथा अर्जुन इन्द्रप्रस्थ की ओर गये।

× × ×

अग्नि के खाण्डव वन में प्रवेश करते ही ऐसा मालूम होने गा मानों चारों ओर प्रलय आगया। पृथ्वी के संहारकाल के मय जिस प्रकार आकाश में मेघ छा जाते हैं और बिजली की ड़कड़ाहट से पृथ्वी फटने लगती है उसी प्रकार खाण्डव वन विशाल वृक्ष बड़े जोरों से आवाज करते हुए जलने लगे और ग्निके धुएँ से अनंत आकाश काँपने लगा। खाण्डव वन में नाग ोगों की बस्ती थी। नाग लोगों के नायक का नाम तक्षक था। ह किसी काम से गया हुआ था। नागों के अनेक स्त्री-पुरुष, ढोर-ंगर, पशु पक्षी, साज सामान सब अग्निदेव की प्रचण्ड ज्वालाओं में भस्म होने लगे। पक्षी गर्मी को सहन न करने के कारण उड़ने गे, लेकिन अधबीच में ही आग से पंखों के झुलस जाने पर आग में गिर पड़े और भस्म होगये। कितनी ही नाग स्त्रियाँ अपने दुधमुँहे बच्चों को लेकर भागीं, लेकिन अग्नि ने उनको रास्ते में ही पकड़ लिया और उनके दूध-पीते बच्चों को अपनी माँ की छातियों में ही भस्म कर दिया। नाग लोगों के ढोर-डंगर अपनी रक्षा के लिए चिल्लाते हुए इधर-उधर भागने लगे, लेकिन अग्नि उनको भी छोड़नेवाला नहीं था। सारे खाण्डव वन में भय

और त्रास का साम्राज्य छा गया और वहांके ... । भ
आर्त्तनाद से कान फटने लगे, लेकिन अग्निदेव तो इनके
होकर अपना काम किये ही जारहे थे। तक्षक के परममित्र
को जब नाग लोगों की इस विपत्ति की खबर हुई तो वह
मदद को दौड़े, लेकिन क्या करते ? अग्निदेव न तो सारे प्रदेश
घेर लिया था और कोई छोटा सा प्राणी भी जिन्दा यहांसे बच
न निकले, इसके लिए अर्जुन तथा श्रीकृष्ण सीमा पर मौजूद थे।
देवराज इन्द्र ने जलते हुए खाण्डव वन को बुझाने का कितना
प्रयत्न किया और अन्त में सारे प्रदेश पर पानी की सघन
धारायें बरसाईं, लेकिन पानी की धाराओं से आग में और वृद्धि
ही हुई। इसलिए इन्द्र हताश हुए और जलते हुए सारे खाण्डव
वन को खड़े-खड़े देखते भर रहे।

अर्जुन और श्रीकृष्ण सारे प्रदेश में घूम फिरकर इस बात
की खास निगरानी रख रहे थे कि अग्नि के इस सपाटे में से
कोई बचकर निकल न जाय। इन्द्र के सारे प्रयत्नों को निष्फल
करने में अर्जुन का बड़ा हाथ था। वरुण के दिये हुए इन नये
साधनों से ये दोनों मित्र जलकर खाक होजाने वाले वन की सीमा
की रक्षा कर रहे थे। इतने में किसीकी ओर से आवाज आई—
"हे श्रीकृष्ण! ओ अर्जुन! मुझे बचाओ, मेरी रक्षा करो।"

आवाज सुनते ही अर्जुन चौंक पड़ा। पीछे मुड़कर देखा तो
एक पुरुष बड़ी जोर से दौड़ता हुआ आ रहा था और आग की
लपटें उसका पीछा कर रही थीं।

"हे श्रीकृष्ण। हे अर्जुन। मुझे बचाओ, नहीं तो तुम्हें बड़ा पाप लगेगा।"

अर्जुन ने अग्नि की लपटों को रोककर उस पुरुष से पूछा, "तुम कौन हो और क्यों भाग रहे हो ?"

आग की लपट से बचकर आगन्तुक ज़रा स्वस्थ हुआ और बोला, "महाराज। मैं एक दानव हूँ। मेरा नाम मय है। बहुत वर्षों से इस खाण्डव वन में रहता हूँ। अपने अध्ययनगृह में स्थापत्य और शिल्प शास्त्रों का अध्ययन कर रहा था, इतने में इन लपटों ने मुझे पकड़ लिया। इसलिए तुम्हारे पास भागा आया हूँ। मुझे इनसे बचाओ।"

"आज तो अग्निदेव सारे वन में आग लगा चुके हैं, इसलिए उसमें से कोई जिन्दा बचकर आ नहीं सकता।"

"श्रीकृष्ण। पाण्डु के पुत्र अर्जुन। तक्षक और अग्निदेव का आपस में बैर है। इसके लिए तक्षक की सारी प्रजा को जलाकर भस्म कर देना क्या अग्निदेव का न्याय है ? राजा लोग राज्य-लोभ या सत्ता-लोभ के वश होकर सारे गाँव-के-गाँव उजाड़ डालें तो भी आप सब उसे धर्म के नाम पर सह लेंगे ? मयदानव ने कहना शुरू किया।

"अग्निदेव और तक्षक इन दोनों में से कौन सच्चा है और कौन झूठा, यह देखना हमारा काम नहीं है। हमने अग्निदेव की मदद करना मंजूर किया है, इसलिए यहाँ खड़े हैं और किसी को बाहर नहीं आने देते।" अर्जुन ने जवाब दिया।

मयदानव ने ज़रा मुस्कराकर कहा—"कोई साधारण क्षत्रिय ऐसा जवाब देता तो मैं समझ सकता था। लेकिन अर्जुन! तुम तो एक अधिकारी पुरुष हो। मैंने जो-कुछ सीखा है उससे मैं कह सकता हूँ कि जिस रथ में तुम बैठे हो वह और तुम्हारे हाथ में जो धनुष और तरकश हैं ये सब किसी ईश्वरीय संकेत के कारण ही तुम्हारे पास हैं। इस कारण तुम्हारे जैसा पुरुष मुझे ऐसा जवाब नहीं दे सकता।"

"तो तुम्हें जाने दें, यही तुम चाहते हो न?" श्रीकृष्ण ने पूछा।

"मेरी रक्षा करो। पर वह मुझ जैसे रंक पर दया खाकर नहीं। आप जैसे क्षत्रियों को मरना आता है तो मुझ जैसे ब्राह्मणों को भी मरना आता है। अतः मेरी रक्षा करना आप धर्म मालूम पड़ता हो तो ही मेरी रक्षा कीजिए। शास्त्र में ब्राह्मण को अवध्य कहा गया है, यह आप क्या नहीं जानते? ब्राह्मण अवध्य सिर्फ इसीलिए नहीं है कि उसका शरीर शूद्र के शरीर से कुछ मोटा होता है, बल्कि इसलिए कि ब्राह्मण समस्त प्रजा की संस्कृति का रक्षक है। राज्य-लोभ के वाह जैसे युद्ध में भी ब्राह्मणों का बलिदान नहीं होने देना चाहिए। आप लोग खाण्डव वन को जलाकर हमारे जैसे ब्राह्मणों की संस्कृति का नाश करने पर तुले हुए हैं, इसीका मैं विरोध करता हूँ और इसी कारण मैं अपनी रक्षा चाहता हूँ।" मय ने कहा।

"तुम तो दानव हो न?"

"जन्म से दानव हूँ, लेकिन स्थापत्य और शिल्प शास्त्र

ाता होने के कारण मैं ब्राह्मण हूँ। हम दानव आप लोगों को
ले ही जंगली और उजड्ड दिखाई देते हों, फिर भी इस प्रकार
ी विद्या में तो आम आर्यों को हमसे अभी भी बहुत-कुछ सीखना
ाकी है।" मय बोला।

"मय! जा, तुझे मैं अभयदान देता हूँ। तू अपने कुटुम्ब-
कबीले को लेकर अच्छी तरह यहाँसे निकल जा। और कोई
इच्छा है?" अर्जुन ने कहा।

"खाण्डव वन को आग लगाने के पहले अगर मुझे पता
चलता तो बहुत-कुछ माँगता। अग्निदेव ने इस प्रदेश के स्त्री-
पुरुषों को जलाकर बड़ा भारी अनर्थ किया है। पर अब तो उसका
कोई उपाय नहीं रहा। अर्जुन! आज तक्षक की अनुपस्थिति में
तुम लोगों ने जो इन तमाम नाग लोगों का संहार किया, इससे
तक्षक तुम्हारा मित्र हुआ या शत्रु?" मय ने पूछा।

"आखिर तुम और कहना क्या चाहते हो?" अर्जुन ने पूछा।

"मेरा मतलब यह है कि इससे तो उल्टा तक्षक तुम्हारा शत्रु
होगया और उसका मौका होने पर तुम्हें या तुम्हारी प्रजा को वह
जरूर डसेगा। इसी खाण्डव वन को एक बार अग्निदेव ने अपने
अधिकार में कर लिया था, पर वहाँ फिर से नाग लोग आगये और
अग्नि को वहाँ अपना पाँव रखना भारी पड़ गया। आज तुमने
नाग लोगों का सर्वनाश किया है तो कल नाग लोग तुम्हें सतायेंगे।
इस प्रकार यह समस्या तो ज्यों-की-त्यों बनी ही रहेगी न? यह
ठीक है कि मुझे इन सब बातों से कोई मतलब नहीं है, पर मैं तो

अपने मन में उठी हुई बात सिर्फ़ कह भर रहा हूँ।" मय बोला।

"आज इन सब बातों पर विचार करने का समय नहीं है। तू अपनी जान लेकर भाग जा।" अर्जुन ने कहा।

"धन्यवाद, महाराज। आपने मेरी बातों को सुनकर मेरी रक्षा की, इसलिए एक प्रार्थना करता हूँ। मेरी स्थापत्यकला और शिल्पकला की जब आपको ज़रूरत हो तब मैं आपकी सेवा के लिए तैयार हूँ। खाली शिष्टाचार के लिए मैं यह नहीं कह रहा हूँ, यह ध्यान रक्खेंगे।" मय ने कहा।

"अच्छी बात है; जाओ।"

"अर्जुन। भविष्य में तुम शायद राजसूय यज्ञ करो, तब यह दानव तुम्हारे काम आसकता है। इसलिए उस वक्त यह बात याद रखना।"

"ठीक है।" श्रीकृष्ण ने यह कहकर बात पूरी की।

मयदानव दोनों की आज्ञा लेकर चला गया और श्रीकृष्ण तथा अर्जुन अपने-अपने काम में लग गये।

सारथी बृहन्नला

वनवास के तेरहवें वर्ष पाण्डवों को अज्ञातवास में रहना था। द्रौपदी समेत पाँचों पाण्डव विराट राजा के नगर में गुप्तवेश में रहे। उर्वशी के शाप से अर्जुन एक साल के लिए नपुंसक बन गया और बृहन्नला नाम रखकर राजकुमारी उत्तरा को संगीत तथा नृत्य सिखाने लगा। द्रौपदी रानी सुदेष्णा की दासी बनी और उसने अपना नाम सैरन्ध्री रक्खा।

अज्ञातवास के दिनों में पाण्डवों को खोजकर प्रकट कर देने के लिए कौरव जीतोड़ कोशिश कर रहे थे। इसके लिए अपने कितने ही गुप्त जासूस भी उन्होंने देश विदेशों में भेजे। जिमूत नाम का अद्वितीय पहलवान विराटनगर में कुश्ती में हारकर मारा गया। यह समाचार पाकर शकुनि को कुछ शंका सो हो ही गई थी। कीचक और उसके सौ भाइयों की बात भी उड़ती-उड़ाती कौरवों तक पहुँच ही गई। अतः दुर्योधन ने एक बड़ी फ़ौज के साथ विराटनगर पर चढ़ाई करदी।

× × ×

एक दिन रानी सुदेष्णा अपने महल में बैठी हुई थी और सैरन्ध्री उनकी चोटी गूँथ रही थी। एकाएक दरवाज़े पर किसी

की आवाज़ आई—"सुदेष्णा माई। हमें बचाओ। अरे, जल्द बचाओ। हाय। मार डाला रे।"

आवाज़ सुनते ही सुदेष्णा उठ खड़ी हुई और पूछा—"कौन? दरवाज़े पर यह कौन चिल्ला रहा है?"

"माताजी, यह तो हम हैं, आपकी गाय चराने वाले। यह देखो, गाँव के बाहर बड़ी भारी फ़ौज आई हुई है और हमारे ढोर-डंगरों को भगाकर लिये जा रही है।" एक ग्वाले ने कहा।

"किसकी फ़ौज है?"

"हमने जब पूछा तो उन्होंने कहा, यह कौरवों की सेना है। माताजी। देखो न, हमारे सिर और पीठ पर लाठियाँ मार मार कर हमें भगा दिया और सब-की-सब गाय ले गये। माताजी, हम और किसके पास जायें? आप ही का तो सहारा है। हमें बचाओ।"

"भला मैं अकेली क्या कर सकती हूँ? महाराज अपनी सारी सेना लेकर दक्षिण दिशा की ओर गये हुए हैं और अभी तक वापस नहीं लौटे हैं। सेनापति भी उन्हींके साथ हैं। यहाँ तो मैं और कुमार उत्तर यही दो हैं।" सुदेष्णा ज़रा दीन होकर बोली।

"तो फिर उत्तर भाई लड़ने जायेंगे।" द्रौपदी ने कहा "क्यों उत्तर भाई?"

कुमार उत्तर एकदम छलाँग मारकर उठा और बोला—"हाँ हाँ, बन्दा लड़ने जायगा, बन्दा। कहाँ है कौरव सेना? देखो, सबको मार गिराना है।"

"शाबास। कैसे बहादुर हैं उत्तर भाई। ठीक तो है। पिताजी यहाँ नहीं हैं, तब आज तो तुमको ही लड़ने जाना और सबको हराकर वापस आना चाहिए।" द्रौपदी बोली।

"सैरन्ध्री। इसमें भी कुछ कहना है। इस तलवार से दुर्योधन की गर्दन उड़ा दूँगा, और उसके भाइयों के लिए तो मेरा एक तीर ही काफ़ी है। माँ। बस, अब जल्दी से मेरा रथ तैयार कराओ।"

"सैरन्ध्री। इस अबोध बालक को क्यों भड़का रही है? बेटा, तू अभी अकेला लड़ने कैसे जा सकता है? जब बड़ा हो तब जाना? अभी तो तू बच्चा है।" सुदेष्णा ने कहा।

"क्या अभी मैं बच्चा ही हूँ? ज़रा मेरी तरफ़ देख तो। नहीं, मुझे तो आज जाना ही है। नहीं जाने देगी तो यहीं मैं अपनी जान दे दूँगा। मैं विराटनगर का राजकुमार हूँ। शत्रु हमारी गायें ले जायें और मैं देखता रहूँ?" उत्तर बेक़रार होकर बोला।

"तो माँ। कुमार को जाने दो न?" द्रौपदी बोली।

"तू भी अच्छी मिली। तूने कोई बच्चा पैदा किया होता तो जानती कि कैसे भेजा जाता है। अकेले कुमार को इस कौरव सेना रूपी काल के मुँह में भला कैसे भेज दूँ?" रानी बोली।

"अकेले भला क्यों जायँगे? साथ में इस बृहन्नला को भेज दीजिए।" द्रौपदी बोली।

"बृहन्नला को? यह क्या वहाँ चोटी खोलकर नाचेगी?" सुदेष्णा ने कटाक्ष किया।

"रानीजी।" द्रौपदी ने कहा, "इस बृहन्नला ने तो अर्जुन तक का रथ हाँका है।"

"अर्जुन का रथ हाँका है ? तब तो बृहन्नला, तू मेरे साथ चल और मेरा रथ हाँक।" उत्तर अर्जुन का हाथ पकड़कर उसे खींचने लगा।

"बृहन्नला ! क्या सचमुच तूने अर्जुन का रथ हाँका है ? मेरी समझ में तो यह बात आती नहीं। और अगर हाँका हो तो भी उसका यह मतलब तो नहीं ही हुआ कि उत्तर को लड़ाई में भेज दिया जाय।" रानी बोली।

"माँ। मैं तो जरूर जाऊँगा। तुम भले ही मना करो, पर मैं तो रुकनेवाला नहीं हूँ। मैं जाऊँगा और फिर आऊँगा।"

"रानीजी ! कुमार जब जाने का आग्रह कर रहे हैं तो उन्हें भेज दो न ?" द्रौपदी ने कहा।

"और जब महाराज आकर पूछेंगे तब उनको मैं क्या मुँह दिखाऊँगी ?" रानी क्रुद्ध होकर बोली।

"कुमार का बाल भी बाँका नहीं होगा, इसका मैं विश्वास दिलाती हूँ। बृहन्नला जब रथ पर बैठी हो तो रथ को कोई आँच नहीं आ सकती।" द्रौपदी ने कहा।

"बृहन्नला की खूब कही। अरे, यहाँ लड़कियों को नाचना गाना तो सिखाना नहीं है, यहाँ तो मर्दों के खेल होते हैं।" रानी ने कहा।

"लेकिन माँ।" उत्तर बोला, "मैं तो अब यहाँ नहीं रहूँगा।

मैं मर्द हूँ। इस प्रकार कायर बनकर घर में नहीं बैठ सकता।"

"माँजी, मेरी समझ में तो आप कुमार को जाने दें।" द्रौपदी फिर बोली।

"तू जबसे 'जाने दो', 'जाने दो' ही कह रही है। पर बृहन्नला भी तो यहाँ पास ही खड़ी है, उसके मुँह से तो बोल भी नहीं निकल रहा है।" रानी ने गुस्से से कहा।

"माँजी, मैं क्या करूँ ? सैरन्ध्री कह ही रही है। अपने मुँह से कुछ कहना मुझे शोभा नहीं देता। फिर भी मैं कहती हूँ कि मुझे भेजेंगी तो कुमार को ऐसे के-ऐसे ही आपकी गोदी में सौंप दूँगी, यह विश्वास रक्खो।" अर्जुन ने जताया।

"अब माँ। जल्दी करो। बृहन्नला। तैयार होजा। अश्वशाला में से घोड़े जोड़कर रथ को यहाँ ले आ। बेचारे ये ग्वाले राह देख रहे हैं।" उत्तर बोला।

"रानीजी की आज्ञा हो तब न ?"

"बृहन्नला। सैरन्ध्री। तुम्हारे वचनों पर विश्वास रखकर मैं अपने इस कोमल कुमार को तुम्हें सौंपती हूँ। बृहन्नला। उत्तर अभी बालक है, इसलिए मन तो नहीं मानता, लेकिन तूने अर्जुन का रथ हाँका है, इसलिए मुझे धीरज है। जा, तू रथ तैयार कर।"

रानी के कहने पर अर्जुन रथ तैयार करने गया। इधर सुदेष्णा कुमार उत्तर को तैयार करने लगी।

× × ×

विराटनगर के दरवाजे में से घुंघरुओं की मधुर आवाज

करता हुआ कुमार उत्तर का रथ निकला। रथ में चार सफ़ेद घोड़े जुड़े हुए थे और आगे घोड़ों की लगाम हाथ में लिये बृहन्नला बैठी हुई थी। अन्दर विराट राजा का लाडला कुमार बैठा हुआ मंसूबे बाँध रहा था कि अपने कमरे में रक्खे खिलौनों को घर की तलवार से जिस आसानी से मार देता हूँ उसी तरह कौरवों को हराकर तुरंत वापस आजाऊँगा। कौरवों को देखने के लिए वह बार-बार उचकता और अपनी गर्दन इधर-उधर घुमाता था।

दरवाजे से बाहर निकलते ही बृहन्नला ने घोड़ों की लगाम को अच्छी तरह पकड़ा और घोड़ों को छोड़ दिया। रथ के पहिये धूल उड़ाने लगे और थोड़ी दूर में यह निश्चय करना मुश्किल होगया कि घोड़ों के पैरों की खुरें जमीन को लगती भी हैं या नहीं। कुमार उत्तर को इस रथ-यात्रा में बड़ा मज़ा आ रहा था। लेकिन सामने कुछ देखकर वह एकाएक चौंका और कहने लगा— "बृहन्नला। यह रथ इधर क्यों हाँका? हम तो कौरवों की सेना को मारना है, और यह तो समुद्र की तरफ़ जाने का रास्ता है।"

"कुमार। धीरज रक्खो, रथ कौरवों की सेना की तरफ़ ही हाँका जा रहा है।" अर्जुन ने शांति से जवाब दिया।

"पर सामने तो समुद्र दिखाई दे रहा है। समुद्र की लहरें कैसी उछल रही हैं। उसका पानी सूर्य के तेज से कैसा चमक रहा है। तू ग़लत रास्ते ले आई। चल, रथ को दूसरी तरफ़ मोड़।" उत्तर बोला।

"कुमार। तुम जो देख रहे हो वह समुद्र नहीं है, वही

कौरव-सेना है। कौरव-सेना के भाले और तलवारों की चमक से तुम्हें समुद्र का आभास हो रहा है।" अर्जुन ने कहा।

"बृहन्नला! तू क्या कह रही है? क्या यही कौरव सेना है, जिसके सामने मैं आंख उठाकर देख भी नहीं सकता? ये जो चमक रहे हैं, ये क्या सैनिकों के हथियार हैं?" उत्तर ने पूछा, और पूछते-पूछते उसका सारा शरीर पसीने से तर होगया। उसके हाथ ढीले पड़ गये, मुँह सूख गया, और शरीर के अंग प्रत्यंग कांप उठे। अफीम खानेवाले का नशा उतर जाने पर उसका शरीर जैसे टूटने लगता है उसी तरह कुमार का जोश उतर गया और सारा शरीर कांपने लगा।

इधर अर्जुन का सारा ध्यान तो कौरव-सेना पर ही था। सुदेष्णा के महल में ग्वालों की बातें सुनी तभीसे उसके हाथ शस्त्र पकड़ने को अकुला रहे थे। आज तेरह वर्षों से अन्दर के जिस जोश को बड़ी मेहनत से दबा रक्खा था वह आज छलछला उठा। वनवास की सारी मुसीबतें उसकी आँखों के आगे नाचने लगीं। प्रिय पत्नी द्रौपदी पर आये कष्ट मानों उसे उलहना देने लगे। जिस महान कार्य के लिए अर्जुन ने स्वयं शंकर भगवान् के पास से पाशुपतास्त्र प्राप्त किया, जिस महान् कार्य के लिए यमराज और वरुण जैसे लोकपालों के पास से दिव्य अस्त्र प्राप्त किये, जिस महान् कार्य के लिए स्वयं इन्द्र से वरदान प्राप्त किया, वह महान् कार्य मानों आज उसका आवाहन कर रहा है, ऐसा मालूम होने लगा। अर्जुन कौरव सेना की ओर देख रहा था। उसमें भीष्म, द्रोण

फण आदि होंगे, यह भी कल्पना आई और इस सेना को युद्ध में मार भगाने के मीठे सपने उसके मन में आने लगे। इधर मन में मनसूबे बँध रहे थे, उधर साथ ही-साथ रथ भी आगे बढ़ता चला जा रहा था।

इतने में अर्जुन ने पीछे नजर की तो उत्तर रथ में नहीं था। "अरे! कुमार कहाँ गये?" रथ के बाहर गर्दन उठाकर देखा तो कुमार भागा जा रहा था। उत्तर कौरव-सेना को देखकर डर गया था, अतः पीछे से चुपचाप रथ से नीचे उतरकर सीधा विराटनगर की ओर भागा।

"अब? क्या रथ को पीछे लेजाऊँ? शत्रु को पीठ दिखाऊँ?" अर्जुन ने सोचा और रथ को वहीं खड़ा करके उत्तर को पकड़ने के लिए दौड़ा। भागने में उसकी चोटी खुल गई; पर जल्दी ही उसने कुमार को पकड़ लिया। उत्तर छूटने के लिए बहुत छटपटाया, लेकिन अर्जुन कहाँ माननेवाला था? उसने तो कुमार को लाकर रथ में बिठाया और रथ को कौरव-सेना की ओर चलाने के बदले श्मशान की ओर मोड़ लिया। श्मशान में एक खजूर का पेड़ था, वहाँ आकर उसने रथ को खड़ा किया।

"कुमार!" अर्जुन बोला, "देखो अब तुम जा नहीं सकते। तुम लड़ न सको तो मत लड़ो। तुम रथ हाँको, और मैं तुम्हारे बदले लड़ लूँगी।"

"तू अकेली कैसे लड़ेगी, बृहन्नला?"

"इस समय कुछ मत बोलो। रथ से नीचे उतरो और इस

वृक्ष के ऊपर जो बड़ी-सी पोटली टँगी है उसे नीचे ले आओ।" अर्जुन बोला।

"पर बृहन्नला! वहाँ तो कोई मुर्दा टगा हुआ है। कहीं भूत न हो।" उत्तर बोला।

"भूत-भूत कोई नहीं है। तुम लगाम पकड़कर खड़े रहो। मैं रथ पर चढ़कर उतारती हूँ।" ऐसा कहकर अर्जुन ने पोटली उतारी और उसमें से गाण्डीव तथा दो अखूट तरकश निकाल लिये। इसके बाद पोटली जैसी-की-तैसी बाँधकर वहीं पर टाँग दी और मुर्दे को भी वहीं लटका दिया।

पोटली को देखा तभीसे कुमार हक्का-बक्का होगया था। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि बात क्या है? "बृहन्नला।" उत्तर ने कहा, "एक बात पूछना चाहता हूँ। यह धनुष और तरकश किसके हैं? और तू खुद कौन है?"

"कुमार! मौका आगया है, इसलिए सब बताना पड़ता है, पर इतना याद रखना कि अगर तुमने समय से पहले किसीसे कहा तो अपनी जान से हाथ धोओगे। मैं अर्जुन हूँ।" अर्जुन ने खुलासा किया।

"अर्जुन! पाण्डवों का अर्जुन? तब तो यह गाण्डीव ही होगा।" कुमार के आनन्द का पार न रहा।

"कुमार! राजा के पास जो कंक रहता है वह युधिष्ठिर है, पाकशाला में जो वल्लभ है वह भीम है, नकुल-सहदेव अश्वपाल और गोपालक हैं, और यह सैरन्ध्री ही द्रौपदी है। समझ गये?

अब ज़रा भी झिझके बग़ैर रथ को बेधड़क हाँको, और देख कि अर्जुन कौरवों को कैसे मार भगाता है। जब हम विराटनगर आये थे, तब हमने अपने सब शस्त्रास्त्र बाँधकर इस पेड़ के ऊपर रख दिये थे, और किसीको शक न हो इसलिए उसके पास मुर्दे को टाँग दिया था। लेकिन जबतक मैं कह न दूँ तबतक यह बात किसीसे न कहना, समझे ?"

"महाशय अर्जुन। मैं किसीसे नहीं कहूँगा। मैं अपनी जान खतरे में डालकर भी इस बात को गुप्त रक्खूँगा" उत्तर ने कहा और घोड़े की लगाम अपने हाथ में लेली।

थोड़ी दूर में घुंघरुओं की नाद करता हुआ रथ कौरव सेना के सम्मुख आकर खड़ा हुआ और अर्जुन ने ज़ोर से गाण्डीव का टंकार किया। उस एक ही टंकार ने कौरवों के दिल दहला दिये 'एक रथ में बैठकर लड़ने के लिए आनेवाले ये दो कौन होंगे ?' 'यह चोटीवाला कौन होगा ?' 'पाण्डवों का तेरहवाँ वर्ष खत्म होगया क्या ?' 'न हुआ हो तो यह तो अर्जुन-जैसा ही दिखाई देता है, तो तो फिर उसे और बारह वर्ष वन में भटकना होगा।' इस प्रकार कितने ही तर्क वितर्क कुरु-सेना में चल रहे थे, इतने में अर्जुन ने फिर गाण्डीव का टंकार किया और भीष्म के चरणों में प्रणाम करते हों इस तरह दो तीर वहाँ आकर गिरे। भीष्म समझ गये और उन्होंने दो तीर अर्जुन के सिर पर डालकर आशीर्वाद दिया। द्रोण की भी अर्जुन ने इसी प्रकार वीर-वंदना की, और द्रोण ने भी उसे आशीर्वाद दिया।

इसके बाद युद्ध शुरू हुआ। भीष्म ने थोड़ी देर तो अर्जुन से टक्कर ली, लेकिन बाद में उन्हें खिसकना पड़ा। द्रोण तो पहले से ही दूर खड़े थे। कर्ण बहुत शेख़ी बघारता हुआ अर्जुन के सामने आया, लेकिन अर्जुन के गाण्डीव के सामने टिक नहीं सका। दुर्योधन ने युद्ध में बहुत बहादुरी दिखाई और अर्जुन को हराने का प्रयत्न किया, पर उसे भी भागना पड़ा। और अन्त में तो अर्जुन ने सम्मोहन अस्त्र छोड़कर सारी कौरव-सेना को मोह-निद्रा में सुला दिया।

"कुमार।" अर्जुन ने पुकारा।

"क्यों बृह नहीं, अर्जुन। क्या आज्ञा है?"

"युद्ध देखा न?"

"देखा। आँखें खोलकर देख लिया। मुझे मालूम होता कि युद्ध ऐसा होता है तब तो मैं महल में से ही न निकलता। मैं तो समझता था कि जल्दी से इधर-उधर तलवार के हाथ मारकर दो-चार को खत्म कर देना ही लड़ाई है। पर कौरवों से युद्ध करना तो मौत के मुँह में पैर रखना है, यह मैं आज ही समझा। अर्जुन। तुम्हारा जितना उपकार मानूँ उतना ही कम है। आज तो तुमने मुझे मौत के मुँह से बचाया है।" कुमार गद्गद् होगया।

"उत्तर। जब हम लड़ाई में आ रहे थे, तुम्हारी बहन ने तुम्हें टीका काढ़ते वक्त अपनी गुड़ियों के लिए सुन्दर-सुन्दर पोशाकें लाने को कहा था। इस समय सारी सेना सोई हुई है। जाओ, इनमें से जिसके कपड़े तुम्हें अच्छे लगें उन्हें उतार लो। सिर्फ़ भीष्म

और द्रोण के कपड़ों को मत छूना।" अर्जुन ने कहा।

कुमार ने रथ से उतरकर कुछ कपड़े उतार और रथ में रख लिये। इसके बाद सम्मोहन अस्त्र को वापस खींचकर अर्जुन तथा उत्तर गायों को लेकर विराट की ओर लौट गये।

अर्जुन के चले जाने के बहुत देर बाद जब सेना की मूर्छा दूर हुई, तब सब मानों स्वप्न में से उठे हों इस तरह एक-दूसरे की ओर देखते, दूर आकाश में दृष्टि डालते, अपने आस पास कौन सोया हुआ है यह पता लगाते, अपने शरीर में किस जगह दर्द हो रहा है यह निश्चय करते, उठते बैठते, कवच और बख्तर की धूल झाड़ते तथा शर्माते हुए कौरव भी दुर्योधन की अधीनता में वापस हस्तिनापुर की ओर जाने की तैयारी करने लगे।

कुरुराज दुर्योधन ने विराटनगर की ओर एक शून्य दृष्टि डाली और अपनी सेना को चलने की आज्ञा दी।

७

युद्ध की तैयारी

पाण्डवों के प्रकट होजाने के बाद हस्तिनापुर के राज्य में हिस्सा प्राप्त करने के लिए अनेक दूत इधर-से उधर गये-आये और संधि की बातचीत हुई, लेकिन इस सबका कोई परिणाम निकलनेवाला नहीं था। अन्त में पाण्डवों की ओर से समझौते की शर्तें लेकर श्रीकृष्ण हस्तिनापुर जाने को तैयार हुए।

पाँचों पाण्डव, द्रौपदी और श्रीकृष्ण एकान्त में बैठे बातें कर रहे थे। श्रीकृष्ण बोले—"अर्जुन। अब तुम कहो। महाराज युधिष्ठिर और भीमसेन के विचारों को तो मैंने सुन लिया। पाञ्चाली इस सारे प्रश्न पर किस प्रकार विचार करती है, यह भी मैंने जान लिया। अब मैं तुम्हारे विचार जानना चाहता हूँ।"

"महाराज श्रीकृष्ण।" अर्जुन ने कहा, "मेरे या किसी और के विचार जाने बिना भी आप जो कुछ करेंगे उसमें हमारा कल्याण ही होगा, इसमें मुझे ज़रा भी शंका नहीं है।"

"फिर भी", श्रीकृष्ण बोले, "तुम अपने विचार तो कहो। तुम लोगों की ओर से संधि चर्चा करने जाऊँ और तुम लोगों के विचारों को बिना समझे-बूझे ही कुछ-का कुछ करने लगूँ तो मेरी संधि-चर्चा को बट्टा लगेगा और मेरे प्रति तुम्हारी जो श्रद्धा है उसमें भी बट्टा लगेगा।"

"श्रीकृष्ण ! महाराज युधिष्ठिर जो कहते हैं और जिस ढंग से करते हैं, वह मुझे तो बिलकुल नहीं रुचता। जिस प्रकार कौरव धृतराष्ट्र पुत्र हैं, उसी प्रकार हम लोग भी महाराज पाण्डु के पुत्र हैं, हस्तिनापुर के सिंहासन पर जितना अधिकार उनका है, उतना ही बल्कि उससे ज्यादा हमारा अधिकार है। इस अधिकार को अधिकार मानकर काम करने के बजाय महाराज युधिष्ठिर आजतक धृतराष्ट्र से अनुनय विनय ही करते रहे, जिससे आज तो सबकी यही गलत धारणा होगई है कि हमें ऐसा हक है ही नहीं, और धृतराष्ट्र तो ऐसा मानने भी लगे हैं।"

"तब मुझे वहाँ जाकर खास बात क्या करनी चाहिए ?" श्रीकृष्ण ने पूछा।

"सबसे खास बात तो यही है कि हमें जो-कुछ लेना है वह धृतराष्ट्र चाचाजी की दया या उदारता से नहीं बल्कि महाराज पाण्डु के पुत्र होने की हैसियत से अधिकारपूर्वक लेना है, यह बात उन्हें साफ़-साफ़ समझा देनी चाहिए।" अर्जुन ने ज़ोर देकर कहा।

"लेकिन", श्रीकृष्ण बोले, "क्या दुर्योधन इस बात को स्वीकार करेगा ? क्यों न यह सत्ताधीश है, यह भूल न जाना चाहिए।"

"आपकी बात ठीक है। सत्ता बुरी चीज़ है। राजा यह भूल जाता है कि राजा की हैसियत से उसकी जो जिम्मेदारियाँ हैं उनको पूरा करने के लिए ही उसे अधिकार दिया जाता है, और आगे जाकर खुद सत्ता ही महत्त्व की चीज़ बन जाती है।

ामी राजतन्त्रों में ऐसा ही होता है। नल जैसे राजा को शायद सीलिए पदभ्रष्ट होना पड़ा। दुर्योधन को भी अपनी सत्ता ोड़नी ही पड़ेगी, फिर यह चाहे समझ-बूझकर ऐसा करे या ड़-भिड़कर करे।"

"लेकिन युद्ध के सब परिणामों को तुमने भलीभाँति सोच ल्या है ?" श्रीकृष्ण बोले।

"युद्ध के परिणाम महाराज युधिष्ठिर कहते हैं वैसे ही अनिष्ट होंगे, इसमें मुझे जरा भी शंका नहीं है। युद्ध होने पर करोड़ों क्षत्रिय रणभूमि की धूल चाटेंगे, कितने ही कुलों का युद्ध में समूल नाश होजायगा, कितनी ही स्त्रियाँ विधवा होजायँगी, कितने ही क्षत्रिय बालक निराधार होजायँगे, सारी प्रजा में अव्यवस्था फैल जायगी, चोर-डाकुओं का त्रास बढ़ जायगा, व्यापार की अपार हानि होगी, और लोगों के मनों में लड़ाई का नशा ऐसा छा जायगा कि लड़ाई खत्म होजाने के बाद भी कुछ समय तक समाज में वही रंग बना रहेगा। इन सब परिणामों को मैं जानता हूँ, लेकिन यह अनिवार्य है। युद्ध होने पर कुछ समय तक तो मनुष्य अपनी मानसिक स्थिरता को खो देंगे, और उसके स्थिर होने तक समाज में अनेक बार उथल-पुथल होगी, परन्तु ईश्वर के इस जगत् में ऐसी उलटा-पलटी और स्थिरता-अस्थिरता होती ही रहती है, ऐसा भीष्म पितामह से मैंने समझा है। इसलिए अपने परम्परागत अधिकार के लिए लड़ना भी पड़े तो मुझे उसमें कोई अड़चन मालूम नहीं पड़ती।" अर्जुन ने जवाब दिया।

"तो फिर, जैसा भीमसेन ने कहा है, सीधे लड़ाई की ही बात रक्खूँ ?" श्रीकृष्ण ने पूछा।

"नहीं।" अर्जुन ने टोका, "भीमसेन जो कहता है वह ठीक नहीं है। श्रीकृष्ण! भीष्म पितामह ने मुझे जो-कुछ सिखाया है उसपर से तो ऐसा लगता है कि दुर्योधन, युधिष्ठिर या भीम हस्तिनापुर की प्रजा के भविष्य का निश्चय करनेवाले कौन हमें हैं ? हम स्वार्थी लोग अपने क्षुद्र के स्वार्थ से प्रेरित होकर सारी जनता को लड़ाई में झोंक और लड़ाई में मरने को रक्षा का ढोंग बतायें, ऐसे शैतान भला और कौन हो सकते हैं ? राजा या साम्राज्य का यह प्रश्न ऐसा खोखला है कि जन-समाज के जागृत होते ही बड़े-बड़े साम्राज्य चकनाचूर हो जायेंगे। ऐसा समय एक दिन जरूर आनेवाला है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि हमारा यह आपसी झगड़ा निर्दोष प्रजा का खून बहाये बगैर ही मिट जाय तो अच्छा हो। भीमसेन तो किसी भी तरह लड़ाई ही चाहता है। मैं सम्मानपूर्वक अपना हक्क माँगता हूँ, लेकिन उस हक्क के लिए लड़ना पड़े तो उसके लिए भी तैयार हूँ।"

"तुम्हारी बात भी ठीक है। अच्छा तो भीष्म पितामह या द्रोणाचार्य से क्या कहा जाय ?" श्रीकृष्ण ने पूछा।

"पहले तो धृतराष्ट्र चाचा से मिलिए। मेरी ओर से उनसे कहिए कि आप तो कौरव पाण्डवों दोनों के ही हितों के संरक्षक हैं। पाण्डु महाराज हमें आपके भरोसे छोड़ गए हैं। संरक्षक में खुदगर्जी नहीं होनी चाहिए। जो आदमी कुटुम्ब के अन्दर भी

अपने ही स्वार्थ को प्रधानता नहीं देता उसीका बड़प्पन यश स्वी होता है। आपने हमारे और कौरवों के बीच भेद किया है, इससे आपके बड़प्पन को धक्का लगा है। युधिष्ठिर पुराने विचारों को मानकर आपको अब भी अपना बड़ा-बूढ़ा मानते हैं, लेकिन मेरी समझ में तो आप जैसे स्वार्थी बड़े-बूढ़े मार डालने के लायक हैं। भीष्म और द्रोण से मेरा प्रणाम कहना। इन दोनों के चरणों में बैठकर मैंने जो-कुछ सीखा है उसके लिए उनका सदा ऋणी हूँ। लेकिन श्रीकृष्ण, दोनों को जता देना कि जीवन-मरण के अवसर पर जो आदमी अपने विचार प्रकट करके ही बैठा रहे और उन विचारों पर अमल न करे, वह हतवीर्य है और इसलिए दया का पात्र है। यह मैं जानता हूँ कि आप दोनों का हमारी ओर झुकाव है, आपके हृदय हमारा भला देखकर प्रसन्न होते हैं, यह भी मैं अच्छी तरह समझता हूँ, लेकिन जहाँ घोर अन्याय और स्पष्ट अधर्म होरहा हो वहाँ मनुष्य की क्षात्रवृत्ति अनायास ही जागृत न होजाय, तो फिर वह क्षत्रिय कैसा? दुर्योधन का अन्याय देखते हुए भी आप उसका साथ दे रहे हैं, इसीसे प्रकट है कि दिल से आप उसके ही साथ हैं और इसी बूते पर सारी कौरव-सेना नाच रही है।" अर्जुन ने अपने जी का गुबार निकाला।

"किसी और से भी कुछ कहना है?" श्रीकृष्ण ने और पूछा।

"यों तो बहुतों का ध्यान आता है। दुर्योधन है, कर्ण है, दुःशासन है, विदुर चाचा भी हैं, लेकिन उनसे किसीसे कुछ

"तो फिर, जैसा भीमसेन ने कहा है, सीधे लड़ाई की हा का रक्खूं ?" श्रीकृष्ण ने पूछा।

"नहीं।" अर्जुन ने टोका, "भीमसेन जो कहता है वह ठीक नहीं है। श्रीकृष्ण। भीष्म पितामह ने मुझे जो-कुछ सिखाया है उसपर से तो ऐसा लगता है कि दुर्योधन, युधिष्ठिर या भीष्म हस्तिनापुर की प्रजा के भविष्य का निश्चय करनेवाले कौन होते हैं? हम स्वार्थी लोग अपने खुद के स्वार्थ से प्रेरित होकर सारी जनता को लड़ाई में झोंकें और लड़ाई में मरने को स्वर्ग का द्वार बतायें, ऐसे शैतान भला और कौन हो सकते हैं? राज्य या साम्राज्य का यह प्रश्न ऐसा खोखला है कि जन-समाज के जागृत होते ही बड़े-बड़े साम्राज्य चकनाचूर हो जायगे। ऐसा समय एक दिन जरूर आनेवाला है। इसलिए मैं चाहता हूं कि हमारा यह आपसी झगड़ा निर्दोष प्रजा का खून बहाये बगैर ही मिट जाय तो अच्छा हो। भीमसेन तो किसी भी तरह लड़ाई ही चाहता है। मैं सम्मानपूर्वक अपना हक मांगता हूँ, लेकिन उस हक के लिए लड़ना पड़े तो उसके लिए भी तैयार हूँ।"

"तुम्हारी बात भी ठीक है। अच्छा तो भीष्म पितामह या द्रोणाचार्य से क्या कहा जाय?" श्रीकृष्ण ने पूछा।

"पहले तो धृतराष्ट्र चाचा से मिलिए। मेरी ओर से उनसे कहिए कि आप तो कौरव पाण्डवों दोनों के ही हितों के संरक्षक हैं। पाण्डु महाराज हमें आपके भरोसे छोड़ गये हैं। संरक्षक में खुदगर्जी नहीं होनी चाहिए। जो आदमी कुटुम्ब के अन्दर भी

अपने ही स्वार्थ को प्रधानता नहीं देता उसीका बड़प्पन यशस्वी होता है। आपने हमारे और कौरवों के बीच भेद किया है, इससे आपके बड़प्पन को धक्का लगा है। युधिष्ठिर पुराने विचारों को मानकर आपको अब भी अपना बड़ा-बूढ़ा मानते हैं, लेकिन मेरी समझ में तो आप जैसे स्वार्थी बड़े बूढ़े मार डालने के लायक हैं। भीष्म और द्रोण से मेरा प्रणाम कहना। इन दोनों के चरणों में बैठकर मैंने जो-कुछ सीखा है उसके लिए उनका सदा ऋणी हूँ। लेकिन श्रीकृष्ण, दोनों को जता देना कि जीवन-मरण के अवसर पर जो आदमी अपने विचार प्रकट करके ही बैठा रहे और उन विचारों पर अमल न करे, वह हतवीर्य है और इसलिए दया का पात्र है। यह मैं जानता हूँ कि आप दोनों का हमारी ओर झुकाव है, आपके हृदय हमारा भला देखकर प्रसन्न होते हैं, यह भी मैं अच्छी तरह समझता हूँ, लेकिन जहाँ घोर अन्याय और स्पष्ट अधर्म होरहा हो वहाँ मनुष्य की क्षात्रवृत्ति अनायास ही जागृत न होजाय, तो फिर वह क्षत्रिय कैसा? दुर्योधन का अन्याय देखते हुए भी आप उसका साथ दे रहे हैं, इसीसे प्रकट है कि दिल से आप उसके ही साथ हैं और इसी बूते पर सारी कौरव-सेना नाच रही है।" अर्जुन ने अपने जी का गुबार निकाला।

"किसी और से भी कुछ कहना है?" श्रीकृष्ण ने और पूछा।

"यों तो बहुतों का ध्यान आता है। दुर्योधन है, कर्ण है, दुःशासन है, विदुर चाचा भी हैं, लेकिन उनमें किसीसे कुछ

नहीं कहना। मैं समझता हूं कि आज ऐसे संदेशों का कोई अर्थ नहीं है। वातावरण में युद्ध की लहरें हिलोरें मार रही हैं, और सब एक या दूसरी रीति से लड़ना ही चाहते हैं। खुद आपसे भी शान्ति हो सके, ऐसा मुझे नहीं लगता। फिर भी एक बार कोशिश कर देखिए। मुझे तो यह भी लगता है कि आप-जैसों के प्रयत्नों से कौरव यही समझेंगे कि पाण्डव लड़ाई की खाली बातें करके ही जो कुछ मिले वह लेलेना चाहते हैं। इसलिए मेरा अपना मत तो यह भी होरहा है कि एक बार दो-दो हाथ बताये बगैर कौरवों को होश नहीं आना।" अर्जुन बोला।

"मैं भी तो यही कहता हूं। युद्ध करो तो वे खुद ही नाकें रगड़ते हुए सामने आयेंगे।" भीम ने दांत पीसकर कहा।

"लेकिन मुझे जाना चाहिए, यह तो तय है न? संधि न हो तो भी हमारा तो कुछ बिगड़ेगा नहीं। अंतिम बार शान्ति और संधि के लिए प्रयत्न करके देख लें, जिससे मन को संतोष रहे। संधि होजाय तब तो लाभ है ही। इसलिए मैं तो कल ही जाऊंगा।" श्रीकृष्ण ने कहा।

"ज़रूर। हमें तैयारी करने के लिए इतने दिन और मिल जायंगे, यह लाभ तो होगा ही। श्रीकृष्ण! मुझे जो-कुछ कहना था, वह मैंने आपको विस्तारपूर्वक कह दिया है, फिर भी इस सबके पीछे एक बात तो निश्चित ही है। हम भाइयों ने अपना सारा जीवन आपके हाथों में सौंप दिया है। इसीलिए जब दुर्योधन ने आपसे शस्त्रास्त्रों से सज्जित आपकी सेना मांगी, तब मैंने तो

शस्त्र-रहित आपको ही पहले से माँग लिया था। अपने विचार तो हमने आपको बता दिये। अब अन्त में मेरा कहना यही है कि हस्तिनापुर जाकर आप जो भी निश्चय कर लावें वह हम सबको पूरी तरह मान्य होगा। कहिए महाराज युधिष्ठिर, ठीक है न ?" अर्जुन ने कहा।

"इसमें क्या शक है। हम सबने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार कह दिया, लेकिन ऐसे विषयों में कितनी ही बार आपको जो अन्तःस्फूर्ति होती है उसके आगे हम सबकी बुद्धि मात मारती है। श्रीकृष्ण। यह मैं खाली दिखावे के लिए ही नहीं कह रहा हूँ। जीवन में आनेवाली ऐसी-ऐसी अनेक उलझनों में आप जब अपने विचार बताते हैं तब ऐसा मालूम होता है कि मनुष्य के हृदय की गहराई में छिपा हुआ कोई महान् तत्त्व बाहर निकल रहा है, और शास्त्रों के निर्णयों को समझने में कुशल बुद्धि भी उन विचारों को समझने और उनका अनुसरण करने को ललचाती है। इसलिए अर्जुन जो कहता है वह बिलकुल ठीक है। आप जो भी निश्चय करके आवेंगे वह हम पाँचों भाइयों को शिरोधार्य होगा। क्यों भीमसेन ? कहो नकुल-सहदेव, ठीक है न ?"

"इसमें भी कहने की कोई बात है ?" भीम बोला।

"हमें सब मंजूर है, मंजूर !" नकुल-सहदेव बोले।

दूसरे दिन सवेरे ही श्रीकृष्ण हस्तिनापुर के लिए रवाना हो गये।

× × ×

हिरण्यवती नदी के किनारे पाण्डवों ने अपना पड़ाव डाला। उसके लम्बे-चौड़े सफ़ाचट मैदान में उन्होंने अपनी छावनी की हद बनाई, और सारी छावनी के लिए एक बड़ा भारी प्रवेश-द्वार बनाया गया। इस छावनी में युद्ध के अलग-अलग विभागों की व्यवस्था की गई थी। छावनी के बीचोंबीच श्रीकृष्ण का डेरा लगाया गया, और श्रीकृष्ण के डेरे के चारों ओर पाँचों भाइयों तथा द्रौपदी के अलग-अलग तम्बू थे। छावनी के एक भाग में प्रधान सेनापति धृष्टद्युम्न के लिए व्यवस्था की गई थी, एक ओर महारथियों तथा अतिथियों के अपनी-अपनी सेना के साथ ठहरने की व्यवस्था थी, एक ओर राजा द्रुपद और उनके पांचाल ठहरे हुए थे, और दूसरी ओर विराट और उनके मत्स्य डेरा डाले हुए थे।

भारतवर्ष के लगभग सभी राजा-महाराजा इस युद्ध में शामिल हुए थे। कोई पाण्डवों की ओर से तो कोई कौरवों की ओर से। कोई राजा महाराजा अपनी सेना के साथ जब किसी पक्ष में शामिल होने के लिए आता तो छावनी के मुख्य द्वार पर उसका सत्कार करने के लिए भेरी-मृदंग बजते और छावनी के प्रधान अधिकारी उसका स्वागत करते थे।

भीष्मक राजा का पुत्र और रुक्मिणी का भाई रुक्मि कुण्डिनपुर से अपनी सागर जैसी विशाल सेना लेकर पाण्डवों की छावनी की ओर आया तो मुख्यद्वार पर उसके सत्कार के लिए भेरी और मृदंग का नाद हुआ और महाराज युधिष्ठिर उसका स्वागत करने के लिए बाहर आये।

"पधारिए। पधारिए रुक्मी जी।" महाराज युधिष्ठिर ने स्वागत करते हुए कहा।

"महाराज। आप सब अच्छी तरह तो हैं न? अर्जुन तो अच्छी तरह हैं?" रुक्मी ने पूछा।

"आप राजा-महाराजाओं की शुभेच्छा से हम सब अच्छी तरह हैं। आपने यहाँ आकर हमें बहुत आभारी किया है।" युधिष्ठिर ने कहा।

"इसमें तो मैंने कोई बड़ी बात नहीं की। आपके साथ ऐसा घोर अन्याय हो रहा हो तब भी आपका साथ न दें, तो फिर हम किस काम के?" रुक्मी ने कहा।

"अच्छा, अब आप ज़रा आराम करके स्वस्थ हो लीजिए। आपके लिए शिविर तैयार है, और इस सेना के लिए भी व्यवस्था है ही। सहदेव। आपके साथ जाकर सब व्यवस्था बता दो।" युधिष्ठिर ने कहा।

"पधारिए महाराज! मैं तैयार हूँ।" सहदेव ने कहा।

"महाराज युधिष्ठिर। मैं तो स्वस्थ ही हूँ। अपने शिविर में जाने से पहले मैं एक बात स्पष्ट कर लेना चाहता हूँ।" रुक्मी बोला।

"जो बात स्पष्ट करनी हो वह खुशी से कर लीजिए। यह आपका कुण्डिनपुर ही है, ऐसा समझकर यहाँ आज़ादी के साथ रहिए। किसी प्रकार का संकोच करने की कोई ज़रूरत नहीं है।" युधिष्ठिर ने कहा।

"इसलिए, यह मेरा विजय नामक धनुष है। संसार में तीन ही ख़ास धनुष हैं—एक वरुण का गाण्डीव, दूसरा श्रीकृष्ण का शार्ङ्ग और तीसरा यह विजय। श्रीकृष्ण तो युद्ध में भाग लेंगे नहीं, पर मेरा यह अकेला विजय ही आपको विजय दिलाने में समर्थ है।" रुक्मी बोला।

"इसमें क्या शक है।" युधिष्ठिर ने कहा।

"निस्सन्देह। आप और आपके राजा-महाराजा सब आराम के साथ अपने अपने तंबुओं में बैठे रहें, या चाहें तो वे सब अपने-अपने घर चल जायँ। मैं अकेला ही इस सारी कौरव-सेना को लड़ाई में खदेड़ दूँगा।" रुक्मी ने कहा।

"आपकी शक्ति से भला कौन अनभिज्ञ है।" युधिष्ठिर ने दाद देते हुए कहा।

"पर एक शर्त है। आपका यह अर्जुन मेरे पाँवों पर हाथ रखकर इतना कहदे, कि 'मैं भयभीत होगया हूँ, इसलिए आपकी शरण हूँ।' अर्जुन के इतना कह देने के बाद तो बस फिर रुक्मी है और यह सारी कौरव-सेना है। एक घड़ी में देखते-देखते युधिष्ठिर के सिर पर हस्तिनापुर का राजमुकुट चढ़ जायगा।" रुक्मी ने सीना फुलाकर कहा।

"आज आप आये कहाँसे हैं?" भीमसेन से न रहा गया।

"भीमसेन, ज़रा धीरज रक्खो।" अर्जुन ने भीम का हाथ दबाया।

"रुक्मीजी। पहले आप थोड़ा आराम करके स्वस्थ होलें,

के बाद हम सब मिलकर विचार कर लेंगे।" युधिष्ठिर ने तिपूर्वक कहा।

"मैं तो स्वस्थ ही हूँ। लेकिन इस एक बात का निर्णय हो य तो फिर मैं अपने शिविर में जाऊँ।" रुक्मी बोला।

"आपकी सहायता तो हमें जरूर ही चाहिए।" युधिष्ठिर कहा।

"नहीं, इस प्रकार नहीं। मैंने जैसे बताया उसी तरह यह र्जुन मेरे पाँवों पर हाथ रखकर कहे।" रुक्मी ने जोर देकर ताया।

"रुक्मीजी।" अर्जुन से न रहा गया, "आप एक बड़ी सेना लेकर मारी सहायता के लिए आये हैं, इसके लिए हम आपके आभारी । लेकिन माफ़ कीजिए, यह आशा तो आप स्वप्न में भी न रक्खें अर्जुन आपके चरणों पर हाथ रखकर यह कहेगा कि मैं यभीत होगया हूँ। अर्जुन ने तो एकमात्र श्रीकृष्ण के चरणों पर अपना हाथ रक्खा है। उनके सिवाय अर्जुन तीन लोक में र किसी दूसरे के चरणों पर हाथ रक्खे, यह असम्भव है। भयभीत हुआ हूँ' यह भला अर्जुन कैसे कहे ? आपको शायद म नहीं है कि विराटनगर में यह अर्जुन अकेला ही सारी कौरव- ना के आगे कूद पड़ा था। अर्जुन पाण्डु का पुत्र और द्रोणाचार्य शिष्य है। आपको शायद यह मालूम नहीं है कि अर्जुन की ठ पर किसका हाथ है। रुक्मीजी ! आप स्वस्थ होकर रहें तो आपको सिर माथे पर रक्खेंगे, लेकिन अगर स्वस्थ न हो

सकें, तो जहाँ जाना हो वहाँ जाने के लिए आप स्वतंत्र हैं

"अर्जुन, अर्जुन ! यह जान लो कि तुम्हारी मौत तुम्हें
रही है। तुम्हें मदद करने के लिए राजा-महाराजा तो
लेकिन दूसरा रुक्मी नहीं आवेगा, समझे ! विजय धनु
धारण करनेवाला रुक्मी अगर कौरवों के पक्ष में चला
तो तुम लोगों की क्या हालत होगी, इसका भी कभी तुमने
किया है ?" रुक्मी बोला।

"मुझे सहायता करने के लिए दूसरा रुक्मी तो
आजाय, लेकिन आये हुए रुक्मी को सच्चे वचन सुना
दूसरा अर्जुन शायद आपको नहीं मिलेगा। रुक्मी ! याद
तुममें जितना अभिमान है उससे दूना अभिमान मन में
दुर्योधन इधर-उधर घूमता फिरता है, इसीलिए वहाँ भी
ऐसा ही सत्कार मिलेगा।" अर्जुन ने साफ़-साफ़ सुना दि

"दुर्योधन अगर तुम्हारे समान नादान होगा तो
बात है।"

यह कहकर फ़ौरन ही रुक्मी अपनी सेना के साथ
की छावनी को छोड़कर चल दिया।

धर्म सकट

महाभारत के युद्ध का दिन आखिर आ ही पहुँचा और भगवान् सूर्यनारायण ने अठारह अक्षौहिणी सेना के ऊपर अपनी लाल आँखें डालीं।

दोनों ओर की सेनायें तैयार हो रही थीं, रथों के घोड़े अपने रथपतियों का वाहन बनने के लिए हिनहिना रहे थे। मदोन्मत्त हाथी अपनी सूँड़ों को इस प्रकार इधर-उधर हिला रहे थे मानों अपने शत्रुओं को खोजते हों। सुन्दर पोशाकों में सजे हुए सारथी अपने हाथ का चाबुक इधर-उधर हिलाते और फटकारते हुए, वाहन हाँकनेवालों की मनःस्थिति व्यक्त कर रहे थे। महावत हाथ में अंकुश पकड़कर इस तरह छाती ताने बैठे थे मानों विजय की चाभियाँ उन्हींके पास हैं। और असंख्य क्षत्रिय, वीर कोई तलवार खड़खड़ाते हुए, कोई गदा हिलाते हुए, कोई अपने धनुष को निहारते हुए, तो कोई तीर लगाने के पखों को ठीक करते हुए, इधर-उधर घूम रहे थे। इनमें से कोई रणभूमि में मरकर स्वर्ग जाने की हविस रखता था तो कोई अपने किसी अबोध बालक की याद में उदास होरहा था। किसीकी सहानुभूति पाण्डवों के साथ थी तो किसीकी कौरवों के साथ। कोई अपनी प्रतिष्ठा के खयाल से तो कोई भविष्य के किसी लाभ के लोभ से, कोई

धर्माधम के विवेक से तो कोई धर्माधम को समझ बिना युद्ध की घोषणा मात्र से, कोई आपसी संबंध के कारण तो कोई आत्म मैत्री के कारण, कोई जीवन से उकताकर तो कोई यौवन की उमंगों से उछलकर, ऐसे असंख्य क्षत्रिय वीर भारतवर्ष की इस सनातन रणभूमि में इस तरह घूम रहे थे मानो भारतवर्ष के भविष्य का निर्णय करने के लिए मानव-सागर में ज्वार आ गया हो। सारे भारतवर्ष में युद्ध का वातावरण ऐसा फैल गया कि स्वर्ण-सिंहासनों पर विराजनेवाले सिंहासनों पर न रह सके और कुटुम्बीजनों के साथ शांति से जीवन बितानेवाले पुरुष इच्छा न होते हुए भी कुटुम्ब-जीवन की गाँठों को थोड़ी देर के लिए ढीली करके युद्ध के लिए चल पड़े।

कौरव-सेना की ओर से भीष्म पितामह आगे आये। उनके रथ में चार सफेद घोड़े जुते हुए थे। उनकी विशाल छाती पर बरफ के समान दाढ़ी फहरा रही थी, शुभ्र मस्तक पर मुकुट शोभायमान था, और हाथ में धनुष था। उनके रथ के चारों ओर द्रोणाचार्य कृपाचार्य, अश्वत्थामा, जयद्रथ, दुःशासन, शल्य आदि महारथी अपने अपने रथों में सुशोभित थे। कर्ण वहाँ नहीं था, क्योंकि उसकी प्रतिज्ञा थी कि "जबतक भीष्म पितामह सेनापति रहेंगे तबतक मैं नहीं लड़ूँगा।"

पाण्डव सेना का सेनापति धृष्टद्युम्न था, लेकिन पाण्डव-सेना की विजय का आधार तो अर्जुन ही था। खाण्डवदाह के प्रसंग पर अग्नि ने अर्जुन के लिए जो वरुण का रथ ला दिया था, अर्जुन

उसी रथ में बैठा हुआ था। उसके रथपर हनुमान के चिह्नवाली ध्वजा फहरा रही थी। रथ के आगे यादववीर श्रीकृष्ण एक हाथ में घोड़े की रास और एक हाथ में चाबुक थामे बैठे हुए थे। श्रीकृष्ण के शरीर पर केसरिया रंग के रेशमी वस्त्र सुशोभित थे और गले में सुन्दर वनमाला थी। रथ के अन्दर अर्जुन हाथ में गाण्डीव लिये बैठा था और उसके पास वरुणदेव के दिये हुए दो अक्षय तरकस लटक रहे थे। अर्जुन के रथ के चारों ओर यज्ञकुण्ड में से पैदा हुआ द्रौपदी का भाई धृष्टद्युम्न तथा भीमसेन शिखंडी, द्रुपदराज, विराट राजा आदि अपने-अपने रथों में बैठे हुए थे।

इतने में भीष्म पितामह ने लड़ाई की शुरुआत का सूचक शंख बजाया। इसके बाद एक एककर अनेक शंख बज उठे—ऐसे ज़ोर से कि आकाश फटने लगा।

इसी समय अर्जुन ने रथ में से श्रीकृष्ण से कहा, "महाराज श्रीकृष्ण! मेरा रथ दोनों सेनाओं के बीच ले जाकर खड़ा कीजिए, जिससे कि मैं यह देख सकूँ कि मुझे इस युद्ध में किस किस के साथ लड़ना है।"

अर्जुन के सारथी श्रीकृष्ण ने रथ को दोनों सेनाओं के बीच लेजाकर खड़ा कर दिया और अर्जुन ने कौरव-सेना पर इधर-से उधर तक एक लम्बी नज़र डाली।

एकाएक अर्जुन बोल उठा—"महाराज श्रीकृष्ण! जिनकी गोद में बचपन से खेला हूँ ऐसे मेरे पिता के भी दादा यह भीष्म, शिष्य-भाव से अनेक सेवायें करके जिनसे मैंने विद्या सीखी वह

द्रोणाचार्य, जिनके साथ गंगा के किनारे पर अनकबार कुश्तियों का खेल खेलते थे व दुर्योधन और उसके भाई, मेरे गुरु का प्राण से भी प्यारा यह अश्वत्थामा, माता माद्री के भाई महाराज शल्य एकसौ पाँच भाइयों की बहन दुःशला का पति सिंधुराज जयद्रथ और जिनके अभी मूँछों की रेखायें भी नहीं आई ऐसे मेरे भतीजे—इन सबको अपने सामने देखकर मेरे होश उड़े जा रहे हैं, मेरा शरीर पसीने पसीने होरहा है, मुँह सूखा जा रहा है और गाण्डीव हाथ में से खिसक रहा है। जिनके साथ रहकर हम इस पृथ्वी के भोग भोगना चाहते हैं वे सभी तो मेरे सामने मौजूद हैं। श्रीकृष्ण! इन सबको मारकर इनके खून से सने हुए वैभवों को भोगने की अपेक्षा मैं स्वयं ही कौरव-सेना के हाथों इस युद्ध में मारा जाऊँ, इसमें मुझे कहीं ज्यादा कल्याण दिखाई देता है।" यह कहकर अर्जुन ने गाण्डीव को नीचे रख दिया और रथ के पिछले हिस्से में चला गया।

शोक से विह्वल हुए अर्जुन से श्रीकृष्ण कहने लगे, "अर्जुन! यह ऐन मौके पर तुझे मोह कहाँसे आगया? हृदय की पामर निर्बलता को परित्याग कर तू उठ खड़ा हो।"

लेकिन अर्जुन ने उत्तर दिया—"भीष्म और द्रोण को कैसे मारूँ? इन लोगों को मारकर पृथ्वी के भोग भोगने की मुझे इच्छा नहीं है। साथ ही श्रीकृष्ण, यह भी मेरी समझ में नहीं आरहा कि हमें विजय मिलना ठीक है या कौरवों को। मालूम होता है, मेरी बुद्धि कुंठित होगई है। हे यदुवीर! मेरा मन मूढ़

गया मालूम होता है। मुझमें सारासार का विवेक नहीं रह
ना। प्यारे श्रीकृष्ण! मैंने आपको सिर्फ़ अपने रथ का सारथी
नहीं माना है। आप तो मेरे सारे जीवन के सारथी हैं, यही
समझें। हे सखा! मुझे मार्ग दिखाई नहीं दे रहा है, इसलिए आप
अँधेरे मार्ग में प्रकाश कीजिए।" यह कहते-कहते अर्जुन का
गला भर आया और उसका स्वर बहुत दीन होगया।

अर्जुन के रथ पर बैठे हुए श्रीकृष्ण मुस्कराते हुए बोले—
भाई अर्जुन! तेरे मुँह में पण्डित की भाषा तो है, लेकिन हृदय
में पण्डित की विशुद्धि नहीं, बल्कि केवल पामरता और कमज़ोरी
है। तेरी यह पामरता और कमज़ोरी ऐसी मनोहर भाषा ओढ़-
कर बाहर आई है कि थोड़ी देर के लिए तुझे ख़ुद को भी यह
अच्छी दिखाई दे रही है, लेकिन तू ज़रा अपने हृदय में टटोलकर
देखे तो तुझे ख़ुद ही पता चल जायगा कि यह कमज़ोरी कितनी
ढंगी और बेडौल है।

"अर्जुन! तुझे भीष्म के साथ लड़ना है, यह क्या तुझे आज
ही मालूम हुआ? युद्ध में गुरु द्रोण से तेरा मुक़ाबिला होगा, यह
क्या आज ही तुझे कोई आकर कह गया है? तू तो यह सब
पहले ही से जानता था, और तूने ही इन सबके ख़िलाफ़ युद्ध की
घोषणा की है। तेरा यह सब ज्ञान एक ही पल में कहाँ चला गया?"

अर्जुन ने जवाब दिया—"श्रीकृष्ण! जब मैंने यह घोषणा
की थी तब युद्ध का क्षेत्र प्रत्यक्ष नहीं था। आज तो यह सब मेरी
आँखों के सामने खड़ा हुआ है।"

श्रीकृष्ण फिर जोर से हँसे और बोले—"वाह गाण्डीवधारी अर्जुन, धन्य है तुझे। अरे, विराट राजा का पुत्र इस प्रकार डरे तो चल सकता है, लेकिन कुन्ती का पुत्र इस प्रकार बोले तो कैसे काम चलेगा? यह भी क्या संभव है कि अर्जुन ने कोई प्रत्यक्ष युद्ध ही नहीं देखा या किया हो? अरे, तू तो संग्राम की गोदी में ही पला और बड़ा हुआ है।"

"तो भी, जब मनुष्य को अपना उठाया हुआ कदम ठीक न लगे, तब क्या उसी समय उसे पीछे हटाने का अधिकार नहीं है?" अर्जुन ने पूछा।

"जरूर है। और उस मौके पर सारी दुनिया का विरोध सहकर भी, चाहे जितना जोखिम उठाकर भी, मनुष्य पीछे हटे, इसीमें उसकी वीरता है। लेकिन अर्जुन! तू जितना अपने हृदय को नहीं पहचानता उतना मैं तेरे हृदय को पहचानता हूँ। जीवन में बहुत बार मनुष्य अपने मन को नहीं पहचान पाता, इसलिए ऊपर से कुछ चाहता है, क्योंकि उसके अन्तर की गहराई में कोई दूसरी ही इच्छा होती है। अर्जुन! ऐसी बात नहीं कि तुझे यह युद्ध अच्छा नहीं लगता। तू अपने सारे जीवन पर नजर डालकर देख, तो तुझे पता लगेगा कि इस युद्ध के लिए ही तो तूने अपने जीवन-भर तैयारियाँ की हैं। द्रोण के पास से तूने अस्त्र विद्या सीखी और उनसे श्रेष्ठ शिष्य का वरदान पाया। उसके बाद द्रुपद को बाँधकर द्रोण की गुरु दक्षिणा दी। फिर गृह [illegible] लिए [illegible] में से निकली हुई और

को स्वयंवर में प्राप्त किया। मेरे साथ रहकर खाण्डव वन जलाया, तब अग्निदेव ने तुझे यह रथ, यह अक्षय तरकस और यह गाण्डीव दिया था, इसकी याद है? वरुणदेव यह सब साधन तुझे दें, इसका अर्थ क्या तू नहीं समझा? वनवास के समय तू कैलास पर गया और भगवान शंकर ने तुझे पाशुपतास्त्र दिया। अर्जुन! तुझे मालूम होगया होगा कि तेरे पिता इन्द्र ने तेरे लिए कर्ण के कवच-कुण्डल माँग लिये हैं। इन सबका एक ही अर्थ है, और वह यह कि जगत् में जिस महासंहार की घड़ियाँ बीत रही हैं उसका तू नायक है और आज तक का तेरा सारा जीवन इस नायकपद की तैयारी मात्र था। आज इस क्षणिक मोह से तू अगर लड़ना छोड़ देगा, तो तेरे दिल का एक अरमान रह जायगा और तेरा जीवन आत्मतृप्ति नहीं प्राप्त करेगा।"

अर्जुन रथ के पिछले हिस्से से ज़रा आगे आया और बोला—"श्रीकृष्ण! मैं अस्त्र के प्रयोगों से भीष्म और द्रोण को मारूं, इसके बजाय क्या यह अच्छा न होगा कि मैं शस्त्रों का ही त्याग कर दूँ और ये लोग मुझे मार डालें?"

श्रीकृष्ण फिर बोले—"सखा! तू अपनी बात जिस तरह से कहता है उस तरह तो नहीं, लेकिन दूसरी तरह से ठीक है और ज्यादा अच्छी है। मनुष्य दूसरों को मारकर विजय प्राप्त करे, उसके बजाय खुद मरकर विजय प्राप्त करे यह बहुत ऊँची बात है, लेकिन अर्जुन! इस ज़माने में अभी लोग हिंसा में इतने आगे नहीं बढ़े हैं कि हिंसा और हिंसा के युद्ध से थक गए हों। हिंसा-

हीन युद्ध ईश्वर की सृष्टि में असंभव नहीं है, लेकिन उसे संभव बनाने के लिए लोगों की मनोवृत्ति और समाज की भावना एक खास तरह से ढलनी चाहिए। आज तो लोकमानस उस ओर नज़र भी नहीं डालता, न ऐसी भावना को जागृत करनेवाले महान पुरुष अभी पृथ्वी पर दिखाई पड़ते हैं। आज जब तू मरने की बात कहता है, तब भी तेरे मन में ऐसा ख्याल तो है नहीं कि मारने की बनिस्बत मरने में ज्यादा वीरता है। तू तो अपने हृदय की एक भावना के वशीभूत होकर हृदय की उस उलझन को सुलझाने के लिए मरने की बातें करता है। यही तेरी कमज़ोरी है, इसमें मुझे कोई शक नहीं है।"

"तो कृष्ण! हृदय की इस परेशानी का समाधान हुए बिना तो मुझसे यह गांडीव पकड़ा नहीं जायगा।" अर्जुन ने कहा।

"यह मैं सब समझता हूँ। तुझे युद्ध के अन्त में विजय के सब परिणाम तो चाहिएँ, पर विजय-प्राप्ति में भीष्म और द्रोण जैसे बुज़ुर्गों को मारने की लोकलाज से तू बचना चाहता है। अच्छा, अर्जुन! एक सच्चा रास्ता बताऊँ? देख, इस सारी कौरव-सेना और इसके स्वामी दुर्योधन आदि को अपना दुश्मन मानकर तू लड़ने आया है। ये सब तेरे भाई और सगे सम्बन्धी हैं, इस विचार से तू हिचक गया हो, तो तुझे युद्ध का अपना सारा दृष्टिकोण बदल लेना चाहिए। तुझे समझना चाहिए कि तेरा यह युद्ध भीष्म, द्रोण या दुर्योधन के खिलाफ़ नहीं है। तेरा युद्ध तो दुर्योधन के अन्याय के खिलाफ़ है, इसलिए दुर्योधन के अन्याय में शामिल

होनेवाले भीष्म और द्रोण के भी अन्याय के खिलाफ है। यह ठीक है कि दुर्योधन तेरा भाई है, भीष्म तेरे पितामह हैं, और द्रोण तेरे गुरु हैं, पर मैं तो कहता हूँ कि मनुष्यमात्र मनुष्य का भाई है, यह विचार दृढ़ करके यह समझ ले कि तुझे मनुष्य के खिलाफ नहीं बल्कि उसके अधर्म के खिलाफ लड़ना है।" श्रीकृष्ण ने समझाया।

"सखा। श्रीकृष्ण। और कहिए।" अर्जुन की जिज्ञासा बढ़ रही थी।

"अन्याय और अधर्म के खिलाफ लड़ना क्या क्षत्रियों का परमधर्म नहीं है? इस अन्याय का पक्षपाती अगर भीमसेन हो तो उससे भी लड़ना चाहिए और दुर्योधन हो तो उससे भी लड़ना चाहिए।" श्रीकृष्ण बोले।

"भीष्म, द्रोण, दुर्योधन आदि को युद्ध में मारकर भी?"

"हाँ, उन्हें भी मारकर। जिस मनुष्य के द्वारा समाज में अन्याय या अधर्म फैलता हो, उसका वध करना सच पूछो तो उसीका कल्याण करना है। और सारे संसार का तो वह कल्याण है ही। संसार के और अपने कल्याण की खातिर पाँच, पचास, सौ, दो सौ, हजार या लाखों शरीरों का नाश हो तो भी कोई बात नहीं है।" श्रीकृष्ण ने कहा।

"श्रीकृष्ण। आप जो कुछ कह रहे हैं वह समझ में तो ठीक-ठीक आरहा है। लेकिन," अर्जुन ने पूछा, "यह कैसे हो सकता है कि दुर्योधन के अधर्म पर प्रकोप हो और दुर्योधन पर प्रकोप न हो? ऐसी स्थिति कब आ सकती है?"

"अर्जुन !" श्रीकृष्ण ने कहा, "तेरी बात ठीक है। मनुष्य जबतक किसी काम में तल्लीन होकर लग नहीं जाता तबतक यह कठिनाई तो रहेगी ही। इसीलिए धर्मशास्त्रों में कहा है कि कर्म करो, लेकिन उसका फल ईश्वर पर छोड़ दो। तू भी इस प्रकार युद्ध कर। अपनी कमज़ोरी को दूर कर, और अन्त में क्या होगा—जय होगी या पराजय, लाभ होगा या हानि, यह सब ईश्वर के ऊपर छोड़ दे। तेरे हृदय की शांति के लिए यही एकमात्र सच्चा मार्ग है। तू लड़ना बंद करके भाग जायगा तो उससे तो तेरी अन्तर्वेदना उल्टे और बढ़ेगी, और उस वेदना के कारण शायद तू आत्महत्या करने पर भी उतारू होजाय।"

"सखा श्रीकृष्ण ! आप ठीक कहते हैं। मैं लड़े बिना नहीं रह सकता, यह बिलकुल सच है। आपने अनासक्त भाव से युद्ध करने का जो उपदेश दिया वह मैं अपनी बुद्धि से तो समझ सकता हूं, लेकिन इस युद्ध में उसपर अमल कैसे होगा यह मैं कह नहीं सकता। फिर भी, मेरे जीवन के सारथी श्रीकृष्ण, इस युद्ध में मैं वैसा करने का प्रयत्न तो करूंगा ही। 'मनुष्य कर्ममात्र का अधिकारी है, उसके परिणाम का नहीं।' यह जीवन सूत्र अगर समझ में आजाय तब तो मनुष्य निहाल ही होगया समझो।" अर्जुन ने कहा।

"तो अर्जुन ! उठ, गाण्डीव को हाथ में ले। देख, भीष्म पितामह धनुष की टंकार करते हुए तेरी तरफ आरहे हैं। याद रख, युद्ध की विजय का दारोमदार अर्जुन पर ही ऊपर है।" श्रीकृष्ण बोले

और लगाम खींचकर रथ को भीष्म के रथ के ठीक सामने ला खड़ा किया।

गाण्डीवधारी अर्जुन तनकर बैठ गया। गाण्डीव को उसने हाथ में ले लिया और संहारकाल की अग्नि के समान भीष्म की ओर बढ़ा।

९

कुरुक्षेत्र के मैदान में

कुरुक्षेत्र के मैदान पर नौ-नौ बार सूर्य उदय होकर अस्त होगया। नौ-नौ भयंकर रातें बीत गईं। भीष्म और अर्जुन, दुर्योधन और भीमसेन, सात्यकि और अश्वत्थामा, द्रोण और द्रुपद नौ-नौ दिन तक एक-दूसरे के सामने जूझते रहे। पर युद्ध का अंत तो आता ही नहीं था।

इन नौ दिनों में पितामह भीष्म ने पाण्डव-सेना में त्राहि-त्राहि मचादी। सरदी के दिनों में जैसे किसी जंगल में दावानल सुलग उठे और सूखे हुए घास को भस्म करदे, उसी प्रकार भीष्म ने पाण्डवों की सारी सेना को खाक में मिला दिया। अकेले भीष्म के ही हाथों हर रोज दस हजार सैनिक स्वर्ग में जाते। महान अर्जुन पाण्डव-सेना के आगे रहकर लड़ता; लेकिन बूढ़े पितामह के वेग को रोकने में वह असमर्थ था। भीष्म ने अपने सारे जीवनभर ब्रह्मचर्य का पालन करके जो शक्ति हासिल की थी वह सब इस लड़ाई में लगा दी और श्रीकृष्ण जैसे राजनीतिज्ञों को भी चक्कर में डाल दिया। श्रीकृष्ण का संकल्प था कि वह इस युद्ध में शस्त्र न लेंगे, पर इतनों दिनों में दो बार भीष्म ने अर्जुन पर ऐसा धावा बोला कि श्रीकृष्ण जैसे धीर गंभीर पुरुष भी अपनी प्रतिज्ञा को भूलकर भीष्म के सामने चक्र लेकर दौड़ उठे।

दसवें दिन का सवेरा हुआ और गाण्डीवधारी अर्जुन रथ में बैठकर पाण्डव-सेना के आगे आया।

"सखा अर्जुन!" श्रीकृष्ण ने कहा, "अब तो हद होरही है। आज तो तुझे भीष्म को चाहे जैसे खत्म करना ही चाहिए।"

"श्रीकृष्ण! मैं अपनी कोशिश में तो कोई कसर रखता नहीं। पर युद्ध में तो भीष्म पितामह का साक्षात् शंकर भी मुकाबिला नहीं कर सकते, फिर मेरा तो बस ही क्या है?" अर्जुन ने कहा।

"सखा अर्जुन, यह तेरी भूल है। तू खुद पाण्डुराजा का पुत्र और द्रोणाचार्य का शिष्य है। शंकर तथा इन्द्र ने तुझे वरदान दिये हैं। इसलिए तेरी शक्ति भीष्म की शक्ति से किसी प्रकार कम नहीं है। तुझे अपनी शक्ति का भान नहीं है, इसीलिए भीष्म को रथ में बैठे देखकर ही तू हिम्मत हार जाता है, और 'भला इन भीष्म का मुकाबिला मैं कैसे कर सकता हूँ?' इस विचार से तेरा गाण्डीव ढीला पड़ जाता है। लेकिन अर्जुन! यह निश्चय जान कि युद्ध में तुझे विजय प्राप्त करनी है, और भीष्म को मारे बगैर विजय की आशा ही व्यर्थ है। इसलिए आज पूरी तरह तैयार हो जा।" श्रीकृष्ण ने अर्जुन को हिम्मत बँधाई।

"लेकिन श्रीकृष्ण!"

"लेकिन-वेकिन कुछ नहीं। सिर्फ यही बात ध्यान में रख, कि भीष्म को मारना है। भीष्म चाहे जैसे वीर हों, फिर भी आखिर वृद्ध ही हैं। तेरे जैसा जवानों का जोश और बल उनके हाथों में

कहाँ ? फिर भी आज तू शिखण्डी को अपने सामने रखना।" श्रीकृष्ण ने कहा।

"शिखण्डी को ?"

"हाँ। यह शिखण्डी पहले शिखण्डिनी नाम की स्त्री थी, पर बाद में पुरुष बन गया। द्रुपद राजा के इस पुत्र को भीष्म अच्छा तरह पहचानते हैं। स्त्री से युद्ध न करने की भीष्म की प्रतिज्ञा है। ऐसा भीष्म ने ही कई बार स्वयं कहा है। इसलिए तू शिखण्डी को आगे रखकर भीष्म के ऊपर तीर चला।" श्रीकृष्ण बोले।

"श्रीकृष्ण, इसमें अर्जुन का क्या पराक्रम हुआ ?" अर्जुन ने पूछा।

"अर्जुन। अगर तुझे विजय प्राप्त करनी हो, तो भीष्म को मारने में ही कल्याण है। शिखण्डी को आगे किये बिना भीष्म का मारना मुश्किल है। ऐसे नाजुक मौक़े पर मनुष्य को अपना निर्णय जल्दी ही करना चाहिए। कौन-सा क़दम आगे रखना और कौन-सा पीछे, इस विचार में जो भूलता रहता है वह सारे मनुष्यों का भविष्य अपने हाथ में रक्खे यह उचित नहीं है।" श्रीकृष्ण ने दृढ़तापूर्वक जताया।

"अच्छी बात है। तो आज मैं भीष्म को मारूँगा।" अर्जुन ने कहा।

"इस तरह बेदिल्मनी से मत बोल। दिल में पूरा निश्चय करले।" श्रीकृष्ण ने अर्जुन को और प्रोत्साहन दिया।

"श्रीकृष्ण। मैं बेदिल्मनी से नहीं कहता। मैं आपको अपना

, निश्चय बताता हूँ कि आज मैं भीष्म को जरूर रणभूमि में
गउँगा।" अर्जुन ने जताया।

"तो फिर शिखण्डी के रथ को आगे करके अपने गाण्डीव से
र चलो।"

यह कहकर श्रीकृष्ण अर्जुन का रथ भीष्म के रथ के सामने
आये और युद्ध शुरू हुआ।

× × ×

भीष्म पितामह की मृत्यु के बाद दुर्योधन ने द्रोणाचार्य को
पति बनाया। द्रोणाचार्य ने पाँच दिन तक कौरव-सेना का
व किया। इन पाँचों दिनों के बीच दुर्योधन ने यह चाल चली
रोणाचार्य युधिष्ठिर को जिन्दा पकड़कर कौरवों के सुपुर्द करदें
युधिष्ठिर और उनके चारों भाई फिर लम्बे समय के लिए
ास सेवन करें और दुर्योधन युद्ध में लाखों मनुष्यों की
गँवाये बिना हस्तिनापुर का सम्राट् बना रहे। द्रोणाचार्य को
धन की इस चाल के सफल होने में संदेह था फिर भी उसे
यमा देखने के लिए वह राजी थे। इसलिए अर्जुन को कुरुक्षेत्र
द्ध से थोड़ी दूर भटकाकर काम निकालने का उन्होंने निश्चय
ा। कौरव-सेना में त्रिगर्त लोग अपने राजा के साथ युद्ध में
मल हुए थे। उन्होंने कुरुक्षेत्र से कुछ दूरी पर अलग ही एक
शुरू किया और अर्जुन को ललकारकर उधर ले गये। इधर
डव-सेना अर्जुन के बग़ैर ही द्रोण से लोहा ले रही थी।

× × ×

एक दिन शाम को त्रिगर्तों का पराजय करके मद्रास
श्रीकृष्ण अपनी छावनी में लौट रहे थे।

"श्रीकृष्ण।" रास्ते में अर्जुन ने पूछा, "आज हमने त्रि
का पराजय किया, उसके लिए मुझे आनन्द होना चाहि
उसके बदले मेरा हृदय बहुत भारी क्यों मालूम पड़ता है?"

"कई बार ऐसा होता है कि भविष्य में होने वाली कोई घ
इस रूप में अपनी छाया मनुष्य के दिल पर डाला करती है।
मनुष्य उसे समझ नहीं पाता।" श्रीकृष्ण ने जवाब दिया।

"आप ठीक कहते हैं। रथ को ज़रा जल्दी चलाइए।
छावनी में सब सुरक्षित तो होंगे न?" अर्जुन ने पूछा।

"सखा अर्जुन। युद्ध का मामला है, इसलिए कुछ कह न
सकते।" श्रीकृष्ण ने कहा।

"छावनी तो यह आगई। लेकिन आज यह सब इतना सू
सूना क्यों दिखाई देता है? हम लोग रोज़ वापस आते
अभिमन्यु हमारे सामने आता हुआ दिखाई देता था। आज
वह भी नहीं दिखाई देता। सारी छावनी में मानों मृत्यु की
विराज रही है, ऐसा मालूम पड़ता है।" अर्जुन दुख
बोलने लगा।

"सखा! ज़रूर कुछ-न-कुछ गड़बड़ी हुई है।" श्रीकृष्ण बोले
और इतने में रथ के घोड़े तंबू के द्वार के पास आ पहुँचे
अर्जुन रथ से नीचे उतरा, उसके पीछे श्रीकृष्ण भी उतर,
दोनों तंबू में गये।

तंबू के अन्दर युधिष्ठिर आदि खामोश बैठे थे। उनके चेहरे
ए हुए थे, सिर नीचे झुक रहे थे, आँखें जमीन में गड़ी जा
थी, हाथ-पैर मानों ठिठुर गये थे, उनके सारे अंग बिल्कुल
पड़ रहे थे। अर्जुन और श्रीकृष्ण आकर बैठे, लेकिन कोई
बोला नहीं। अर्जुन ने चारों तरफ़ एक नज़र डाली और तंबू
शांति को चीरता हुआ बोला, "महाराज युधिष्ठिर! आज
सब लोग किसलिए शोक कर रहे हैं? क्या आचार्य ने
र किसी महारथी को हना है? भीमसेन! तुम आज
ना वह अदम्य उत्साह कहाँ गुमा बैठे हो? नकुल-सहदेव!
रा अभिमन्यु आज क्यों नज़र नहीं आ रहा है? महाराज!
र दीजिए। आप बोलते क्यों नहीं?"

"भाई अर्जुन! किस मुँह से बोलूँ? एक महारथी नहीं मारा
, बल्कि हम सब मारे गये हैं।" युधिष्ठिर बोले।

"हुआ क्या, यह तो साफ़-साफ़ बताइए न?" अर्जुन अधीर
या।

"हम लोगों ने अभिमन्यु को गँवा दिया।" भीमसेन ने हिम्मत
के कहा।

"हैं! सच कहते हो? मरा अभिमन्यु! हा श्रीकृष्ण का
ा? सुभद्रा का पुत्र अभिन्यु!" अर्जुन एकदम सटपटा गया।
कृष्ण! अपने रास्ते में ही अपशकुन हो रहा था। युधिष्ठिर!
ज़रासी गैरहाज़िरी में तुम एक अभिमन्यु को भी नहीं बचा
? भीमसेन, भीमसेन! तुम सब लोग भी रहे थे, फिर भी

अभिमन्यु को आगे करते हुए शर्म नहीं आई? मेरे बेटे को किसने मारा?" अर्जुन विह्वल होगया।

"महाराज युधिष्ठिर। ऐसी क्या बात हो गई, जिससे अभिमन्यु मारा गया?" श्रीकृष्ण ने पूछा।

"महाराज श्रीकृष्ण। आप और अर्जुन त्रिगर्तों से लड़ने गये, उसके बाद आचार्य ने चक्रव्यूह बनाया। हममेंसे किसीको भी चक्रव्यूह तोड़ना नहीं आता था। यह तो सिर्फ अर्जुन ही जानता है, या फिर अभिमन्यु जानता था।" युधिष्ठिर बोले।

"हाँ, मैंने अभिमन्यु को यह विद्या सिखाई था।" अर्जुन बीच में ही बोल उठा।

"फिर?" श्रीकृष्ण ने पूछा।

"इस कारण हमने चक्रव्यूह को तोड़ने के लिए अभिमन्यु को आगे किया।" युधिष्ठिर बोले।

"अभिमन्यु को छः द्वार ही तोड़ना आता था, सातवाँ नहीं, यह क्या आपको मालूम नहीं था?" अर्जुन ने पूछा।

"जानते थे। लेकिन एक बार अभिमन्यु अगर रास्ता बना दे तो मैं फिर उसके पीछे होजाऊँ और सबको मिचर दूँगा, ऐसी मेरी धारणा थी।" भीम बोला।

"तो फिर तुम अभिमन्यु के पीछे गये?" श्रीकृष्ण ने पूछा।

"गये तो सही।" भीम बोला।

"तो फिर?" अर्जुन उतावला हो रहा था।

"लेकिन सिन्धुराज जयद्रथ ने हमें रास्ते में रोक लिया।"
बोला।

"जयद्रथ ने? द्रौपदी-हरण में जिसे जिन्दा जाने दिया गया उसी
द्रथ ने?" अर्जुन ने पूछा।

"हाँ, उसी जयद्रथ ने। हम सबने बहुत कोशिश की, लेकिन
द्रथ को हम हरा नहीं सके।" भीम शर्माते हुए बोला।

"तो फिर प्यारा अभिमन्यु वापस ही नहीं लौटा?" अर्जुन
छा।

"लौटता कैसे? व्यूह में तो अभिमन्यु ने चारों ओर त्राहि-
मचादी; लेकिन जहाँ एक अभिमन्यु के सामने छः महारथी
हों, वहाँ वह अकेला बालक क्या करे? आखिर वह शेर का
हजारों को मारकर पृथ्वी पर लेट गया और मेरे कलेजे में
भोंकता गया।" युधिष्ठिर बोले।

"भाइयो। सुनो। जिस जयद्रथ ने मेरे प्यारे अभिमन्यु के
जाते हुए भीमसेन आदि को रोका और इस वजह से मेरे
पुत्र की मृत्यु का कारण हुआ, उस जयद्रथ को मैं कल
स्त के पहले मार डालूँगा। ऐसा न हुआ तो मैं स्वयं चिता
आग लगाकर जल मरूँगा।" अर्जुन ने प्रतिज्ञा की।

"धीरज रक्खो, अर्जुन, जरा शान्ति से काम लो।"
ष्ण बोले।

"प्यारे श्रीकृष्ण। शान्ति कैसे रक्खूँ? मेरे लिए तो सारा
र जहर के समान होगया, और आप शान्त रहने को

कहते हैं। भला सुभद्रा मुझे क्या कहेगी? और मैं उत्तर में क्या कहूँगा?" अर्जुन आवेश में बोल रहा था।

"यह तो युद्ध है।" श्रीकृष्ण बोले, "और इसमें शांति ... ही पड़ती है। सुभद्रा का तो सिर्फ एक ही अभिमन्यु गया, ... कितनी ही सुभद्राओं ने इस युद्ध में न जाने अपने कि... अभिमन्युओं को गँवाया होगा, यह भी सोचना चाहिए..." श्रीकृष्ण ने अर्जुन को समझाया और "चलो, अब सुभद्रा के ... चलें।" कहकर वह अर्जुन को सुभद्रा के पास लेगये।

× × ×

सुबह ही-सुबह रथ को लड़ाई के मैदान में आगे ... श्रीकृष्ण बोले, "अर्जुन! इसीलिए तो मैं कहता था कि ... प्रतिज्ञायें करने से पहले खूब विचार कर लेना चाहिए। ... चरों की बात सुनी न?"

"सुनी तो। लेकिन इससे क्या हुआ?" अर्जुन बोला।

"हो तो सब कुछ गया। जयद्रथ तो रातोरात सिंधु ... भाग जाने के लिए तैयार होगया था, लेकिन द्रोणाचार्य ने ... अभयदान देकर रोक लिया है, इसलिए आज सारे कौरव ... जयद्रथ को बयान में ही रखेंगे और उस सबसे पीछे रखेंगे।" श्रीकृष्ण बोले।

"रखने दो सबसे पीछे।" अर्जुन बोला।

"अर्जुन! यह कहना आसान है। पर क्या तू यह मानता है कि द्रोण के सेनापति रहते हुए तू आज एक ही दिन में सारी कौरव

। का संहार करके जयद्रथ के पास पहुँच जायगा ?" श्रीकृष्ण
। गरम होकर बोले, "शत्रु के बल की उपेक्षा करने में
ता नहीं है।"

"तो फिर सूर्यास्त के बाद चिता पर चढ़ जाऊँगा।" अर्जुन
ग, "अभिमन्यु के चले जाने से जीवन में स्वाद ही क्या रह
। है?"

श्रीकृष्ण जरा गुस्से में आकर बोले—"जीवन में स्वाद क्या
| अर्जुन, अर्जुन। जीवन में तो बहुत सा स्वाद बाकी है।
ब अभी अभिमन्यु की मृत्यु का रंज ताजा है, इसलिए यह
त्य भले ही दिखाई देता हो, पर हृदय की गहराई में अभी
नेक आशायें भरी हुई हैं, और उन्हें पूरी किये बगैर चैन भी
ीं मिलने का। अर्जुन! दूसरी बातों को तो अब जाने दे। तूने
द्रथ को मारने की प्रतिज्ञा की है, लेकिन द्रोणाचार्य हर तरह
उसकी रक्षा करनेवाले हैं। इसलिए मैंने तो एक युक्ति सोच
ली है।"

"क्या?"

"मुझे तो विश्वास है कि तू चाहे जितनी मेहनत कर, फिर
आज सूर्यास्त से पहले तू जयद्रथ के पास तक नहीं पहुँच
गा।" श्रीकृष्ण बोले।

"मुझे तो ऐसा लगता है कि मैं जरूर पहुँच जाऊँगा।"
र्जुन ने जवाब दिया।

"मानलो कि तू न पहुँच सका।"

"तब तो फिर मुझे मरना ही है।" अर्जुन ने कहा।

"नहीं। जब तू नहीं पहुँच पावेगा तो सूर्यास्त को ` ,, ..
रह जाने पर मैं अपने सुदर्शन चक्र से सूर्य को ढक दूँगा, जि
सबको यह मालूम पड़ेगा कि सूर्यास्त होगया है।" श्रीकृष्ण ब

"उससे क्या होगा ?" अर्जुन बोला।

"सबको लगेगा कि सूर्यास्त होगया और हम लोग वि
की तैयारी में लग जावेंगे। तब जयद्रथ वगैरा, मृत्यु के मुख में
बच गये हों इस प्रकार, खुश होकर इधर-उधर घूमने लगें
श्रीकृष्ण बोले।

"जरूर। उस को ऐसा ही लगेगा मानों नया जन्म हुआ है।"
अर्जुन बोला।

"ठीक इसी समय जरा भी गफलत किये बगैर तू जयद्रथ की
ओर ताक कर तीर छोड़ना, और फिर वृक्ष पर से पका हुआ
फल जैसे नीचे गिरता है उसी प्रकार जयद्रथ के धड़ पर से उसका
सिर नीचे आ गिरेगा।" श्रीकृष्ण बोले

"जयद्रथ को इस तरह मारूँ ?" अर्जुन जरा झिझकते हुए बोला

"विजय प्राप्त करना हो और प्रतिज्ञा का पालन करना हो
तो यही मार्ग है। और अगर अभिमन्यु के पीछे यमराज के
दरवाजे जाना हो, तो फिर सूर्यास्त की भी राह देखने की जरूरत
नहीं है।" श्रीकृष्ण बोले।

"अच्छा, तो फिर जैसा आप कहते हैं वैसा ही करूँगा।"
अर्जुन ने कहा।

"एक बात और।" श्रीकृष्ण ने कहना शुरू किया।

"वह क्या ?" अर्जुन ने पूछा।

"जयद्रथ के पिता यहाँसे पास ही तपस्या कर रहे हैं। तुम्हे तीर का ऐसा निशाना लगाना चाहिए कि वह जयद्रथ के सिर को लेकर उसके पिता की गोदी में जाकर गिरे, नहीं तो जयद्रथ का सिर पृथ्वी पर गिरानेवाले के सिर के सौ टुकड़े होजायगे, ऐसा उसे शंकर का वरदान है।" श्रीकृष्ण बोले।

"अच्छी बात है। ऐसा ही करूँगा।" अर्जुन ने स्वीकार किया।

"तो अब रथ को आगे लाता हूँ। देख, यह सामने सारी कौरव-सेना खड़ी है। वह ले, जयद्रथ कहीं दिखाई देता है ? वह तो सेना के ठीक बीचोंबीच अन्त के एक भाग पर खड़ा है। ठीक सामने गुरु द्रोण ही खड़े हैं। सखा। अब एक जोर का धावा बोल। जयद्रथ को आज की रात अपनी शय्या में बीतनेवाली नहीं है, यह निश्चय जान।" श्रीकृष्ण ने यह कहकर रथ को द्रोणाचार्य के सामने ला खड़ा किया।

× × ×

द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य का सिर उतार लिया, यह समाचार जब अश्वत्थामा ने सुना तो उसके क्रोध और शोक का पार न रहा। और इसी शोक और क्रोध में उसने सारी पाण्डव-सेना को नष्ट कर डालने के इरादे से नारायणास्त्र का प्रयोग किया।

नारायणास्त्र के छूटते ही चारों ओर अँधेरा होगया। अस्त्रों

म स एकसाथ दूसरे हजारों तीर, गदा, तलवार, भाले सौ निकलने लगे और पाण्डव सेना अभी द्रोण के वध की खुशी मनाकर तृप्त भी नहीं हुई थी कि ऐसा लगने लगा मानों सभी मृत्यु के मुँह म चले आ रहे हैं।

"अर्जुन!" युधिष्ठिर बोले, "थोड़ी देर पहले तो कौरव-सेना इधर-उधर भाग रही थी, उसे किसने आवाज देकर खड़ा कर दिया? ये हमारी सेना के चारों ओर जो अनेक प्रकार के अस्त्र उड़ते हुए दिखाई देते हैं, यह किसका प्रताप है?"

अर्जुन ने चिढ़कर जवाब दिया—"धर्मराज युधिष्ठिर! आपने असत्य बोलकर द्रोणाचार्य को मरवाया, इससे क्रोधित होकर गुरुपुत्र अश्वत्थामा ने नारायणास्त्र का प्रयोग किया है। महाराज, आपने बहुत बुरा किया। द्रोण चाहे जैसे हों, फिर भी हमारे गुरु ही तो थे। आपको वह हमेशा अजातशत्रु कहते थे इसी कारण किसी और के कहने पर विश्वास न करते हुए उन्होंने आपसे पूछा। आपने सत्य के लिबास में असत्य बोला। पर गुरु द्रोण ने आपके कथन पर विश्वास किया और शस्त्र छोड़ दिए। महाराज! इस पाप का प्रायश्चित्त तो अब हम सबको करना पड़ेगा। गुरुपुत्र ने जिस नारायणास्त्र का प्रयोग किया है वह हम सबका विनाश कर देगा।"

अर्जुन यह कह ही रहा था कि नारायणास्त्र का प्रताप बढ़ने लगा। ऐसा मालूम होने लगा मानों सारी पाण्डव सेना के चारों ओर कालाग्नि व्याप गई हो। चारों ओर हाहाकार मच गया और

पाण्डव-सेना के योद्धा नारायणास्त्र से बचने के लिए इधर-उधर भागने लगे।

अर्जुन के उलझने से युधिष्ठिर दीन होगये और क्रुद्ध होकर बोले—"द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न! तुम अपनी सेना को लेकर तुरत ही वापस चले जाओ। सात्यकि! आप भी अपने यादव वीरों की रक्षा करने के लिए जहाँ जाना हो वहाँ चले जाइए। वासुदेव अपने लिए स्वयं रास्ता कर लेंगे। सब योद्धा जहाँ उन्हें मार्ग मिले और बच सकें वहाँ भाग जायें और अपनी रक्षा करलें। भीष्म और द्रोण रूपी दो महासागरों को तो मैं तर गया, लेकिन आज इस अश्वत्थामा रूपी गढ़े में डूब जाने वाला हूँ। जहाँ मेरे भाई अर्जुन को ही मेरा अपराध मालूम पड़ता हो, वहाँ दूसरे किसीसे क्या कहूँ? मैं अभी अग्नि में प्रवेश कर रहा हूँ। दुर्योधन भले ही सुखपूर्वक पृथ्वी का राज्य करे।"

युधिष्ठिर के ऐसे वचन सुनकर पास में खड़ा हुआ भीमसेन बोला—"अर्जुन! आज तक युधिष्ठिर ने धर्म की बातें कहकर हमें हैरान किया और आज जब युधिष्ठिर धर्म की बातें करना जरा भूले तो यह धर्म अब तेरी जबान पर चढ़ गया, क्यों? द्रोण को हमने अधम से मारा यह ठीक है, लेकिन द्रोण गुरु के अधम का भी तौल किसी दिन करके देखा है? अर्जुन! जो लोग दूसरों के दोषों को न देखकर केवल अपना ही दोष देखा करते हैं, वे मोक्ष-मार्ग में आगे बढ़ते होंगे, लेकिन व्यवहार में तो एकदम कोरे ही रहते हैं। महाराज युधिष्ठिर ने जो-कुछ किया वह ठीक ही था,

इसलिए तुम्हें उनको उलहना देना ठीक नहीं है।"

इधर भीम बोल ही रहा था कि इतने में श्रीकृष्ण अर्जुन के रथ पर चढ़ गये और पाण्डव-सेना को सम्बोधन करके जोर से कहने लगे—"पाण्डव सेना के सेनापतियो! अश्वत्थामा ने नारायणास्त्र का प्रयोग किया है। इसलिए तुम लोग अगर रथ में बैठे हो तो रथ में से उतर पड़ो, हाथी पर हो तो हाथी पर से नीचे उतर आओ, घोड़े पर हो तो घोड़े पर से उतर आओ और तुम्हारे पास जो शस्त्र हो उसे छोड़कर शांति के साथ नीचे खड़े रहो। नारायणास्त्र को शान्त कर देने का यही एक उपाय है।"

श्रीकृष्ण के यह कहने के साथ ही अर्जुन रथ पर से नीचे उतरा और अर्जुन की देखादेखी सभी योद्धा नीचे उतर गये।

पर भीमसेन यह कैसे मानता?

"अर्जुन! तूने महाराज को उलहना दिया है, तो मैं अवश्य ही नारायणास्त्र का सामना करने के लिए जाता हूँ, और देखता हूँ कि यह द्रोण का पुत्र मेरा क्या कर सकता है।" यह कहता हुआ भीमसेन ठीक शीर्षोशीर्ष चला गया और नारायणास्त्र की प्रलयकारी अग्नि उसके चारों ओर घिर गई।

"भाइयो!" अर्जुन घबराकर बोला, "देखिए, भीमसेन तो अन्दर चला गया। हम अगर वहाँ जायेंगे तो वह न जाने क्या का क्या कर बैठेगा।" और तुरंत ही श्रीकृष्ण तथा अर्जुन भीम के पीछे दौड़े आगे।

भीम तो अन्दर पहुँच गया था। दोनों वीर वहाँ पहुँचे और

अर्जुन ने बड़ी मेहनत से हाथ पकड़कर भीमसेन को बाहर निकाला।

"भीमसेन! तुम तो बड़े जबरदस्त निकले। यह श्रीकृष्ण सारी सेना को कहते हैं कि 'अपने वाहनों पर से नीचे उतर जाओ और हथियार छोड़कर शान्त खड़े रहो।' उनका कहना भी नहीं माना?" अर्जुन ने कहा।

"द्रोण को मारने का यश भाईसाहब को देने के बदले जब तू सब सेना के सामने उनकी बेइज्जती करने लगा, तब भीम के लिए दूसरा उपाय ही क्या था?" भीम ने कठोरता के साथ कहा।

"भाई भीमसेन!" श्रीकृष्ण ने कहा, "तू ठीक कहता है, और अर्जुन भी ठीक कहता है। आज तो तुम सब युद्ध के भूखे हो, सो एकबार खूब पेट भरके लड़लो, फिर जब युद्ध के अंत में विचार करने बैठेंगे, तब क्या धर्म और क्या अधर्म इसका निर्णय कर लेंगे। या फिर ईश्वर ने प्रत्येक मनुष्य के हृदय में धर्माधर्म का जो सूक्ष्म काँटा (तराजू) लगा दिया है उसीसे हरेक अपना-अपना निर्णय कर लेगा और हरेक को अपने उस निर्णय के अनुसार इस विजय का स्वाद आवेगा। आज तो भीमसेन! तुझे रथ पर से नीचे उतरकर अर्जुन के समान ही हथियार छोड़कर खड़ा रहना चाहिए।"

भीमसेन ने श्रीकृष्ण का निर्णय स्वीकार किया और प्रतिस्पर्धी के अभाव में अश्वत्थामा का नारायणास्त्र शान्त होगया।

इसलिए मुझे उनको उलहना देना ठीक नहीं है।"

इधर भीम बोल ही रहा था कि इतने में श्रीकृष्ण अर्जुन के रथ पर चढ़ गये और पाण्डव-सेना को सम्बोधन करके जोर से कहने लगा—"पाण्डव सेना के सेनापतियो! अश्वत्थामा ने नारायणास्त्र का प्रयोग किया है। इसलिए तुम लोग अगर रथ में बैठे हो तो रथ में से उतर पड़ो, हाथी पर हो तो हाथी पर से नीचे उतर जाओ, घोड़े पर हो तो घोड़े पर से उतर जाओ और तुम्हारे पास जो शस्त्र हो उसे छोड़कर शांति के साथ नीचे रह रहो। नारायणास्त्र को शान्त कर देने का यही एक उपाय है।"

श्रीकृष्ण के यह कहने के साथ ही अर्जुन रथ पर से नीचे उतरा और अर्जुन की देखादेखी सभी योद्धा नीचे उतर गये।

पर भीमसेन यह कैसे मानता?

"अर्जुन! तूने महाराज को उलहना दिया है, तो मैं अवश्य ही नारायणास्त्र का सामना करने के लिए जाता हूँ, और देखता हूँ कि यह द्रोण का पुत्र मेरा क्या कर सकता है।" यह कहता हुआ भीमसेन ठीक बीचोंबीच चला गया और नारायणास्त्र की प्रलयकारी अग्नि उसके चारों ओर घिर गई।

"श्रीकृष्ण!" अर्जुन घबराकर बोला, "देखिए, भीमसेन तो अन्दर चला गया। हम अगर वहां जायेंगे तो वह न जाने क्या का क्या कर बैठेगा।" और तुरंत ही श्रीकृष्ण तथा अर्जुन भीम के पीछे दौड़ पड़े।

भीम तो अन्दर पहुंच गया था। दोनों वीर वहां पहुंच और

मैंने आशा के जो बड़े-बड़े महल खड़े कर रक्खे थे वे सब आज टूटकर गिर पड़े। भीमसेन ही मेरा सच्चा भाई निकला। उसने हम सबको कई संकटों में से बचाया और आज भी वह हजारों हाथियों और अनेक महारथियों का नाश किये बगैर छावनी में लौटनेवाला नहीं है। तू आचार्य द्रोण का प्रिय शिष्य माना जाता है, तेरे पास गांडीव, रथ, तूणीर आदि सभी साधन हैं, भगवान शंकर जैसों ने तुझे पाशुपतास्त्र दिया और श्रीकृष्ण जैसे तेरे सारथी बने, इतने पर भी तेरे हाथों कर्ण अभी नहीं मरा। अर्जुन! तूने तो कर्ण को मारने की प्रतिज्ञा की है, फिर भी 'कर्ण तो अभी जीवित है' कहते हुए तुझे शर्म नहीं आती? मुझे जो चोटें लगी हैं उन्हें देख। अगर पहले से ही मुझे तेरी निर्वीर्यता का खयाल होता, तो युद्ध की तैयारी करने के पहले ही हम चारों विचार करते, और तुझ पर जरा भी आधार न रखते। युद्ध को शुरू हुए आज चौदह दिन होगये, लेकिन तू तो रथ में बैठकर इधर-उधर दौड़-भाग ही करता रहा है। भीष्म को शिखंडी ने मारा, जयद्रथ को मारना तेरे लिए भारी होगया था, और श्रीकृष्ण न होते तो तुझे ही चिता में जलना पड़ता, द्रोण का वध तो किया धृष्टद्युम्न ने और उसमें मेरा अधम बताने तू झट दौड़ आया। और यह सूतपुत्र कहलानेवाला कर्ण जिस प्रकार सिंह बकरों को मार डालता है उसी प्रकार हमारी सेना का संहार कर रहा है, फिर भी तेरी आंखें नहीं खुलतीं। अर्जुन! तेरा गाण्डीव किसी दूसरे को देदे और श्रीकृष्ण के रथ में किसी दूसरे को

: १० :

अशस्त्र वध

महाराज युधिष्ठिर अपने तंबू में एक सुनहले पलंग पर पड़े हुए थे। उनके शरीर में जगह-जगह घाव हो रहे थे और उनके मरहम पट्टी होरही थी। कितने ही दास-दासियाँ उनका उपचार सम्भाल कर रहे थे। उनके चेहरे पर दुःख और ग्लानि स्पष्ट दिखाई दे रही थी।

अपने तंबू में श्रीकृष्ण और अर्जुन को आते देख युधिष्ठिर बोले, "क्यों श्रीकृष्ण! ऐसे वक्त आप यहाँ कैसे?"

"आप तो कर्ण के साथ युद्ध कर रहे थे। वहीं से एकाएक आप अदृश्य होगये। यह देख मुझे चिन्ता हुई और खोज करते समय समाचार मिला कि आप अपने खीमे में चले आये हैं इसलिए हम लोग आपको खोजते हुए यहाँ चले आये।" अर्जुन ने जवाब दिया।

"बहुत अच्छा किया भाई, जो मेरी खोज करते करते इधर आगये।" युधिष्ठिर लेटे-लेटे उठ बैठे और कहने लगे, "मेरे धन्य भाग्य जो मेरी खोज करते हुए तुम यहाँ आपहुँचे। पर अर्जुन कर्ण को तो मार आये हो न?"

"महाराज! अभी तो वह जीवित है और प्रलयकाल की अग्नि की भाँति हमारी सेना का संहार कर रहा है।" अर्जुन बोला।

"जहाँ तू होगा वहाँ और क्या होगा? अर्जुन! तुमपर

मैंने आशा के जो बड़े-बड़े महल खड़े कर रक्खे थे वे सब आज टूटकर गिर पड़े। भीमसेन ही मेरा सच्चा भाई निकला। उसने हम सबको कई संकटों में से बचाया और आज भी वह हजारों हाथियों और अनेक महारथियों का नाश किये बगैर छावनी में लौटनेवाला नहीं है। तू आचार्य द्रोण का प्रिय शिष्य माना जाता है, तेरे पास गांडीव, रथ, तूणीर आदि सभी साधन हैं, भगवान शंकर जैसों ने तुझे पाशुपतास्त्र दिया और श्रीकृष्ण जैसे तेरे सारथी बने, इतने पर भी तेरे हाथों कर्ण अभी नहीं मरा। अर्जुन! तूने तो कर्ण को मारने की प्रतिज्ञा की है, फिर भी 'कर्ण तो अभी जीवित है' कहते हुए तुझे शर्म नहीं आती? मुझे जो चोटें लगी हैं उन्हें देख। अगर पहले से ही मुझे तेरी निर्वीर्यता का खयाल होता, तो युद्ध की तैयारी करने के पहले ही हम चारों विचार करते, और तुझ पर जरा भी आधार न रखते। युद्ध को शुरू हुए आज चौदह दिन होगये, लेकिन तू तो रथ में बैठकर इधर-उधर दौड़-भाग ही करता रहा है। भीष्म को शिखंडी ने मारा, जयद्रथ को मारना तेरे लिए भारी होगया था, और श्रीकृष्ण न होते तो तुझे ही चिता में जलना पड़ता, द्रोण का वध तो किया धृष्टद्युम्न ने और उसमें मेरा अधम बताने तू झट दौड़ आया। और यह सूतपुत्र कहलानेवाला कर्ण जिस प्रकार सिंह बकरों को मार डालता है उसी प्रकार हमारी सेना का संहार कर रहा है, फिर भी तेरी आँखें नहीं खुलतीं। अर्जुन! तेरा गाण्डीव किसी दूसरे को दे दे और श्रीकृष्ण के रथ में किसी दूसरे को

बैठा, तो उसकी महनत कुछ काम तो आय। अर्जुन! तू उन यहाँ क्यों अपना मुँह दिखा रहा है?" बोलत-बोलते महाराज युधिष्ठिर का शरीर काँपने लगा, उनकी आवाज़ थरथराने लगी, उनकी आँखों में क्रोध था, और उनके घाव मानों पट्टियों के भीतर से फटे जा रहे थे।

अर्जुन युधिष्ठिर के पलंग के पास बैठे-बैठे सब बात सुन रहा था। उसका मन अन्दर-ही-अन्दर न जाने कहाँ जाता था। उसका सारा शरीर काँपने लगा, होंठ फड़कने लगे, और आँखों में खून उमर आया। एकाएक उसका हाथ अपनी कमर पर गया और नागन के समान तलवार म्यान में से बाहर निकल आई।

श्रीकृष्ण यह दृश्य एकाएक खड़े होगये और अर्जुन का हाथ पकड़ते हुए बोले—"अर्जुन! यह क्या?"

"श्रीकृष्ण! इस समय हट जाइए। आज युधिष्ठिर का सिर सुरक्षित नहीं है।"

"अर्जुन! तू यह क्या कह रहा है और किसके सामने बैठा रहा है, इसका भी भान है?" श्रीकृष्ण बोले।

"श्रीकृष्ण! मुझे छोड़ दीजिए।" अर्जुन क्रोध में काँपता हुआ बोला, "मुझे इस समय कुछ भी नहीं सूझ रहा है। मेरा गाण्डीव किसी दूसरे को देने की जो बात कहे उसका अन्त कर देने की प्रतिज्ञा है।"

"हाँ, मैं जानता हूँ कि तेरी ऐसी प्रतिज्ञा है।" श्रीकृष्ण ने कहा।

"तो फिर आज युधिष्ठिर का सिर धड़ से अलग होना ही हिए।" अर्जुन ने कहा।

"अर्जुन किसके सिर की बात कर रहा है यह भी तुझे भान " श्रीकृष्ण ने पूछा।

"श्रीकृष्ण। आप सामने से हट जाइए।" अर्जुन ने जोर र कहा, "हम बरसों से सहन करते आ रहे हैं। पर अब सहन हो सकता। यह जबतक जिन्दा रहेंगे तबतक हमारी गाड़ी रास्ते चलनेवाली नहीं है।"

"वीर अर्जुन। कुन्ती के पुत्र अर्जुन। द्रोण के शिष्य अर्जुन। ब्द तेरे मुँह को शोभा नहीं देते।" श्रीकृष्ण ने कहा, "कुन्ती पुत्र अर्जुन तो जरूरत से ज्यादा बोलता ही नहीं, और जब ता है तब चमड़े की जीभ से नहीं बल्कि गाण्डीव की ज़बान बोलता है।"

"श्रीकृष्ण। यह ठीक है कि मैंने अपने रथ की बागडोर को सौंपी है, पर इस समय मेहरबानी करके आप यहाँसे आइए। मैं सिर्फ एक बार करने की छूट चाहता हूँ।" अर्जुन ा, पर उसका हाथ ढीला पड़ता जा रहा था।

"अच्छी बात है। लेकिन यह वार तू मेरी गर्दन पर कर। के हाथ की मौत भला कहाँ नसीब होती है।" श्रीकृष्ण बोले।

"सच्चा श्रीकृष्ण। आप युधिष्ठिर को बचाकर अर्जुन को गँवा को तैयार हों तो ठीक है।" अर्जुन ने कहा, और यह कहते उसकी तलवार वापस म्यान में चली गई।

बैठा, तो उसकी मेहनत कुछ काम तो आये। अर्जुन! तू मुझे यहाँ क्यों अपना मुँह दिखा रहा है?" बोलते-बोलते महाराज युधिष्ठिर का शरीर काँपने लगा, उनकी आवाज़ थरथराने लगी। उनकी आँखों में क्रोध था, और उनके घाव मानों पट्टियों के भार से फटे जा रहे थे।

अर्जुन युधिष्ठिर के पलंग के पास बैठे-बैठे सब बातें सुन रहा था। उसका मन अन्दर-ही-अन्दर न जाने कहाँ खाता था। उसका सारा शरीर काँपने लगा, होठ फड़कने लगे, और आँखों में खून उतर आया। एकाएक उसका हाथ अपनी कमर पर गया और नागन के समान तलवार म्यान में से बाहर निकल आई।

श्रीकृष्ण यह देख एकाएक खड़े होगये और अर्जुन का हाथ पकड़ते हुए बोले—"अर्जुन! यह क्या?"

"श्रीकृष्ण! इस समय हट जाइए। आज युधिष्ठिर का सिर सुरक्षित नहीं है।"

"अर्जुन! तू यह क्या कह रहा है और किसके सामने बोल रहा है, इसका भी भान है?" श्रीकृष्ण बोले।

"श्रीकृष्ण! मुझे छोड़ दीजिए।" अर्जुन क्रोध में काँपता हुआ बोला, "मुझे इस समय कुछ भी नहीं सूझ रहा है। मेरा गाण्डीव किसी दूसरे को देने की जो बात करे उसका अन्त कर देना मेरी प्रतिज्ञा है।"

"हाँ, मैं जानता हूँ कि तेरी ऐसी प्रतिज्ञा है।" श्रीकृष्ण ने कहा।

"तो फिर आज युधिष्ठिर का सिर धड़ से अलग होना ही
हिए।" अर्जुन ने कहा।

"अर्जुन किसके सिर की बात कर रहा है यह भी मुझे भान
।" श्रीकृष्ण ने पूछा।

"श्रीकृष्ण। आप सामने से हट जाइए।" अर्जुन ने जोर
र कहा, "हम बरसों से सहन करते आ रहे हैं। पर अब सहन
हीं हो सकता। यह जबतक जिन्दा रहेंगे तबतक हमारी गाड़ी
क रास्ते चलनेवाली नहीं है।"

"वीर अर्जुन। कुन्ती के पुत्र अर्जुन। द्रोण के शिष्य अर्जुन।
शब्द तेरे मुँह को शोभा नहीं देते।" श्रीकृष्ण ने कहा, "कुन्ती
पुत्र अर्जुन तो जरूरत से ज्यादा बोलता ही नहीं, और जब
लता है तब चमड़े की जीभ से नहीं बल्कि गाण्डीव की जबान
बोलता है।"

"श्रीकृष्ण। यह ठीक है कि मैंने अपने रथ की बागडोर
पको सौंपी है, पर इस समय मेहरबानी करके आप यहाँसे
जाइए। मैं सिर्फ एक वार करने की छूट चाहता हूँ।" अर्जुन
ला, पर उसका हाथ ढीला पड़ता जा रहा था।

"अच्छी बात है। लेकिन यह वार तू मेरी गर्दन पर कर।
त्र के हाथ की मौत भला कहाँ नसीब होती है।" श्रीकृष्ण बोले।

"सखा श्रीकृष्ण। आप युधिष्ठिर को बचाकर अर्जुन को गँवा
ने को तैयार हों तो ठीक है।" अर्जुन ने कहा, और यह कहते
उसकी तलवार वापस म्यान में चली गई।

"अर्जुन को गँवाने को तो मैं क्या आज सारा त्रिभुवन तैयार नहीं है। यह अठारह अक्षौहिणी की जो बाजी लगा रखी है वह अर्जुन ने ही तो लगा रक्खी है,यह मालूम है न ?" श्रीकृष्ण बोले।

"नहीं, नहीं। मैंने नहीं। यह तो जो पलंग पर पड़े हुए हैं इन्होंने लगा रक्खी है।" अर्जुन ने युधिष्ठिर की ओर इशारा किया।

"अच्छा, श्रीकृष्ण, अब आप जाइए। मैं अपनी प्रतिज्ञा अनुसार युधिष्ठिर को नहीं मारता, इसलिए तलवार का वार अपनी गर्दन पर ही करूँगा। आप रथ लेकर युद्ध में जाइए" अर्जुन बोला।

"महाराज युधिष्ठिर !" श्रीकृष्ण ने कहा, "सुना आपने ?"

"कभीसे सुन रहा हूँ। कई बार आत्महत्या करने का विचार करता हूँ, लेकिन आत्महत्या करनेवाले को असुर लोक जाना पड़ता है इसी विचार से अपनेको रोक रखा है" युधिष्ठिर बोले।

"अर्जुन। तो देख, हम सब ऐसा रास्ता निकालें जिससे तेरी प्रतिज्ञा पूरी होजाय। युधिष्ठिर तेरे बुजुर्ग हैं। बड़ों को तू से बोलना और उनका अपमान करना, उनके वध के बराबर है। इसलिए तू युधिष्ठिर को तू कहकर सम्बोधन कर और उनका अपमान कर, ऐसा करने से तेरी प्रतिज्ञा का पालन होजायगा और मेरी बात भी रह जायगी।" श्रीकृष्ण ने रास्ता निकाला।

इस मार्ग को अनिच्छा से स्वीकार करते हुए अर्जुन बोला—

रे के ढोंगी युधिष्ठिर! पाण्डवों का अनिष्ट करनेवाला तू ही
आम तक बड़ा भाई बनकर तूने हम सबसे खूब सेवायें करवाई हैं
र अपनी भूलों का नतीजा भी हमने खूब सहन किया है। अब-
धम के नाम पर तू अपने विचारों को हमपर लादता रहता
ौर इस तरह हमारे क्षत्रिय-जीवन को तूने धूल में मिला
ा है। जुआ खेला है तूने और वनवास भोगा हमने, प्रतिज्ञायें
की और नपुंसक बनके हमें रहना पड़ा, मुकुट तो तू पहनेगा
र लड़ाई के जोखिमों को हम सहन करें। युधिष्ठिर! भला तेरे
ने पापों को गिनाऊँ?"

अर्जुन कहता ही जा रहा था कि श्रीकृष्ण ने बीच में ही उसे
ः दिया—"अर्जुन! बस, अब बहुत होगया। युधिष्ठिर का
ात से ज्यादा वध होगया। उठ, अब हम चलें।" यह कहकर
ृष्ण उठ खड़े हुए।

लेकिन अर्जुन नहीं उठा।

"अर्जुन! चल! सब हमारी राह देखते होंगे।" श्रीकृष्ण बोले।
लेकिन सुनता कौन? अर्जुन के कान तो उसके अन्तर की
ाई में गहर उतर गये थे। श्रीकृष्ण ने अर्जुन के कन्धे को
पपाया, लेकिन अर्जुन ने उनके सामने देखा नहीं। उसकी
खों से आँसुओं की झड़ी लग गई और थोड़ी देर में तो उसकी
ी बँध गई।

"अर्जुन, सखा अर्जुन! यह क्या कर रहा है?" श्रीकृष्ण ने
ा।

"सखा श्रीकृष्ण। मुझे तो मर ही जाना चाहिए। बड़े भाई युधिष्ठिर को मैंने जो-कुछ कहा, उसका मुझे पछतावा हो रहा है। क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? मौत ही इसका एक रास्ता दिखाई दे रहा है।" अर्जुन सिसकता हुआ बोला।

"अर्जुन। यह पागलों जैसी बात क्यों करता है? 'खुद मरूँ या दूसरे को मारूँ' इसके सिवाय दूसरी बात जीभ से नहीं निकलती क्या?" श्रीकृष्ण ने पूछा।

"श्रीकृष्ण। अब आप जाइए। एक बार आपका कहा मान लिया।" अर्जुन चिढ़कर बोला।

"श्रीकृष्ण। अब हम लोगों का क्या होनेवाला है, यह मुझे भी समझ में नहीं आता।" युधिष्ठिर बोले।

"युधिष्ठिर। घबराइए नहीं।" श्रीकृष्ण बोले, "अर्जुन। तुझे पश्चात्ताप करने की जरूरत नहीं। तेरे हृदय की गहराई में जो थोड़ी-बहुत बातें तूने दाब रक्खी होंगी वे आज बाहर निकल आईं, इसमें प्रायश्चित्त किस बात का? भीम के जब मन में आता है तब बड़-बड़ करके अपने जी का गुबार निकाल देता है। पर तू ज्यादा गम्भीर है, इसलिए युधिष्ठिर के बुरा मानने का ख़याल करके तू बात को दबा जाता है।"

"तो भी मुझे प्रायश्चित्त तो करना ही है। मुझे खुद ही अपना वध करना है।" अर्जुन बोला।

"सखा। जैसे पहले रास्ता निकाला वैसे ही इसका भी रास्ता निकल सकता है। जिस तरह से तूने अपने मुँह से युधिष्ठिर का

किया, उसी तरह अपने ही मुँह अपना गुणगान करे तो वह
वध होजायगा।" श्रीकृष्ण बोले।

अर्जुन एकदम हर्ष के आवेश में आकर अपने आप अपनी
तारीफ़ करने लगा, और आज तक उसने जो-जो पराक्रम किये
उन सबका अतिशयोक्ति के साथ वर्णन शुरू किया। यह सारा
वर्णन करते समय उसको रोमांच हो आया। उसके मुँह पर हर्ष
उसकी आँखों में गर्व था, और उसके सारे शरीर में एक
प्रकार का जोश था।

"अर्जुन। बस, अब चलो। सब हमारी राह देखते होंगे।"
श्रीकृष्ण फिर एक बार बोले।

अर्जुन तुरन्त खड़ा हुआ और युधिष्ठिर की गोदी में सिर
रखकर बोला, "महाराज युधिष्ठिर। मुझे माफ़ कीजिए।"

"भाई अर्जुन। क्षमा तो कौन किसको करे? ऐसे महायुद्धों
—ऐसे दिखाई देनेवाले नर-संहारों में—जैसे जगत् की शुद्धि
हुई है उसी प्रकार ऐसे ऐसे प्रसंगों में हमारी भी आत्मशुद्धि
क्यों न हो?" युधिष्ठिर बोले।

"भाईसाहब। आज मैं कर्ण को जरूर मारूंगा। मेरी यह
प्रतिज्ञा सत्य ही समझिए। धर्मराज। मुझे आशीर्वाद दीजिए।"
अर्जुन बोला।

"अर्जुन। सुख से जा। तुझे मेरे अनेक आशीर्वाद हैं। कर्ण
को मारकर जल्दी ही आना।" युधिष्ठिर ने अर्जुन का सिर सूँघा।
अर्जुन और श्रीकृष्ण रथ में बैठकर सीधे रण-क्षेत्र गये।

: ११ :

शतरज के सभी मोहरे एकसे

युद्ध के सत्रहवें दिन सूर्यास्त होने से पहले कर्ण के रथ
पहिया पृथ्वी में धँसने लगा और परशुराम के शाप से कर्ण
अस्त्रविद्या भी उसे छोड़कर चली गई। अपने एक हाथ से र
के पहिये को पृथ्वी से बाहर निकालता हुआ और दूसरे ह
से गांडीव धारी अर्जुन से टक्कर लेता हुआ महारथी कर्ण र
में मारा गया और अर्जुन तथा श्रीकृष्ण ने कर्ण के धराशायी हो
का समाचार युधिष्ठिर को सुनाया।

अठारहवें दिन शल्य सेनापति हुए और दिन समाप्त हो
होते महाराज युधिष्ठिर के हाथों युद्ध में मारे गये। उसके ब
महाराज दुर्योधन तालाब में जाकर छिपे और बाद में वहीं भीम
सेन के हाथों गदा-युद्ध में मारे गये।

इस प्रकार अठारह दिन का महाभारत-युद्ध समाप्त हु
और युद्ध के अंत में पाण्डव विजयी हुए। दुर्योधन की मृत्यु
बाद पाण्डव निस्तेज और अनाथ कौरव-सेना की छावनी में
दाखिल हुए।

छावनी के दरवाजे पर आकर श्रीकृष्ण ने अर्जुन का र
खड़ा किया और कहा, "अर्जुन! तू रथपति है और मैं तेर
सारथी हूँ, इसलिए शिष्टाचार की खातिर रोज मैं पहले उतर

ा और बाद मैं उतरता था। लेकिन आज रथ पर से तू
हले उतर, अपना गाण्डीव और तरकस भी उतारले। मैं बाद में
उतरूँगा। इस बारे में मुझसे कुछ पूछने की जरूरत नहीं है।"

श्रीकृष्ण के यह कहते ही गाण्डीव और तरकस लेकर अर्जुन
रथ से उतर गया और उसके बाद श्रीकृष्ण उतरे। श्रीकृष्ण के
उतरते ही सारा रथ जल उठा।

अर्जुन और उसके भाई रथ को जलते देख बड़े चकित हुए।
तब श्रीकृष्ण ने कहा, "अर्जुन! भीष्म और द्रोण के दिव्यास्त्रों से
यह रथ अंदर ही अंदर पहले ही से जल रहा था, लेकिन मैंने
अपनी माया से इसे टिका रक्खा था।"

"श्रीकृष्ण! यह रथ तो वरुण का था न?" अर्जुन ने पूछा।

"हाँ, वरुण का था और वरुण के पास ही जायगा। महाराज
युधिष्ठिर! आपको मालूम होगा कि ईश्वरी संकेत की सिद्धि के
लिए अर्जुन को वरुण का यह रथ मिला था। आज आपकी
विजय होकर ईश्वरी संकेत सिद्ध हुआ, इसलिए अर्जुन का
अवतार-कृत्य भी पूरा होगया।" श्रीकृष्ण बोले।

"महाराज श्रीकृष्ण! यह तो बड़े आश्चर्य की बात है।"
युधिष्ठिर बोले।

"युधिष्ठिर! आप तो धर्मतत्त्वों के जाननेवाले हैं, इसलिए यह
तो जानते ही होंगे कि जगत् में इसके पहले भी ऐसे अनेक महाभारत-
युद्ध हुए हैं और अर्जुन जैसे अनेक अवतारी पुरुषों ने विजय
प्राप्त की है। जबतक यह सृष्टि चलेगी तबतक इसी प्रकार

दुर्योधन उत्पन्न होते रहेंगे और ऐसे दुर्योधनों की जाँघ चीरकर उनके सिर में लात मारनेवाले भी उत्पन्न होते ही रहेंगे। आज जो काम अर्जुन और भीमसेन ने किया है, भूतकाल में दूसरे भीम और अर्जुन थे, भविष्य में नये भीम और अर्जुन पैदा होंगे। इन सब अर्जुनों को अपने कार्य के लिए दिव्य अस्त्रों की जरूरत होती है, और सनातन ऋषि वरुण ऐसे अधिकारी पुरुषों की इस जरूरत को पूरी करते हैं। आज अर्जुन का यह रथ जल गया, इससे यही समझना चाहिए कि जिस काम के लिए अर्जुन का अवतार हुआ था वह अब पूरा होगया है।"

"महाराज! अबतक भला यह रथ क्यों नहीं जला था?" युधिष्ठिर ने कहा।

"युधिष्ठिर! युद्ध शुरू होने से पहले आपने मुझे कहा था कि इस अर्जुन का हाथ मैं तुम्हें सौंपता हूँ। इसलिए मैंने अपने प्रभाव से अबतक अर्जुन को बचाया है। पाण्डवो! आज हम कौरवों की इस निराधार छावनी में प्रवेश कर रहे हैं। आप यह अभिमान अपने मन में कभी न रक्खें कि आपने कौरवों को धर्मयुद्ध से ही जीता है। यह आप निश्चित समझें कि खुद मैंने भी अधर्म से जहाँ-जहाँ मदद की है उस सबका इस देह को भी फल भोगना पड़ेगा। इस दुनिया में कितनी बार जहर से ही जहर का नाश होता देखा गया है। उसी प्रकार इस युद्ध में भी कई बार हुआ है। आज तो अब आप विजयी हुए हैं। इस विजय का अच्छी तरह भोग करो। कुछ समय के बाद जब सब शांति होगी तब आप

तपनेआप मालूम होजायगा कि इस विजय के अंदर कितना स्वच्छ जल था और कितना कचरा था।" श्रीकृष्ण ने समझाया।

"महाराज श्रीकृष्ण। हमें इस युद्ध में जो विजय मिली है वह तो आपकी सहायता से ही मिली है। इस विजय में मैं तो अर्जुन का भी कोई बहुत श्रेय नहीं मानता। आप अगर न होते तो भीष्म ने दो बार अर्जुन को जब परेशानी में डाल दिया था तब कौन हमारी सहायता करता? आप न होते तो शिखंडी को सामने रखकर भीष्म का संहार करने की प्रेरणा अर्जुन को कौन करता? आप न होते तो द्रोण के हाथ में से शस्त्र नीचे रखने की युक्ति कौन सुझाता? आप न होते तो हम दोनों को आत्म-हत्या करने से कौन रोकता? आप न होते तो कर्ण के बाण पर बैठे हुए सप से अर्जुन की रक्षा कौन करता? आप न होते तो दुर्योधन की जाँघ में गदा मारने की किसे सूझती? आप न होते तो इस रथ पर से अर्जुन को कौन नीचे उतारता? ये तो इन अठारह दिन के बड़े-बड़े प्रसंग ही हैं। बाकी तो हमार सारे जीवन में छोटे-मोटे प्रसंगों पर, श्रीकृष्ण, आप न होते तो हम तो जी भी नहीं सकते थे। इसलिए, हे केशव। मैं तो आपको ही इस विजय का सारा श्रेय देता हूँ।" युधिष्ठिर ने अत्यन्त आदरपूर्वक कहा और श्रीकृष्ण के पैरों में पड़ गये।

"महाराज युधिष्ठिर। पैरों में पड़ने का पात्र तो मैं हूँ। आप अर्जुन के बड़े भाई हैं, इसलिए मेरे भी बड़े भाई हैं। यह बतलाइए, कि अब मेरा कोई और काम है?" श्रीकृष्ण न पूछा।

"श्रीकृष्ण। आप ही कर सकें ऐसा एक काम और करने रह गया है। इस युद्ध के सब समाचार हस्तिनापुर पहुँच गये हैं। यह आज तो नहीं मालूम हो सकता कि इस युद्ध में हमने धर्माचरण किया या अधर्माचरण। लेकिन महासती गांधारी युद्ध के समाचार सुनकर अत्यन्त दुःखी होंगी और अपने पुत्रों का नाश हो जाने के कारण उनका क्रोध करना भी स्वाभाविक ही है। पर गान्धारी का क्रोध तो हमारे लिए मानों साक्षात् मृत्यु ही है। इसलिए मेरी प्रार्थना है कि आप हस्तिनापुर जाकर जैसे भी हो गांधारी को शान्त कीजिए, नहीं तो वह सती अगर भीम व अर्जुन को शाप दे देंगी तो हमारी इस विजय में कलङ्क पड़ जायगा। महाराज। यह कार्य आपके सिवा और किसीसे नहीं होगा। इसलिए आप हस्तिनापुर जाकर गांधारी को शान्त कीजिए।"

युधिष्ठिर की यह बात सुनकर श्रीकृष्ण हस्तिनापुर जाने को तैयार हुए और पाण्डव इस विजय का जगत् के कल्याण के लिए अब कैसा और किस प्रकार उपयोग करें इसका विचार करने लगे।

× × ×

पाँचों पाण्डव और सती द्रौपदी हिमालय की ओर चले। एक कुत्ता भी ठेठ हस्तिनापुर से उनके पीछे-पीछे चला आ रहा था।

रास्ते में एक बड़ा-सा तालाब आया। उसके किनारे एक आदमी खड़ा था। ज्योंही पाण्डव तालाब के पास से गुजरे, उसने कहा—"अर्जुन। मुझे पहचाना?"

"आप कौन हैं ?" अर्जुन ने पूछा।

"मैं अग्नि हूँ।"

"इस समय यहाँ क्यों खड़े हैं ? अब खाण्डव-वन में नहीं रहते ?" अर्जुन ने पूछा।

"आपके खाण्डव-वन को जला देने के बाद उन सब लोगों ने मुझे आराम से राज्य तो करने ही नहीं दिया। वन सर्व लोगों के अन्दर तक्षक आदि जो अराजक युवक हैं, वे किसीको शान्ति से रहने दें ऐसे नहीं हैं। मैंने आपको अब अपनी मदद के लिए बुलाया तभी मुझे यह लगता तो था कि इनको जला डालना इन-पर राज्य करने का सच्चा मार्ग नहीं है। लेकिन यह बात मेरे मन में अच्छी तरह जमी नहीं थी, इसलिए खाण्डव-वन को जलाकर तहस-नहस कर डाला। पर आज उन लोगों ने मुझे खाण्डव वन में से निकाल दिया है और समय बीतने पर ये लोग आपके वंश से भी अपना बदला लें तो कोई ताज्जुब की बात न होगी।" अग्नि बोला।

"अग्निदेव। आपने खाण्डव-वन को जलाकर उसका त्याग किया और हम हस्तिनापुर को प्राप्त करके उसका त्याग कर रहे हैं।" यह कहकर अर्जुन आगे चलने लगा।

"अर्जुन।" अग्निदेव ने आवाज दी, "जाते कहाँ हो ? गाण्डीव और ये दो तरकस वरुण को दिये बग़ैर कहाँ चले ? गाण्डीव के जड़े हुए रत्नों पर मन उलझा गया है क्या ?"

"लोभ तो कोई है नहीं। यही मन में था कि इनको भी अगर

साथ में रक्खा तो क्या हर्ज है ?" अर्जुन ने जवाब दिया, और गाण्डीव तथा तरकस अग्नि के आगे रख दिये।

"हर्ज तो है ही। तुम्हारा जन्म जिस काम के लिए हुआ था वह पूरा होगया, इसलिए इनका तुम्हारे पास रहना न रहना एक ही बात है। वही गाण्डीव आज तुम्हारे हाथ में गाण्डीव का काम नहीं देगा। तुमने यह नहीं देखा कि भीष्म और द्रोण जैसे महारथियों से लोहा करानेवाला यह गाण्डीव श्रीकृष्ण की स्त्रियों को हरने-वाले डाकुओं के सामने साधारण लकड़ी के समान होगया था ? अर्जुन। मनुष्यों के भी दिन होते हैं। तुम्हारा एक दिन था; आज नहीं है। एक दिन तुमने हज़ारों शत्रुओं को एक सपाटे में ज़मीन पर सुला दिया था, पर एक दिन तुम ही बभ्रुवाहन के हाथ से रथ में गिर पड़े थे। अर्जुन। वक्त-वक्त का फ़र है। इसलिए शोक मत करो। मनुष्य अगर यह मानना छोड़ दे कि मैं बलवान हूँ और काल भगवान् की प्रेरणा से जो-कुछ करे उसमें अभिमान न माने तो सब ठीक है। पाण्डवो। जाओ। काल भगवान् तुम्हें कल्याण के मार्ग पर लेजायें।"

यह कहकर अग्निदेव ने सबको आशीर्वाद दिया और गाण्डीव तथा दोनों तरकसों को लेकर उस सरोवर में फेंक दिया। तुरंत ही सरोवर में से एक हाथ ऊपर आया और गाण्डीव तथा तरकस को लेकर अन्दर चला गया।

अर्जुन मन में गुनगुनाया—"यह काल भगवान का हाथ तो नहीं था ?"

पाँचों पाण्डव और द्रौपदी आगे चले। रास्ते में नकुल गिरा, सहदेव गिरा, देवी पांचाली गिरी और बाद में अर्जुन भी गिर पड़ा।

"भीमसेन। मेरे सिर में चक्कर आ रहे हैं।" यह कहकर अर्जुन बैठ गया।

"भाई अर्जुन। क्यों, क्या हो रहा है?" भीम ने पूछा।

"क्या हो रहा है, यह तो मालूम नहीं होता। लेकिन जी बहुत घबरा रहा है और आँखों के सामने अँधेरा आ रहा है।" अर्जुन बोला।

"युधिष्ठिर! हम लोग आज यहीं ठहर जायें तो कैसा?" भीम ने कहा।

"भीमसेन! नहीं, यह नहीं हो सकता। यह तो मेरे विश्राम की जगह है। प्यारे भीमसेन! देवी पांचाली जहाँ चली गई, वहीं अब मैं भी चला समझो।" अर्जुन बोला।

"अर्जुन! तो तू भी जायगा? हे भगवान, यह क्या हो रहा है?" भीम ने हिम्मत हारते हुए कहा।

"श्रीकृष्ण ने मुझसे कहा था और अग्नि ने भी मुझे पहले ही से सावधान किया था कि तेरा जीवन-कार्य पूरा होगया। पर मैं यह पूरी तरह समझा नहीं। महाराज युधिष्ठिर! अब यह समझ में आ रहा है कि अपना जीवन-कार्य पूरा होने के बाद भी मनुष्य ममता का मारा संसार-सागर में इधर-उधर हाथ-पैर मारता रहता है, और काल भगवान् जबतक उसके शव का नाश नहीं कर डालते तबतक वह इस सागर में तैरने का प्रयत्न करता

ही रहता है। इसका एक उदाहरण मैं खुद ही हूँ। भीमसेन! जिनके प्रताप से हम लोग इस युद्ध में पार उतरे वह श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान थे। उनका अपना जीवन कार्य पूरा होते ही उन्होंने उसी तरह अपनी देह का त्याग कर दिया जैसे सर्प अपनी केंचुली उतार डालता है। न द्वारिका रोक सकी, न सोलह हजार स्त्रियाँ, न पुत्र, न चक्र और गदा, और न हम सब ही उन्हें रोक सके। मुझे श्रीकृष्ण 'सखा' कहते थे। इसमें उनका ही बड़प्पन था। परन्तु मैं पामर समझा नहीं, इसलिए मेरा अभिमान बढ़ा—इतना बढ़ा जिसकी कोई हद नहीं। श्रीकृष्ण गये और चोरों ने मुझे लूटा, तब मेरी आँखें पहली बार खुलीं, और उसके बाद तो बहुत बार खुली और बन्द होती रही हैं। भीमसेन! इस अभिमान ने मेरा नाश किया है, यही समझना। महाराज युधिष्ठिर! अर्जुन का अन्तिम प्रणाम। भीमसेन! इस अभिमान की गठरी आज मेरे हृदय पर कितनी भारी लगती होगी, उसका खयाल तुम्हें नहीं आ सकता। मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए मनुष्य के हृदय पर ऐसा ही एक प्रकार का बोझा मालूम होता होगा। श्रीकृष्ण! अब एक बार और मेरे सारथी बनोगे? अब मैं आपको पहचान गया, इसलिए भूल नहीं सकता। आजतक तो मैं शिष्टाचार की भाषा में कहता था कि 'यह विजय आपने ही दिलाई है।' पर मनुष्य-मात्र कितना निर्बल है, इसका सच्चा अनुभव तो आज हो रहा है, इसलिए मैं जीऊँगा, और यही मानकर जीऊँगा कि विजय आपकी ही हुई है।

"लेकिन, यह सब व्यर्थ है। भीमसेन। मैं तो चला। एक बार मेरे सारे अभिमान का हिसाब चुकता कर लेने दो। यह भीष्म पितामह खड़े हैं, यह जयद्रथ अपना हिसाब लेकर खड़े हैं, द्रोणाचार्य तो अश्वत्थामा का खाता भी अपने हिसाब में लिख रहे हैं, और कर्ण – सूतपुत्र ? नहीं-नहीं, कुन्ती पुत्र मेरा बड़ा भाई कर्ण भी तो हिसाब लेकर खड़ा-खड़ा हँस रहा है। इन सबके हिसाबों में मेरा भी खाता है और श्रीकृष्ण का भी खाता है। खड़े-खड़े सब मुझे इशारे से कह रहे हैं कि श्रीकृष्ण का खाता इन सबने साफ़ कर दिया है, लेकिन मेरा खाता तो अभी बाक़ी है। पितामह, भाई कर्ण, जयद्रथ, गुरु द्रोण। आप सब जब मुझे अपने कर्ज से मुक्ति देंगे तभी मुझे शांति मिलेगी।"

"भाई अर्जुन। जरा शान्त तो रह। श्रीकृष्ण को याद कर तो ज़रा शान्ति मिलेगी।" युधिष्ठिर बोले।

"यही मेहनत करता हूँ, लेकिन वह तो दूर-ही-दूर छिपते जा रहे हैं। और मेरे ये सब लेनदार मुझे शांति से बैठने दें तब न। महाराज युधिष्ठिर। प्रणाम। जिस विजय के लिए हम सब जीये उसका जब सार निकालता हूँ तब दिवाला ही दिखाई देता है। भाई-साहब। यह अफ्ल आज बहुत देर से आई। इस समय तो विजय के खून से सने हुए इन हाथों में अभी भी बदबू आ रही है। स्वर्ग-गंगा में धोने से यह बदबू चली जाय तो चली जाय, नहीं तो यह बदबू लेकर ही शायद अगला जन्म लेना पड़े। भाई भीम। भाईसाहब युधिष्ठिर। मुझे आज्ञा दो। पितामह। आपका यह

पुत्र भी आया। कर्ण! अब अगर तुम्हारा रथ पृथ्वी में धँसा
मैं उस पहिये को बाहर निकालूँगा।"

महाराज पाण्डु के पुत्र, कुन्ती के बहादुर बेटे, इन्द्र
द्रोणाचार्य के प्रिय शिष्य, पाञ्चाली के प्राण, श्रीकृष्ण के सखा,
के कट्टर शत्रु, अभिमन्यु के पिता, सुभद्रा के पति, गाण्डीव धा
करनेवाले, सारी पाण्डव-सेना को युद्ध में पार लगानेवाले
युधिष्ठिर के गले में विजयमाला पहनानेवाले अर्जुन ने इसी प्र
बोलते-बोलते अपने प्राण त्याग दिये।

सस्ता साहित्य मण्डल
सर्वोदय साहित्यमाला बानवेवाँ ग्रन्थ

[गांधी साहित्य माला : दूसरी पुस्तक]

[९२ . २]

ब्रह्मचर्य

[सयम तथा ब्रह्मचर्य पर गांधीजी के लेखों का संग्रह]

लेखक

महात्मा गांधी

सस्ता साहित्य मण्डल

दिल्ली लखनऊ

प्रकाशक,
मार्तण्ड उपाध्याय, मन्त्री
सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली।

संस्करण
अगस्त, १९३९ : २०००
मूल्य
आठ आना

मुद्रक,
एम० एन० कुल्हल,
फेडरल ट्रेड प्रेस,
नया बाजार, दिल्ली।

प्रकाशक की ओर से

महात्माजी की महल से प्रकाशित 'अनीति की राह पर' स्तक पाठकों ने देखी ही होगी। 'ब्रह्मचर्य तथा संयम बनाम ोग' पर गाँधीजी के लेखों का हिन्दी में वह पहला संग्रह था। ्समें सन् १९३७ तक के लेख उसमें आगये हैं। उसके बाद से ाजतक के गाँधीजी के लेखों का यह दूसरा संग्रह है। इसे अनीति की राह पर', का दूसरा भाग भी समझ सकते हैं। किसी वजह से जो लेख पहले भाग में न आपाये, वे इसमें ले लिये गये हैं। आशा है पाठकों को यह संग्रह रुचेगा और इसको ज्यादा-से-ज्यादा तादाद में खरीदकर अपनावेंगे। इसमें कहीं कोई त्रुटि हो तो सूचित करने की कृपा करें।

—मंत्री

विषय-सूची

१ ब्रह्मचर्य — ३
२ सन्तति निग्रह—१ — ७
३ „ „ —२ — १२
४ ब्रह्मचर्य — १६
५. सम्भोग की मर्यादा — २०
६ कृत्रिम साधनों से सन्तति-निग्रह — २५
७ सुधारक बहनों से — ३२
८ फिर वही संयम का विषय — ४१
९. संयम द्वारा सन्तति निग्रह — ४६
१० कैसी नाशकारी चीज है ? — ४९
११ अरण्य-रोदन — ५२
१२. आश्चर्यजनक, अगर सच है ! — ५७
१३ अप्राकृतिक व्यभिचार — ६०
१४ बढ़ता हुआ दुराचार ? — ६३
१५ नम्रता की आवश्यकता — ६६
१६ सुधारकों का कर्तव्य — ७१
१७ नवयुवकों से — ७५
१८ भ्रष्टता की ओर — ७९
१९. एक युवक की कठिनाई — ८५
२० विद्यार्थियों के लिए — ८९
२१ विद्यार्थियों की दशा — ९६
२२. ब्रह्मचर्य पर नया प्रकाश — ९८
२३ धर्म-संकट —१०१

ब्रह्मचर्य

१

ब्रह्मचर्य

हमारे व्रतों में तीसरा व्रत ब्रह्मचर्य का है। वास्तव में तो दूसरे सभी व्रत एक सत्य के व्रत में से ही उत्पन्न होते हैं और उसीके लिए उनका अस्तित्व है। जिसने सत्य का आश्रय लिया है, उसी की उपासना करता है, वह दूसरी किसी भी वस्तु की आराधना करे तो व्यभिचारी बन गया। फिर विकार की आराधना तो की ही कैसे जा सकती है? जिसकी सारी प्रवृत्तियाँ एक सत्य के दर्शन के लिए ही हैं वह सन्तान उत्पन्न करने या घर गिरिस्ती चलाने में पड़ ही कैसे सकता है? भोग-विलास द्वारा किसी को सत्य प्राप्त होने की आजतक एक भी मिसाल हमारे पास नहीं है।

अहिंसा के पालन को लें तो उसका पूरा पूरा पालन भी ब्रह्मचर्य के बिना असाध्य है, अहिंसा अर्थात् सर्व-व्यापी प्रेम। जिस पुरुप ने एक स्त्री को या स्त्री ने एक पुरुप को अपना प्रेम सौंप दिया उसके पास दूसरे के लिए क्या बच गया? इसका अर्थ ही यह हुआ कि 'हम दो पहले और दूसरे सब बाद को।' पतिव्रता स्त्री पुरुप के लिए और पत्नीव्रती पुरुप स्त्री के लिए सर्वस्व होमने को तैयार होगा, इससे यह स्पष्ट है कि उसमें सर्व

व्यापी प्रेम का पालन हो ही नहीं सकता। वह सारी सृष्टि
अपना कुटुम्ब बना ही नहीं सकता, क्योंकि उसके पास अप
अपना माना हुआ एक कुटुम्ब मौजूद है या तैयार हो रहा
जितनी उसकी वृद्धि उतना ही सर्वव्यापी प्रेम में विक्षेप
सारे जगत् में हम यही होता हुआ देख रहे हैं। इसलिए अहि
व्रत का पालन करनेवाला विवाह के बन्धन में नहीं पड़ सकता
विवाह के बाहर के विकार की तो बात ही क्या?

तब जो विवाह कर चुके हैं उनकी गति? उन्हें सत्य
प्राप्ति कभी न होगी? वे कभी सर्वार्पण नहीं कर सकते?
इसका रास्ता निकाला ही है—विवाहित अविवाहित-सा हो
इस बारे में इससे बढ़कर मुझे दूसरी बात नहीं मालूम हुई। इस
स्थिति का मजा जिसने चखा है, वह गवाही दे सकता है। आ
तो इस प्रयोग की सफलता सिद्ध हुई कही जा सकती है। विवाहि
स्त्री-पुरुष का एक-दूसरे को भाई-बहन मानने लग जाना, स
झगड़ों से मुक्त हो जाना है। संसार-भर की सारी स्त्रियाँ बहनें
माता हैं, लड़की हैं—यह विचार ही मनुष्य को एकदम ऊँचा
जाने वाला है बन्धन से मुक्त कर देनेवाला हो जाता है। इसमें
पति-पत्नी कुछ खोते नहीं, उलटे अपनी पूँजी बढ़ाते हैं कुटुम्ब
बढ़ाते हैं। प्रेम भी विकार-रूप-मैल के निकालने से बढ़ता है।
विकार चले जाने से एक दूसरे की सेवा भी अधिक अच्छी
सकती है, एक दूसरे के बीच कलह के अवसर कम होते हैं।
जहाँ स्वार्थी एकाँगी प्रेम है, वहाँ कलह के लिए ज्यादा

गुप्साहरा है।

उपरोक्त प्रधान विचार कर लेने और उसके हृदय में बैठ जाने के बाद ब्रह्मचर्य से होने वाले शारीरिक लाभ, वीर्य-रक्षा आदि बहुत गौण हो जाते हैं। जान-बूझकर भोग-विलास के लिए वीर्य खोना और शरीर को निचोड़ना कितनी बड़ी मूर्खता है? वीर्य का उपयोग तो दोनों की शारीरिक और मानसिक शक्ति को बढ़ाने के लिए है। विषय-भोग में उसका उपयोग करना उसका अति दुरुपयोग है, और इस कारण वह बहुतेरे रोगों की जड़ बन जाता है।

ऐसे ब्रह्मचर्य का पालन मन, वचन और काया से होना चाहिए। सारे व्रतों के विषय में यही बात है। हमने गीता में पढ़ा है कि जो शरीर को वश में रखता हुआ जान पड़ता है, पर मन से विकार का पोषण किया करता है, वह मूढ़ मिथ्याचारी है। सबको इसका अनुभव होता है। मन को विकारी रहने देकर शरीर को दबाने की कोशिश करना हानिकर ही है। जहाँ मन है, वहाँ अन्त को शरीर भी घसिटाये बिना नहीं रहता। यहाँ एक भेद समझ लेना जरूरी है। मन को विकारवश होने देना एक बात है, और मन का अपने आप, अनिच्छा से, बलात् विकार को प्राप्त हो जाना या होते रहना दूसरी बात है। इस विकार में यदि हम सहायक न बनें तो अन्त में जीत ही है। हम प्रतिपल यह अनुभव करते हैं कि शरीर तो क़ाबू में रहता है, पर मन नहीं रहता। इसलिए शरीर को तुरन्त ही वश में करके मन को वश

में करने का हम सतत यत्न करते रहें तो हमने अपने कर्तव्य का पालन कर लिया। हम मन के अधीन हुए कि शरीर और मन में विरोध खड़ा हो जाता है, मिथ्याचार का आरम्भ हो जाता है। पर कह सकते हैं कि मनोविकार को दबाते ही रहने तक हम साथ-साथ जाने वाले हैं।

इस ब्रह्मचर्य का पालन बहुत कठिन, लगभग असम्भव माना गया है। इसके कारण की खोज करने से मालूम होता है कि ब्रह्मचर्य का संकुचित अर्थ किया गया है। जननेन्द्रिय-विकार के विरोधमात्र को ही ब्रह्मचर्य का पालन मान लिया गया है। मेरी राय में यह अधूरी और गलत व्याख्या है। विषयमात्र का निरोध ही ब्रह्मचर्य है। जो और और इन्द्रियों को जहाँ-तहाँ भटकने देकर केवल एक ही इन्द्रिय को रोकने का प्रयत्न करता है, वह निष्फल प्रयत्न करता है, इसमें सन्देह क्या है? कान से विषय की बातें सुनना, आँख से विकार उत्पन्न करने वाली वस्तु देखना, जीभ से विकारोत्तेजक वस्तु का स्वाद लेना, हाथ से विकारों को उभारने वाली चीज़ को छूना और जननेन्द्रिय को रोकने का इरादा रखना, यह तो आग में हाथ डालकर जलने से बचने का यत्न करने-जैसा है। इसलिए जो जननेन्द्रिय को रोकने का निश्चय करे उसका सभी इन्द्रियों को अपने अपने विकारों से रोकने का निश्चय पहले किया हुआ होना चाहिए। मुझे सदा ऐसा जान पड़ा है कि ब्रह्मचर्य की संकुचित व्याख्या से नुकसान हुआ है। मेरा तो यह निश्चय मत है और अनुभव है कि यदि हम सब

न्द्रियों को एक साथ वश में करने का अभ्यास करें तो जन-
न्द्रिय को वश में करने का प्रयत्न शीघ्र ही सफल हो सकता है।
नमें मुख्य वस्तु स्वादेन्द्रिय है। इसीलिए उसके संयम को हमने
स्वक स्थान दिया है। उस पर अगली बार विचार करेंगे।

ब्रह्मचर्य के मूल अर्थ को सब याद रक्खें। ब्रह्मचर्य अर्थात् ब्रह्म
नी—सत्य की—शोध में चर्या, अर्थात् तत्सम्बन्धी आचार। इस
ल अर्थ से सर्वेन्द्रिय-संयम का विशेष अर्थ निकलता है। केवल
ननेन्द्रिय-संयम के अधूरे अर्थ को तो हमें भूल ही जाना
चाहिए।

गल-प्रभात, ५-८-३०

२

सन्तति-निग्रह—१

मेरे एक साथी ने, जो मेरे लेखों को बड़े ध्यान के साथ पढ़ते
रहते हैं, जब यह पढ़ा कि सन्तति-निग्रह के लिए सम्भवतः मैं
उन दिनों सहवास करने की बात स्वीकार कर लूँगा जिनमें कि
गर्भ रहने की सम्भावना नहीं होती, तो उन्हें बड़ी बेचैनी हुई।
मैंने उन्हें यह समझाने की कोशिश की कि कृत्रिम साधना से
सन्तति-निग्रह करने की बात मुझे जितनी खलती है उतनी यह
नहीं खलती, फिर यह है भी अधिकतर विवाहित दम्पतियों के ही
लिए। आखिर बहस बढ़ते-बढ़ते इतनी गहराई पर चलती गई

जिसकी हम दोनों में से किसी ने आशा न की थी। मैंने [illegible]
कि यह बात भी उन मित्र को कृत्रिम साधनों से सन्तति-निग्रह
करने-जैसी ही बुरी प्रतीत हुई। इससे मुझे मालूम [illegible]
कि यह मित्र स्मृतियों के इस बन्धन को साधारण मनुष्यों के लि[illegible]
व्यवहार-योग्य समझते हैं कि पति-पत्नी को भी तभी सहवा[illegible]
करना चाहिए, जबकि उन्हें सचमुच सन्तानोत्पत्ति की इच्छा [illegible]
इस नियम को जानता तो मैं पहले से था, लेकिन उस इस [illegible]
में पहले कभी नहीं माना था, जिस रूप में कि इस बातचीत [illegible]
बाद मानने लगा हूँ। अभी तक तो, पिछले कितने ही सालों [illegible]
मैं इसे ऐसा पूर्ण आदर्श ही मानता आया हूँ, जिसपर ज्यों-का-[illegible]
अमल नहीं हो सकता। इसलिए मैं समझता था कि सन्तान[illegible]
त्पत्ति की आम इच्छा के बगैर भी विवाहित स्त्री-पुरुष अगर
एक दूसरे की रजामन्दी से सहवास करें तबतक वे वैवाहि[illegible]
उद्देश्य की पूर्ति करते हुए स्मृतियों के आदेश का भंग नहीं कर[illegible]
लेकिन जिस नये रूपमें अब मैं स्मृति की बात को लेता हूँ [illegible]
मेरे लिए मानों एक इलहाम है। स्मृतियों का जो यह कहना
कि जो विवाहित स्त्री-पुरुष इस आदेश का दृढ़ता के साथ पा[illegible]
करें वे वैसे ही ब्रह्मचारी हैं जैसे अविवाहित रहकर सदाचा[illegible]
जीवन व्यतीत करने वाले होते हैं उस अब मैं इतनी अच्छी त[illegible]
समझ गया हूँ जैसे पहले कभी नहीं जानता था।

इस नए रूप में, अपनी कामवासना को तृप्त करना न[illegible]
बल्कि सन्तानोत्पत्ति ही सहवास का एकमात्र उद्देश्य है। साधार[illegible]

म पूर्ति तो, विवाह की इस दृष्टि से, भोग ही माना जायगा।
स आनन्द को अभी तक हम निर्दोष और वैध मानते आये हैं
के लिए ऐसे शब्द का प्रयोग कठोर तो मालूम होगा, लेकिन
चलित प्रथा की बात मैं नहीं कर रहा हूँ, बल्कि उस विवाह
धान को ले रहा हूँ जिसे हिन्दू-ऋषियों ने बताया है। यह हो
कता है कि उन्होंने इसे ठीक ढंग से न रक्खा हो या यह बिल्कुल
लत ही हो, लेकिन मुझ-जैसे आदमी के लिये तो, जो स्मृतियों
कई बातों को अनुभव के आधार-भूत मानता है, उनके अर्थ
पूरी तरह स्वीकार किये बग़ैर कोई चारा ही नहीं है। कुछ
नी बातों को उनके पूरे अर्थों में ग्रहण करके प्रयोग में लाने
अलावा और कोई ऐसा तरीक़ा मैं नहीं जानता जिससे उनकी
चाई का पता लगाया जा सके। फिर वह जाँच कितनी ही कड़ी
ों न प्रतीत हो और उससे निकलने वाले निष्कर्ष कितने ही
ोर क्यों न लगें।

ऊपर मैंने जो-कुछ कहा है उसको देखते हुए, कृत्रिम साधनों
ऐसे दूसरे उपायों से सन्तति निग्रह करना बड़ी भारी ग़लती
। अपनी जिम्मेवारी को पूरी तरह समझते हुए मैं यह लिख
रहा हूँ। श्रीमती मार्गरेट सेंगर और उनके अनुयायियों के लिए
मनमें बड़े आदर का भाव है। अपने उद्देश्य के लिए उनके
न्दर जो अदम्य उत्साह है उससे मैं बहुत प्रभावित हुआ हूँ।
मी मैं जानता हूँ कि स्त्रियों को अनचाहे बच्चों की सार-सम्हाल
र परवरिश करने के कारण जो कष्ट उठाना पड़ता है, उसके

लिए उनके मनमें स्त्रियों के प्रति बड़ी सहानुभूति है। मैं
यह भी मैं जानता हूँ कि कृत्रिम सन्तति-निग्रह का समर्थन
धर्माचार्यों, वैज्ञानिकों, विद्वानों और डाक्टरों ने भी समर्थन किया
है, जिनमें बहुतों को तो मैं व्यक्तिगत रूप से जानता और
भी हूँ, लेकिन इस सम्बन्ध में मेरी जो मान्यता है उस
पाठकों या कृत्रिम सन्तति निग्रह के महान समर्थकों से छि
तो मैं अपने ईश्वर के प्रति, जोकि सत्य के अलावा और
नहीं है, सच्चा साबित नहीं होऊँगा। और अगर मैंने अपनी मान्य
को छिपाया तो यह निश्चित है कि अपनी गलती पर,
मेरी यह मान्यता गलत हो, मैं कभी नहीं जान सकूँगा। इसके
इसके, उन अनेक स्त्री-पुरुषों की खातिर भी मैं यह जाहिर
रहा हूँ जो कि सन्तति-निग्रह सहित अनेक नैतिक समस्याओं
बारे में मेरे आदेश और मत को स्वीकार करते हैं।

सन्तति-निग्रह होना चाहिए, इस बात पर तो वे भी
हैं जो इसके लिए कृत्रिम साधनों का समर्थन करते हैं और
जो अन्य उपाय बतलाते हैं। आत्म-संयम से सन्तति निग्रह
में जो कठिनाई होती है, उससे भी इन्कार नहीं किया जा सकता
लेकिन अगर मनुष्य-जाति को अपनी किस्मत जगानी है तो
सिवाय इसकी पूर्ति का कोई और उपाय ही नहीं है, क्योंकि
मेरा आन्तरिक विश्वास है कि कृत्रिम साधनों से सन्तति-नि
की बात सबने मंजूर करली तो मनुष्य जाति का बड़ा भारी नैति
पतन होगा। कृत्रिम सन्तति-निग्रह के समर्थक इसके विरुद्ध

प्रमाण पेश करते हैं उनके बावजूद मैं यह कहता हूँ।
मेरा विश्वास है कि मुझमें अन्ध-विश्वास कोई नहीं है। मैं यह
नहीं मानता कि कोई बात इसीलिए सत्य है, क्योंकि वह प्राचीन है।
न यही मानता हूँ कि चूँकि वह प्राचीन है इसलिए उसे सन्दिग्ध
माना जाय। जीवन के आधारभूत कई ऐसी बातें हैं जिन्हें हम यह
कहकर यों ही नहीं छोड़ सकते कि उनपर अमल करना मुश्किल है।
इसमें शक नहीं कि आत्म-संयम के द्वारा सन्तति-निग्रह है
न, लेकिन अभीतक ऐसा कोई नजर नहीं आया जिसने
दिगी के साथ इसकी उपयोगिता में सन्देह किया हो या यह
ना हो कि कृत्रिम साधनों की बनिस्बत यह ऊँचे दर्जे का है।
मैं समझता हूँ, जब हम सहवास को दृढ़ता से मर्यादित रखने
शास्त्रों के आदेश को पूर्णतः स्वीकार करलें, और उसको ही
इ बड़े आनन्द का साधन न मानें तो यह अपेक्षाकृत
सान भी हो जायगा। जननेन्द्रियों का काम तो सिर्फ यही है
वैवाहिक दम्पती के द्वारा यथासम्भव सर्वोत्तम सन्तानोत्पत्ति
। और यह तभी हो सकता है, और होना चाहिए, जबकि
पुरुष दोनों सहवास की नहीं, बल्कि सन्तानोत्पत्ति की इच्छा
जोकि ऐसे सहवास का परिणाम होता है, प्रेरित हों। अत
सन्तानोत्पत्ति की इच्छा के बगैर सहवास करना अवैध समझा
। चाहिए और उसपर नियन्त्रण लगाना चाहिए।
साधारण आदमियों पर ऐसा नियन्त्रण किया जा सकता है
हीं, इसपर अगले अंक में विचार किया जायगा।

लिए उनके मनमें स्त्रियों के प्रति भारी सहानुभूति है। मगर मैं
यह भी मैं जानता हूँ कि कृत्रिम सन्तति-निग्रह का अनेक ग
धर्माचार्यों, वैज्ञानिकों, विद्वानों और डाक्टरों ने भी समर्थन कि
है, जिनमें बहुतों को तो मैं व्यक्तिगत रूप से जानता और
भी हूँ, लेकिन इस सम्बन्ध में मेरी जो मान्यता है उसे
पाठकों या कृत्रिम सन्तति निग्रह के महान समर्थकों से
तो मैं अपने ईश्वर के प्रति, जोकि सत्य के अलावा और
नहीं है, सच्चा साबित नहीं होऊँगा। और अगर मैंने अपनी मान्य
को छिपाया तो यह निश्चित है कि अपनी गलती को,
मेरी यह मान्यता ग़लत हो, मैं कभी नहीं जान सकूँगा। अ
इसके, उन अनेक स्त्री-पुरुषों की ख़ातिर भी मैं यह ज़ाहिर
रहा हूँ जो कि सन्तति-निग्रह सहित अनेक नैतिक मस
बार में मेरे आदेश और मत को स्वीकार करते हैं।

सन्तति-निग्रह होना चाहिए, इस बात पर तो व भी
हैं जो इसके लिए कृत्रिम साधनों का समर्थन करते हैं, और
जो अन्य उपाय बतलाते हैं। आत्म-संयम से सन्तति निग्रह
में जो कठिनाई होती है, उससे भी इन्कार नहीं किया जा स
लेकिन अगर मनुष्य-जाति को अपनी क़िस्मत जगानी है ता
सिवाय इसकी पूर्ति का कोई और उपाय ही नहीं है, क्योंकि
मेरा आन्तरिक विश्वास है कि कृत्रिम साधनों से सन्तति-नि
की बात अगर मंज़ूर करली तो मनुष्य जाति का बड़ा भारी
पतन होगा। कृत्रिम सन्तति-निग्रह के समर्थक इसके विरुद्ध

माण पेश करते हैं उनके वाबजूद मैं यह कहता हूँ।
मेरा विश्वास है कि मुझमें अन्ध-विश्वास कोई नहीं है। मैं यह
मानता कि कोई बात इसीलिए सत्य है, क्योंकि वह प्राचीन है।
यही मानता हूँ कि चूँकि वह प्राचीन है इसलिए उसे सन्दिग्ध
जाय। जीवन के आधारभूत कई ऐसी बातें हैं जिन्हें हम यह
कर यों ही नहीं छोड़ सकते कि उनपर अमल करना मुश्किल है।
इसमें शक नहीं कि आत्म-संयम के द्वारा सन्तति-निग्रह है
, लेकिन अभीतक ऐसा कोई नजर नहीं आया जिसने
गी के साथ इसकी उपयोगिता में सन्देह किया हो या यह
ना हो कि कृत्रिम साधनों की बनिस्बत यह ऊँचे दर्जे का है।
मैं समझता हूँ, जब हम सहवास को दृढ़ता से मर्यादित रखने
शास्त्रों के आदेश को पूर्णत स्वीकार करलें, और उसको ही
स बड़े आनन्द का साधन न मानें, तो यह अपेक्षाकृत
सान भी हो जायगा। जननेन्द्रिया का काम तो सिर्फ यही है
विवाहित दम्पती के द्वारा यथासम्भव सर्वोत्तम सन्तानोत्पत्ति
। और यह तभी हो सकता है, और होना चाहिए, जबकि
पुरुष दोनों सहवास की नहीं, बल्कि सन्तानोत्पत्ति की इच्छा
जोकि ऐसे सहवास का परिणाम होता है, प्रेरित हों। अत
सन्तानोत्पति की इच्छा के बगैर सहवास करना अवैध समझा
ना चाहिए और उसपर नियन्त्रण लगाना चाहिए।
साधारण आदमियों पर ऐसा नियन्त्रण किया जा सकता है
नहीं, इसपर अगले अंक में विचार किया जायगा।

सन्तति निग्रह—२

हमारे समाज की आज ऐसी दशा है कि आत्म-संयम की कोई प्रेरणा ही उसमें नहीं मिलती। शुरू से हमारा पालन-पोषण ही उससे विपरीत दिशा में होता है। माता-पिता की मुख्य चिन्ता तो यही होती है कि, जैसे भी हो, अपनी सन्तान का ब्याह कर दें जिससे चूहों की तरह वे बच्चे जनते रहें। और अगर कहीं लड़की पैदा होजाय तब तो जितनी भी कम उम्र में हो सके, बिना यह सोचे कि इससे उसका कितना नैतिक पतन होगा, उसका ब्याह कर दिया जाता है। विवाह की रस्म भी क्या है, मानो दावत और फिजूलखर्ची की एक लम्बी सरदर्दी ही है। परिवार का जीवन भी वैसा ही होता है जैसाकि पहले से होता आया है, यानी भोग की ओर बढ़ना ही जाता है। छुट्टियाँ और त्यौहार भी इस तरह रक्खे गये हैं, जिससे वैषयिक रहन-सहन की ओर ही अधिक-से-अधिक प्रवृत्ति होती है। जो साहित्य एक तरह से गले चपेटा जाता है उसमें भी आम तौरपर विषयानुरागी मनुष्यों को उसी ओर अग्रसर होने का प्रोत्साहन मिलता है। और अत्यन्त आधुनिक साहित्य तो प्राय यही शिक्षा देता है कि विषय भोग ही कर्त्तव्य है और पूर्ण संयम एक पाप है।

ऐसी हालत में कोई आश्चर्य नहीं कि काम-पिपासा का नियन्त्रण बिल्कुल असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य होगया है। और

अगर हम यह मानते हैं कि सन्तति-निग्रह का अत्यन्त वाँछनीय और बुद्धिमत्तापूर्ण एवं सर्वथा निर्दोष साधन आत्मसयम ही है तो सामाजिक आदर्श और वातावरण को ही बदलना होगा। इस इच्छित उद्देश्य की सिद्धि का एकमात्र उपाय यही है कि जो व्यक्ति आत्म-संयम के साधन में विश्वास रखते हैं वे दूसरों को भी उससे प्रभावित करने के लिए अपने अटूट विश्वास के साथ खुद ही इसका अमल शुरू करदें। ऐसे लोगों के लिए, मैं समझता हूँ, विवाह की जिस धारणा की मैंने पिछले सप्ताह चर्चा की थी वह बहुत महत्त्व रखती है। उसे भलीभाँति ग्रहण करने का मतलब है अपनी मन स्थिति को बिल्कुल बदल देना अथात् पूर्ण मानसिक क्रान्ति। यह नहीं कि सिर्फ कुछ चुने हुए व्यक्ति ही ऐसा करें, बल्कि यही समस्त मानव-जातियों के लिए नियम होजाना चाहिए, क्योंकि इसके भग से मानव-प्राणियों का दर्जा घटता है और अनचाहे बच्चों की वृद्धि, सदा बढ़ती रहनेवाली बीमारियों की शृंखला और मनुष्य के नैतिक पतन के रूपमें उन्हें तुरन्त ही इसकी सजा मिल जाती है। इसमें शक नहीं कि कृत्रिम साधनों द्वारा सन्ततिनिग्रह से नव-जात शिशुओं की सख्या-वृद्धि पर किसी हद तक अंकुश रहता है, और साधारण स्थिति के मनुष्यों का थोड़ा बचाव हो जाता है, लेकिन व्यक्ति और समाज की जो नैतिक हानि उससे होती है उसका पार नहीं, क्योंकि जो लोग भोग के लिए ही अपनी काम-वासना की तृप्ति करते हैं, उनके लिए जीवन का

दृष्टिकोण ही बिल्कुल बदल जाता है। उनके लिए विवाह धर्म
सम्बन्ध नहीं रहता, जिसका मतलब है उन सामाजिक मार्गों
का बिल्कुल बदल जाना, जिन्हें अभीतक हम बहुमूल्य निधि
रूप में मानते रहे हैं। निस्सन्देह जो लोग विवाह के पुराने आदर्श
को अन्ध-विश्वास मानते हैं, उनपर इस दलील का ज्यादा असर
न होगा। इसलिए मेरी यह दलील सिर्फ उन्हीं लोगों के लिए
है जो विवाह को एक पवित्र सम्बन्ध मानते हैं। और स्त्री को
पाशविक आनन्द (भोग) का साधन नहीं; बल्कि सन्तान के
धारण और संरक्षण का गुण रखनेवाली माता के रूप में
मानते हैं।

मैंने और मेरे साथी कार्यकर्ताओं ने आत्म-संयम की दिशा
में जो प्रयत्न किया है, उसके अनुभव से मेरे इस विचार की
पुष्टि होती है जिसे कि मैंने यहाँ उपस्थित किया है। विवाह की
प्राचीन धारणा के प्रखर प्रकाश में होनेवाली खोज से इस पर
ज्यादा बल प्राप्त होगया है। मेरे लिए तो अब विवाहित जीवन
में ब्रह्मचर्य बिल्कुल स्वाभाविक और अनिवार्य स्थिति बनकर
स्वयं विवाह की ही तरह एक मामूली बात हो गई है। सन्तति
निग्रह का और कोई उपाय व्यर्थ और अकल्पनीय मालूम पड़ता
है। एक बार जहाँ स्त्री और पुरुष में इस विचार ने घर किया
नहीं कि जननेन्द्रियों का एकमात्र और महान कार्य सन्तानोत्पत्ति
ही है, सन्तानोत्पत्ति के अलावा और किसी उद्देश्य से मैथुन
करने को वे अपने रज-वीर्य का शर्मनाक क्षति मानने लगे

और उसके फल-स्वरूप स्त्री पुरुष में होनेवाली उत्तेजना को अपनी मूल्यवान शक्ति की वैसी ही दण्डनीय क्षति समझेंगे। हमारे लिये यह समझना बहुत मुश्किल बात नहीं है कि प्राचीन काल के वैज्ञानिकों ने वीर्य-रक्षा को क्यों इतना महत्त्व दिया है और क्यों इस बात पर उन्होंने इतना जोर दिया है कि हम समाज के कल्याण के लिए उसे शक्ति के सर्वोत्कृष्ट रूप में परिणत करें। उन्होंने तो स्पष्टरूप से इस बात की घोषणा की है कि जो (स्त्री-या-पुरुष) अपनी काम-वासना पर पूर्ण नियंत्रण करले वह शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक सभी प्रकार की इतनी शक्ति प्राप्त कर लेता है जो और किसी उपाय से प्राप्त नहीं की जा सकती।

ऐसे महान् ब्रह्मचारियों की अधिक संख्या क्या, एक भी ऐसा कोई हमें अपने बीच में दिखाई नहीं पड़ता, इससे पाठकों को घबराना नहीं चाहिए। अपने बीच जो ब्रह्मचारी आज हमें दिखाई देते हैं वे सचमुच बहुत अपूर्ण नमूने हैं। उनके लिए तो बहुत-से-बहुत यही कहा जा सकता है कि वे ऐसे जिज्ञासु हैं, जिन्होंने अपने शरीर का तो संयम कर लिया है, पर मन पर अभी सयम नहीं कर पाये हैं। ऐसे दृढ़ वे अभी नहीं हुए हैं कि उन पर प्रलोभन का कोई असर ही न हो, लेकिन यह बात इसलिए नहीं है कि ब्रह्मचर्य की प्राप्ति बहुत दुरूह है, बल्कि सामाजिक वातावरण ही उसके विपरीत है और जो लोग ईमानदारी के साथ यह प्रयत्न कर रहे हैं उनमें से अधिकांश अनजाने सिर्फ इसी

संयम का यत्न करते हैं, जबकि इसमें सफल होने के लिए उन सब विषयों के संयम का यत्न किया जाना चाहिए, जिनके चंगुल में मनुष्य फँस सकता है। इस तरह किया जाय तो सामान्य स्त्री पुरुषों के लिए भी ब्रह्मचर्य का पालन असम्भव नहीं है, लेकिन यह याद रहे कि इसके लिए भी वैसे ही प्रयत्न की आवश्यकता है जैसा कि किसी भी विज्ञान में निष्णात होने के अभिलाषी किसी विद्यार्थी को करना पड़ता है। यहाँ जिस रूप में ब्रह्मचर्य को लिया गया है, उस रूप में जीवन विज्ञान में निष्णात होना ही वस्तुतः उसका अर्थ भी है।

४

ब्रह्मचर्य

एक सज्जन लिखते हैं —

"आपके विचारों को पढ़कर मैं बहुत समय से यह मानता आया हूँ, कि सन्तति-निरोध के लिए ब्रह्मचर्य ही एक-मात्र सर्वश्रेष्ठ उपाय है, संभोग केवल सन्तानेच्छा से प्रेरित होकर ही होना चाहिए, बिना सन्तानेच्छा का भोग पाप है, इन बातों का सोचता हूँ तो कई प्रश्न उपस्थित होते हैं। संभोग सन्तान के लिए किया जाय यह ठीक है, पर एक-दो बार के भोग से सन्तान न हो, तो ऐसे मनुष्य को मर्यादापूर्वक किस सीमा के अन्दर

रहना चाहिए? एक-दो बार के संभोग से सन्तान चाहे न हो, पर आशा कहाँ पिण्ड छोड़ती है? इस प्रकार वीर्य का बहुत-कुछ अपव्यय अनचाहे भी हो सकता है। ऐसे व्यक्ति को क्या यह कहा जाय कि ईश्वर की इच्छा विरुद्ध होने के कारण उसे भोग का त्याग कर देना चाहिए। ऐसे त्याग के लिए तो बहुत आध्यात्मिकता की आवश्यकता है। प्राय ऐसा भी देखने में आया है कि सन्तान सारी उम्र न होकर उत्तरावस्था में हुई है, इसलिए आशा का त्याग कितना कठिन है। यह कठिनाई तब और भी बढ़ जाती है, जब दोनों स्त्री व पुरुष रोग से मुक्त हों।"

यह कठिनाई अवश्य है, लेकिन ऐसी बातें मुश्किल तो हुआ ही करती हैं। मनुष्य अपनी उन्नति बगैर कठिनाई के कैसे कर सकता है? हिमालय पर चढ़ने के लिए जैसे-जैसे मनुष्य आगे बढ़ता है, कठिनाई बढ़ती ही जाती है। यहाँतक कि हिमालय के सबसे ऊँचे शिखर पर आजतक कोई पहुँच नहीं सका है। इस प्रयत्न में कई मनुष्यों ने मृत्यु की भेंट की है। हर साल चढ़ाई करने वाले नये-नये पुरुषार्थी तैयार होते हैं, और निष्फल भी होते हैं, फिर भी इस प्रयास को वे छोड़ते नहीं। विषयेन्द्रिय का दमन हिमालय पहाड़ पर चढ़ने से तो कठिन है ही, लेकिन उसका परिणाम भी कितना ऊँचा है। हिमालय पर चढ़नेवाला कुछ कीर्ति पायगा, क्षणिक सुख पायगा, इन्द्रिय-जीत मनुष्य आत्मानन्द पायगा और उसका आनन्द दिन-प्रति-दिन बढ़ता जायगा।

ब्रह्मचर्य शास्त्र में तो ऐसा नियम माना गया है कि पुरुष-वीर्य कभी निष्फल होता ही नहीं, और होना ही नहीं चाहिए। और जैसा पुरुष के लिए, ऐसा ही स्त्री के लिए भी, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। जब मनुष्य अथवा स्त्री निर्विकार होते हैं, तब वीर्य-हानि असम्भवित हो जाती है, और भोगेच्छा का सर्वथा नाश हो जाता है। और जब पति-पत्नी सन्तान की इच्छा करते हैं, तभी एक-दूसरे का मिलन होता है। और यही अर्थ गृहस्थाश्रमी के ब्रह्मचर्य का है। अर्थात् स्त्री-पुरुष का मिलन सिर्फ सन्तानोत्पत्ति के लिए ही उचित है, भोग तृप्ति के लिए कभी नहीं। यह हुई क़ानूनी बात, अथवा आदर्श की बात। यदि हम इस आदर्श को स्वीकार करें तो हम समझ सकते हैं कि भोगेच्छा की तृप्ति अनुचित है, और हमें उसका यथोचित त्याग करना चाहिए। यह ठीक है कि आज कोई इस नियम का पालन नहीं करते। आदर्श की बात करते हुए हम शक्ति का ख़याल नहीं कर सकते, लेकिन आजकल भोग-तृप्ति को आदर्श बताया जाता है। ऐसा आदर्श कभी हो ही नहीं सकता, यह स्वयं सिद्ध है। यदि भोग आदर्श है तो उसे मर्यादित नहीं होना चाहिए। अमर्यादित भोग से नाश होता है, यह सभी स्वीकार करते हैं। त्याग ही आदर्श हो सकता है और प्राचीनकाल से रहा है। मेरा कुछ ऐसा विश्वास बन गया है कि ब्रह्मचर्य के नियमों को हम जानते नहीं हैं, इसलिए बड़ी आपत्ति पैदा हुई है, और ब्रह्मचर्य पालन में अनावश्यक कठिनाई महसूस करते हैं। अब जो आपत्ति मुझ

पत्र-लेखक ने बतलाई है, वह आपत्ति ही नहीं रहती है, क्योंकि सन्तति के ही कारण तो एक ही बार मिलन हो सकता है, अगर वह निष्फल गया तो दोबारा उन स्त्री पुरुषों का मिलन होना ही नहीं चाहिए। इस नियम को जानने के बाद इतना ही कहा जा सकता है कि जबतक स्त्री ने गर्भ धारण नहीं किया तबतक, प्रत्येक ऋतुकाल के बाद जबतक गर्भ धारण नहीं हुआ है, तब तक, प्रतिमास एक बार स्त्री-पुरुष का मिलन क्षतव्य हो सकता है, और यह मिलन भोग-तृप्ति के लिए न माना जाय। मेरा यह अनुभव है कि जो मनुष्य वचन से और कार्य से विकार-रहित होता है, उसे मानसिक अथवा शारीरिक व्याधि का किसी प्रकार का डर नहीं है। इतना ही नहीं, बल्कि ऐसे निर्विकार व्यक्ति व्याधियों से भी मुक्त होते हैं और इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। जिस वीर्य से मनुष्य-जैसा प्राणी पैदा हो सकता है, उसके अविच्छिन्न संग्रह से अमोघ शक्ति पैदा होनी ही चाहिए। यह बात शास्त्रों में तो कही गई है, लेकिन हरेक मनुष्य इसे अपने लिए यत्न से सिद्ध कर सकता है। और जो नियम पुरुषों के लिए है वही स्त्रियों के लिए भी है। आपत्ति सिर्फ यह है कि मनुष्य मन से विकार-मय रहते हुए शरीर से विकार-रहित होने की व्यर्थ आशा करता है। और अन्त में मन और शरीर दोनों को क्षीण करता हुआ गीता की भाषा में मूढ़ात्मा और मिथ्याचारी बनता है।

ह० से०, १३-३-३७

५

सम्भोग की मर्यादा

बंगलौर से एक सज्जन लिखते हैं —

“आप कहते हैं कि विवाहित दम्पती को एकमात्र तभी सम्भोग करना चाहिए जब दोनों बच्चा पैदा करना चाहें, पर मेहरबानी करके यह तो बतलाइए कि बच्चा पैदा करने की इच्छा किसी को क्यों हो ? बहुत-से लोग माँ-बाप बनने की जिम्मेदारी को पूरी तरह महसूस किये बगैर ही सन्तानोत्पत्ति की इच्छा करते हैं, और दूसरे, बहुत से अच्छी तरह यह जानते हुए भी कि वे माँ-बाप होने की जिम्मेदारियों को निबाहने में असमर्थ हैं, बच्चों की ख्वाहिश रखते हैं। बहुत-से ऐसे लोग भी बच्चे पैदा करना चाहते हैं जो शारीरिक और मानसिक दृष्टि से सन्तानोत्पत्ति के अयोग्य हैं। क्या आप यह नहीं सोचते कि इन लोगों के लिए प्रजनन करना गलती है ?

“बच्चे पैदा करने की इच्छा का उद्देश्य क्या है, यह मैं जानना चाहता हूँ। बहुत-से लोग इसलिए बच्चों की इच्छा करते हैं कि वे उनकी सम्पत्ति के वारिस बनें और उनके जीवन की नीरसता को मिटाकर उसे सरस बनायें। कुछ लोग इसलिए भी पुत्र की इच्छा करते हैं कि ऐसा न हुआ तो मरने पर वे स्वर्ग में न जा सकेंगे। क्या इन सबका बच्चे की इच्छा करना गलती नहीं है ?”

किसी बात के कारणों की खोज करना तो ठीक है, लेकिन हमेशा ही उन्हें पा लेना सम्भव नहीं है। सन्तान की इच्छा विश्वव्यापी है, लेकिन अपने वंशजों के द्वारा अपने को क़ायम रखने की इच्छा अगर काफ़ी और सन्तोषजनक कारण नहीं है तो इसका कोई दूसरा सन्तोषजनक कारण मैं नहीं जानता। मगर सन्तानोत्पत्ति की इच्छा का जो कारण मैंने बतलाया है वह अगर काफ़ी सन्तोषजनक न मालूम हो तो भी जिस बात का मैं प्रतिपादन कर रहा हूँ, उसमें कोई दोष नहीं आता, क्योंकि यह इच्छा तो है ही। मुझे तो यह स्वाभाविक ही मालूम पड़ती है। मैं पैदा हुआ, इसका मुझे कोई अफ़सोस नहीं है। मेरे लिए यह कोई ग़ैर-क़ानूनी बात नहीं है कि मुझमें जो भी सर्वोत्तम गुण हों उन्हें मैं दूसरे में मूर्तरूप में उतरे हुए देखूँ। कुछ भी हो, जबतक खुद प्रजनन में ही मुझे कोई बुराई न मालूम दे और जबतक मैं यह न देखलूँ कि खाली आनन्द के लिए सम्भोग करना भी ठीक ही है, तबतक मुझे इसी बात पर क़ायम रहना चाहिए कि सम्भोग तभी ठीक है जबकि वह सन्तानोत्पत्ति की इच्छा से किया जाय। मैं समझता हूँ कि स्मृतिकार इस बारे में इतने स्पष्ट थे कि मनु ने पहले पैदा हुए बच्चा को ही धर्म्य (धर्म से पैदा हुए) बतलाया है और बाद में पैदा हुए बच्चों को काम्य (काम-वासना से पैदा हुए) बतलाया है। इस विषय में यथासम्भव अनासक्त भाव से मैं जितना अधिक सोचता हूँ उतना ही अधिक मुझे इस बात का पक्का विश्वास होता जाता है

कि इस बारे में मेरी जो स्थिति है और जिसपर मैं क़ायम हूँ वही सही है। मुझे यह स्पष्टतर होता जा रहा है कि इस विषय के साथ जुड़ी हुई अनावश्यक गोपनीयता के कारण इस विषय में हमारा अज्ञान ही सारी कठिनाई की जड़ है। हमारे विचार स्पष्ट नहीं हैं। परिणामों का सामना करने से हम डरते हैं। अधूरे उपायों को हम सम्पूर्ण या अन्तिम मान कर अपनाते हैं और इस प्रकार उन्हें आचरण के लिए बहुत कठिन बना लेते हैं। मगर हमारे विचार स्पष्ट हों, हम क्या चाहते हैं इस बात का हमें निश्चय हो तो हमारी वाणी और हमारा आचरण दृढ़ होंगे।

इस प्रकार, अगर मुझे इस बात का निश्चय हो कि भोजन का हरेक ग्रास शरीर को बनाने और क़ायम रखने के ही लिए है तो स्वाद की ख़ातिर मैं कभी खाना न चाहूँगा। यही नहीं, बल्कि मैं यह भी महसूस करूँगा कि अगर भूख या शरीर को क़ायम रखने की दृष्टि के अलावा कोई चीज़ सुस्वाद होने के ही कारण खाना चाहूँ तो यह रोग की निशानी होगी, इसलिए मुझे उसको वाजिब और स्वास्थ्यप्रद इच्छा समझ कर उसकी पूर्ति करने के बजाय अपनी इस बीमारी को दूर करने की ही फ़िक्र करनी पड़ेगी। इसी तरह अगर मुझे इस बात का निश्चय हो कि सजनन की निर्विवाद इच्छा के बग़ैर सम्भोग करना ग़ैर क़ानूनी और शरीर, मन तथा आत्मा के लिए विनाशक है, तो इस इच्छा का दमन करना निश्चय ही आसान हो जायगा—उससे कहीं आसान, जबकि मेरे मन में यह निश्चय न हो कि खास

छा की पूर्त्ति करना क़ानून सम्मत और हितकर है या नहीं। र मुझे ऐसी इच्छा के ग़ैर-क़ानूनीपन या अनौचित्य का स्पष्टरूप भान हो तो मैं उसे एक तरह की बीमारी समझूँगा और अपनी । शक्ति के साथ उसके आक्रमणों का मुक़ाबिला करूँगा। ऐसे मुक़ाबिले के लिए सब मैं अपने को अधिक शक्तिशाली महसूस ँगा। जो लोग यह दावा करते हैं कि हमें यह बात पसन्द तो ं है, लेकिन हम असहाय हैं, वे ग़लती पर ही नहीं हैं, बल्कि ; भी हैं, और इसलिए प्रतिरोध में वे कमज़ोर रहते और हार ो हैं। अगर ऐसे सब लोग आत्मनिरीक्षण करें तो उन्हें मालूम ा कि उनके विचार उन्हें धोखा देते हैं। उनके विचारों में वासना इच्छा होती है, और उनकी वाणी उनके विचारों को ग़लत ' में व्यक्त करती है। दूसरी ओर यदि उनकी वाणी उनके ारों की सच्ची द्योतक हो तो कमज़ोरी-जैसी कोई बात नहीं हो ती। हार तो हो सकती है, पर कमज़ोरी हरगिज़ नहीं।

इन सज्जन ने अस्वस्थ माता-पिताओं द्वारा किये जाने प्रजनन जो आपत्ति की है वह बिल्कुल ठीक है। उन्हें प्रजनन की ं इच्छा नहीं होनी चाहिए। अगर वे यह कहें कि सम्भोग प्रजनन के लिए ही करते हैं, तो वे अपने को और संसार को ा देते हैं। किसी भी विषय पर विचार करने में सचाई का रा सहारा लेना पड़ता है। सम्भोग के आनन्द को छिपाने के र प्रजनन की इच्छा का बहाना हर्गिज़ न लेना चाहिए।

से०, २४-७-३७

: ६ :

कृत्रिम साधनों से सन्तति निग्रह

एक सज्जन लिखते हैं—

"हाल में 'हरिजन' में श्रीमती सेंगर और महात्मा गाँधी की मुलाक़ात का जो विवरण प्रकाशित हुआ है उसके बारे में मैं कुछ कहना चाहता हूँ।

"इस बातचीत में जिस ख़ास बात की ओर ध्यान नहीं दिया गया मालूम पड़ता है वह यह है कि मनुष्य अन्ततोगत्वा कलाकार और उत्पादक है। कम-से-कम आवश्यकताओं की पूर्ति पर ही वह सतोष नहीं करता, बल्कि सुन्दरता, रंग-बिरंगापन और आकर्षण भी उसके लिए आवश्यक होता है। मुहम्मद साहब ने कहा है कि "अगर तेरे पास एक ही पैसा हो तो उससे रोटी खरीद ले, लेकिन अगर दो हों तो एक से रोटी खरीद और एक से फूल।" इसमें एक महान् मनोवैज्ञानिक सत्य निहित है—वह यह कि मनुष्य स्वभावतः कलाकार है, इसीलिए हम उसे ऐसे कामों के लिए भी प्रयत्नशील पाते हैं, जो महज उसके शरीर-धारण के लिए आवश्यक नहीं हैं। उसने तो अपनी प्रत्येक आवश्यकता को कला का रूप दे रक्खा है और उन कलाओं की ख़ातिर मनों खून बहाया है। मनुष्य की उत्पादक-बुद्धि नई-नई कठिनाइयों और समस्याओं को पैदा करके उनका हल निकालने के लिए उसे प्रेरित करती रहती है। रूसो, रस्किन टॉल्सटाय, थोरो और गाँधी उसे जैसा 'सरल-सादा

बनाना चाहते हैं, वैसा यह बन नहीं सकता। युद्ध भी उसके लिए एक आवश्यक चीज़ है, और उसे भी उसने एक महान् कला के रूप में परिणत कर दिया है।

"उसके मस्तिष्क को अपील करने के लिए प्रकृति का उदाहरण व्यर्थ है; क्योंकि वह तो उसके जीवन से ही बिल्कुल मेल नहीं खाती है। 'प्रकृति उसकी शिक्षिका नहीं बन सकती।' जो लोग प्रकृति के नाम पर अपील करते हैं वे यह भूल करते हैं कि प्रकृति में केवल पर्वत तथा उपत्यकाएँ और कुसुम-क्यारियाँ ही नहीं हैं, बल्कि बाढ़, झञ्झावात और भूकम्प भी हैं। कट्टर निराकारवादी नात्शे का कहना है कि कलाकार की दृष्टि से प्रकृति कोई आदर्श नहीं है। वह तो अत्युक्ति तथा विकृतीकरण से काम लेती है। और बहुत-सी चीजों को छोड़ जाती है। प्रकृति तो एक आकस्मिक घटना है। "प्रकृति से अध्ययन करना" कोई अच्छा चिन्ह नहीं है, क्योंकि इन नगण्य चीजों के लिए धूल में लोटना अच्छे कलाकार के योग्य नहीं है। भिन्न प्रकार की बुद्धि के कार्य को, कला विरोधी मामूली बातों को, देखने के लिए यह आवश्यक है कि हम यह जानें कि हम क्या हैं? हम यह जानते हैं कि जङ्गली जानवर अपने शरीर को बनाये रखने की आवश्यकता-वश कच्चा माँस खाते हैं, स्वादवश नहीं। यह भी हम जानते हैं कि प्रकृति में तो पशुओं में समागम की ऋतुएँ होती हैं। इन ऋतुओं के अतिरिक्त कभी मैथुन होता ही नहीं, लेकिन उसी फिलासफर के अनुसार यह तो अच्छे कलाकार के योग्य नहीं है। जो स्वभावतः मनुष्य अच्छा

कलाकार है इसलिये जब सन्तानोत्पत्ति की आवश्यकता न रह जाए मैथुन-कार्य को बन्द कर देना या केवल सन्तानोत्पत्ति की स्पष्ट इच्छा से प्रेरित होकर ही मैथुन करना, इतनी अप्राकृतिक, इतनी मामूली इतनी हिसाब-किताब की-सी बात है कि हमारे फिलासफर के कथनानुसार यह उसकी कला-प्रेमी प्रकृति को अपील नहीं कर सकता। इसलिए वह तो स्त्री-पुरुष के प्रेम को एक बिल्कुल दूसरे पहलू से देखता है—ऐसे पहलू से जिसका सन्तान-वृद्धि से कोई सम्बन्ध नहीं। यह बात हेवलॉक एलिस और मेरी स्टोप्स जैसे भाव-पुरुषों के कथनों से स्पष्ट है। यह इच्छा यद्यपि आत्मा से उत्पन्न होती है, पर वह शारीरिक सम्भोग के बिना अपूर्ण रह जाती है। यह उस समय तक रहेगा जबतक हम इस अंश को केवल आत्मा में पूरा नहीं कर सकते और उसके लिए शरीर-यन्त्र की आवश्यकता समझते हैं। ऐसे ही सहवास के परिणाम का सामना करना बिल्कुल दूसरी समस्या है। यहीं सन्तान-निग्रह के आन्दोलन का काम आ जाता है, पर यह काम अगर स्वयं आत्मा की ही पुन-र्व्यवस्था पर छोड़ दिया जाय और बाह्य अनुशासन द्वारा—आत्म-संयम के माने इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं—तो हमें यह आशा नहीं होती कि उससे जिन उद्देश्यों की पूर्ति होनी चाहिए उन सबको वह सिद्ध कर सकेगा। न इससे बिना सुदृढ़ मनोवैज्ञानिक आधार के सन्तति-निग्रह ही हो सकता है।

"अपनी बात को समाप्त करने से पहले मैं यह और कहूँगा कि आत्म-संयम या ब्रह्मचर्य का महत्त्व मैं किसी प्रकार कम नहीं

[illegible]ना चाहता। वैषयिक नियमण को पूर्णता पर ले जानेवाली [illegible]क्षा के रूप में मैं हमेशा उसकी सराहना करूँगा, लेकिन जैसे [illegible]अन्य कलाओं की सम्पूर्णता हमारे जीवन में, (और नीत्शे के अनु-[illegible]सार) हमारे सारे जीवन में, कोई हस्ताक्षेप नहीं करती, वैसे ही [illegible]ब्रह्मचर्य के आदर्श को मैं दूसरी बातों पर प्रमुत्व पाने का सहारा [illegible]नहीं बनने दूँगा—जनसंख्या-वृद्धि जैसी समस्याओं के हल करने [illegible]का साधन तो यह और भी कम है। हमने इसका कैसा हौआ बना [illegible]रखा है। युद्धकालीन धन्धों के बारे में तो हम जानते ही हैं। [illegible]जिन सैनिकों ने अपना खून बहाकर अपने देशवासियों के लिए [illegible]समरांगण में विजय प्राप्त की, क्या हम इसीलिए उन्हें इसका श्रेय [illegible] देंगे कि उन्होंने रण-क्षेत्र में भी बच्चे पैदा कर डाले? नहीं, कोई [illegible]ऐसा नहीं करेगा। मैं समझता हूँ कि इन बातों को मद्देनज़र [illegible]रखकर ही शास्त्रों (प्रश्नोपनिषद्) में यह कहा गया है कि "ब्रह्म-[illegible]चर्यमेव तद्यद्रात्रौरत्या सयुज्यते" अर्थात् केवल रात्रि में ही—(याने दिन के असाधारण समय को छोड़कर) सहवास किया जाय [illegible]तो वह ब्रह्मचर्य ही जैसा है। यहाँ साधारण वैषयिक जीवन को [illegible]भी ब्रह्मचर्य के ही समान बताया गया है, उसमें इतनी कठोरता तो [illegible]जीवन के विविध रूपों में उलट-फेर करने के फल-स्वरूप ही आई है।"

जो भी कोई ऐसी चीज़ हो, जिसमें कोरा शब्दाडम्बर, गाली-गलौज या आरोप-आक्षेप न हो उसे मैं सहर्ष प्रकाशित करूँगा, जिससे पाठकों के सामने समस्या के दोनों पहलू आजायें, और

वे अपने-आप किसी निर्णय पर पहुँच सकें। इसलिए इस पत्र
मैं बड़ी खुशी के साथ प्रकाशित करता हूँ। खुद मैं भी यह जानने
के लिए उत्सुक हूँ कि जिस बात को विज्ञान-सिद्ध और हितकर
होने का दावा किया जाता है तथा अनेक प्रमुख व्यक्ति जिसका
समर्थन करते हैं, उसका उज्ज्वल पक्ष देखने की कोशिश करते हुए
भी मुझे यह चर्चा इतनी खलती है ?

लेकिन मेरे सन्तोष की कोई ऐसी बात सिद्ध नहीं हुई
जिससे मुझे इसका विश्वास हो जाय कि विवाहित-जीवन में मैथुन
स्वयं कोई अच्छाई है और उसे करने वालों को उससे कोई लाभ
होता है। हाँ, अपने खुद के तथा दूसरे अनेक अपने मित्रों
अनुभव पर से इससे विपरीत बात मैं जरूर कह सकता हूँ। इ
में से किसी ने भी मैथुन द्वारा कोई मानसिक, आध्यात्मिक
शारीरिक उन्नति की हो, यह मैं नहीं जानता। क्षणिक उत्ते
और सन्तोष तो उससे अवश्य मिला, लेकिन उसके बाद ही थका
भी जरूर हुई। और जैसे ही उस थकावट का असर मिटा नहीं
मैथुन की इच्छा भी तुरन्त ही फिर जागृत हो गई। हालाँकि
सदा से जागरूक रहा हूँ, फिर भी अच्छी तरह मुझे याद है
इस विकार से मेरे कामों में बड़ी बाधा पड़ी है। इस कमज
को समझकर ही मैंने आत्म-संयम का रास्ता पकड़ा, और इ
सन्देह नहीं कि तुलनात्मक रूप से काफी लम्बे-लम्बे समय
मैं जो बीमारी से बचा रहता हूँ और शारीरिक व मानसिक
से जो इतना अधिक और विविध प्रकार का काम कर सकता

ह जिसे देखने वालों ने अद्भुत बतलाया है, उसका कारण मेरा इ आत्म-संयम या ब्रह्मचर्य-पालन ही है।

मुझे भय है कि उक्त सज्जन ने जो-कुछ पढ़ा उसका उन्होंने लत अर्थ लगाया है। मनुष्य कलाकार और उत्पादक है इसमें कोई शक नहीं, सुन्दरता और रंगबिरंगापन भी उसे चाहिए ी, लेकिन मनुष्य की कलात्मक और उत्पादक प्रवृत्ति ने अपने र्वोत्तम रूप में उसे यही सिखाया है कि वह आत्म संयम में कला का और अनुत्पादक (जो सन्तानोत्पत्ति के लिए न हो) ऐसे सहवास में अ-सुन्दरता का दर्शन करे। उसमें कलात्मक की जो भावना है, उसने उसे विवेकपूर्वक यह जानने की शिक्षा दी है कि विविध रंगों का चाहे-जैसा मिश्रण सौन्दर्य का चिन्ह नहीं है, और न हर तरह का आनन्द ही अपने-आप में कोई अच्छाई है। कला की ओर उसकी जो दृष्टि है उसने उसे यह सिखाया है कि वह उपयोगिता में ही आनन्द की खोज करे, याने वही आनन्दोपभोग करे, जो हितकर हो। इस प्रकार अपने विकास के प्रारम्भिक काल में ही उसने यह जान लिया था कि खाने के लिए ही उसे खाना नहीं खाना चाहिए, जैसाकि हममें से कुछ लोग अभी भी करते हैं, बल्कि जीवन टिका रहे इसलिए खाना चाहिए। बाद में उसने यह भी जाना कि जीवित रहने के लिए ही उसे जीवित नहीं रहना चाहिए, बल्कि अपने सहजीवियों और उनके द्वारा उस प्रभु की सेवा के लिए उसे जीना चाहिए, जिसने उसे तथा उन सबको बनाया या पैदा किया है। इसी प्रकार जब उसने

विषय-सहवास या मैथुन-जनित आनन्द की बात पर विचार कि तो उसे मालूम पड़ा कि अन्य प्रत्येक इन्द्रिय की भाँति जननेन्द्रि का भी उपयोग दुरुपयोग होता है और इसका उचित कार्य सदुपयोग इसी में है कि केवल प्रजनन या सन्तानोत्पत्ति के लिए सहवास किया जाय। इसके सिवा और किसी प्रयोजन से किया जाने वाला सहवास असुन्दर है और ऐसा करने वाले व्यक्ति और उसकी नस्ल के लिए उसके बहुत भयकर परिणाम हो सकते हैं। मैं समझता हूँ, अब इस दलील को और आगे बढ़ाने की कोई जरूरत नहीं।

उक्त सज्जन का यह कहना ठीक ही है कि मनुष्य आवश्यकता से प्रेरित होकर कला की रचना करता है। इस प्रकार आवश्यकता न केवल आविष्कार की जननी है, बल्कि कला की भी जननी है। इसलिए जिस कला का आधार आवश्यकता नहीं है, उससे हमें सावधान रहना चाहिए।

साथ ही, अपनी हरेक इच्छा को हमें आवश्यकता का नाम नहीं देना चाहिए। मनुष्य की स्थिति तो एक प्रकार से प्रयोगात्मक है। इस बीच आसुरी और दैवी दोनों प्रकार की शक्तियाँ अपने खेल खेलती हैं। किसी भी समय वह प्रलोभन का शिकार हो सकता है। अतः प्रलोभनों से लड़ते हुए, उनका शिकार न बनने के रूप में उसे अपना पुरुषार्थ सिद्ध करना चाहिए। जो अपने मान हुए बाहरी दुश्मनों से तो लड़ता है, किन्तु अपने अन्दर के विविध शत्रुओं के आगे अंगुली भी नहीं उठा सकता या उन्हें

अपना मित्र समझने की ग़लती करता है, वह योद्धा नहीं है। उससे युद्ध तो करना ही चाहिए"—लेकिन उक्त सज्जन का यह कहना ग़लत है "कि उसे भी उसने (मनुष्य ने) एक महान् कला ही रूप में परिणत कर दिया है।" क्योंकि युद्ध की कला तो उसने अभी शायद ही सीखी हो। हमने तो झूठे युद्ध को उसी तरह सच्चा मान लिया है, जैसे हमारे पूर्व पुरुषों ने बलिदान का ग़लत अर्थ लगाकर बजाय अपनी दुर्वासनाओं के बेचारे निर्दोष पशुओं का बलिदान शुरू कर दिया। अबीसीनिया की सीमा में आज जो-कुछ हो रहा है, उसमें निश्चय ही न तो कोई सौन्दर्य है और न कोई कला। उक्त सज्जन ने उदाहरण के लिए जो नाम चुने हैं, वे भी (अपने) दुर्भाग्य से ठीक नहीं चुने, क्योंकि रूसो, रस्किन, थोरो और टॉल्स्टाय तो अपने समय में प्रथम श्रेणी के कलाकार थे और उनके नाम हममें से अनेकों के मरकर भुला दिये जाने के बाद भी वैसे ही अमर रहेंगे।

'प्रकृति' शब्द का उक्त सज्जन ने जो उपयोग किया है, वह भी ठीक नहीं किया मालूम पड़ता है। प्रकृति का अनुसरण या अध्ययन करने के लिए जब मनुष्यों को प्रेरित किया जाता है तो उनसे यह नहीं कहा जाता कि वे जंगली कीड़े-मकोड़ों या शेर की तरह काम करने लगें, बल्कि यह अभिप्राय होता है कि मनुष्य की प्रकृति का उसके सर्वोत्तम रूप में अध्ययन किया जाय। मेरे खयाल से वह सर्वोत्तम रूप मनुष्य की नई सृष्टि पैदा करने की प्रकृति है, या जो-कुछ भी यह हो, उसीके अध्ययन के

स्रोतों से निकल पड़ेगा। आत्म-संयम में हानि की सम्भावना रहती है। और यदि किसी जाति में विवाह होने में कठिनाई होती हो या बहुत देर में जाकर विवाह होते हों तो उसका अनिवार्य परिणाम यह होगा कि अनुचित सम्बन्धों की वृद्धि हो जायगी। इस बात को तो सभी मानते हैं कि शारीरिक सहवास तभी होना चाहिए जब मन और आत्मा भी उसके अनुकूल हों, और इस बात पर भी सब सहमत हैं कि सन्तानोत्पत्ति ही उसका प्रधान उद्देश्य है, लेकिन क्या यह सच नहीं है कि बारम्बार हम जो सम्भोग करते हैं वह हमारे प्रेम का शारीरिक प्रदर्शन ही होता है, जिसमें सन्तानोत्पत्ति का कोई विचार या इरादा नहीं होता ! तो क्या हम सब ग़लती ही करते आरहे हैं? या, यह बात है कि धर्म का हमारे वास्तविक जीवन से आवश्यक सम्पर्क नहीं है, जिसके कारण उसके और सर्वसाधारण के बीच खाई पड़ गई है? जब तक किसी सत्ता या शासक का, और धर्माधिकारियों का भी मैं इन्हीं में शुमार करता हूँ, रुख नौजवानों के प्रति अधिक स्पष्ट, अधिक साहसपूर्ण और वास्तविकता के अधिक अनुकूल न होगा तबतक उनकी वफ़ादारी कभी प्राप्त नहीं होगी।

"फिर सन्तानोत्पत्ति के अलावा भी विषय प्रेम का अपना प्रयोजन है। विवाहित जीवन में स्वस्थ और सुखी रहने के लिए यह अनिवार्य है। वैषयिक सहवास यदि परमेश्वर की देन है तो उसके उपयोग का ज्ञान भी प्राप्त करने के लायक़ है। अपने क्षेत्र में यह इस तरह पैदा किया जाना चाहिए जिससे न केवल

कि की, बल्कि सम्भोग करनेवाले स्त्री-पुरुष दोनों की शारीरिक तृप्ति हो। इस तरह एक-दूसरे को जो पारस्परिक आनन्द प्राप्त होगा उससे उन दोनों में एक स्थायी बन्धन स्थापित होगा, उससे उनका विवाह-सम्बन्ध स्थिर होगा। अत्यधिक विषय-प्रेम से उतने विवाह असफल नहीं होते जितने कि अपर्याप्त और बेढंगे वैषयिक प्रेम से होते हैं। काम-वासना अच्छी चीज़ है, ऐसे अधिकांश व्यक्ति जो किसी भी रूप में अच्छे हैं, काम-भावना रखने में समर्थ हैं। काम-भावना विहीन विषय-प्रेम तो बिल्कुल बेजान चीज़ है। दूसरी ओर ऐयाशी पेटूपन के समान एक शारीरिक क्षति है। अब चूँकि 'प्रार्थना पुस्तक' के परिवर्द्धन पर विचार हो रहा है, मैं यह बड़े आदर के साथ सुझाना चाहता हूँ कि उसके विवाह-विधान में यह और जोड़ दिया जाय कि 'स्त्री और पुरुष के पारस्परिक प्रेम की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति ही विवाह का उद्देश्य है।'

'अब मैं यह मत छोड़कर सन्तति निग्रह के सबसे जरूरी प्रश्न पर आता हूँ। सन्तति निग्रह स्थायी होने के लिए आया है। यह तो अब जम चुका है—और अच्छा हो या बुरा, उसे हमको स्वीकार करना ही होगा। इन्कार करने से उसका अन्त नहीं होगा। जिन कारणों से प्रेरित होकर अभिभावक लोग सन्तति निग्रह करना चाहते हैं, उनमें कभी-कभी तो स्वार्थ होता है, लेकिन वे बहुधा आदरणीय और उचित ही होते हैं। विवाह करके अपनी सन्तान को जीवन-संघर्ष के योग्य बनाना, मर्यादित आय, जीवन निर्वाह का खर्च, विविध करों का बोझ—ये सब इसके लिए जोर

श्यकताओं और आधुनिक ज्ञान के प्रकाश में ही इस प्रश्न पर विचार करेंगे ? ''

यह कितने बड़े डाक्टर हैं इससे इन्कार नहीं किया जा सकता लेकिन डाक्टर के रूप में उनका जो बड़प्पन है, उसके लिए पूरे आदर का भाव रखते हुए भी मैं इस बात पर सन्देह करने का साहस करता हूँ कि उनका यह कथन कहाँ तक ठीक है, खास कर उस हालत में जबकि यह उन स्त्री-पुरुषों के अनुभव के विपरीत है, जिन्होंने आत्म-संयम का जीवन बिताया है, किन्तु उससे उनकी कोई नैतिक या शारीरिक हानि नहीं हुई। वस्तुतः बात यह है कि डाक्टर लोग आमतौर पर उन्हीं लोगों के सम्पर्क में आते हैं जो स्वास्थ्य के नियमों की अवहेलना करके कोई-न-कोई बीमारी मोल ले लेते हैं। इसलिए बीमारों को अच्छा होने के लिए क्या करना चाहिए यह तो वे अक्सर सफलता के साथ बता देते हैं, लेकिन यह बात वे हमेशा नहीं जानते कि स्वस्थ स्त्री-पुरुष किसी खास दिशा में क्या कर सकते हैं ? अतएव विवाहित स्त्री-पुरुषों पर संयम के जो असर पड़ने की बात लार्ड डासन कहते हैं उसे अत्यन्त सावधानी के साथ ग्रहण करना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि विवाहित स्त्री-पुरुष अपनी विषय-तृप्ति को खराब कोई बुराई नहीं मानते, उनकी प्रवृत्ति उसे वैध मानने की ही है, लेकिन आधुनिक युग में तो कोई बात स्वयं सिद्ध नहीं मानी जाती और हरेक चीज की बारीकी से छान-बीन की जाती है। अतः यह मानना सरासर ग़लती होगी कि चूँकि अबतक हम विवाहित

जन में विषय-भोग करते रहे हैं इसलिए ऐसा करना ठीक है या स्वास्थ्य के लिए उसकी आवश्यकता है। बहुत-सी ानी प्रथाओं को हम छोड़ चुके हैं, और उसके परिणाम अच्छे हुए हैं। तब इस खास प्रथा को ही उन स्त्री पुरुषों के अनुभव । कसौटी पर क्यों न कसा जाय, जो विवाहित होते हुए भी क-दूसरे की सहमति से सयम का जीवन व्यतीत कर रहे हैं और ससे नैतिक तथा शारीरिक दोनों तरह का लाभ उठा रहे हैं?

लेकिन मैं तो, इसके अलावा, विशेष आधार पर भी भारत ं सन्तति निग्रह के कृत्रिम साधनों का विरोधी हूँ। भारत में ायुवक यह नहीं जानते कि विषय-दमन क्या है? इसमें उनका ोई दोष नहीं है। छोटी उम्र में ही उनका विवाह हो जाता है, यह हाँ की प्रथा है, और विवाहित जीवन में संयम रखने को उनसे कोई नहीं कहता। माता-पिता तो अपने नाती-पोते देखने के उत्सुक रहते हैं। बेचारी बाल-पत्नियों से उनके आस-पास वाले यही आशा करते हैं कि जितनी जल्दी हो वे पुत्रवती होजायँ। ऐसे वातावरण में सन्तति-निरोधक कृत्रिम साधनों से तो कठिनाई और बढ़ेगी ही। जिन बेचारी लड़कियों से यह आशा की जाती है कि वे अपने पतियों की इच्छा-पूर्ति करेंगी, उन्हें अब यह और सिखाया जायगा कि वे बच्चे पैदा होने की इच्छा तो न करें, पर विषय-भोग किये जायँ, इसी में उनका भला है। और इस दुहरे उद्देश्य की सिद्धि के लिए उन्हें सन्तति-निरोध के कृत्रिम साधनों का सहारा लेना होगा !!!

मैं तो विवाहित बहनों के लिए इस शिक्षा को बहुत प्रस
समझता हूँ। मैं यह नहीं मानता कि पुरुष की ही तरह स्त्री में
काम-वासना भी अदम्य होती है। मेरी समझ में, पुरुष की अपेक्
स्त्री के लिए आत्म-संयम करना ज्यादा आसान है। हमारे देश
जरूरत बस इसी बात की है कि स्त्री अपने पति तक से 'न' क
सके, ऐसी सुशिक्षा स्त्रियों को मिलनी चाहिए। स्त्रियों का
यह सिखा देना चाहिए कि वे अपने पतियों के हाथ की कठपुतल
या औजार मात्र बन जायें, यह उनके कर्त्तव्य का अंग नहीं है
और कर्त्तव्य की ही तरह उनके अधिकार भी हैं। जो लोग सी
को राम की आज्ञानुवर्त्तिनी दासी के रूप में ही देखते हैं व
बात को महसूस नहीं करते कि उनमें स्वाधीनता की भावना कित
थी और राम हरेक बात में उनका कितना खयाल रखते थे। भार
की स्त्रियों से सन्तति-निरोध के कृत्रिम साधन अख्तियार कर
के लिए कहना तो बिल्कुल उल्टी बात है। सबसे पहले तो उ
मानसिक दासता से मुक्त करना चाहिए, उन्हें अपने शरीर
पवित्रता की शिक्षा देकर राष्ट्र और मानवता की सेवा में कित
गौरव है, इस बात की शिक्षा देनी चाहिए। यह सोच लेना ठी
नहीं है कि भारत की स्त्रियों का तो उद्धार ही नहीं हो सक
और इसलिए सन्तानोत्पत्ति में रुकावट डालकर अपने रहे-स
स्वास्थ्य की रक्षा के लिए उन्हें सिर्फ सन्तति-निग्रह के कृत्रि
साधन ही सिखा देने चाहिए।

जो बहनें सचमुच उन स्त्रियों के दुःख से दुःखी हैं, जि

इच्छा हो या न हो फिर भी बच्चों के झमेले में पड़ना पड़ता है, उन्हें अधीर नहीं होना चाहिए। वे जो-कुछ चाहती हैं, वह एक दम तो कृत्रिम सन्तति-निरोध के साधनों के पक्ष में आन्दोलन से भी नहीं होने वाला है। हरेक उपाय के लिए सवाल तो शिक्षा का ही है। इसलिए मेरा कहना यही है कि यह हो अच्छे ढग की।

ह० से० ७-४-३६

८

फिर वही सयम का विषय

एक सज्जन लिखते हैं:—

"इन दिनों आपने ब्रह्मचर्य पर जो लेख लिखे हैं, उनसे लोगों में खलबली-सी मच गई है। जिनकी आपके विचारों के साथ सहानुभूति है उन्हें भी लम्बे अर्से तक संयम रख सकना मुश्किल पड़ रहा है। उनकी यह दलील है कि आप अपना ही अनुभव और अभ्यास सारी मानव जाति पर लागू कर रहे हैं, परन्तु आप खुद ने भी तो क़बूल किया है कि आप पूरे ब्रह्मचारी की शर्तें पूरी नहीं कर सकते, क्योंकि आप स्वयं विकार से खाली नहीं हैं। और चूँकि आप यह भी मानते हैं कि दम्पति को सन्तान की संख्या सीमित रखने की ज़रूरत है, इसलिए अधिकांश मनुष्यों के लिए तो एक यही व्यावहारिक उपाय है कि वे सन्तति-निरोध के कृत्रिम-साधन काम में लावें।'

मैं अपनी मर्यादायें स्वीकार कर चुका हूँ। इस विवाद में म
ये ही मेरे गुण हैं। कारण, मेरी मर्यादाओं से यह स्पष्ट हो जाता
है कि मैं भी अधिकाश मनुष्यों की भाँति दुनियावी आदमी हूँ
और असाधारण गुणवान् होने का मेरा दावा भी नहीं है। मे
सयम का हेतु भी बिल्कुल मामूली था। मैं तो देश या मनुष्य
समाज की सेवा के खयाल से सन्तान-वृद्धि रोकना चाहता था।
देश या समाज की सेवा की बात दूर की है। इसकी अपेक्षा या
कुटुम्ब का पालन न कर सकना सन्तति-नियमन के लिए अधिक
प्रबल कारण होना चाहिए। वर्तमान दृष्टिकोण से इस पैंतीस
वर्ष के सयम में मुझे सफलता मिली है। फिर भी मेरा विकार
नष्ट नहीं हुआ है और उसके विषय में मुझे आज भी जागरूक
रहने की जरूरत है। इससे भलीभाँति सिद्ध है कि मैं बहुत-कुछ
साधारण मनुष्य हूँ। इसीलिए मेरा कहना है कि जो बात मेरे
लिए सम्भव हुई है वही दूसरे किसी भी प्रयत्नशील मनुष्य के
लिए सभव हो सकती है।

कृत्रिम उपायों के समर्थकों के साथ मेरा झगड़ा इस बात प
है कि वे यह मान बैठे हैं कि मामूली मनुष्य संयम रख ही न
सकता। कुछ लोग तो यहाँतक कहते हैं कि यदि वह समव हो
तो उसे सयम नहीं रखना चाहिए। ये लोग अपने क्षेत्र में कित
भी बड़े आदमी हों, मैं अत्यन्त विनम्रता किन्तु विश्वास के सा
कहूँगा कि उन्हें इस बात का अनुभव नहीं है कि सयम से क्
क्या हो सकता है। उन्हें मानवीय आत्मा के मर्यादित करने

कोई हक नहीं है। ऐसे मामलों में मेरे जैसे एक आदमी की निश्चित गवाही भी, यदि वह विश्वस्त हो, तो न केवल अधिक मूल्यवान है, बल्कि निर्णायक भी है। सिर्फ इसी वजह से कि मुझे लोग 'महात्मा' समझते हैं, मेरी गवाही को निकम्मी क़रार दे देना गम्भीर खोज की दृष्टि से उचित नहीं है।

परन्तु एक बहन की दलील और भी ज़ोरदार है। उनके कहने का मतलब यह है—"हम कृत्रिम उपायों के समर्थक लोग तो हाल ही में सामने आये हैं। मैदान आप संयम के समर्थकों के हाथ में पीढ़ियों से, शायद हज़ारों वर्ष से, रहा है, तो आप लोगों ने क्या कर दिखाया? क्या दुनिया ने संयम का सबक़ सीख लिया है? बच्चों के भार से लदे हुए परिवारों की दुर्दशा रोकने के लिए आप लोगों ने क्या किया है? आहत माताओं की पुकार को आप लोगों ने सुना है? आइए, अब भी मैदान आप लोगों के लिए खाली है। आप संयम का समर्थन करते रहिए, हमें इसकी चिन्ता नहीं है, और अगर आप पतियों की ज़बर्दस्ती से स्त्रियों को बचा सकें तो हम आपकी सफलता भी चाहेंगे, मगर आप हमारे तरीक़ों की निन्दा क्यों करते हैं? हम तो मनुष्य की साधारण कमज़ोरियों और आदतों के लिए गुँजा-इश रखकर चलते हैं और हम जो उपाय करते हैं अगर उनका ठीक-ठीक प्रयोग किया जाय, तो वे क़रीब-क़रीब अचूक साबित होते हैं।"

इस व्यंग में स्त्री-हृदय की पीड़ा भरी हुई है। जो कुटुम्ब

वर्षों की बढ़ती हुई संख्या के मारे सदा दरिद्र रहते हैं, उनके लि इस बहन का हृदय दया से भर गया है। यह सभी जानते हैं कि मानवीय दुःख की पुकार पत्थर के दिलों को भी पिघला देती है। भला यह पुकार उदात्मा बहनों को प्रभावित किये बिना कैसे र सकती है ? पर अगर हम भावावेश में बह जायें और डूबते की तरह किसी भी तिनके का सहारा ढूँढ़ने लगें तो ऐसी पुकार हमें आसानी से गुमराह भी कर सकती है।

हम ऐसे जमाने में रह रहे हैं, जिसमें विचार और उनके महत्व बहुत जल्दी-जल्दी बदल रहे हैं। धीरे धीरे होनेवाले परि- णामों से हमको सन्तोष नहीं होता। हमें अपने इन सजातीय, बल्कि केवल अपने ही देश की भलाई से तसल्ली नहीं होती। हमें सारे मानव-समाज का खयाल होता है, मानवता की उद्देश्य- सिद्धि में यह कम सफलता नहीं है।

परन्तु मानवी दुःखों का इलाज धीरज छोड़ने से नहीं होगा और न सब पुरानी बातों को सिर्फ पुरानी होने की वजह से छोड़ देने से होगा। हमारे पूर्वज अन्म में भी ये ही स्वप्न देखते थे जो आज हम उत्साह से अनुप्राणित कर रहे हैं। शायद उन स्वप्नों में इतनी स्पष्टता न रही हो। यह भी सम्भव है कि एक ही प्रकार के दुःखों का जो उपाय उन्होंने बताया वह हमारे मानस के आशातीत रूप में विशाल हो जाने पर भी लागू हो। और मेरा दावा तो निश्चित अनुभव के आधार पर यह है कि जिस तरह सत्य और अहिंसा मुट्ठी-भर लोगों के लिए ही नहीं है, बल्कि सारे

मनुष्य-समाज के लिए रोजमर्रा के काम की चीजें हैं, ठीक उसी तरह संयम थोड़े से महात्माओं के लिए नहीं, बल्कि सब मनुष्यों के लिए है। और जिस तरह बहुत-से आदमियों के झूठे और हिंसक होने पर भी मनुष्य-समाज को अपना आदर्श नीचा नहीं करना चाहिए, इसी प्रकार यदि बहुत-से या अधिकांश लोग भी संयम का संदेश स्वीकार न कर सकें तो इस विषय में भी हमें अपना आदर्श नीचा नहीं करना चाहिए।

बुद्धिमान् न्यायाधीश वह है जो विकट मामला सामने होने पर भी ग़लत फैसला नहीं करता। लोगों की नजरों में वह अपने को कठोर हृदय बन जाने देगा, क्योंकि वह जानता है कि क़ानून को बिगाड़ देने में सच्ची दया नहीं है। हमें नाशवान शरीर या इन्द्रियों की दुर्बलता को भीतर विराजमान अविनाशी आत्मा की दुर्बलता नहीं समझ लेना चाहिए। हमें तो आत्मा के नियमानुसार शरीर को साधना चाहिए। मेरी विनम्र सम्मति में ये नियम थोड़े से और अटल हैं और इन्हें सभी मनुष्य समझ और पाल सकते हैं। इन नियमों को पालने में कम-ज्यादा सफलता मिल सकती है, पर ये लागू तो सभी पर होते हैं। अगर हममें श्रद्धा है तो उसे सिर्फ इसीलिए नहीं छोड़ देना चाहिए कि मनुष्य-समाज को अपने ध्येय की प्राप्ति में या उसके निकट पहुँचने में लाखों बरस लगेंगे। 'जवाहरलाल' की भाषा में, हमारी विचार-सरणी ठीक होनी चाहिए।

परन्तु उस बहन की चुनौती का जवाब देना तो बाक़ी ही

रह गया। संयमवादी हाथ-पर-हाथ धरे नहीं बैठे हैं। उनका प्रचार-कार्य जारी है। जैसे कृत्रिम साधनों से उनके साधन भिन्न हैं, वैसे ही उनका प्रचार का तरीका अलग है, और होना चाहिए। संयम-वादियों को चिकित्सालयों की जरूरत नहीं है, वे अपने उपायों का विज्ञापन भी नहीं कर सकते, क्योंकि यह कोई बेचने या खरीदने की चीजें तो हैं नहीं। कृत्रिम साधनों की टीका करना और उनके उपयोग से लोगों को सचेत करते रहना इस प्रचार-कार्य का ही अंग है। उनके कार्य का रचनात्मक पक्ष तो सदा रहा ही है; किन्तु वह तो स्वभावतः ही अदृश्य होता है। संयम का समर्थन कभी बन्द नहीं किया गया है और इसका सबसे कारगर तरीका आचरणीय है। संयम का सफल अभ्यास करनेवाले सच्चे लोग जितने ज्यादा होंगे उतना ही यह प्रचार-कार्य अधिक कारगर होगा।

ह० से० ३०-५-३६

९

संयम द्वारा सन्तति-निग्रह

निम्न लिखित पत्र मेरे पास बहुत दिनों पड़ा रहा—

"आजकल सारी ही दुनिया में सन्तति निग्रह का समर्थन हो रहा है। हिन्दुस्तान भी उससे बाहर नहीं। आपके संयम-सम्बन्धी लेखों को मैंने पढ़ा है। संयम में मेरा विश्वास है।

अहमदाबाद में थोड़े दिन पहले एक सन्तति निग्रह-समिति स्थापित हुई है। ये लोग दवा, टिकियाँ, ट्यूब वगैरा का समर्थन करके स्त्रियों को हमेशा के लिए सभोगवती करना चाहते हैं।

मुझे आश्चर्य होता है कि जीवन के आखिरी किनारे पर बैठे हुए लोग किसलिए प्रजा के जीवन को निचोड़ डालने की हिमायत करते हैं।

इसके बजाय सन्तति-नियमन-संयम-समिति स्थापित की होती तो? आप गुजरात पधार रहे हैं, इसलिए मेरी ऊपर की प्रार्थना ध्यान में रखकर गुजरात के नारी-तेज को प्रकाश दीजिएगा।

आज के डाक्टर और वैद्य मानते हैं कि रोगियों को संयम का पाठ सिखाने से उनकी कमाई मारी जायगी और उन्हें भूखों मरना पड़ेगा।

इस प्रकार के सन्तति-निग्रह से समाज बहुत गहरे और अंधेरे खड्डे में चला जायगा। उसे अगर ऊपर और प्रकाश में रहना है, तो सयम को अपनाये बिना छुटकारा नहीं। बग़ैर सयम के मनुष्य कभी ऊंचा नहीं चढ़ सकेगा। इससे तो जितना व्यभिचार आज है, उससे भी अधिक बढ़ेगा। और फिर रोग का तो पूछना ही क्या?"

इस बीच में मैं अहमदाबाद हो आया हूँ। उपर्युक्त विषय पर तो मुझे वहाँ अपने विचार प्रकट करने का अवसर मिला नहीं, पर लेखक के इस कथन को मैं अवश्य मानता हूँ कि सन्तति का नियमन केवल सयम से ही सिद्ध किया जाय। दूसरी रीति

से नियमन करने में अनेक दोष उत्पन्न होने की सम्भावना है। जहाँ इस नियमन ने घर कर लिया है, वहाँ दोष साफ दिखाई दे रहे हैं। इसमें कोई आश्चर्य नहीं, जो संयम-रहित नियमन के समर्थक इन दोषों को नहीं देख सकते, क्योंकि संयम-रहित नियमन ने नीति के नाम से प्रवेश किया है।

अहमदाबाद में जो समिति बनाई गई है, उसके हेतु के विषय में यह कहना ज्यादती है कि लेखक ने जैसा लिखा है वह वैसा ही है, पर उसका हेतु चाहे जैसा हो, तो भी उसकी प्रवृत्ति का परिणाम तो अवश्य विषय-भोग बढ़ाने में ही आना है। पानी को उँड़ेलें तो वह नीचे ही जायगा, इसी तरह विषय-भोग बढ़ानेवाली युक्तियाँ रची जायँगी तो उनसे वह भोग बढ़ेगा ही।

इसी प्रकार 'डाक्टर और वैद्य संयम का पाठ सिखावें तो उनकी कमाई मारी जायगी' इससे वे संयम नहीं सिखाते, ऐसा मानना भी ज्यादती है। संयम का पाठ सिखाना डाक्टर-वैद्यों ने अपना क्षेत्र आजतक माना नहीं, मगर डाक्टर और वैद्य इस तरफ बढ़ते जा रहे हैं इस बात के चिन्ह जरूर नजर आते हैं। उनका क्षेत्र व्याधियों के कारण शोधने और रोग मिटाने का है। अगर वे व्याधियों के कारणों में असंयम—स्वच्छन्द को अग्र स्थान न देंगे तो यह कहना चाहिए कि उनका दिवाला निकलने का समय आ गया है। ज्यों ज्यों जन-समाज की समझ-शक्ति बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों उसे, अगर रोग जड़-मूल से नष्ट न हुआ तो, सन्तोष होने का नहीं। और जबतक जन-समाज संयम की ओर

हों चलेगा, व्याधियों को रोकने के नियमों का पालन नहीं करेगा, तबतक आरोग्य की रक्षा करना अशक्य है। यह इतना स्पष्ट है कि अन्त में इस पर सभी कोई ध्यान देंगे, और प्रामाणिक डाक्टर संयम के मार्ग पर अधिक-से-अधिक जोर देंगे। संयम सहित निग्रह भोग बढ़ाने में अधिक-से-अधिक हाथ बँटायगा, इस विषय में मुझे तो शंका नहीं। इसलिए अहमदाबाद की समिति अधिक गहरे उतर कर असंयम के भयंकर परिणामों पर विचार करके स्त्रियों को संयम की सरलता और आवश्यकता का ज्ञान कराने में अपने समय का उपयोग करे, तो आवश्यक परिणाम प्राप्त हो सकेगा, ऐसा मेरा नम्र अभिप्राय है।

ह० से० १२ १२ ३६

१०

कैसी नाशकारी चीज है?

डा० सोखे और डा० मंगलदास के बीच हाल ही में जो उस बारहमासी विषय अर्थात् सन्तति-निरोध पर वाद विवाद हुआ था, उससे मुझे परमादरणीय डा० अन्सारी के मत को प्रगट करने की हिम्मत हो रही है, जो डा० मंगलदास के समर्थन में है। करीबन एक साल की बात है। मैंने स्वर्गीय डा० साहब को लिखा था कि वैद्यक की दृष्टि से आप इस विवाद-ग्रस्त विषय में मेरे मत का समर्थन कर सकते हैं या नहीं ? मुझे यह जान कर आश्चर्य

और खुशी हुई कि उन्होंने तहेदिल से मेरा समर्थन किर
पिछली बार जब मैं दिल्ली गया था, तब इस विषय में उनसे
रूबरू भी बातचीत हुई थी। और मेरे अनुरोध करने पर उन्हों
अपने निजी तथा अपने अन्य व्यवसाय-बन्धुओं के अनुभव
आधार पर सप्रमाण अंकों सहित यह सिद्ध करने के लिए ि
इन कृत्रिम साधनों का उपयोग करनेवालों को कितनी भयं
हानि पहुँच रही है, एक लेख-माला लिखने का वचन दिया
उन्होंने तो उन मनुष्यों की दयनीय अवस्था का हृदय-वि
सुनाया था जो यह जानते हुए कि उनकी पत्नियाँ और अन्य स्त्रि
सन्तति-निरोध के कृत्रिम साधनों को काम में ला रही हैं, कु
कुछ दिन सम्भोग कर चुके थे। सम्भोग के स्वाभाविक परिणाम
भय से मुक्त होने पर वे अमर्याद भोग-विलास पर टूट पड़े। फि
नई-नई औरतों से मिलने की उन्हें अदम्य लालसा होने लगी और
आखिर पागल होगये। आह! डॉक्टर साहब अपनी उस ले
माला को शुरू करने ही वाले थे कि चल बसे।

कहा जाता है कि बर्नार्डशा ने भी यही कहा है कि सन्त
निरोधक साधनों का उपयोग करने वाले स्त्री-पुरुषों का सम्भ
तो प्रकृति-विरुद्ध वीर्यनाश से किसी प्रकार कम नहीं है। एक क्ष
भर सोचने से पता चल जायगा कि उनका कथन कित
यथार्थ है।

इस बुरी टेव के शिकार बनकर धीरे धीरे अपने पौरुष
हाथ धो लेने वाले विद्यार्थियों के करुणाजनक पत्र तो मुझे हरे

गरीब रोज़ मिलते हैं। कभी-कभी शिक्षकों के भी ख़त मिलते हैं। 'हरिजन सेवक' में लाहौर के सनातनधर्म कालेज के आचार्य का जो पत्र-व्यवहार प्रकाशित हुआ था, वह भी पाठकों को याद होगा, जिसमें उन्होंने उन शिक्षकों के विरुद्ध बड़ी बुरी तरह शिकायत की थी, जो अपने विद्यार्थियों के साथ अप्राकृतिक व्यभिचार करते थे। इससे उनके शरीर और चरित्र की जो दुर्गति हुई थी उसका भी ज़िक्र आचार्य जी ने अपने पत्र में किया था। इन उदाहरणों से तो मैं यही नतीजा निकालता हूँ, कि अगर पति पत्नी के बीच भी मैथुन के स्वाभाविक परिणाम के भय से मुक्त होने की संभावना को लेकर संभोग होगा, तो उसका भी वही घातक परिणाम होगा, जो प्रकृति विरुद्ध मैथुन से निश्चित रूप से होता है।

निस्सन्देह कृत्रिम साधनों के बहुत-से हिमायती परोपकार की भावना से ही प्रेरित होकर इन चीज़ों का अन्धाधुन्ध प्रचार कर रहे हैं, पर यह परोपकार अस्थायी है। मैं इन भले आदमियों से अनुरोध करता हूँ कि वे इसके परिणामों का तो ख़याल करें। वे ग़रीब लोग कभी पर्याप्त मात्रा में इनका उपयोग नहीं कर सकेंगे, जिन तक यह उपकारी पुरुष पहुँचना चाहते हैं। और जिन्हें इनका उपयोग नहीं करना चाहिए वे ज़रूर इनका उपयोग करेंगे, और अपने और अपने साथियों का नाश करेंगे, पर अगर यह पूरी तरह से सिद्ध हो जाता कि शारीरिक या नैतिक आरोग्य की दृष्टि से यह चीज़ लाभदायक है, तो यह भी सह

लिया जाता। इनके और भावी सुधारकों के लिए डा० बन्मर्स की राय—अगर उसके विषय में मेरे शब्दों को कोई प्रमाण मानें—एक गम्भीर चेतावनी है।

ह० से० १० १०-३६

११

अरण्य रोदन

"अभी हाल ही में सन्तति-नियमन की प्रचारिका मिसेज़ मॅगर के साथ आपकी मुलाक़ात पर एक समालोचना मैंने पढ़ी है। इसका मुझ पर इतना गहरा असर हुआ कि आपके दृष्टि-बिन्दु पर सन्तोष और पसन्दगी ज़ाहिर करने के लिए मैं आपको य पत्र लिखने बैठा हूँ। आपकी हिम्मत के लिए ईश्वर सदा आपका कल्याण करे।

"पिछले तीस साल से मैं लड़कों को पढ़ाने का काम कर हूँ। मैंने हमेशा उन्हें देह-दमन और निस्वार्थ जीवन बिताने के लिए तालीम दी है। जब मिसेज़ मॅगर हमारे आस-पास प्रचार कार्य कर रही थीं, तब हाईस्कूल के लड़के-लड़कियाँ उनकी दी हुई सूचनाओं का उपयोग करने लग गए थे, और परिणाम का डर दूर हो जाने से उनमें खूब व्यभिचार चल पड़ा था। अगर मिसेज़ सॅगर की शिक्षा कहीं व्यापक हो गई, तो सारा समाज विषय-सेवन के पीछे पड़ जायगा, और शुद्ध प्रेम का दुनिया से नामोनिशान तक मिट जायगा। मैं मानता हूँ कि जनता का ज्

आदर्शों की शिक्षा देने में सदियाँ लग जायगीं, पर यह काम शुरू करने के लिए अनुकूल-से अनुकूल समय अभी है। मुझे डर है कि मिसेज सेंगर विषय को ही प्रेम समझ बैठी हैं, पर यह भूल है, क्योंकि प्रेम एक आध्यात्मिक वस्तु है, विषय-सेवन से उसकी उत्पत्ति कभी नहीं हो सकती।

"डा० एलेक्सिस केरल भी आपके साथ इस बात में सहमत हैं कि संयम कभी हानिकारक सिद्ध नहीं होता, सिवाय उन लोगों के जो कि दूसरी तरह अपने विषयों को उत्तेजित करते हों और पहले से ही अपने मन पर काबू खो चुके हों। मिसेज सेंगर का यह बयान कि अधिकांश डाक्टर यह मानते हैं कि ब्रह्मचर्य-पालन से हानि होती है, बिल्कुल गलत है। मैं तो देखता हूँ कि यहाँ कई बड़े-बड़े डाक्टर अमेरिकन सोश्यल हाईजीन (सामाजिक आरोग्य शास्त्र) के विज्ञान-शास्त्री ब्रह्मचर्य-पालन को लाभदायक मानते हैं।

"आप एक बड़ा नेक काम कर रहे हैं। मैं आपके जीवन-संग्राम के तमाम चढ़ाव-उतारों का बहुत रसपूर्वक अध्ययन करता रहा हूँ। आप जगत् में उन इने-गिने व्यक्तियों में से हैं, कि जिन्होंने स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध के प्रश्न पर इस तरह उच्च आध्यात्मिक दृष्टि बिन्दु से विचार किया है। मैं आपको यह बताना चाहता हूँ कि महासागर के इस पार भी आपके आदर्शों के साथ सहानुभूति रखने वाला आपका एक साथी यहाँ पर है।

"इस नेक काम को जारी रक्खें, ताकि नवयुवक वर्ग सच्ची बात

को जान ले, क्योंकि भविष्य इसी वर्ग के हाथों में है।

"अपने विद्यार्थियों के साथ अपने लगाव में से मैं प्रोत्म उद्धरण यहाँ देना चाहता हूँ—'निर्माण करो, हमेशा निर्माण करो। निर्माण प्रवृत्ति में से तुम्हें श्रेय मिलेगा, उन्नति मिलेगी, उत्साह मिलेगा, उल्लास मिलेगा, पर अगर तुम अपनी निर्माण शक्ति को आज विषय तृप्ति का साधन बना लोग, तो तुम अपनी रचना शक्ति पर अत्याचार करोगे और तुम्हारे आध्यात्मिक का नाश हो जायगा। रचना-प्रवृत्ति—शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक—का नाम जीवन है, यही आनन्द है। अगर तुम प्रजोत्पत्ति के हेतु के बिना या सन्तति का निरोध करके विषय सेवन द्वारा सिर्फ इन्द्रिय-सुख प्राप्त करने का प्रयत्न करोगे, तो तुम प्रकृति के नियम का भग और अपनी आध्यात्मिक शक्ति का हनन करोगे। इसका परिणाम क्या होगा? अनिवार्य विषयाग्नि धधक उठेगी। और आखिर निराशा तथा असफलता में अन्त होगा। इससे तो हम कभी उन उच्च गुणों का विकास नहीं कर पायेंगे, जिनके बल पर हम उस नवीन मानव-समाज की रचना कर सकें जिसमें कि, दिव्यात्मा स्त्री-पुरुष हों।'

"मैं जानता हूँ, कि यह सब पूर्व काल के नबियों के अरण्य रोदन जैसी बात है, पर मेरा पक्का विश्वास है कि यही सच्चा रास्ता है। और मुझसे अधिक कुछ चाहे न भी बन पड़े, मैं कम-से-कम उंगली दिखा कर तो अपना समाधान करलूँ।"

संतति-नियमन के कृत्रिम साधनों का निषेध करने वाले जो

मुझे कभी-कभी अमेरिका से मिलते रहते हैं, उन्हीं में से यह एक है। पर सुदूर पश्चिम से हर हफ्ते हिन्दुस्तान में जो ाजिक साहित्य आता रहता है, उससे तो पढ़नेवाले के दिल पर कुल जुदा ही असर पड़ता है। यही मालूम होता है; मानों अमे का में तो सिवा बेवकूफों के कोई भी इन आधुनिक साधनों का ोध नहीं करते हैं, जो मनुष्य को उस अन्ध-विश्वास-से मुक्ति ान करते हैं, जो अब तक शरीर को गुलाम बना कर संसार सर्वश्रेष्ठ ऐहिक सुख से मनुष्य को वंचित करके उसके शरीर निष्प्राण बना देने की शिक्षा देता चला आ रहा है। यह हित्य भी उतना ही क्षणिक नशा पैदा करता है, जितना कि वह र्म, जिसकी वह शिक्षा देता है और जिसे उसके साधारण परि- म के खतरे से बचकर करने को प्रोत्साहन देता है। पश्चिम से ाने वाले केवल उन पत्रों को मैं 'हरिजन' के पाठकों के सामने हीं पेश करता, जिनमें व्यक्तिगत रूप से इन साधनों का निषेध ता है। वे तो साधक की दृष्टि से मेरे लिए उपयोगी हैं। साधा ण पाठकों के लिए उनका मूल्य बहुत कम है, पर यह पत्र खास र पर एक महत्व रखता है, क्योंकि यह एक ऐसे शिक्षक का है, से तीस वर्ष का अनुभव है। यह हिन्दुस्तान के उन शिक्षकों ौर जनता (स्त्री-पुरुष) के लिए खास तौर पर मार्ग-दर्शक है, ो उस ज्वार के प्रबल प्रवाह में बहे जा रहे हैं। सन्तति-नियामक ाधनों के प्रयोग में शराब से अनन्त-गुना प्रबल प्रलोभन ोता है, पर इस मारक प्रलोभन के कारण यह उस चमकीली

शराब की अपेक्षा अधिक जायज नहीं है। और चूँकि इ...
का प्रचार बढ़ता ही जा रहा है, इस कारण निराश होकर ...
विरोध करना भी नहीं छोड़ा जा सकता है। अगर इनके ...
धियों को अपने कार्य की पवित्रता में श्रद्धा है, तो उन्हें उसे ...
जारी रखना चाहिए। ऐसे अरण्य-रोदन में भी यह बल ...
कि जो मूढ़ जन-समुदाय के सुर-में-सुर मिलाने वाले की ...
में नहीं हो सकता, क्योंकि जहाँ अरण्य में रोने वाले की ...
में चिन्तन और मनन के अलावा अटूट श्रद्धा होती है, वहाँ ...
सर्वसाधारण के इस शोर की जड़ में विषय भोग की व्यक्ति...
लालसा और अनचाही सन्तति तथा दुखिया माताओं के ...
झूठी और निरी भावुक महानुभूति के अलावा और कुछ ...
होता। और इस मामले में व्यक्तिगत अनुभव वाली दलील में ...
उतनी ही बुद्धि है, जितनी कि एक शराबी के किसी कार्य में ...
है। और महानुभूति वाली दलील एक धोखे की टट्टी है, जिस...
अन्दर पैर भी रखना खतरनाक है। अनचाहे बच्चों के ...
मातृत्व के कष्ट तो कल्याणकारी प्रकृति द्वारा नियोजित ...
और हिदायतें हैं। संयम और इन्द्रिय नियमन के कानून की ...
पर्वा नहीं करेगा, वह तो एक तरह से अपनी खुद-कुशी ही ...
लेगा। यह जीवन तो एक परीक्षा है। अगर हम इन्द्रियों का ...
मन नहीं कर सकते, तो हम असफलता को न्यौता देते हैं। ...
की तरह हम युद्ध से मुँह मोड़ कर जीवन के एक-मात्र आनन्द ...
अपने आप को वंचित करते हैं। ह० से० २७-९-...

आश्चर्यजनक, अगर सच है!

खाँसाहब अब्दुलगफ्फारखाँ और मैं सबेरे और शाम जब मने जाते हैं तो हमारी बात-चीत अक्सर ऐसे विषयों पर हुआ रती है, जो सभी के हित के होते हैं। खाँसाहब सरहदी इलाकों, यहाँ तक कि काबुल और उसके भी आगे काफी घूमे हैं, और रहदी कबीलों के बारे में उनकी बड़ी अच्छी जानकारी है। इस लए वह अक्सर यहाँ के सीधे-सादे लोगों की आदतों और रस्म रेवाजों के बारे में मुझे बतलाया करते हैं। वह मुझे बताते हैं कि न लोगों की मुख्य खुराक, जो इस सभ्यता की हवा से अब-तक बचे ही हैं, मक्के और जौ की रोटी और मसूर है। वक्त-बे-वक्त छाछ भी ले लिया करते हैं। वे गोश्त खाते हैं, पर बहुत कम। नि समझा कि उनकी मशहूर दिलेरी का एक-मात्र कारण उनकी खुली हवा में रहना और वहाँ का अच्छा शक्तिवर्द्धक जल-वायु ही । 'नहीं, सिर्फ यही बात नहीं है' खाँसाहब ने उसी वक्त कहा, उनमें जो ताक़त व दिलेरी है उसका भेद तो हमें उनके संयमी जीवन में मिलता है। शादी से, मर्द व औरतें दोनों ही, पूरी जवानी की उम्र में जाकर करते हैं। बेवफाई, व्यभिचार या अविवाहित प्रेम को तो वे जानते ही नहीं। शादी से पहले सहवास करने की सजा वहाँ मौत है। इस तरह का गुनाह करने वाले की जान लेने का उन्हें हक़ है।'

अगर यह संयम या इन्द्रिय-निग्रह वहाँ इतना व्यापक है जैसा कि खाँसाहब बतलाते हैं, तो इससे हमें हिन्दुस्तान में ऐसा सबक मिलता है, जो हमें हृदयंगम कर लेना चाहिए। खाँसाहब के आगे यह विचार रखा कि उन लोगों के बराबर विलेर होने का एक बहुत बड़ा सबब अगर उनका संयमी जीवन है, तो मन और शरीर के बीच पूरा सहयोग होना ही चाहिए; क्योंकि अगर मन तो विषय-तृप्ति के पीछे पड़ा रहा और शरीर ने निग्रह किया, तो इससे प्राण शक्ति का इतना भयंकर नाश होगा कि शरीर में कुछ भी नहीं बच रहेगा। खाँसाहब मान गये कि यह अनुमान ठीक है। उन्होंने कहा कि जहाँ तक मैं इसकी जाँच कर सका हूँ, मुझे लगता है कि वे लोग संयम के इतने अभ्यासी हो गये हैं कि नौजवान मर्दों और औरतों का शादी से पहले विषय-तृप्ति करने का कभी मन ही नहीं होता। खाँसाहब ने मुझ से यह भी कहा कि उन इलाकों की औरतें कभी पर्दा नहीं करतीं, वहाँ झूठी लज्जा नहीं है, औरतें निडर हैं, चाहे जहाँ आजादी से घूमती हैं, और अपनी सम्भाल खुद कर सकती हैं, अपनी इज्जत आबरू बचा सकती हैं, किसी मर्द से वे अपनी रक्षा नहीं कराना चाहतीं, उन्हें जरूरत भी नहीं। तो भी खाँसाहब यह मानते हैं कि उनका यह संयम बुद्धि या जीती-जागती श्रद्धा पर आधार नहीं रखता, इसलिए जब ये पहाड़ों के रहने वाले लोग सभ्य या नजाकत की जिन्दगी के सम्पर्क में आते हैं तो उनका यह संयम टूट जाता है। सभ्यता के सम्पर्क में आते

, ये अपनी पुरानी बात छोड़ देते हैं, तो उन्हें इसके लिए कोई
ा नहीं मिलती और उनकी बेवफाई और व्यभिचार को
ाक कम या ज्यादा उपेक्षा की नजर से देखती है। इससे ऐसे
ार सामने आजाते हैं, जिनकी कि मुझे फिलहाल चर्चा नहीं
नी चाहिए। यह लिखने का तो अभी मेरा यह मतलब है कि
साहब की ही तरह जो लोग इन फिरकों के आदमियों के बारे
जानकारी रखते हों, और उनके कथन का समर्थन करते हों,
से इस पर और भी रोशनी डलवाई जाय, और मैदानों में
ने वाले नौजवानों और युवतियों को बतलाया जाय कि संयम
पालन, अगर यह इन पहाड़ी फिरकों के लिए सच-मुच स्वाभा
क चीज है, जैसा कि स्वोसाहब का ख्याल है, तो हम लोगों के
ए भी उसे उतना ही स्वाभाविक होना चाहिए—अगर अच्छे
च्छे विचारों को हम अपने विचार-जगत में बसालें, और यों
ी घुस आने वाले बाधक विचारों या विषय-विकारों को जगह
र दें। दरअसल, अगर सद् विचार काफी बड़ी संख्या में हमारे
न में बस जायँ, तो बाधक विचार वहाँ ठहर ही नहीं सकते।
अवश्य इसमें साहस की जरूरत है। आत्म संयम कायर आदमी
को कभी हासिल नहीं होता। आत्म-संयम तो प्रार्थना और उप
वास-रूपी जागरुकता और निरन्तर प्रयत्न का सुन्दर फल है।
अर्थ-हीन स्तोत्र पाठ प्रार्थना नहीं है, न शरीर को भूखों मारना
उपवास है, प्रार्थना तो उसी हृदय से निकलती है, जिसे कि ईश्वर
का श्रद्धा-पूर्वक ज्ञान है, और उपवास का अर्थ है बुरे या हानि

कारक विचार, कर्म या आहार से परहेज रखना। मन तो वि
प्रकार के व्यजनों की ओर दौड़ रहा है और शरीर का
मारा जा रहा है, तो ऐसा उपवास तो निरर्थक व्रत उपवास
बुरा है।

ह० से० १०-४-३७

१२

अप्राकृतिक व्यभिचार

कुछ मास पहले विहार-सरकार ने अपने शिक्षा-विभाग
पाठशालाओं में होने वाले अप्राकृतिक व्यभिचार के सम्बन्ध
जाँच करवाई थी। जाँच-समिति ने इस बुराई को शिक्षकों
में पाया था, जो अपनी अस्वाभाविक वासना की तृप्ति के
विद्यार्थियों के प्रति अपने पद का दुरुपयोग करते हैं। शि
विभाग के डाइरेक्टर ने एक सरक्यूलर द्वारा शिक्षकों में
जाने वाली ऐसी बुराई का प्रतिकार करने का हुक्म निकाला
सरक्यूलर का जो परिणाम हुआ होगा—अगर कोई हुआ हो
वह अवश्य ही जानने लायक होगा।

मेरे पास इस सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न प्रान्तों से साहित्य भी
है, जिसमें इस और ऐसी बुराइयों की तरफ मेरा ध्यान
गया है और कहा गया है कि यह प्रायः भारत-भर के तमाम
जनिक और प्राइवेट मदरसों में फैल गया है और बराबर
रहा है।

यह बुराई यद्यपि अस्वाभाविक है तथापि इसकी विरासत अनन्त काल से भोगते आ रहे हैं। तमाम छुपी बुराइयों का खोज ढूँढ़ निकालना एक कठिनतम काम है। यह और भी न बन जाता है, जब इसका असर बालकों के संरक्षक पर भी है—और शिक्षक बालकों के संरक्षक हैं ही। प्रश्न होता है अगर प्राणदाता ही प्राणहारक हो जाय तो फिर प्राण कैसे ?' मेरी राय में जो बुराइयाँ प्रकट हो चुकती हैं, उनके न्ध में विभाग की ओर से बाजाब्ता कार्रवाई करना ही इस के प्रतिकार के लिए काफ़ी न होगा। सर्वसाधारण के मत इस सम्बन्ध में सुगठित और सुसंस्कृत बनाना इसका एकमात्र य है, लेकिन इस देश के कई मामलों में प्रभावशाली लोकमत ो कोई बात है ही नहीं। राजनैतिक जीवन में असहायता या ती की जिस भावना का एकच्छत्र राज्य है उसने देश के न के सब क्षेत्रों पर अपना असर डाल रक्खा है। अतएव बुराइ हमारी आँखों के सामने होती रहती हैं, उन्हें भी हम जाते हैं।

जो शिक्षा-प्रणाली साहित्यिक योग्यता पर ही एकान्त ज़ोर है, वह इस बुराई को रोकने के लिये अनुपयोगी ही नहीं है, क उससे उलटे बुराई को उत्तेजना ही मिलती है। जो बालक ज्ञानिक शालाओं में दाख़िल होने से पहले निर्दोष थे, शाला पाठ्यक्रम के समाप्त होते-होते वे ही दूषित, स्त्रैण और नामर्द ने देखे गये हैं। बिहार-समिति ने 'बालकों के मन पर धार्मिक

प्रतिष्ठा के सस्कार जमाने' की सिफ़ारिश की है, लेकिन
के गले में घंटी कौन बाँधे ? अकेले शिक्षक ही धर्म
आदर भावना पैदा कर-सकते हैं, लेकिन वे स्वयं इसस
हैं। अतएव प्रश्न शिक्षकों के योग्य चुनाव का प्रतीत
मगर शिक्षकों के योग्य चुनाव का अर्थ होता है, या तो
कहीं अधिक वेतन या फिर शिक्षण के ध्येय का
याने शिक्षा को पवित्र कर्त्तव्य मान कर शिक्षकों का उसके
जीवन अपण कर देना। रोमन-कैथोलिकों में यह प्रथा
विद्यमान है। पहला उपाय, तो हमारे जैसे ग़रीब देश
स्पष्ट ही असम्भव है। मरे विचार में हमारे लिए दूसरा मार्ग
सुगम है, लकिन यह भी उस शासन प्रणाली के
सम्भव नहीं, जिसमें हरेक चीज़ की क़ीमत आँकी
और जो दुनिया-भर म ज्यादा-से-ज्यादा होती है।

अपने बालकों की नैतिक सुधारणा के प्रति माता-पिताओं
लापर्वाही के कारण इस बुराई को रोकना और भी कठिन
जाता है। य तो बच्चों को स्कूल भेजकर अपने कर्त्तव्य का
मान लते हैं। इस तरह हमारे सामने का काम बहुत ही
पूर्ण है, लकिन यह सोचकर आशा भी होती है कि तमाम
इयों का एक रामबाण उपाय है, और वह है—आत्मशुद्धि
बुराइ की प्रचण्डता से घबरा जाने के बदले हममें से
पूरे-पूरे प्रयत्न-पूर्वक अपने आस-पास के वातावरण का
निरीक्षण करते रहना चाहिए और अपने आपको ऐसे

प्रथम और मुख्य केन्द्र बनाना चाहिए। हमें यह कहकर
तोष नहीं कर लेना चाहिए कि हममें दूसरों की-सी बुराई नहीं
, अस्वाभाविक दुराचार कोई स्वतन्त्र अस्तित्व की चीज़ नहीं
; वह तो एक ही रोग का भयंकर लक्षण है। अगर हममें
चित्रता भरी है, अगर हम विषय की दृष्टि से पतित हैं, तो
ले हमें आत्म सुधार करना चाहिए और फिर पड़ोसियों के
ार की आशा रखनी चाहिए। आजकल तो हम दूसरों के दोषों
नेरीक्षण में बहुत पटु हो गये हैं और अपने आपको अत्यन्त
ोष समझते हैं। परिणाम दुराचार का प्रसार होता है। जो
बात के सत्य को महसूस करते हैं, वे इससे छूटें और उन्हें पता
ेगा, कि यद्यपि सुधार और उन्नति कभी आसान नहीं होते
ापि वे बहुत-कुछ सम्भवनीय है।

से० २७-४-३७

१४

बढ़ता हुआ दुराचार ?

नातनधर्म कालेज, लाहौर के प्रिंसिपल लिखते हैं—

"इसके साथ मैं जो कटिंग और विज्ञप्तियाँ वगैरह भज
रहा हूँ उन्हें देखने की मैं आप से प्रार्थना करता हूँ। इन कागज़ों
ही आपको सारी बात का पता लग जायगा। यहाँ पंजाब में
िक हितकारी संघ' बहुत उपयोगी काम कर रहा है। विद्वत्
माज एवं अधिकारी-वर्ग का ध्यान इसकी ओर आकृष्ट हुआ

हैं, और बालकों के सुसंस्कृत माता-पिताओं की भी तिन्न
सभ ने प्राप्त की है। बिहार के पंडित सीतारामदास …
आन्दोलन के प्रणेता हैं, और इस आन्दोलन के …
में यहाँ के अनेक प्रतिष्ठित सज्जनों के नाम गिनाये जा सकते

"इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि कोमल वय के बालकों
फँसाने का यह दुराचार भारत के दूसरे भागों की अपेक्षा
पंजाब और उत्तरी-पश्चिमी सीमाप्रान्त में ज्यादा है।

"क्या आप कृपाकर 'हरिजन' में अथवा किसी दूसरे …
चार में लेख या पत्र लिखकर इस बुराई की तरफ देश का …
आकर्षित करेंगे ?"

इस अत्यन्त नाजुक प्रश्न के सम्बन्ध में बहुत दिन हुए
युवक संघ के मंत्री ने मुझे लिखा था। उनका पत्र आने पर …
डा० गोपीचन्द के साथ पत्र-व्यवहार शुरू किया, और उन …
मालूम हुआ कि संघ के मंत्री ने जो बातें अपने पत्र में लिखी
व सब सच्ची हैं, लेकिन मुझे यह स्पष्ट नहीं सूझ रहा था
इस प्रश्न की चर्चा 'हरिजन' में या किसी दूसरे पत्र में …
करूँ। इस दुराचार का मुझे पता था, मगर मुझे इस बात
पता नहीं था कि अखबारों में इसकी चर्चा करने से कोई …
हो सकेगा या नहीं। यह विश्वास अब भी नहीं है। किन्तु …
के प्रिंसिपल साहब ने जो प्रार्थना की है उस की मैं अवहेलना
नहीं करना चाहता।

यह दुराचार नया नहीं है। यह बहुत दूर-दूर तक फैला …

चूँकि उसे गुप्त रखा जाता है इसलिए वह आसानी से पकड़ नहीं आसकता। जहाँ विलासपूर्ण जीवन होगा वहीं यह दुराचार होगा। प्रिंसिपल साहब के बताये हुए क़िस्से से तो यह स्पष्ट होता है कि अध्यापक ही अपने विद्यार्थियों को भ्रष्ट करने का दोषी हैं। बारी जब खुद ही खेत को चर जाय तो फिर किससे होशियारी की आशा करे? बाइबिल में कहा है—"नौन जब खुद अलौना हो जाय तब उसे कौन चीज़ नमकीन बना सकती है।"

यह प्रश्न ऐसा है, कि इसे न तो कोई जाँच-कमेटी ही हल कर सकती है, न सरकार ही। यह तो एक नैतिक सुधार का काम है। माता पिताओं के दिल में उनके उत्तरदायित्व का भाव पैदा करना चाहिए। विद्यार्थियों को शुद्ध स्वच्छ रहन-सहन के निकट निसर्ग में लाना चाहिए। सदाचार और निर्विकार जीवन ही सच्ची शिक्षा का आधार-स्तम्भ है, इस विचार का गम्भीरता के साथ प्रचार करना चाहिए। शिक्षण-संस्थाओं के ट्रस्टियों को अध्यापकों के चुनाव में बहुत ही खबरदारी रखनी चाहिए। और अध्यापकों को चुनने के बाद भी उन्हें यह ध्यान रखना चाहिए कि उनका आचरण ठीक है या नहीं? ये तो मैंने थोड़े-से उपाय बतलाये हैं। इन उपायों के सहारे यह भयंकर दुराचार निर्मूल न हो तो कम-से-कम काबू में तो आ ही सकता है।

ह० से० ३-५-३५

१५

नम्रता की आवश्यकता

बंगाल में कार्यकर्त्ताओं से बातचीत करते हुए एक नवयुवक मेरा साबका पड़ा जिसने कहा कि लोग मुझे इसलिए भी मान मैं ब्रह्मचारी हूँ। उसने यह बात इस तरह कही और उस के साथ कही कि मैं देखता रह गया। मैंने मन में कहा कि उन विषयों की बातें करता है जिनका ज्ञान इसे बहुत थोड़ा उसके साथियों ने उसकी बात का खण्डन किया। और सब उससे जिरह करना शुरू की तब तो खुद उसने भी किया कि हाँ, मेरा दावा नहीं टिक सकता। जो शख्स पाप चाहे न करता हो, पर मानसिक पाप ही करता हो, वह चारी नहीं। जो व्यक्ति परम रूपवती रमणी को देखकर नहीं रह सकता वह ब्रह्मचारी नहीं। जो केवल आवश्यक के वशीभूत होकर अपने शरीर को अपने वश में रखता है, करता तो अच्छी बात है, पर वह ब्रह्मचारी नहीं। हमें अनुचित अप्रासंगिक प्रयोग करके पवित्र शब्दों का मान घटाना न चाहिए। वास्तविक ब्रह्मचर्य का फल तो अद्भुत होता है और वह तो पर जाना भी जा सकता है। इस गुण का पालन करना कठिन है। प्रयत्न तो बहुतेरे लोग करते हैं, पर सफल विरले ही हो पाते हैं। जो लोग गेरुए कपड़े पहन कर सन्यासियों के वेश में देश में घूमते-फिरते हैं, व अक्सर बाजार के मामूली आदमी से ज्यादा

गारी नहीं होते । फर्क इतना ही है कि मामूली आदमी अक्सर
की डींग नहीं हाँकता और इसलिए बेहतर होता है । वह
बात पर सन्तुष्ट रहता है कि परमात्मा मेरी आजमाइश को,
प्रलोभनों को तथा मेरे विनयोत्सव और भगीरथ प्रयत्न के
हुए भी, हो जाने वाले पतन को जानता है । यदि दुनिया
के पतन को देखे और उससे उसे तोले तो भी वह सन्तुष्ट
ा है । अपनी सफलता को वह कजूस के धन की तरह छिपा
रखता है । वह इतना विनयी होता है कि उसे प्रगट नहीं
ता । ऐसा मनुष्य उद्धार की आशा रख सकता है , परन्तु वह
वा सन्यासी जो कि संयम का ककहरा भी नहीं जानता, यह
शा नहीं रख सकता । वे सार्वजनिक कार्यकर्त्ता जो कि सन्यासी
वेष नहीं बनाते, पर जो अपने त्याग और ब्रह्मचर्य का ढिंढोरा
त फिरते हैं और दोनों को सस्ता बनाते हैं तथा अपने को
र अपने सेवा-कार्य को बदनाम करते हैं, उनसे खतरा
हिए ।

जबकि मैंने अपने साबरमती वाले आश्रम के लिए नियम
ये तो उन्हें मित्रों के पास सलाह और समालोचना के लिए
ा । एक प्रति स्वर्गीय सर गुरुदास बनर्जी को भी भेजी थी ।
प्रति की पहुंच लिखते हुए उन्होंने सलाह दी कि नियमों में
ल्लिखित व्रतों में नम्रता का भी एक व्रत होना चाहिए । अपने
में उन्होंने कहा था कि आजकल के नवयुवकों में नम्रता का
भाव पाया जाता है । मैंने उनसे कहा कि मैं आपकी सलाह के

मूल्य को तो मानता हूँ और नम्रता की आवश्यकताको भी सम्पूर्ण आना मानता हूँ, पर एक व्रत में उसको स्थान देना उसके गौरव को कम कर देना है। यह बात तो हमें गृहीत ही समझ चलना चाहिए कि जो लोग अहिंसा, ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे अवश्य ही नम्र रहेंगे। नम्रता-हीन सत्य एक उद्धत हास्यनि होगा। जो सत्य का पालन करना चाहता है वह जानता है कि यह कितनी कठिन बात है। दुनिया उसकी विजय पर तो तालियाँ बजायेगी, पर वह उसके पतन का हाल बहुत कम जानती है। सत्य-परायण मनुष्य बड़ा आत्म-साधन करने वाला होता है उसे नम्र बनने की आवश्यकता है। जो शख्स सारे संसार साथ, यहाँ तक कि उसके भी साथ जो उसे अपना शत्रु कहता है प्रेम करना चाहता है वह जानता है कि केवल अपने बल पर प्रेम करना किस तरह असम्भव है। जब तक वह अपने को एक रजकण न समझने लगेगा तब तक वह अहिंसा के तत्व नहीं ग्रहण कर सकता। जिस प्रकार उसके प्रेम की मात्रा बढ़ती जाती है उसी प्रकार यदि उसकी नम्रता की मात्रा न बढ़ी तो किसी काम का नहीं। जो मनुष्य अपनी आँखों में तप चाहता है, जो स्त्री-मात्र को अपनी सगी माता या बहन मान है उसे तो रजकण से भी क्षुद्र होना पड़ेगा। उस एक सा किनारे खड़ा समझिए। ज़रा ही मुँह इधर उधर हुआ कि गिर वह अपने मन से भी अपने गुणों की कानाफूँसी करने का सा नहीं कर सकता, क्योंकि वह नहीं जानता कि इसी अगले

त्या होने वाला है ? उसके लिए 'अभिमान विनाश के पहले
ा है और मगरूरी पतन के पहले ।' गीता में सच कहा है—

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्ज्यं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥

और जबतक मनुष्य के मन में अहंभाव मौजूद है तब तक
ईश्वर के दर्शन नहीं हो सकते । यदि वह ईश्वर में मिलना
हता हो तो उसे शून्यवत् हो जाना चाहिए । इस संघर्ष-पूर्ण
त् में कौन कहने का साहस कर सकता है—"मैंने विजय
त की ।" हम नहीं, ईश्वर हमें विजय प्राप्त कराता है ।
हमें इन गुणों का मूल्य ऐसा कम न कर देना चाहिए कि
उसे हम सब उनका दावा कर सकें । जो बात भौतिक विषय
सत्य है वही आध्यात्मिक विषय में भी सत्य है । यदि एक
ारिक संग्राम में विजय पाने के लिए योरोप ने पिछले युद्ध में,
कि स्वयं ही एक नाशवान् वस्तु है, कितने ही करोड़ लोगों का
लिदान कर दिया, तब यदि आध्यात्मिक युद्ध में करोड़ों लोगों
इसके प्रयत्न में मिट जाना पड़े, जिससे कि संसार के सामने
पूर्ण उदाहरण रह जाय तो क्या आश्चर्य है ? यह हमारे
ीन है कि हम असीम नम्रता के साथ इस बात का उद्योग करें।
इन उच्च गुणों की प्राप्ति ही उनके लिए किये परिश्रम का
स्कार है । जो उन पर व्यापार चलाता है वह अपनी आत्मा का
ा करता है । सद्‌गुण कोई व्यापार करने की चीज नहीं है ।
ा सत्य, मेरी अहिंसा, मेरा ब्रह्मचर्य, ये मेरे और मेरे कर्ता के

सम्बन्ध रखने वाले विषय हैं। ये बिक्री की चीजें नहीं हैं।
युवक उनकी तिजारत करने का साहस करेगा वह अपना
नाश कर बैठेगा। ससार के पास कोई बांट ऐसा नहीं है,
साधन नहीं है, जिससे कि इन बातों की तौल की जा सके।
बीन और विश्लेपण की वहाँ गुजर नहीं। इसलिए हम
कर्त्ताओं को चाहिए कि हम उन्हें केवल अपने शुद्धिकरण के लिए
प्राप्त करें। हम दुनिया से कह दें कि वह हमारे कार्यों से हमें
पहचान करे। जो सस्था या आश्रम लोगों से सहायता पाने का
दावा करता हो, उसका लक्ष्य भौतिक-साँसारिक होना चाहिए।
जैसे—कोई अस्पताल, कोई पाठशाला, कोई कताई और
विभाग। सर्वसाधारण को इन कामों की योग्यता परखने का
अधिकार है और यदि वे उन्हें पसद करें तो उनकी सहायता
शर्तें स्पष्ट हैं। व्यवस्थापकों में नेक-नीयती और योग्यता
चाहिए। वह प्रामाणिक मनुष्य जो शिक्षा-शास्त्र से अपरिचित
हो, शिक्षक के रूप में लोगों से सहायता पाने का दावा नहीं
सकता। सार्वजनिक सस्थाओं का हिसाब किताब ठीक-ठीक
रक्खा जाना चाहिए, जिससे कि लोग जब चाहें तब देख
सकें। इन शर्तों की पूर्ति सचालकों को करनी चाहिए। उनकी
सच्चरित्रता लोगों के आदर और आश्रय के लिए भार-रूप न होनी
चाहिए।

हि० न० २५-६-२५

. १६

सुधारकों का कर्तव्य

लाहौर के सनातनधर्म कालेज के प्रिंसिपल का निम्नलिखित
में सहर्ष यहाँ प्रकाशित कर रहा हूँ —

"बालकों पर जो अप्राकृतिक अत्याचार हो रहे हैं उनकी
र मैं अधिक-से-अधिक जोर देकर आपका ध्यान आकर्षित
ना चाहता हूँ।

आपको यह तो मालूम ही होगा कि इनमें से बहुत ही थोड़े
मलों की पुलिस में रपट लिखाई जाती है, या उन्हें अदालत में
आते हैं। इधर कुछ दिनों से पञ्जाब में ऐसे केस इतने ज्यादा
ने लगे हैं कि जिनकी कोई हद नहीं। इस पत्र के साथ आपके
वलोकनार्थ अखबारों की कुछ कतरनें भेज रहा हूँ। अदालत में
भी-कभी जो एकाध मामले आते हैं, उनमें से अत्यन्त बीभत्स
स्से ही अखबारों में प्रकाशित होते हैं। इन्हें पढ़कर आपको यह
ी तरह से मालूम हो जायगा कि हमारे कोमल वयस्क बालक
लिकाओं पर इस भयका किस कदर आतंक छाया हुआ है।
छ महीने पहले लाहौर में गुंडों ने दिन-दहाड़े कुछ स्कूलों के
टकों परसे छोटे-छोटे बच्चों को उठा ले जाने के साहसिक प्रयत्न
ये थे। आज भी बालकों क स्कूल म जाते और आते वक्त
ास इन्तजाम रखना पड़ता है। अदालत में जो मामले गये
उनकी रिपोर्टों में बालकों के ऊपर किये गए जिन आक्रमणों

का वर्णन आया है वे अत्यन्त क्रूरता और साहसपूर्ण हैं। मैं
राक्षसी काम तो विरले ही मनुष्य कर सकते हैं।

साधारण जनता या तो इस विषय में उदासीन है, या
इस तरह की लाचारी महसूस करती है कि इन अपराधों का
ठित होकर कुचल देने की लोगों में आत्म-श्रद्धा नहीं।

पंजाब-सरकार के जारी किये हुए सरक्यूलर की
इसके साथ मैं भेज रहा हूँ, उससे आपको यह पता चल
कि जनता और सरकारी अफ़सरों की उदासीनता के
सरकार भी इस विषय में अपने-को लाचार-सा अनु
करती है।

आपने 'यंगइंडिया' के ६ सितम्बर १९२६ के तथा २७
१९२६ के अङ्क में यह ठीक ही कहा था कि इस प्रकार के अप्राकृ
व्यभिचार के अपराधों के सम्बन्ध में सार्वजनिक
करने का समय आ गया है। और इस विषय में सारे देश
लोक-मत जागृत करने के लिए अखबारों द्वारा इन जुर्मों
प्रकाशन ही एकमात्र प्रभावोत्पादक उपाय है।

मैं आपको अत्यन्त आदर के साथ यह बतलाना चाहता
कि आज की मौजूदा स्थिति में कम-से-कम इतना तो हमें कर
ही चाहिए। मेरी आपसे यह प्रार्थना है कि इस दुराचार
विरुद्ध अखबारों द्वारा जोरदार आन्दोलन चलाने के लिए आ
अपनी प्रभावशाली आवाज उठाकर दूसरे अखबारों को रास्ता
दिखाइए।"

न इस बुराई के खिलाफ हमें अविश्रान्त लड़ाई लड़नी चाहिए,
विषय में तो शंका हो ही नहीं सकती। इस पत्र के साथ
अत्यन्त घृणोत्पादक रिपोर्टें भेजी गई थीं, उन्हें मैंने पढ़ डाला
न सनातनधर्म कालेज के आचार्य ने मेरे जिन लेखों का उल्लेख
या है, उनमें जिस किस्म के मामलों की मैंने चर्चा की थी,
नमें ये मामले जुदे ही प्रकार के हैं। वे मामले अध्यापकों की
नीति के थे, जिनमें उन्होंने बालकों को फुसलाया था। और इन
पोर्टों में अधिकतर जिन मामलों का वर्णन आया है, उनमें तो
दूसरों ने कोमल वय के बालकों पर अप्राकृतिक व्यभिचार
रके उनका खून किया है। अप्राकृतिक व्यभिचार और उसके
द खून किये जाने के केस हालाँकि और भी अधिक घृणा
दा करने वाले मालूम होते हैं, तो भी मेरा यह विश्वास है
जिन मामलों में बालक जान-बूझ कर अपने अध्यापकों की
पय-वासना के शिकार होते हैं उनकी अपेक्षा इस प्रकार के
मलों का इलाज करना सहज है। दोनों के ही विषय में सुधा
रों के सतत-जागृत रहने और इस बीभत्स कार्य के सम्बन्ध
लोगों की अन्तरात्मा जगाने की आवश्यकता है। पंजाब में
कि इस किस्म के अपराध बहुत अधिक होने लगे हैं, इस
ए वहाँ के नेताओं का यह कर्तव्य है कि वे जाति और धर्मका
र एक तरफ रखकर एक जगह इकट्ठे हों, और बालकों को
सलाकर फसाने वाले या उन्हें उठा ले जाकर उनके साथ
प्राकृतिक बलात्कार करके उनका खून करने वाले अपराधियों

के पत्र से इस पथनद प्रदेश के कोमल वयस्क युवकों को बचाने के उपाय का आयोजन करें। अपराधियों की निन्दा करने वाले प्रस्ताव पास करने से कुछ भी होने-हवाने का नहीं। पाप-मात्र भिन्न भिन्न प्रकार के रोग हैं और सुधारकों को उन्हें ऐसा रोग समझकर ही उनका इलाज करना चाहिए।

इसका अर्थ यह नहीं कि पुलिस इन मामलों को सार्वजनिक अपराध समझने का अपना काम मुल्तवी रक्खेगी, किन्तु पुलिस जो कार्रवाई करती है, उसकी मंशा इन सामाजिक अव्यवस्थाओं के मूल कारण ढूंढ कर उन्हें दूर करने की होती ही नहीं। यह तो सुधारकों का खास अधिकार है। और अगर समाज में सदाचार के विषय की भावना और आग्रह न बढ़ा, तो अखबारों में दुनिया भर के लेख लिखे जायें तो भी ऐसे अपराध और और बढ़ते ही जायेंगे। इसका कारण यही है कि इस उलटे रास्ते पर जाने वाले लोगों की नैतिक भावना कुंठित हो जाती है और वे अखबारों को—खासकर उन भागों को जिनमें एस-एस दुराचारों के विरुद्ध जोश से भरी हुई नसीहतें रहती हैं—शायद ही कभी पढ़ते हों। इसलिए मुझे तो यह एक ही प्रभावकारक मार्ग सूझ रहा है कि सनातनधर्म कालेज के प्रिन्सिपल (यदि व उनमें से एक हों तो)-जैसे कुछ उत्साही सुधारक दूसरे सुधारकों को एकत्रित करें और इस बुराई को दूर करने के लिए कुछ सामूहिक उपाय हाथ में लें।

ह० स० ८-११-३४

नवयुवकों से !

आजकल कहीं-कहीं नवयुवकों की यह आदत-सी पड़ गयी है कि बड़े-बूढ़े जो-कुछ कहें वह नहीं मानना चाहिए। मैं यह तो नहीं कहना चाहता कि उनके ऐसा मानने का बिल्कुल कोई कारण ही नहीं है, लेकिन देश के युवकों को इस बात से आगाह जरूर करना चाहता हूँ कि बड़े-बूढ़े स्त्री-पुरुषों द्वारा कही हुई हरेक बात को वे सिर्फ इसी कारण मानने से इन्कार न करें कि उसे बड़े-बूढ़ों ने कहा है। अक्सर बुद्धि की बात बच्चों तक के मुँह से जैसे निकल जाती है, उसी तरह बहुधा बड़े-बूढ़ों के मुँह से वह निकल आती है। स्वर्ण-नियम तो यही है कि हरेक बात को बुद्धि और अनुभव की कसौटी पर कसा जाय, फिर वह चाहे किसी की कही या बताई हुई क्यों न हो। कृत्रिम साधनों से सन्तति-निग्रह की बात पर मैं अब आता हूँ। हमारे अन्दर यह बात जमा दी गई है कि अपनी विषय-वासना की पूर्ति करना भी हमारा वैसा ही कर्त्तव्य है जैसे वैध रूप में लिए हुए कर्ज को चुकाना हमारा कर्त्तव्य है, और अगर हम ऐसा न करें तो उससे हमारी बुद्धि कुण्ठित हो जायगी। इस विषयेच्छा को सन्तानोत्पत्ति की इच्छा से पृथक् माना जाता है और सन्तति निग्रह के लिए कृत्रिम-साधनों के समर्थकों का कहना है कि जबतक सहवास करने वाले स्त्री-पुरुष को बच्चे पैदा करने की इच्छा न हो तबतक गर्भधारण नहीं होने देना

चाहिए। मैं बड़े साहस के साथ यह कहता हूँ कि यह भ्रष्ट सिद्धान्त है, जिसका कहीं भी प्रचार करना बहुत खतरनाक है, और हिन्दुस्तान-जैसे देश के लिए तो, जहाँ मध्य-श्रेणी के पुरुष अपनी जननेन्द्रिय का दुरुपयोग करके अपना पुरुषत्व ही खो बैठे हैं, यह और भी बुरा है। अगर विषयेच्छा की पूर्ति कर्तव्य हो, तब तो जिस अप्राकृतिक व्यभिचार के बारे में कुछ समय पहले मैंने लिखा था वह तथा काम-पूर्ति के कुछ अन्य उपायों का भी ग्रहण करना होगा। पाठकों को याद रखना चाहिए कि बड़े-बड़े आदमी भी ऐसे काम पसन्द करते मालूम पड़ रहे हैं जिन्हें आम तौर पर वैषयिक पतन माना जाता है। सम्भव है कि इस बात से पाठकों को कुछ ठेस लगे, लेकिन अगर किसी तरह इसपर प्रतिष्ठा की छाप लग जाय तो बालक-बालिकाओं में अप्राकृतिक व्यभिचार का रोग बुरी तरह फैल जायगा। मेरे लिए तो कृत्रिम साधना के उपयोग से कोई खास फर्क नहीं है, जिन्हें लोगों ने अभी तक अपनी विषयेच्छा पूर्ति के लिए अपनाया है, और जिनके ऐसे कुपरिणाम आये हैं कि बहुत-कम लोग उनसे परिचित हैं। स्कूली लड़के-लड़कियों में गुप्त व्यभिचार ने क्या तूफान मचाया है, यह मैं जानता हूँ। विज्ञान के नाम पर सन्तति-निग्रह के कृत्रिम साधनों के प्रवेश और प्रख्यात सामाजिक नेताओं के नाम से उनके छपने से स्थिति आज और भी पेचीदा होगई है और सामाजिक जीवन की शुद्धता के लिए सुधारकों का काम बहुत-कुछ असम्भव-सा हो गया है। पाठकों को यह बताकर मैं

अपने पर किये गए किसी विश्वास को भंग नहीं कर रहा हूँ कि स्कूल-कालिजों में ऐसी अविवाहित जवान लड़कियाँ भी हैं, जो अपनी पढ़ाई के साथ-साथ कृत्रिम सन्तति-निग्रह के साहित्य व मासिक पत्रों को भी बड़े चाव से पढ़ती रहती हैं और कृत्रिम साधनों को अपने साथ रखती हैं। इन साधनों को विवाहिता स्त्रियों तक ही सीमित रखना असम्भव है। और, विवाह की पवित्रता तो तभी लोप हो जाती है, जबकि उसके स्वाभाविक परिणाम सन्तानोत्पत्ति को छोड़कर महज अपनी पाशविक विषय-वासना की पूर्ति ही उसका सबसे बड़ा उपयोग मान लिया जाता है।

मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि जो विद्वान स्त्री-पुरुष सन्तति-निग्रह के कृत्रिम साधनों के पक्ष में बड़ी लगन के साथ प्रचार कार्य कर रहे हैं, वे इस झूठे विश्वास के साथ कि इससे उन बेचारी स्त्रियों की रक्षा होती है, जिन्हें अपनी इच्छा के विरुद्ध बच्चों का भार सम्हालना पड़ता है, देश के युवकों की ऐसी हानि कर रहे हैं, जिसकी कभी पूर्ति ही नहीं हो सकती। जिन्हें अपने बच्चों की संख्या सीमित करने की जरूरत है, उन तक तो आसानी से वे पहुँच भी नहीं सकेंगे, क्योंकि हमारे यहाँ की गरीब स्त्रियों को पश्चिमी स्त्रियों की भाँति ज्ञान या शिक्षण कहाँ प्राप्त है? यह भी निश्चय है कि मध्य-श्रेणी की स्त्रियों की ओर से भी यह प्रचार कार्य नहीं हो रहा है, क्योंकि इस ज्ञान की उन्हें उतनी जरूरत ही नहीं है, जितनी कि गरीब लोगों को है।

इस प्रचार-कार्य से सबसे बड़ी जो हानि हो रही है, वह है पुराने आदर्श को छोड़कर उसकी जगह एक ऐसे आदर्श को अपनाना है, जो अगर अमल में लाया गया तो जाति का नैतिक तथा शारीरिक सर्वनाश निश्चित है। प्राचीन शास्त्रों ने व्यर्थ वीर्य-नाश को जो भयावह बताया है, वह कुछ अज्ञान-जनित अन्ध-विश्वास नहीं है। कोई किसान अपने पास के सबसे बढ़िया बीज को बंजर ज़मीन में बोये, या बढ़िया खाद से खूब उपजाऊ बने हुए किसी खेत के मालिक को इस शर्त पर बढ़िया बीज मिले कि उसके लिए उसकी उपज करना ही सम्भव न हो तो उसे हम क्या कहेंगे? परमेश्वर ने कृपा करके पुरुष को तो बहुत बढ़िया बीज दिया है और स्त्री को ऐसा बढ़िया खेत दिया है कि जिससे बढ़िया इस भू-मण्डल में कोई मिल ही नहीं सकता। ऐसी हालत में मनुष्य अपनी इस बहुमूल्य सम्पत्ति को व्यर्थ जाने दे तो यह उसकी दण्डनीय मूर्खता है। उसे तो चाहिए कि अपने पास के बढ़िया-से-बढ़िया हीरे जवाहरात अथवा अन्य मूल्यवान वस्तुओं की वह जितनी देख-भाल रखता हो, उससे भी ज्यादा इसकी सार-सम्हाल करे। इसी प्रकार वह स्त्री भी अक्षम्य मूर्खता की ही दोषी है, जो अपने जीवन उत्पादक क्षेत्र में जान-बूझ कर व्यर्थ जाने देने के विचार से बीज को ग्रहण करे। दोनों ही उन्हें मिले हुए गुणों का दुरुपयोग करने के दोषी होंगे और उनसे उनके ये गुण छिन जायँगे। विषयेच्छा एक सुन्दर और श्रेष्ठ वस्तु है। इसमें शर्म की कोई बात नहीं है, किन्तु यह है सन्तानोत्पत्ति के

लिए। इसके सिवा इसका कोई उपयोग किया जाय तो वह
मेश्वर और मानवता के प्रति पाप होगा। सन्तति-निग्रह के
त्रिम उपाय किसी-न-किसी रूप में पहले भी थे और बाद में भी
गे, परन्तु पहले उनका उपयोग पाप माना जाता था। व्यभि
ार को सद्गुण कहकर उसकी प्रशंसा करने का काम हमारे ही
ग के लिए सुरक्षित रक्खा हुआ था। कृत्रिम साधनों के हिमा
ती हिन्दुस्तान के नौजवानों की जो सबसे बड़ी हानि कर रहे
, वह उनके दिमाग़ में ऐसी विचार धारा भर देना है, जो मेरे
याल में, ग़लत है। भारत के नौजवान स्त्री-पुरुषों का भविष्य
नके अपने ही हाथों में है। उन्हें चाहिए कि इस झूठे प्रचार से
ावधान होजायँ और जो बहुमूल्य वस्तु परमेश्वर ने उन्हें दी है,
सकी रक्षा करें, और जब वे उसका उपयोग करना चाहें तो
सिर्फ उसी उद्देश्य से करें कि जिसके लिए वह उन्हें दिया गया
है।

ह० से० ८-३-३६।

१८

भ्रष्टता की ओर

एक युवक ने लिखा है —

"संसार का काया-कल्प करने के लिए आप चाहते हैं कि
प्रत्येक मनुष्य सदाचारी हो जाय, पर मेरी समझ में ठीक-ठीक
नहीं आ रहा है। आखिर इस सच्चरित्रता से आपका क्या अभि

प्राय है ? यह केवल स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध तक ही सीमित है या आपका मतलब मनुष्य के समस्त व्यवहार से है ? मुझे तो ऐसा लगता है कि आपका मतलब केवल स्त्री-पुरुषों के सम्बन्ध तक ही सीमित है, क्योंकि आप अपने पूँजीपति और जमींदार दोस्तों को कभी यह बताने का कष्ट नहीं करते कि वे कैसे अन्यायपूर्वक मजदूरों और किसानों का पेट काट-काट कर अपनी जेबें भरते रहते हैं। वहाँ बेचारे युवक और युवतियों की चारित्रिक गलतियों पर उनकी निन्दा और ताड़ना करते हुए आप कभी थकते नहीं, और सदा उनके सामने ब्रह्मचर्य-व्रत का आदर्श उपस्थित करते रहते हैं। आपका यह दावा है कि आप भारतीय युवकों के हृदय को जानते हैं। मैं किसी का प्रतिनिधि होने का दावा नहीं करता, पर एक युवक की हैसियत से ही मैं कहता हूँ कि आपका यह दावा गलत है। मालूम होता है, आपको पता ही नहीं है कि आजकल के मध्यम्-वर्ग के युवक को किन परिस्थितियों में से गुजरना पड़ता है। बेकारी की यह भयंकर चिंता, आदमी को पीस डालनेवाली ये सामाजिक रूढ़ियाँ और परम्पराएँ, और सहशिक्षा का यह प्रलोभनकारी विधायक वातावरण, इनके बीच वह बेचारा आन्दोलित होता रहता है। नवीनता और प्राचीनता का यह संघर्ष उसकी सारी शक्तियों को चूर-चूर कर रहा है और वह हारकर लाचार होरहा है। मैं आपसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि इन बेचारों को थोड़ी रहम की नजर से देखिए, दया कीजिए। उन्हें कृपया अपने सन्यासाश्रम के नीति-शास्त्र

ने कसौटी पर न कसिये। मेरा तो खयाल है कि अगर दोनों की मर्जी हो और परस्पर प्रेम हो तो स्त्री पुरुष चाहे वे पति-पत्नी न भी हों तो भी आखिर जो-चाह कर सकते हैं। मेरी राय में तो वह सदाचार ही होगा। और जब से संतति नियमन के कृत्रिम साधनों का आविष्कार हुआ है, संयोग-व्यवस्था की दृष्टि से विवाह-प्रथा का नैतिक आधार तो छिन्न-भिन्न होगया है। अब तो केवल बच्चों के पालन-पोषण और रक्षा-भर के लिये उसका उपयोग रह गया है। ये बातें सुनकर शायद आपके दिल को चोट पहुँचेगी, पर मैं आप से यह प्रार्थना करता हूँ कि आजकल के युवकों को भला-बुरा कहने से पहले कृपया अपनी तरुणाई को न भूलियेगा। आप खुद क्या कम कामी थे? कितना विषय-भोग करते थे? मैथुन के प्रति आपकी यह घृणा शायद आपकी इस अति का ही परिणाम है। इसलिये अब आप ऐसे सन्यासी बन रहे हैं और इसमें आपको पाप-ही-पाप नजर आता है। अगर तुलना ही करने लगें तो मेरा तो खयाल है कि आजकल के कई युवक इस विषय में जरूर आप से बेहतर साबित होंगे।"

इस तरह के अनेक पत्र मेरे पास आते हैं। इस युवक से मेरा परिचय हुए लगभग तीन महीने हुए होंगे, पर इतने थोड़े समय में ही, जहाँ तक मुझे पता है, इसके अन्दर कई परिवर्तन हो चुके हैं। अब भी वह एक गंभीर परिस्थिति में ही गुजर रहा है। ऊपर का उद्धरण तो उसके एक लम्बे पत्र का अंश है। उसके और भी पत्र मेरे पास हैं, जिन्हें अगर मैं चाहूँ तो प्रकाशित कर सकता

हूँ, और उसे प्रसन्नता ही होगी, पर मैंने ऊपर जो अंश दिय
यह कितने ही युवकों के विचारों और प्रवृत्तियों को प्र
करता है।

बेशक युवक और युवतियों से मुझे अवश्य सहानुभूति है
अपनी जवानी के दिनों की भी मुझे अच्छी तरह याद है। मु
तो देश के युवकों पर श्रद्धा है। इसीलिये तो उनकी समस्या
पर विचार करते हुए मैं कभी थकता नहीं।

मेरे लिये तो नीति, सदाचार और धर्म एकही बात है। आद
अगर पूरी तरह से सदाचारी हो, पर धार्मिक न हो, तो उस
जीवन बालू पर खड़े किये गये मकान की तरह समझिए। इ
तरह भ्रष्ट चरित्र का धर्माचरण भी दूसरों को दिखाने 'भर'
लिए और साम्प्रदायिक उपद्रवों का कारण होता है। नीति
सत्य, अहिंसा, और ब्रह्मचर्य भी आ जाता है। मनुष्य-जा
ने आज तक सदाचार के जितने नियमों का पालन किया है
सब इन तीन सर्व-प्रधान गुणों से सम्बन्धित या प्राप्त हो सक
हैं। और अहिंसा तथा ब्रह्मचर्य सत्य से प्राप्त हो सकते हैं, उ
मेरे लिए सत्य ईश्वर ही है।

संयम-हीन स्त्री या पुरुष तो गया-बीता समझिए। इन्द्रि
को निरंकुश छोड़ देने वाले का जीवन कर्णधार-हीन नाव
समान है, जो निश्चय ही पहली चट्टान से ही टकरा कर चूर-च
हो जायगी। इसलिए मैं सदैव संयम और ब्रह्मचर्य पर इत
ज़ोर दे रहा हूँ। पत्र-प्रेषक के इस कथन में यहाँ तक तो चार

ाय है कि इन सन्तति-निरोधक साधनों ने स्त्री पुरुषों की सम्बन्ध
म्बन्धक समाज की कल्पनाओं को काफी बदल दिया है, पर
गर संयोग को नीति-युक्त बनाने के लिए स्त्री-पुरुष की—चाहे
-पति-पत्नी हों या न भी हों—केवल पारस्परिक अनुमति ही का
ना काफी हो, तब तो इसी युक्ति के अनुसार समान लिंग
ले दो व्यक्तियों के बीच का सम्बन्ध भी नीति-युक्त बन जायगा
ौर संयोग-व्यवस्था-सम्बन्धी सारी मर्यादा ही नष्ट हो जायगी।
ौर तब तो निस्सन्देह देश के युवकों के भाग्य में सिवा पराभव और
र्दशा के और कुछ है ही नहीं। हिन्दुस्तान में ऐसे कई पुरुष और
त्रियाँ हैं, जो विषय-वासना में बुरी तरह फंसे हुए हैं, पर अगर
समें मुक्त हो सकें तो वे बहुत खुश हों। विषय-वासना संसार
ो किसी भी नशे से अधिक मादक है। यह आशा करना बेकार
कि सन्तति-निरोधक साधनों का व्यवहार सन्तति-नियमन तक
ी सीमित रहेगा। हमारे जीवन के शुद्ध, सभ्य रहने की तभी
क आशा की जा सकती है, जब तक कि संयोग से प्रजनन
ा निश्चित सम्बन्ध है। यह मान लेने पर अप्राकृतिक मैथुन तो
ल्कुल रह जाता है, और कुछ हद तक परस्त्री-गमन पर भी
नियन्त्रण हो जाता है। संयोग को उसके स्वाभाविक परिणाम से
लग करने का अवश्यम्भावी परिणाम यही होगा कि समाज से
्त्री-पुरुष की संयोग-सम्बन्धी सारी मर्यादा उठ जायगी और अगर
र्भाग्य से अप्राकृतिक व्यभिचार को प्रत्यक्ष प्रोत्साहन न भी
मला तो भी समाज में निर्घृण व्यभिचार फैले बिना नहीं रहेगा।

सयोग-समस्या पर विचार करते समय अपने व्यक्तिगत
मय कहना भी अनुचित न होगा। जिन पाठकों ने मेरी 'आत्म
कथा' नहीं पढ़ी है, वे मेरी विषय-लोलुपता के विषय में
पत्र-प्रेषक की तरह अपने विचार न बनालें। सबसे पहली
तो यह है कि मैं चाहे कितना ही विषयी रहा होऊँ, मेरी विष
वृत्ति अपनी पत्नी तक ही सीमित थी। फिर मैं एक बहुत
सम्मिलित परिवार में रहता था, जिससे रात के कुछ घंटों
छोड़कर हमें एकान्त कभी मिलता ही नहीं था। दूसरे, तेईस
की अवस्था में ही मैं इतना समझने लायक जागृत हो गया
कि महज भोग के लिए संयोग करना निरी बेवकूफी है।
सन् १८९९ में, यानी जब मैं तीस साल का था, पूर्ण ब्रह्मचर्य
प्रतिज्ञा लेने का मैं निश्चय कर चुका था। मुझे सन्यासी कहना
गलत होगा। मेरे जीवन के नियामक आदर्श तो सारी मानव
के ग्रहण करने योग्य हैं। मैंने उन्हें धीरे-धीरे, ज्यों-ज्यों मेरा जीवन
विकास होता गया, प्राप्त किया है। हरेक कदम मैंने पूरी तरह
सोच-समझ कर गहरे मनन के बाद रखा है। ब्रह्मचर्य और
अहिंसा दोनों मेरे व्यक्तिगत अनुभव से मुझे प्राप्त हुए हैं, और
अपने सार्वजनिक कर्त्तव्यों को पूरा करने के लिए उनका पालन
नितान्त आवश्यक था। दक्षिण अफ्रिका में एक गृहस्थ,
बैरिस्टर, एक समाजसुधारक, अथवा एक राजनीतिज्ञ
हैसियत से मुझे जन-समाज से पृथक जीवन व्यतीत करना
पड़ा है। उस जमीन में अपने उपर्युक्त कर्त्तव्यों के पालन

: लिए यह जरूरी हो गया कि मैं कठोर संयम का पालन करूँ
ा अपने देश-भाइयों और यूरोप-निवासियों के साथ एक
ुष्य की हैसियत से व्यवहार करते हुए सत्य और अहिंसा का
ानी ही कड़ाई से पालन करूँ।

मैं एक मामूली आदमी हूँ। मुझ में उससे जरा भी विवेकता
ीं, और योग्यता तो मामूली से कम है। मेरे इस अहिंसा
र ब्रह्मचर्य के व्रत के पालन में भी कोई बधाई देने लायक
त नहीं, क्योंकि ये तो वर्षों के निरन्तर प्रयास से मेरे लिए
ध्य हुआ है। मुझे तो इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि मैंने जो
ध्य किया है उसे तो हर पुरुष और स्त्री साध्य कर सकते हैं,
र्ते कि वे भी उसी प्रयास, आशा और श्रद्धा से चलें। श्रद्धा
न कार्य अतल खाई की थाह लेने का प्रयत्न करने की
ह है।

। से० ३-१०-३६

१९

एक युवक की कठिनाई

नवयुवकों के लिए मैंने 'हरिजन' में जो लेख लिखा था, उस
: एक नवयुवक, जिसने अपना नाम गुप्त ही रखा है, अपने
ा में उठे एक प्रश्न का उत्तर चाहता है। यों गुम नाम पत्रों
: कोई ध्यान न देना ही सबसे अच्छा नियम है, लेकिन जब

कोई सार-युक्त बात पूछी जाय, जैसी कि इसमें पूछी गई है,
कभी-कभी मैं इस नियम को तोड़ भी देता हूँ।

पत्र हिन्दी में है और कुछ लम्बा है। सारांश
यह है—

"आपके लेखों को पढ़कर मुझे सन्देह होता है कि
युवकों के स्वभाव को कहाँ तक समझते हैं। जो बात
लिए सम्भव हो गई है वह सब युवकों के लिए सम्भव नहीं
मेरा विवाह हो चुका है। इतने पर भी मैं स्वयं तो संयम
सकता हूँ, लेकिन मेरी पत्नी ऐसा नहीं कर सकती। बच्चे
हों, यह तो वह नहीं चाहती, लेकिन विषयोपभोग करना
है। ऐसी हालत में, मैं क्या करूं? क्या यह मेरा फर्ज नहीं है
मैं उसकी भोगेच्छा को तृप्त करूं? दूसरे जरिये से वह
इच्छा पूरी करे, इतनी उदारता तो मुझ में नहीं है। फिर
बारों में मैं जो पढ़ता रहता हूँ, उससे मालूम पड़ता है कि विवा
सम्बन्ध कराने और नव-दम्पतियों को आशीर्वाद देने में
आपको कोई आपत्ति नहीं है। यह तो आप अवश्य जानते हों
या आपको जानना चाहिए कि वे सब उस ऊंचे उद्देश्य से ही न
होते जिसका कि आपने उल्लेख किया है।"

पत्र-लेखक का कहना ठीक है। विवाह के लिए उम्र, आर्थि
स्थिति आदि की एक कसौटी मैंने बना रक्खी है। उसको
करके जो विवाह होते हैं, मैं उनकी मंगल-कामना करता हूँ
इतन विवाहों में मैं शुभ-कामना करता हूँ, इसस सम्भव

। प्रकट होता है कि देश के युवकों को इस हद तक मैं जानता
के यदि वे मेरा पथ प्रदर्शन चाहें तो मैं वैसा कर सकता हूँ।

इस भाई का मामला मानों इस तरह का एक नमूना है जिसके
रण यह सहानुभूति का पात्र है, लेकिन सयोग का एक-मात्र
ेश्य प्रजनन ही है, यह मेरे लिए एक प्रकार से नई खोज है।
। नियम को जानता तो मैं पहले से था, लेकिन जितना चाहिए
तना महत्व इसे मैंने पहले कभी नहीं दिया था। अभी तक मैं
से खाली पवित्र इच्छा मात्र समझता था, लेकिन अब तो मैं
से विवाहित जीवन का ऐसा मौलिक विधान मानता हूँ कि
दि इसके महत्व को पूरी तरह मान लिया गया तो इसका पालन
ठिन नहीं है। अब समाज में इस नियम को उपयुक्त स्थान
मेल जायगा तभी मेरा उद्देश्य सिद्ध होगा, क्योंकि मेरे लिए तो
यह एक ज्वाज्वल्यमान विधान है। जब हम इसको भंग करते
हैं तो उसके फलस्वरूप बहुत-कुछ भुगतना पड़ता है। पत्र
प्रेषक युवक यदि इसके उस महत्व को समझ जाय जिसका
कि अनुमान नहीं लगाया जा सकता, और यदि उसे अपने में
विश्वास एवं अपनी पत्नी के लिए प्रेम हो, तो वह अपनी पत्नी
को भी अपने विचारों का बना लेगा। उसका यह कहना कि
मैं स्वयं संयम कर सकता हूँ, क्या सच है? क्या उसने
अपनी पाशविक वासना को जन-सेवा-जैसी किसी ऊंची भावना
में परिणत कर लिया है? क्या स्वभावतः वह ऐसी कोई बात
नहीं करता, जिससे उसकी पत्नी की विषय भावना को प्रोत्साहन

मिले ? उसे जानना चाहिए कि हिन्दू शास्त्रानुसार आठ तरह
सहवास माने गये हैं, जिनमें अफेसों द्वारा विषय-प्रवृति का प्रसंग
करना भी शामिल है। क्या वह इससे मुक्त है ? यदि वह ऐसा है
और सच्चे दिल से यह चाहता हो कि उसकी पत्नी में भी विषय
वासना न रहे, तो वह उसे शुद्धतम प्रेम से सराबोर करे, उस को
नियम समझावे, सन्तानोत्पत्ति की इच्छा के बगैर सहवास करने
से जो शारीरिक हानि होती है वह उसे समझाये और वीर्य-रक्षा
का महत्त्व बतलाये। अलावा इसके उसे चाहिए कि अपनी पत्नी
को अच्छे कामों की ओर प्रवृत्त करके उनमें उसे लगाये रखे
और उसकी विषय-वृत्ति को शान्त करने के लिये उसके भोजन,
व्यायाम आदि को नियमित करने का यत्न करे। और इस सबसे
बढ़कर यदि वह धर्म-प्रवृत्ति का व्यक्ति है, तो अपने उस जीवित
विश्वास को वह अपनी सहचरी पत्नी में भी पैदा करने की कोशिश
करे, क्योंकि मुझे यह बात कहनी ही होगी कि ब्रह्मचर्य व्रत का
तब तक पालन नहीं हो सकता जब तक कि ईश्वर में, जो कि
जीता जागता सत्य है, अटूट विश्वास न हो। आजकल तो यह
एक फैशन-सा बन गया है कि जीवन में ईश्वर का कोई स्थान
नहीं समझा जाता और सच्चे ईश्वर में अडिग आस्था रखने की
आवश्यकता के बिना ही सर्वोच्च जीवन तक पहुँचने पर जोर दिया
जाता है। मैं अपनी यह असमर्थता कबूल करता हूँ कि जो अपने
से ऊँची किसी दैवी शक्ति में विश्वास नहीं रखते या उसकी जरू-
रत नहीं समझते, उन्हें मैं यह बात समझा नहीं सकता। पर मेरा

अपना अनुभव तो मुझे इसी स्थान पर ले जाता है कि जिसके नियमानुसार सारे विश्वका सचालन होता है। उस शाश्वत नियम का अचल विश्वास रक्खे बिना पूर्णतम जीवन सम्भव नहीं है। इस विश्वास से विहीन व्यक्ति तो समुद्र से अलग आ पड़ने वाली उस बूँद के समान है, जो नष्ट हो कर ही रहती है परन्तु जो बूँद समुद्र में ही रहती है वह उसकी गौरव-वृद्धि में योग देती है और हमें प्राण प्रद वायु पहुँचाने का सम्मान उसे प्राप्त होता है।

ह० स० २५-४-३६

२०

विद्यार्थियों के लिए

"हरिजन" के पिछले एक अक में आपने 'एक युवक की कठिनाई' शीर्षक एक लेख लिखा है, जिसके सम्बन्ध में मैं नम्रता पूर्वक आपको यह लिख रहा हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि आपने उस विद्यार्थी के साथ न्याय नहीं किया। यह प्रश्न आसानी से हल होनेवाला नहीं। उसके सवाल का आपने जो जवाब दिया है, वह सदिग्ध और सामान्य राय का है। आपने विद्यार्थियों से यह कहा है कि वे झूठी प्रतिष्ठा का खयाल छोड़ कर साधारण मज़दूरों की तरह बन जायँ। यह सब सिद्धान्त की बात आदमी को कुछ बहुत रास्ता नहीं सुझाती और न आप-जैसे बहुत ही व्यावहारिक आदमी को यह बात शोभा देती है। इस प्रश्न पर आप अधिक

विस्तार के साथ विचार करने की कृपा करें और नीचे मैं
उदाहरण दे रहा हूँ, उसमें क्या रास्ता निकाला जाय, इसका
सीलवार व्यावहारिक और व्यापक उत्तर दें।

मैं लखनऊ-यूनिवर्सिटी में एम० ए० का विद्यार्थी हूँ। प्राचीन
भारतीय इतिहास मेरा विषय है। मेरी उम्र क़रीबन २१ साल की
है। मैं विद्या का प्रेमी हूँ और मेरी यह इच्छा है कि जीवन में
जितनी भी विद्या प्राप्त कर सकूँ, उतनी करूँ। आपका बताया हुआ
जीवन का आदर्श भी मुझे प्रिय है। एकाध महीने में मैं एम० ए०
फाइनल की परीक्षा दे दूँगा, और मेरी पढ़ाई पूरी हो जायगी।
इसके बाद मुझे 'जीवन में प्रवेश' करना पड़ेगा।

मुझे अपनी पत्नी के अलावा ४ भाइयों, (मुझ से सब छोटे
हैं, और एक की शादी भी हो चुकी है) २ बहिनों और माता-
पिता का पोषण करना है। हमारे पास कोई पूँजी का साधन नहीं
है। जमीन है, पर बहुत ही थोड़ी।

अपने भाई-बहनों की शिक्षा के लिए क्या करूँ? फिर बह
की शादी भी तो जल्दी करनी है। इस सबके अलावा घर-भर
लिए अन्न और वस्त्र का खर्चा कहाँ से लाकर जुटाऊँगा?

मुझे मौज व टीमटाम से रहने का मोह नहीं है। मैं
मेरे आश्रित सब अच्छा नीरोगी जीवन बिता सकें, और
जरूरत का काम अच्छी तरह चलाता जाय, तो इतने से
सन्तोष है। दोनों समय स्वास्थ्यकर आहार और ठीक-ठीक
मिलते जायँ, बस इतना ही मेरे सामने सवाल है।

पैसे के बारे में मैं ईमानदारी के साथ रहना चाहता हूँ। भारी
ग़रज़ लेकर या शरीर बेचकर मुझे रोज़ी नहीं कमानी है। देश-सेवा
करने की भी मुझे इच्छा है। अपने उस लेख में आपने जो शर्तें
रक्खी हैं, इन्हें पूरा करने के लिए मैं तैयार हूँ।
पर मुझे यह नहीं सूझ रहा है कि मैं करूँ क्या? शुरुआत कहाँ
और कैसे की जाय? शिक्षा मुझे केवल किताबी और अव्याव-
हारिक मिली है। कभी-कभी मैं सूत कातने का विचार सोचता हूँ,
पर कातना सीखूँ कैसे, और उस सूत का क्या होगा, इसका भी
मुझे पता नहीं।

जिन परिस्थितियों में मैं पड़ा हुआ हूँ, उनमें आप मुझे क्या
सन्तति-नियमन के कृत्रिम साधन काम में लाने की सलाह देंगे?
संयम और ब्रह्मचर्य में मेरा विश्वास है, पर ब्रह्मचारी बनने में
मुझे अभी कुछ समय लगेगा। मुझे भय है कि पूर्ण संयम की
सिद्धि प्राप्त होने के पूर्व यदि मैं कृत्रिम साधनों का उपयोग नहीं
करूँगा, तो मेरी स्त्री के कई बच्चे पैदा हो जायंगे, और इस तरह
बैठे-ठाले आर्थिक बरबादी मोल ले लूँगा। और फिर मुझे ऐसा
लगता है कि अपनी स्त्री से, उसके स्वाभाविक भावना विकास में,
कड़े संयम का पालन कराना बिलकुल ही उचित नहीं। आख़िर-
कार साधारण स्त्री-पुरुषों के जीवन में विषय-भोग के लिए तो
स्थान है ही। मैं उसमें अपवाद-रूप नहीं हूँ। और मेरी स्त्री को,
आपके 'ब्रह्मचर्य' 'विषय-सेवन के खतरे' आदि विषयों के महत्त्व
पूर्ण लेख पढ़ने व समझने का मौक़ा नहीं मिला, इसलिए

यह इससे भी कम तैयार है।

मुझे अफसोस है कि पत्र ज्यादा लम्बा हो गया है, पर संक्षेप में लिखकर इतनी स्पष्टता के साथ अपने विचार व्यक्त नहीं कर सकता था।

इस पत्र का आपको जो उपयोग करना हो वह आप खुशी से कर सकते हैं।"

यह पत्र मुझे फरवरी के अन्त में मिला था, पर जवाब इस समय मैं अब लिख सका हूँ। इसमें ऐसे महत्त्व के प्रश्न उठाये गये हैं कि हरेक की चर्चा के लिए इस अखबार के दो-दो कालम चाहिएँ, पर मैं संक्षेप में ही जवाब दूंगा।

इस विद्यार्थी ने जो कठिनाइयाँ बताई हैं, वे देखने में गम्भीर मालूम होती हैं, पर वे उसकी खुद की पैदा की हुई हैं। इन कठिनाइयों के नाम निर्देश पर से ही जान लेना चाहिए कि इस विद्यार्थी की और अपने देश की शिक्षापद्धति की स्थिति कितनी खोटी है। यह पद्धति शिक्षा को केवल बाजारू, बेच कर पैसा पैदा करने की चीज बना देती है। मेरी दृष्टि से शिक्षा का उद्देश्य बहुत ऊँचा और पवित्र है। यह विद्यार्थी अगर अपने को करोड़ों आदमियों में से एक माने, तो वह देखेगा कि वह अपनी डिगरी में जो आशा रखता है, वह करोड़ों युवक और युवतियों से पूरी नहीं हो सकती। अपने पत्र में उसने जिन सम्बन्धियों का जिक्र किया है उनकी परवरिश के लिए वह क्यों जवाबदार बने? बड़ी उम्र के आदमी अच्छे मजबूत शरीर के हों, तो वे अपनी आजीविका के लिए

नत-मजूरी क्यों न करें ? एक उद्योगी मधुमक्खी के पीछे—
े ही वह नर हो—बहुत-सी आलसी मधुमक्खियों का रखना
ाब तरीक़ा है।

इस विद्यार्थी की उलझन का इलाज, उसने जो बहुत-सी
बें सीखी हैं, उनके भूल जाने में है। उसे शिक्षा-सम्बन्धी अपने
चार बदल देने चाहिए। अपनी बहनों को वह ऐसी शिक्षा
यों दे, जिस पर उसना ज्यादा पैसा खर्च करना पड़े ? वे कोई
ाग-धन्धा वैज्ञानिक रीति से सीखकर अपनी बुद्धि का विकास
र सकती हैं। जिस क्षण वे ऐसा करेंगी, उसी क्षण वे शरीर के
कास के साथ-साथ मन का विकास कर लेंगी। और अगर वे
पने को समाज का शोषण करने वाली नहीं, किन्तु सेविकायें
मझना सीखेंगी, तो उनके हृदय का अर्थात् आत्मा का भी विकास
गा। और वे अपने भाई के साथ आजीविका के अर्थ काम
रने में समान हिस्सा लेंगी।

पत्र लिखने वाले विद्यार्थी ने अपनी बहनों के ब्याह का
ल्लेख किया है। उसकी भी यहाँ चर्चा कर लूँ। शादी 'जल्दी'
ागी ऐसा लिखने का क्या अर्थ है, यह मैं नहीं जानता। २०
ाल की उम्र न हो जाय, तब तक उनकी शादी करने की जरूरत
ी नहीं और अगर वह अपने जीवन का सारा क्रम बदल लेगा
ो वह अपनी बहनों को अपना अपना वर खुद ढूँढ़ लेने देगा,
ौर विवाह-संस्कार में ५) रुपये से अधिक खर्च होना ही नहीं
ाहिए। मैं ऐसे कितने ही विवाहों में उपस्थित रहा हूँ, और

उनमें उन लड़कियों के पति या उनके बड़े-बूढ़े खासी अच्छी स्थिति के ग्रेजुएट थे।

कातना कहाँ और कैसे सीखा जा सकता है, उसे इसका भी पता नहीं। उसकी यह लाचारी देख कर करुणा आती है। लखनऊ में वह प्रयत्न-पूर्वक तलाश करे, तो कातना सिखानेवाले उसे वहाँ कई युवक मिल सकते हैं, पर उस अपेक्षा कातना सीखकर बैठे रहने की जरूरत नहीं, हालाँकि सूत कातना भी पूरे समय का धन्धा होता जा रहा है, और वह ग्राम-वृत्ति वाले स्त्री-पुरुषों को पर्याप्त आजीविका दे सकने वाला उद्योग बनता जा रहा है। मुझे आशा है कि मैंने जो कहा है, उसके बाद बाकी का सब वह विद्यार्थी खुद समझ लेगा।

अब सन्तति नियमन के कृत्रिम साधनों के सम्बन्ध में यहाँ भी उसकी कठिनाई काल्पनिक ही है। वह विद्यार्थी अपनी स्त्री की बुद्धि को जिस तरह आँक रहा है, वह ठीक नहीं। मुझे जरा भी शंका नहीं कि अगर वह साधारण स्त्रियों की तरह है, तो पति के संयम के अनुकूल वह सहज ही हो जायगी। विद्यार्थी खुद अपने मन म पूछ कर देखे कि उसके मन में पर्याप्त संयम है या नहीं ? मेरे पास जितने प्रमाण हैं, वे तो सब यही बताते हैं कि संयम शक्ति का अभाव स्त्री की अपेक्षा पुरुष में ही अधिक होता है, पर इस विद्यार्थी को अपनी संयम रखने की अशक्ति कम समझ कर उस दिमाग में से निकाल देने की जरूरत नहीं। उसे बड़े कुटुम्ब की सम्भावना का मर्दानगी के साथ सामना

ना चाहिए, और उस परिवार के पालन-पोषण करने का अच्छे
अच्छा जरिया ढूँढ़ लेना चाहिए। उसे जानना चाहिए कि
ोड़ों आदमियों को इन कृत्रिम साधनों का पता ही नहीं, इन
धनों को काम में लाने वालों की संख्या तो बहुत-बहुत होगी
कुछेक हजार की ही होगी। उन करोड़ों की बात का भय नहीं
ा कि बच्चों का पालन वे किस तरह करेंगे, यद्यपि बच्चे वे
 माँ-बाप की इच्छा से पैदा नहीं होते। मैं चाहता हूँ कि मनुष्य
ने कर्म के परिणाम का सामना करने से इन्कार न करे।
ा करना कायरता है। जो लोग कृत्रिम साधनों को काम में लाते
वे संयम का गुण नहीं सीख सकते। उन्हें इसकी जरूरत नहीं
गी। कृत्रिम साधनों के साथ भोगा हुआ भोग बच्चों का आना
रोकगा, पर पुरुष और स्त्री दोनों की—स्त्री की अपेक्षा पुरुष
अधिक—जीवन-शक्ति को वह चूस लेगा। आसुरी वृत्ति के
लाफ युद्ध करने से इन्कार करना नामर्दी है। पत्र-लेखक
र अनचाहे बच्चों को रोकना चाहता है, तो उसके सामने
 मात्र अचूक और सम्मानित मार्ग यही है कि उसे संयम-
न करने का निश्चय कर लेना चाहिए। सौ बार भी उसके
ल निष्फल जायँ तो भी क्या? सच्चा आनन्द तो युद्ध करने
है, उसका परिणाम तो ईश्वर की कृपा से ही आता है।

से० २४-४-३७

विद्यार्थियों की दशा

एक बहन, जिन्हें अपनी जिम्मेदारी का पूरा ख्याल है, लिखती है —

"जब तक हमारे बच्चे वीर्य की रक्षा करना नहीं सीखते तब तक हिन्दुस्तान को जैसे आदमियों की जरूरत है, वैसे नहीं मिल सकते। हिन्दुस्तान में कोई १६ वर्षों तक, लड़कों के स्कूलों का भार मुझ पर रहा है। यह देखकर रुलाई आती है कि हमारे बहुत-से हिन्दू, मुसलमान, ईसाई लड़के स्कूल की पढ़ाई शुरू करते हैं जोश, ताकत, और उम्मीदों से भरकर, लेकिन खत्म करते हैं शरीर से निकम्मे बनकर। फिर कर सैकड़ों बार मैंने देखा है कि इसके कारण का पता ठेठ वीर्य नाश, अप्राकृतिक कर्म या बाल-विवाह में ही मिलता है। इस आज मेरे पास ४७ लड़कों के नाम हैं। ये अप्राकृतिक कर्म के दोषी हैं और इनमें से एक भी १३ साल से अधिक का नहीं है। शिक्षक और माता-पिता ऐसी हालत का होना गलत मानते हैं लेकिन अगर सही तरीके से काम लिया जाय तो व्यभिचार का पता तुरन्त ही लग जायगा और करीब-करीब हमेशा ही लड़के अपना गुनाह कुबूल कर लेंगे। इनमें से अधिक लड़के कहते हैं कि यह ऐब उन्होंने स्याने आदमियों से, कभी-कभी अपने सम्बन्धियों से ही सीखा है।"

यह कोई खयाली तसवीर नहीं है। यह यह सचाई है, जिसे
नने वाले स्कूलों के कितने-एक मास्टर बता जाते हैं। मैं इसे
सें से जानता था। आज से कोई आठ साल हुए, दिल्ली के
मी स्कूल-मास्टर ने मेरा ध्यान इस ओर दिलाया था। इसके
ाज के बारे में अबतक खानगी में ही मैं बातें करता आया
और चुप रहा हूँ। यह दोष सिर्फ हिन्दुस्तान-भर में ही परि
त नहीं है, मगर बाल विवाह के पाप के कारण हम पर
का और भी अधिक मारक प्रभाव पड़ता है। इस बहुत ही
जुक और मुश्किल सवाल की आम चर्चा करना जरूरी हो
या है, क्योंकि अबसे कुछ साल पहले जिस स्वच्छन्दता से
ी-पुरुष के सम्बन्ध की बातों पर विचार करना ग़ैर-मुमकिन
, आज उसके साथ हम प्रतिष्ठित समाचार-पत्रों में भी इसपर
स होते देखते हैं।

सम्भोग को देह और दिमाग़ की तन्दुरुस्ती के लिए फायदे
न्द, नैतिक जरूरी और स्वाभाविक समझने की प्रथा ने इस
प की वृद्धि की है। हमारे सुशिक्षित पुरुषों के गर्भ-निरोधक
ाधनों के स्वच्छन्द व्यवहार के समर्थन ने इस कामवासना के
ोगों की वृद्धि के लिए समुचित वातावरण पैदा कर दिया है।
मसिन लड़कों के नाजुक और सम्राहक दिमाग़ ऐसे नतीजे
हुत जल्द निकाल लेते हैं कि उनकी अधार्मिक इच्छायें अच्छी
ौर उचित हैं। इस मारक पाप के प्रति माता-पिता और शिक्षक,
हुत ही बुरी, बल्कि पाप के बराबर, उदासीनता और सहनशीलता

दिखलाते हैं । मेरी समझ में, सामाजिक वातावरण को पूरा-पूरा शुद्ध बनाये बिना इस गुनाह को और कुछ नहीं [illegible] सकता, विषय भोग के खयालों से भरे हुए वातावरण का [illegible] और सूक्ष्म प्रभाव देश के विद्यार्थियों के मन पर बिना पड़ [illegible] नहीं सकता । नागरिक जीवन की परिस्थिति, साहित्य, नाट[illegible] सिनेमा, घर की रचना, कितने एक सामाजिक रिवाज, सबका [illegible] ही असर होता है, वह है कामवासना की वृद्धि । छोटे लड़कों [illegible] लिए, जिन्हें अपनी इस पाशविक प्रवृत्ति का पता लग गया [illegible] इसके जोर को रोकना गैर-मुमकिन है । ऊपरी इलाजों से [illegible] नहीं चलने का । यदि नयी पीढ़ी के प्रति वे अपना कर्तव्य पू[illegible] करना चाहते हैं तो बड़ों को पहले अपने से ही यह सुधार शु[illegible] करना होगा ।

हि० न० ६ ६ '२६

२२

ब्रह्मचर्य पर नया प्रकाश

अब एक नई बात आप लोगों से कहना चाहता हूँ । सोच[illegible] था कि विनोबा सुनायें, पर अब समय है तो स्वयं मैं यह [illegible] हूँ । मेरा स्वभाव ही ऐसा है कि अच्छी बात सबके साथ [illegible] लेता हूँ । बात का आरम्भ तो बहुत वर्षों पुराना है । मैं [illegible] में गया था । देखो ईश्वर का खेल इसी तरह चलता है । म[illegible] निश्चय होगया कि जिसको जगत की सेवा करनी है, उस[illegible]

ए ब्रह्मचर्य पालन करना आवश्यक है। विवाहित दम्पती को
ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। इससे मेरा मतलब यह था
कि उन्हें प्रजोत्पादक क्रिया में नहीं पड़ना चाहिए। मैं यह सम-
झता था कि जो प्रजोत्पादन करते हैं, वे ब्रह्मचारी नहीं हो सकते।
इसलिए मैंने ब्रह्मचर्य का आदर्श छगनलाल आदि के सामने
रखा। उस वक्त तो मैं बिलकुल जवान था। और जवान तो सब
कुछ कर सकता है। मैं आपसे कह दूँ कि आप सब ब्रह्मचारी
बनें तो क्या वह होने वाली बात है? वह तो एक आदर्श है, इस
लिए मैं तो विवाह भी करा देता हूँ। एक आदर्श देते हुए भी यह
जानता ही हूँ कि ये लोग भोग भी करेंगे। प्रजोत्पादन और
ब्रह्मचर्य एक दूसरे से विरोधी हैं, ऐसा मेरा ख़याल रहा।

पर उस दिन विनोबा मेरे पास एक वचमन लेकर आये।
एक शास्त्र-वचन है, जिसकी क़ीमत मैं पहले नहीं जानता था।
इस वचन ने मेरे दिल पर एक नया प्रकाश डाल दिया। उसका
विचार करते-करते मैं बिल्कुल थक गया, उसमें तन्मय होगया।
अब भी मैं उसीसे भरा हूँ। ब्रह्मचर्य का जो अर्थ शास्त्रों में बताया
है, वह अति शुद्ध है। नैष्ठिक ब्रह्मचारी वह है, जिसने जन्म से
ही ब्रह्मचर्य का पालन किया हो। स्वप्न में भी जिसका वीर्य-स्खलन
न हुआ हो, लेकिन मैं नहीं जानता था कि प्रजोत्पत्ति के हेतु जो
सम्भोग करता है उसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी क्यों माना गया है।
अब यह बुलन्द बात मेरी समझ में आ गई। जो दम्पती गृहस्था
श्रम में रहते हुए केवल प्रजोत्पत्ति के हेतु ही परस्पर संयोग और

दिखलाते हैं। मेरी समझ में, सामाजिक वातावरण को पूरा-पूरा शुद्ध बनाये बिना इस गुनाह को और शुद्ध नहीं ... सकता, विषय-भोग के खयालों से भरे हुए वातावरण का ... और सूक्ष्म प्रभाव देश के विद्यार्थियों के मन पर बिना पड़ ... नहीं सकता। नागरिक जीवन की परिस्थिति, साहित्य, ... सिनेमा, घर की रचना, कितने एक सामाजिक रिवाजें, सबका ... ही असर होता है, यह है कामवासना की वृद्धि। छोटे लड़कों ... लिए, जिन्हें अपनी इस पाशविक प्रवृत्ति का पता लग गया ... इसके जोर को रोकना गैर-मुमकिन है। ऊपरी इलाजों से ... नहीं चलने का। यदि नयी पीढ़ी के प्रति वे अपना कर्तव्य ... करना चाहते हैं तो बड़ों को पहले अपने में ही यह सुधार ... करना होगा।

हि० न० ६ ६ ३६

२२

ब्रह्मचर्य पर नया प्रकाश

अब एक नई बात आप लोगों से कहना चाहता हूँ। मा... था कि विनोबा सुनायें, पर अब समय है तो स्वयं मैं कह दे... हूँ। मेरा स्वभाव ही ऐसा है कि अपनी बात सबके साथ बाँ... लेता हूँ। बात का आरम्भ तो बहुत बर्षों पुराना है। मैं जुगजु... में गया था। देखो, ईश्वर का खेल इसी तरह चलता है। म... निश्चय होगया कि जिसको जगत की सेवा करनी है उस...

लिए ब्रह्मचर्य पालन करना आवश्यक है। विवाहित दम्पती को भी ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। इससे मेरा मतलब यह था कि उन्हें प्रजोत्पादक क्रिया में नहीं पड़ना चाहिए। मैं यह समझता था कि जो प्रजोत्पादन करते हैं, वे ब्रह्मचारी नहीं हो सकते। इसीलिए मैंने ब्रह्मचर्य का आदर्श छगनलाल आदि के सामने रक्खा। उस वक्त तो मैं बिलकुल जवान था। और जवान तो सब कुछ कर सकता है। मैं आपसे कह दूँ कि आप सब ब्रह्मचारी बनें तो क्या वह होने वाली बात है? वह तो एक आदर्श है, इसलिए मैं तो विवाह भी करा देता हूँ। एक आदर्श देते हुए भी यह मानता ही हूँ कि ये लोग भोग भी करेंगे। प्रजोत्पादन और ब्रह्मचर्य एक दूसरे से विरोधी हैं, ऐसा मेरा खयाल रहा।

पर उस दिन विनोबा मेरे पास एक वचन लेकर आये। एक शास्त्र-वचन है, जिसकी क़ीमत मैं पहले नहीं जानता था। उस वचन ने मेरे दिल पर एक नया प्रकाश डाल दिया। उसका विचार करते-करते मैं बिल्कुल थक गया, उसमें तन्मय होगया। आज भी मैं उसीसे भरा हूँ। ब्रह्मचर्य का जो अर्थ शास्त्रों में बताया है, वह अति शुद्ध है। नैष्ठिक ब्रह्मचारी वह है, जिसने जन्म से ही ब्रह्मचर्य का पालन किया हो। स्वप्न में भी जिसका वीर्य-स्खलन न हुआ हो, लेकिन मैं नहीं जानता था कि प्रजोत्पत्ति के हेतु जो सम्भोग करता है उसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी क्यों माना गया है।

यह बुलन्द बात मेरी समझ में आ गई। जो दम्पती गृहस्था में रहते हुए केवल प्रजोत्पत्ति के हेतु ही परस्पर संयोग और

एकान्त करते हैं, वे ठीक ब्रह्मचारी ही हैं। आज हम जिसलि
कहते हैं, यह विवाह नहीं, उसका आडम्बर है। जिस
भोग कहते हैं, वह भ्रष्टाचार है। यद्यपि मैं कहता था
प्रजोत्पत्ति के लिए विवाह है, फिर भी मैं यह मानता था
इसका मतलब सिर्फ यही है कि दोनों को प्रजोत्पत्ति स
मालूम हो, उसके परिणाम को टालने का प्रयत्न न हो,
भोग में दोनों की सहमति हो। मैं नहीं जानता कि
इससे भी अधिक कोई मतलब होगा, पर यह भी शुद्ध वि
नहीं है। शुद्ध विवाह में तो केवल ब्रह्मचर्य ही है। शुद्ध विवाह
कहा जाय? दम्पती प्रजोत्पत्ति तभी करें जब जरूरत हो,
उसकी जरूरत हो तभी एकान्त भी करें। अर्थात् स
प्रजोत्पादन को कर्तव्य समझकर तथा उसके लिए ही हो।
अतिरिक्त कभी एकान्त न करें। एकान्तवास भी न करें। यदि
पुरुष इस प्रकार हेतुपूर्वक सम्भोग को छोड़कर स्थिर वीर्य
तो यह नैष्ठिक ब्रह्मचारी के बराबर है। सोचिए, ऐसा एकान्त
जीवन में कितनी बार हो सकता है? वीर्यवान् नीरोग स्त्री
के लिए तो जीवन में एक ही बार ऐसा अवसर हो सकता है।
व्यक्ति क्यों नैष्ठिक ब्रह्मचारी के समान न माने जायँ? जो बा
पहले थोड़ी-थोड़ी समझता था वह आज सूर्य की तरह स्पष्ट
गई है। जो विवाहित हैं, इसे ध्यान में रक्खें। पहले भी मैंने
बात बताई थी, पर उस समय मेरी इतनी श्रद्धा नहीं थी।
मैं अव्यावहारिक समझता था। आज व्यावहारिक समझ

।-जीवन में दूसरी बात हो सकती है, लेकिन मनुष्य के विवाहित वन का यह नियम होना चाहिए कि कोई भी पति-पत्नी ना आवश्यकता के प्रजोत्पत्ति न करें और बिना प्रजोत्पादन के के सम्भोग न करें।

० से० ३ ४ ३७

२३

धर्म-सकट

क सज्जन लिखते हैं —

"करीब ढाई साल हुआ, हमारे शहर में एक घटना होगई थी गो इस प्रकार है—

एक वैश्य गृहस्थ की १६ बरस की एक कुमारी कन्या थी। स लड़की का मामा, जिसकी उम्र लगभग २१ वर्ष की थी, स्थानीय कालेज में पढ़ता था। यह तो मालूम नहीं कि कब स इन दोनों मामा और भाँजी में प्रेम था, पर जब बात खुल गई तो उन दोनों ने आत्म-हत्या कर ली। लड़की तो फौरन ही जहर खाने के बाद मर गई, पर लड़का दो रोज बाद अस्पताल में मरा। लड़की को गर्भ भी था। इस बात की शुरू शुरू में तो खूब चर्चा चली। यहाँतक कि अभागे माँ-बाप को शहर में रहना भारी हो गया, पर वक्त के साथ-साथ यह बात भी दब गई और लोग भूलने लगे। कभी-कभी, जब ऐसी मिलती-जुलती बात सुनने को मिलती है, तब पुरानी बातों की भी चर्चा होती है और यह

वाक़या भी दोहरा दिया जाता है, पर इस ज़माने में, जब ग्रन्थ क़रीब सभी लड़की को और लड़के को भी बुरा-भला कह रहे थे, मैंने यह राय अर्ज़ की थी कि ऐसी हालत में समाज का विरोध कर लेने की इजाज़त दे देनी चाहिए। इस बात से समाज में बवण्डर उठा। आपकी इस पर क्या राय है ?"

मैंने स्थान का और लेखक का नाम नहीं दिया है, क्योंकि लेखक नहीं चाहते कि उनका अथवा उनके शहर का नाम प्रकाशित किया जाय। तो भी इस प्रश्न पर जाहिर चर्चा आवश्यक है। मेरी तो यह राय है कि ऐसे सम्बन्ध जिस समाज में त्याज्य माने जाते हैं, वहाँ विवाह का रूप वे यकायक नहीं ले सकते, मगर किसी की स्वतन्त्रता पर समाज या सम्बन्धी आक्रमण क्यों करें? वे मामा और मौंजी सयानी उम्र के थे, अपना हित अहित समझ सकते थे। उन्हें पति-पत्नी के सम्बन्ध से रोकने का किसी को हक़ नहीं था। समाज भले ही इस सम्बन्ध को अस्वीकार करे पर उन्हें आत्म-हत्या करने तक जाने देना तो बहुत बड़ा अत्याचार था।

उक्त प्रकार के सम्बन्ध का प्रतिबन्ध सर्वमान्य नहीं है। इस मुसलमान, पारसी इत्यादि क़ौमों में ऐसे सम्बन्ध त्याज्य नहीं माने जाते हैं—हिन्दुओं में भी प्रत्येक वर्ण में त्याज्य नहीं है। उसी वर्ण में भिन्न प्रान्त में भिन्न प्रथा है। दक्षिण में जब माने जाने वाले ब्राह्मणों में ऐसे सम्बन्ध त्याज्य नहीं, बल्कि पुण्य माने जाते हैं। मतलब यह है कि ऐसे प्रतिबन्ध रूढ़ियों से बन

ह देखने में नहीं आता कि ये प्रतिबन्ध किसी धार्मिक या तात्त्विक र्णय से बने हैं।

लेकिन समाज के सब प्रतिबन्धों को नवयुवक-वर्ग छिन्न-भिन्न रके फेंक दें, यह भी नहीं होना चाहिए। इसलिए मेरा यह भिप्राय है कि किसी समाज में रूढ़ि का त्याग करवाने के लिए ोक-मत तैयार कराने की आवश्यकता है। इस बीच में व्यक्तियों ो धैर्य रखना चाहिए। धैर्य न रख सकें तो बहिष्कारादि को हन करना चाहिए।

दूसरी ओर, समाजका यह कर्त्तव्य है कि जो लोग समाज न्धन तोड़ें, उनके साथ निर्दयता का बर्त्ताव न किया जाय। बहिष्का दि भी अहिंसक होने चाहिएँ।

उक्त आत्म हत्याओं का दोष, जिस समाज में वे हुईं, उसपर अवश्य है, ऐसा ऊपर के पत्र से सिद्ध होता है।

ह० से० १ ५ ३७

२४

विवाह की मर्यादा

श्री हरिभाऊ उपाध्याय लिखते हैं—

"'हरिजन सेवक' के इसी अंक में 'धर्म-संकट' नामक आपका लेख पढ़ा। उसमें आपने लिखा है कि "उक्त प्रकार के (अर्थात् मामा-मौसी के सम्बन्ध जैसे) सम्बन्ध का प्रतिबन्ध

सर्वमान्य नहीं है। ऐसे प्रतिबन्ध रूढ़ियों से बने हैं। मुझे देखने में नहीं आता कि ये प्रतिबन्ध किसी धार्मिक या नैतिक निर्णय से बने हैं।"

मेरा अनुमान यह है कि ये प्रतिबन्ध शायद सन्तानोत्पत्ति की दृष्टि से लगाये गए हैं। इस शास्त्र के ज्ञाता ऐसा मानते हैं कि विजातीय तत्त्वों के मिश्रण से सन्तति अच्छी होती है। इसलिए सगोत्र और सपिण्ड कन्याओं का पाणिग्रहण नहीं किया जाता।

यदि यह माना जाय कि यह केवल रूढ़ि है, तो फिर मौसेरी और चचेरी बहनों के सम्बन्ध पर भी कैसे आपत्ति उठाई जा सकती है? यदि विवाह का हेतु सन्तानोत्पत्ति ही है और सन्तानोत्पादन के ही लिए दम्पती का संयोग करना योग्य है, तो फिर वर या कन्या के चुनाव के औचित्य की कसौटी सुप्रजनन की क्षमता ही होनी चाहिए। क्या और कसौटियाँ गौण समझी जायँ? यदि हाँ, तो किस क्रम से, यह प्रश्न सहज उठता है। मेरी राय में वह इस प्रकार होना चाहिए—

(१) पारस्परिक आकर्षण और प्रेम।

(२) सुप्रजनन की क्षमता।

(३) कौटुम्बिक और व्यावहारिक सुविधा।

(४) समाज और देश की सेवा।

(५) आध्यात्मिक उन्नति।

आपका इस सम्बन्ध में क्या मत है?

हिन्दू-शास्त्रों में पुत्रोत्पत्ति पर जोर दिया गया है। सपत्नी

को आशीर्वाद दिया जाता है, "अष्टपुत्रा सौभाग्यवती भव।" आप जो यह प्रतिपादन करते हैं कि दम्पती सन्तान के लिए संयोग करें तो इसका क्या यही अर्थ है कि सिर्फ एक ही सन्तान उत्पन्न करें, फिर वह लड़का हो या लड़की? वंशवर्धन की इच्छा के साथ ही 'पुत्र से नाम चलता है' यह इच्छा भी जुड़ी हुई मालूम होती है। केवल लड़की से इस इच्छा का कैसे समाधान हो सकता है? बल्कि अभीतक समाज में 'लड़की के जन्म' का उतना स्वागत नहीं होता, जितना कि लड़के के जन्म का होता है। इसलिए यदि इन इच्छाओं को सामाजिक माना जाय तो फिर एक लड़का और एक लड़की—इस तरह दो सन्तति पैदा करने की छूट देना क्या अनुचित होगा?

केवल सन्तानोत्पादन के लिए संयोग करने वाले दम्पती ब्रह्मचारीवत् ही समझे जाने चाहिए—यह ठीक है। यह भी सही है कि सयत जीवन में एक ही बार के संयोग से गर्भ रह जाता है। पहली बात की पुष्टि में एक कथा प्रचलित है—

वशिष्ठ की कुटिया के सामने एक नदी बहती थी। दूसरे किनारे विश्वामित्र तप करते थे। वशिष्ठ गृहस्थ थे। जब भोजन पक जाता, तो पहले अरुन्धती थाल परोसकर विश्वामित्र को खिलाने जाती, बाद को वशिष्ठ के घर पर सब लोग भोजन करते। यह नित्य-क्रम था। एक रोज बारिश हुई और नदी में बाढ़ आगई। अरुन्धती उस पार न जा सकी। उसने वशिष्ठ से इसका उपाय पूछा। उन्होंने कहा—'जाओ,

नदी से कहना, मैं मग्न निराहारी विश्वामित्र को भेंट देने जा रही हूँ, मुझे रास्ता दे दो।' अरुन्धती ने इस प्रकार नदी से कहा—और उसने रास्ता दे दिया। तब अरुन्धती के मन में बड़ा आश्चर्य हुआ कि विश्वामित्र रोज तो खाना खाते हैं, फिर निराहारी कैसे हुए? जब विश्वामित्र खाना खा चुके, तो अरुन्धती ने उनसे पूछा—'मैं वापिस कैसे जाऊँ, नदी में तो बाढ़ है?' विश्वामित्र ने उलट कर पूछा—'तो आई कैसे?' उत्तर में अरुन्धती ने वशिष्ठ का पूर्वोक्त नुसखा बतलाया। तब विश्वामित्र ने कहा—'अच्छा, तुम नदी से कहना, सदा ब्रह्मचारी वशिष्ठ के यहाँ लौट रही हैं। नदी, मुझे रास्ता दे दो।' अरुन्धती ने ऐसा ही किया और उसे रास्ता मिल गया। अब तो उसके अचरज का ठिकाना न रहा। वशिष्ठ के सौ पुत्रों की तो वह स्वयं ही माता थी। उसने वशिष्ठ से इसका रहस्य पूछा कि विश्वामित्र को सदा निराहारी और आपको सदा ब्रह्मचारी कैसे मानूँ? वशिष्ठ ने बताया "जो केवल शरीर-रक्षण के लिए ही ईश्वरार्पण बुद्धि से भोजन करता है, वह नित्य भोजन करते हुए भी निराहारी ही है और जो केवल स्व धर्म पालन के लिए अनासक्ति-पूर्वक सन्तानोत्पत्ति करता है, वह संयोग करते हुए भी ब्रह्मचारी ही है।"

परन्तु इसमें और मेरी समझ में तो शायद हिन्दू शास्त्र भी केवल एक सन्तति—फिर वह कन्या हो या पुत्र—का विधान करते हैं। अतएव यदि आपको एक पुत्र और एक पुत्री का नियम मान्य हो, तो मैं समझता हूँ, बहुतरे दम्पतियों को समाधान

ना चाहिए। अन्यथा मुझे तो ऐसा लगता है कि बिना विवाह के एक बार ब्रह्मचारी रह जाना शक्य हो सकता है, परन्तु वाह करने पर केवल सन्तानोत्पादन के लिए, और फिर भी म सन्तति के ही लिए संयोग करके फिर आजन्म संयम से ना उसमे कहीं कठिन है। मेरा तो ऐसा मत बनता जा रहा हूँ 'काम' मनुष्य में स्वाभाविक प्रेरणा है। उसमें संयम संस्कार का सूचक है। 'सन्तति के लिए संयोग' नियम बना देने से सुसंस्कार, संयम या धर्म की तरफ़ ुष्य की गति होती है, इसलिए यह वांछनीय है। तानोत्पत्ति के ही लिए संयोग करने वाले संयमी का आदर ंगा, कामेच्छा की तृप्ति करने वाले को भोगी कहूँगा, पर पवित्र नहीं मानना चाहता, न ऐसा वातावरण ही पैदा करना क होगा कि पतित समझकर लोग उसका तिरस्कार करें। इस गार में मेरी कहीं ग़लती हो, तो बतावें।"

विवाह में जो मर्यादा बाँधी गई है, उसका शास्त्रीय कारण मैं ं मानता। रूढ़ि को ही, जो मर्यादा की वृद्धि के लिए बनाई गी है, नैतिक कारण मानने में कोई आपत्ति नहीं है। सन्तान- की दृष्टि से ही अगर भाई-बहन के सम्बन्ध का प्रतिबन्ध य है, तो चचेरी बहन इत्यादि पर भी प्रतिबन्ध होना हिए, लेकिन भाई-बहन के सम्बन्ध या ऐसे सम्बन्ध के अति- क कोई प्रतिबन्ध धर्म में नहीं माना जाता। इसलिए रूढ़ि का प्रतिबन्ध जिस समाज में हो, उसका अनुसरण उचित मालूम

देता है। नैतिक विवाह के लिए जो पाँच मर्यादाएँ हरिभाऊ ने रक्खी हैं, उनका क्रम बदलना चाहिए। पारस्परिक प्रेम या आकर्षण को अन्तिम स्थान देना चाहिए। अगर उसे प्रथम स्थान दिया जाय, तो दूसरी सब शर्तें उसके आश्रय में आने से निरर्थक बन सकती हैं। इसलिए उक्त-क्रम में आध्यात्मिक उन्नति को प्रथम स्थान देना चाहिए। समाज और देश-सेवा को दूसरा स्थान दिया जाय। कौटुम्बिक और व्यावहारिक सुविधा को तीसरा, पारस्परिक आकर्षण और प्रेम को चौथा। इसका अर्थ यह हुआ कि जिस जगह इन प्रथम तीन शर्तों का अभाव हो, वहाँ पारस्परिक प्रेम को स्थान नहीं मिल सकता। अगर प्रेम को प्रथम स्थान दिया जाय तो वह सर्वोपरि बनकर दूसरों की अवगणना कर सकता है और करता है, ऐसा आजकल के व्यवहार में देखने में आता है। प्राचीन और अर्वाचीन नवल कथाओं में भी यह पाया जाता है। इसलिए यह कहना होगा कि उपर्युक्त तीन शर्तों का पालन होते हुए भी जहाँ पारस्परिक आकर्षण नहीं है वहाँ विवाह त्याज्य है। सुप्रजनन की क्षमता को शर्त न माना जाय, क्योंकि वही एक वस्तु विवाह का कारण है विवाह की शर्त नहीं।

हिन्दू शास्त्र में पुत्रोत्पत्ति पर अवश्य जोर दिया गया है। यह उस काल के लिए ठीक था, जब समाज में शस्त्र-युद्ध को अनिवार्य स्थान मिला हुआ था, और पुरुष-वर्ग की बड़ी आवश्यकता थी। उसी कारण से एक से अधिक पत्नियों की भी इजाजत थी और अधिक पुत्रों से अधिक बल माना जाता था। धार्मिक दृष्टि

[र्खें तो एक ही सन्तति 'धर्मज' या 'धर्मजा' है। मैं पुत्र और पुत्री
[बी]च भेद नहीं करता हूँ, दोनों एक समान स्वागत के योग्य हैं।
वशिष्ठ, विश्वामित्र का दृष्टान्त सार रूप में अच्छा है। उसे
[अक्षर]श: सत्य अथवा शक्य मानने की आवश्यकता नहीं। उससे
[इत]ना ही सार निकालना काफ़ी है कि सन्तानोत्पत्ति के ही अर्थ
[कि]या हुआ सयोग ब्रह्मचर्य का विरोधी नहीं है। कामाग्नि की
[तृप्ति] के कारण किया हुआ सयोग त्याज्य है। उसे निन्द्य मानने
[की] आवश्यकता नहीं। असंख्य स्त्री-पुरुषों का मिलन भोग के ही
[कार]ण होता है, और होता रहेगा। उससे जो दुष्परिणाम होते
[र]हे हैं, उन्हें भोगना पड़ेगा। जो मनुष्य अपने जीवन को धार्मिक
[बना]ना चाहता है, जो जीव-मात्र की सेवा को आदर्श समझ कर
[संस]ार-यात्रा समाप्त करना चाहता है, उसके लिए ही ब्रह्मचर्या-
[मर्या]दा का विचार किया जा सकता है। और ऐसी मर्यादा आव-
[श्यक] भी है।

से० १५-५-३७

२५

सन्तति-निरोध

प्रश्न—दरिद्र औरतों की सन्तान-वृद्धि रोकने के लिए क्या
[उपा]य करना चाहिए ?

उत्तर—हमारा तो कर्त्तव्य यही है कि उन्हें संयम का धर्म ही
[सि]खायें। कृत्रिम उपाय तो मर जाने जैसी बात है। और मैं नहीं

समझता कि देहाती स्त्रियाँ उन्हें अपनायेंगी। उनके बच्चों के लिए दूध प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिए।

प्रश्न—सन्तति निरोध के लिए स्त्रियाँ तो संयम करना चाहें पर पुरुष बलात्कार करें, तब क्या किया जाय?

उत्तर—यह तो सच्चे स्त्री धर्म का सवाल है। सतियों को मैं पूजता हूँ, पर उन्हें कुएँ में नहीं गिराना चाहता। स्त्री का मरना धर्म तो द्रौपदी ने बताया है। पति अगर गिरता हो तो उसे गिरे। स्त्री के संयम में बाधा डालना शुद्ध व्यभिचार है। यदि वह बलात्कार करने आये तो उसे थप्पड़ मार कर भी सीधा करना उसका धर्म है। व्यभिचारी पति के लिए यह दरवाजा बन्द कर दे। अधर्मी पति की पत्नी बनने से उसे इन्कार करना चाहिए। हमें स्त्रियों के अन्दर यह हिम्मत पैदा कर देनी चाहिए।

प्रश्न—मध्यम वर्ग की स्त्रियों का सन्तति निरोध के विषय में क्या वक्तव्य है?

उत्तर—मध्यम-वर्ग की हों या बादशाही-वर्ग की हों, मार्ग भोगना हमारे हाथ में है, लेकिन परिणाम के बादशाह हम नहीं बन सकते। सिद्धि होगी या नहीं, यह शंका करना हमारा काम नहीं है। हमारा काम तो सिर्फ यही है कि सत्य धर्म सिखायें। मध्यम श्रेणी की स्त्रियाँ नये नये उपाय काम में लायें तो हमें मना करना चाहिए। संयम ही एक मात्र उपाय हो सकता है।

प्रश्न—पति को उपदंश जैसा कठिन रोग हो तब स्त्री क्या करे?

उत्तर—उस हालत में सन्तति-निरोध के उपायों से भी स्त्री
बचाव नहीं हो सकता। ऐसे पति को क्लीव ही समझ कर
दूसरी शादी कर लेनी चाहिए, पर इसके लिए स्त्रियाँ इतनी
सीख लें, जिससे वे स्वावलम्बी बन जायँ।
(गाँधी-सेवा-संघ के द्वितीय अधिवेशन के विवरण में से १०-४ ३७)

२६

काम-शास्त्र

गुजरात विद्यापीठ से हाल ही पारगत-पदवी प्राप्त श्री मगन
ई देसाई के ७ अक्तूबर के पत्र से नीचे लिखा अंश यहाँ
ता हूँ—

"इस बार के 'हरिजन' में आपका लेख पढ़ कर मेरे मन में
चार आया कि मैं भी एक प्रश्न चर्चा के लिए आपके सामने पेश
रूँ। इस विषय में आपने अबतक शायद ही कुछ कहा या
खा है। वह है बालकों को और खास करके विद्यार्थियों को
म-विज्ञान सिखाना। आप तो जानते ही हैं कि श्री गुज
त में इस विषय के बड़े हामी हैं। खुद मुझे तो इस बात में
मेरा अन्देशा ही रहा है, बल्कि मेरा तो मत है कि वे इस विषय
अधिकारी भी नहीं हैं। परिणाम से तो इस विषय की अनिष्टता
प्रकट होती जाती है। वे तो शायद ऐसा ही मानते दिखाई
ते हैं कि काम-विज्ञान के न जानने से ही शिक्षा और समाज में
ह बिगाड़ हुआ है। नवीन मानस-शास्त्र भी बताता है कि यही

सुप्त काम-भाव मानव प्रवृत्ति का उद्गम-स्थान है। 'काम ...
क्रोध एष'—इससे आगे ये लोग जाते ही नहीं। हमारा ...
दिन मुझसे कहता था—'तो आपको यह कहाँ मालूम है कि ...
के अन्दर काम नामक राक्षस रहता है ?' और इसके फलस्वरूप
उसकी नीति-भावना जागृत होने के बदले उलटी जड़ होती हुई दिखाई
दी। इस तरह गुजरात में आजकल काम-विज्ञान के शिक्षण का ...
रूप बहुत-कुछ हो रहा है। इस विषय पर पुस्तकें भी लिखी गई हैं ...
संस्करण-पर-संस्करण छपते हैं और हजारों की संख्या में ...
बिकती हैं। कितने ही साप्ताहिक इस विषय के निकलते हैं और
उनकी बिक्री भी खूब होती है। खैर, यह तो जैसा समाज ...
है वैसा उसे परोसनेवाले मिल ही जाते हैं, किन्तु इससे सुधार...
की दशा और भी अटपटी हो जाती है।

"इसलिए मैं चाहता हूँ कि आप इसकी शिक्षा के विषय में
सार्वजनिकरूप से चर्चा करें। क्या शिक्षा के लिए काम-शास्त्र के
शिक्षण की आवश्यकता है ? कौन उसकी शिक्षा देने का अधि...
कौन उसे पाने का अधिकारी है ? मामूली भूगोल-गणित की तरह
क्या सबको उसकी शिक्षा दी जानी चाहिए ? उसकी क्या मर्यादा
है और उसको ठहरावे भी कौन ? और हमारे रगोरेशे में पैठे हुए
इस शत्रु की मर्यादा इससे उल्टी दिशा में बाँधना उचित है या
इस तरह उसे शुभ नाम का गौरव देने की तरफ ? ऐसे अनेक
तरह के सवाल मन में उठते हैं। आशा है कि आप इस विषय
पर अवश्य रोशनी डालेंगे।"

इस पत्र को इतने दिन तक मैंने इसी आशा से रख छोड़ा था किसी दिन मैं इसमें उठाये गये प्रश्नों पर कुछ लिखूंगा। इस मैं बारहवीं गुजराती-साहित्य-परिषद् का प्रमुख बनकर सेगाँव आ पहुँचा। विद्यापीठ में चार दिन जो रहा वो ावी भाई-बहनों के सम्पर्क में आने से पुरानी स्मृतियाँ ताजी ाईं। उक्त पत्र के लेखक भी मिले। उन्होंने मुझसे पूछा भी, उस पत्र का क्या हुआ?" "मेरे साथ-साथ यह सफर रहा है। मैं उसके बारे में जरूर लिखूंगा।" यह जवाब देकर मगन भाई को कुछ तसल्ली दी थी।

अब उनके असली विषय पर आता हूँ। क्या गुजरात में, क्या दूसरे प्रान्तों में, सब जगह कामदेव मामूल के माफिक य प्राप्त कर रहे हैं। आजकल की उनकी विजय में एक विशे यह है कि उनके शरणागत नर नारीगण उनको धम मानवे ाई देते हैं। जब कोई गुलाम अपनी बेड़ी को शृंगार समझ पुलकित होता है तब कहना चाहिए कि उसके सरदार की पूरी य हो गई। इस तरह कामदेव की विजय देखते हुए भी मुझे ा विश्वास है कि यह विजय क्षणिक है, तुच्छ है और अन्त ंक-कटे बिच्छू की तरह निस्तेज हो जाने वाली है। ऐसा होने हले पुरुषार्थ की तो आवश्यकता है ही। यहाँ मेरा यह आशय है कि अन्त में तो कामदेव की हार होने ही वाली है, इस हम सुस्त या गाफिल बनकर बैठे रहें। काम पर विजय प्राप्त ना स्त्री-पुरुषों का एक परम कर्त्तव्य है। उस पर विजय प्राप्त

किये बिना स्वराज्य असम्भव है, स्वराज्य बिना स्वराज का राम-राज होगा ही कहाँ से ? स्वराज्य-विहीन स्वराज सिर्फ़ आम की तरह समझना चाहिए। देखने में बड़ा सुन्दर, पर उसे खोला तो अन्दर पोल-ही-पोल। काम पर विजय प्राप्त किये बिना कोई सेवक हरिजन की, क़ौमी ऐक्य की, खादी की, गाय की, ग्रामवासी की, सेवा कभी नहीं कर सकता। इस सेवा के लिए बौद्धिक सामग्री बस होने की नहीं। आत्मबल के बिना महान सेवा असम्भव है। और आत्म-बल प्रभु के प्रसाद के बिना अशक्य है। कामी को प्रभु का प्रसाद मिला हो—ऐसा अब तक देखा नहीं गया।

तो मगन भाई ने यह सवाल पूछा है कि हमारे शिक्षा-क्रम में काम-शास्त्र के लिए स्थान है या नहीं, यदि है तो कितना? काम-शास्त्र दो प्रकार का होता है—एक तो है काम पर विजय प्राप्त कराने वाला, उसके लिए तो शिक्षण-क्रम में स्थान होना चाहिए। दूसरा है, काम को उत्तेजन देने वाला शास्त्र। वह सर्वथा त्याज्य है। सब धर्मों ने काम को शत्रु माना है। क्रोध का नम्बर दूसरा है। गीता तो कहती है—काम से ही क्रोध की उत्पत्ति होती है। यहाँ काम का व्यापक अर्थ लिया गया है। हमारे विषय से सम्बन्ध रखने वाला 'काम' शब्द प्रचलित अर्थ में इस्तेमाल किया गया है।

ऐसा होते हुए भी यह प्रश्न बाक़ी रहता है कि बालक-बालिकाओं को गुह्येन्द्रियों का और उनके व्यापार का ज्ञान दिया जा

...नहीं ? मैं समझता हूँ कि यह ज्ञान एक हद तक आवश्यक है। ...ज कितने ही बालक-बालिकायें शुद्ध ज्ञान के अभाव में अशुद्ध ...न प्राप्त करते हैं और वे इन्द्रियों का बहुत दुरुपयोग करते हुए ...ये जाते हैं। आँख होते हुए भी हम नहीं देखते। इस तरह हम ...म पर विजय नहीं पा सकते। बालक-बालिकाओं को उन ...न्द्रियों के उपयोग-दुरुपयोग का ज्ञान देने की आवश्यकता मैं ...नता हूँ। मेरे हाथ-नीचे जो बालक-बालिकायें रहे हैं उन्हें मैंने ...सा ज्ञान देने का प्रयत्न भी किया है, परन्तु यह शिक्षण और ... दृष्टि से दिया जाता है। इन इन्द्रियों का ज्ञान देते हुए संयम की ...क्षा दी जाती है। काम पर कैसे विजय प्राप्त होती है यह ...सखाया जाता है। यह शिक्षण देते हुए भी मनुष्य और पशु के ...च का भेद बताना आवश्यक हो जाता है। मनुष्य वह है जिसे ...दय और बुद्धि है। यह उसका आश्चर्य है। हृदय को जागृत ...रने का अर्थ है—सारासार विवेक सिखाना। यह सिखाते ...र काम पर विजय प्राप्त करना बताया जाता है।

...तो अब इस शास्त्र की शिक्षा कौन दे ? जिस प्रकार खगोल ...स्त्र की शिक्षा वही दे सकता है जो उसमें पारंगत हो, उसी ...रह काम के जीतने का शास्त्र भी वही सिखा सकता है, जिसने ...म पर विजय प्राप्त करली हो। उसकी भाषा में संस्कारिता होगी, ...त होगा, जीवन होगा। जिस उच्चारण के पीछे अनुभव ज्ञान ...हीं है, वह जड़वत् है, वह किसी को स्पर्श नहीं कर सकता। ...सको अनुभव-ज्ञान है, उसका कथन उगे बिना नहीं रह सकता।

आजकल हमारा आचाचार, हमारा वाचन, हमारा
क्षेत्र सब काम की विजय सूचित कर रहे हैं। हमें उसके
मुक्त होने का प्रयत्न करना है। यह काम अवश्य ही कठि
मगर परवाह नहीं। अगर इने गिने ही गुजराती हों, जि
शिक्षण शास्त्र का अनुभव प्राप्त किया हो और जो का
विजय प्राप्त करने के धर्म को मानते हों, उनकी श्रद्धा यदि
रहेगी, वे जागृत रहेंगे और सतत प्रयत्न करते रहेंगे तो गु
के बालक-बालिकायें शुद्ध ज्ञान प्राप्त करेंगे और काम के ज
मुक्ति प्राप्त करेंगे और जो उसमें न फँसे होंगे, वे बच जायँग
ह० से० २८ ११ ३६

२७

एक अस्वाभाविक पिता

एक नवयुवक ने मुझे एक पत्र भेजा है, जिसका सार ही
दिया जा सकता है। वह निम्न प्रकार है:—

"मैं एक विवाहित पुरुष हूँ। मैं विदेश गया हुआ था।
एक मित्र था, जिसपर मुझे और मेरे माँ-बाप को पूरा विश्
था। अनुपस्थिति में उसने मेरी पत्नी को फुसला लिया, जि
अब वह गर्भवती भी हो गई है। अब मेरे पिता इस बा
ज़ोर देते हैं कि मेरी पत्नी गर्भ को गिरा दे, नहीं तो वह का
खानदान की बदनामी होगी। मुझे ऐसा लगता है कि यह ठी
नहीं होगा। बेचारी स्त्री पश्चात्ताप के मारे मरी जा रही है।

खाने की सुध है, न पीने की। जब देखो तब रोती ही रहती
क्या आप कृपा करके बतलायेंगे कि इस हालत में मेरा क्या
है ?"

यह पत्र मैंने बड़ी हिचकिचाहट के साथ प्रकाशित किया है।
कि हरेक जानता है, समाज में ऐसी घटनायें कमी-कदास
नहीं होतीं। इसलिए संयम के साथ सार्वजनिक-रूप से इस
की चर्चा करना मुझे असंगत नहीं मालूम पड़ता।

मुझे तो दिन के प्रकाश की तरह यह स्पष्ट मालूम पड़ता है कि
गिराना जुर्म होगा। इस बेचारी स्त्री ने जो असावधानी की
वैसी असावधानी तो अनगिनत पति करते हैं, लेकिन उनको
कोई कुछ नहीं कहता। समाज उन्हें माफ ही नहीं करता,
क उनकी निन्दा भी नहीं करता। स्त्री तो अपनी शर्म को उस
छिपा भी नहीं सकती, जिस तरह कि पुरुष अपने पाप को
सता के साथ छिपा सकता है।

यह स्त्री तो दया की पात्र है। पति का यह पवित्र कर्तव्य होगा
वह अपने पिता की सलाह को न माने और बच्चे की परवरिश
ने भरसक पूरे लाड़-प्यार से करे। वह अपनी पत्नी के
रहना जारी रक्खे या नहीं, यह एक टेढ़ा सवाल है।
स्थितियाँ ऐसी भी हो सकती हैं जिनके कारण उसे उससे अलग
पड़े, लेकिन उस हालत में वह इस बात के लिए बाध्य होगा
उसकी परवरिश तथा शिक्षा की व्यवस्था करे और शुद्ध
न व्यतीत करने में उसकी मदद करे। अगर उसका

प्रायश्चित्त सच्चा और शुद्ध मनसे हो तो उसे ग्रहण
में भी मुझे कोई ग़लती नहीं मालूम पड़ती । यही न
बल्कि मैं तो ऐसी स्थिति की भी कल्पना कर सकता हूँ
पत्नी के अपनी ग़लती के लिए पूरी तरह पश्चात्ताप करके
मुक्त हो जाने पर पति का यह पुनीत कर्तव्य होगा कि उ
फिर से ग्रहण करले ।
यं० इ० ३ १ २६

२८

एक त्याग

सन् १८६१ में विलायत से लौटने के बाद मैंने अपने प
के बच्चों को क़रीब-क़रीब अपनी निगरानी में ले लिया,
उनके—बालक-बालिकाओं के—कंधों पर हाथ रखकर
साथ घूमने की आदत डाल ली । ये मेरे भाइयों के बच्चे थे।
बड़े हो जाने पर भी यह आदत जारी रही । ज्यों-ज्यों प
बढ़ता गया, त्यों-त्यों इस आदत की मात्रा इतनी बढ़ी कि
और लोगों का ध्यान आकर्षित होने लगा ।

जहाँतक मुझे याद है, मुझे कभी यह पता नहीं चला
इसमें कोई भूल कर रहा हूँ । कुछ वर्ष हुए कि साबरमती के
आश्रमवासी ने मुझसे कहा था कि 'आप जब बड़ी-बड़ी
लड़कियों और स्त्रियों के कन्धों पर हाथ रखकर चलते हैं
इससे लोक-स्वीकृत सभ्यता के विचार को चोट पहुँचती

ो है।' किन्तु आश्रमवासियों के साथ चर्चा होने के बाद यह
ढ जारी ही रही। अभी हाल में मेरे दो साथी जब वर्धा आये
। उन्होंने कहा कि 'आपकी यह आदत सम्भव है कि दूसरों के
ए एक बुरा उदाहरण बन जाय, इसलिए आपको यह बन्द
र देनी चाहिए।' उनकी यह दलील मुझे जँची नहीं। तो भी
'मित्रों की चेतावनी की मैं अवहेलना नहीं करना चाहता था।
लिए मैंने पाँच आश्रमवासियों से इसकी जाँच करने और
के सम्बन्ध में सलाह देने के लिए कहा। इस पर विचार हो
रहा था कि इस बीच में एक निर्णयात्मक घटना घटी। मुझे
सी ने बतलाया कि यूनिवर्सिटी का एक तेज विद्यार्थी अकेले
एक लड़की के साथ, जो उसके प्रभाव में थी, सभी तरह की
आज़ादी से काम लेता था, और दलील यह दिया करता था कि
ह उस लड़की को सगी बहिन की तरह प्यार करता है, और
सिसे कुछ चेष्टाओं का प्रदर्शन किए बिना उससे रहा नहीं जाता।
ई उस पर अपवित्रता का जरा भी आरोपण करता तो वह
राज़ हो जाता। वह नवयुवक क्या-क्या करता था उन सब
तों को अगर यहाँ लिखूँ तो पाठक बिना किसी हिचकिचाहट
कह देंगे कि जिस आज़ादी से वह काम लेता था उसमें अवश्य
गन्दी भावना थी। मैंने और दूसरे जिन लोगों ने इस सम्बन्ध
पत्र-व्यवहार जब पढ़ा तब हम इस नतीजे पर पहुँचे कि या
वह युवक विद्यार्थी परले सिरे का बना हुआ आदमी है, या
र खुद अपने आपको धोखा दे रहा है।

चाहे जो हो, इस अनुसन्धान ने मुझे विचार में डाल दि
मुझे अपने उन दोनों साथियों की दी हुई चेतावनी याद आई।
अपने दिल से पूछा कि अगर मुझे यह मालूम हो कि क
युवक अपने बचाव में मेरे व्यवहार की दलील दे रहा है त
कैसे लगे? मैं यहाँ यह बतला दूँ कि वह लड़की, जो उस
युवक की चेष्टाओं का शिकार बन गई है, यद्यपि वह उसे पि
पवित्र और भाई के समान मानती है, तो भी वह उसकी
चेष्टाओं को पसन्द नहीं करती, बल्कि वह आपत्ति भी करती
पर उस बेचारी में इतनी ताक़त नहीं कि वह उस युवक
आपत्तिजनक चेष्टाओं को रोक सके। इस घटना के कारण
मन में जो आत्म-परीक्षण मंथन कर रहा था, उसका यह परि
हुआ कि उस पत्र-व्यवहार को पढ़ने के दो-तीन दिन के
मैंने अपनी उपर्युक्त प्रथा का परित्याग कर दिया, और गत
तारीख़ को मैंने वर्धा के आश्रमवासियों को अपना यह नि
सुना दिया। यह बात नहीं कि यह निर्णय करते समय मुझे
न हुआ हो। इस व्यवहार के बीच या इसके कारण कभी
अपवित्र विचार मेरे मन में नहीं आया। मेरा आचरण
छिपा हुआ नहीं रहा है। मैं मानता हूँ कि मेरा आचरण पित
जैसा रहा है, और जिन अनेक लड़कियों का मैं मार्ग-दर्शक
अभिभावक रहा हूँ, उन्होंने अपने मन की बातें इतने विश्वास
साथ मेरे सामने रक्खीं कि जितने विश्वास के साथ वे शायद
किसी के सामने न रक्खीं। यद्यपि ऐसे ब्रह्मचर्य में मेरा विश्व

न, जिसमें स्त्री-पुरुष का परस्पर स्पर्श बचाने के लिए एक रक्षा
न दीवार बनाने की जरूरत पड़े, और जो ब्रह्मचर्य जरा से
प्रलोभन के आगे भंग हो जाय, तो भी जो स्वतन्त्रता मैंने ले रक्खी
उसके खतरों से मैं अनजान नहीं हूँ।

इसलिए जिस अनुसन्धान का मैंने ऊपर जिक्र किया है,
उसने मुझे अपनी यह आदत छोड़ देने के लिए सचेत कर दिया,
र मेरा कन्धों पर हाथ रखकर चलने का व्यवहार चाहे जितना
वित्र रहा हो। मेरे हरेक आचरण को हजारों स्त्री-पुरुष खूब
सूक्ष्मता से देखते हैं, क्योंकि मैं जो प्रयोग कर रहा हूँ, उसमें सतत
चौकन्ना रहने की आवश्यकता है। मुझे ऐसे काम नहीं करने
चाहिए जिनका बचाव मुझे दलीलों के सहारे करना पड़े। मेरे
आचरण का कभी यह अर्थ नहीं था कि उसका चाहे जो अनु
करण करने लग जायँ। इस नवयुवक का मामला बतौर एक
चेतावनी के मेरे सामने आया और उससे मैं आगाह हो गया।
इस आशा से यह निश्चय किया है कि मेरा यह त्याग उन
लोगों को सही रास्ता पकड़ा देगा, जिन्होंने या तो मेरे उदाहरण
से प्रभावित होकर ग़लती की है या यों ही। निर्दोष युवावस्था
एक अनमोल निधि है। क्षणिक उत्तेजना के पीछे जिसे ग़लती में
'आनन्द' कहते हैं, इस निधि को यों ही बरबाद नहीं कर देना
चाहिए। और इस चित्र में चित्रित लड़की के समान कमजोर
दिल वाली लड़कियों में इतना बल तो होना ही चाहिए कि वे उन
आवारा या अपने कामों से अनजान नवयुवकों की हरकतों का—

फिर वे उन्हें चाहे जितना निर्दोष जतलायें—साहस के सा
सामना कर सकें।

ह० से० २७-६ ३५

२९

अहिंसा और ब्रह्मचर्य

एक कॉंग्रेस-नेता ने बातचीत के सिलसिले में उस दिन मु
से कहा—"यह क्या बात है कि कॉंग्रेस अब नैतिकता की दृष्टि
वैसी नहीं रही जैसी कि वह १९२० से १९२५ तक थी? तब
तो इसकी बहुत नैतिक अवनति हो गई है। अब तो इसके न
फीसदी सदस्य कॉंग्रेस के अनुशासन का पालन नहीं करते
क्या आप इस हालत को सुधारने के लिए कुछ नहीं कर सकते?

यह प्रश्न उपयुक्त और सामयिक है। मैं यह कह कर अप
जिम्मेदारी से हट नहीं सकता कि अब मैं कॉंग्रेस में नहीं हूं।
तो और अच्छी तरह इसकी सेवा करने के लिए ही इससे पृ
हुआ हूं। कॉंग्रेस की नीति पर अब भी मैं अपना प्रभाव
रहा हूं, यह मैं जानता हूं। और १९२० में कॉंग्रेस का जो विध
बना था, उसे बनाने वाले की हैसियत से उस गिरावट के लि
मुझे अपने को जिम्मेदार मानना ही चाहिए, जिससे कि बचा
सकता है।

कॉंग्रेस ने आरम्भिक कठिनाइयों के बीच सन् १९२० में का
शुरू किया था। सत्य और अहिंसा पर बतौर ध्येय के बहु

ोग विश्वास करते थे। अधिकांश सदस्यों ने इन्हें नीति के
र ही स्वीकार किया। यह अनिवार्य था। मैंने आशा की
नई नीति से कांग्रेस को काम करते हुए देखकर उन में से
इन्हें अपने ध्येय के रूप में स्वीकार कर लेंगे, लेकिन ऐसा
ी लोगों ने किया, बहुतों ने नहीं। शुरुआत में तो सब से
ताओं में भारी परिवर्तन देखने में आया। स्वर्गीय पंडित
ताल नेहरू और देशबन्धुदास के जो पत्र 'यंग इंडिया' में
किये गये थे, उन्हें पाठक भूले नहीं होंगे। संयम, सादगी
अपने आप को कुर्बान कर देने के जीवन में उन्हें एक नये
द और एक नई आशा का अनुभव हुआ था। अलीबन्धु
रीब-क़रीब फ़कीर ही बन गये थे। जगह-जगह दौरा करते
इन भाइयों में होने वाली तब्दीली को मैं आनन्द के साथ
ा था। और जो बात इन चार नेताओं के विषय में सच है,
और भी ऐसे बहुतों के बारे में कही जा सकती है, जिनके
नाम गिना सकता हूँ। इन नेताओं के उत्साह का आम
पर भी असर पड़ा।

लेकिन यह प्रत्यक्ष परिवर्तन 'एक साल में स्वराज' के
पेग की वजह से था। इसकी पूर्ति के लिए मैंने जो शर्तें लगाई
उन पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। ख्वाजा अब्दुलमजीद
ब ने तो यहाँ तक कह डाला कि सत्याग्रह-सेना के, जैसी कि
म उस समय बन गई थी और अभी भी है, (यदि कांग्रेस
सत्याग्रह के अर्थ को महसूस करें) सेनापति की हैसियत

से मुझे इस बात का निश्चय कर लेना चाहिए था कि मैं जो श
लगा रहा हूँ, वे ऐसी हैं जो पूरी हो जायँगी। शायद उनका क
ठीक ही था। सिर्फ यह ज्ञानचक्षु मेरे पास नहीं था। सामू
रूप में और राजनैतिक उद्देश्य से अहिंसा का उपयोग खुद मे
लिए भी एक प्रयोग ही था। इसलिए मैं गर्व-पूर्वक कोई
नहीं कर सकता था। मेरी शर्तों का यह उद्देश्य था कि जि
लोगों की शक्ति का अन्दाज लग सके। वे पूरी हो भी सकती
और नहीं भी हो सकती थीं। ग़लतियों, या ग़लत अन्दाज
तो सदा ही सम्भावना थी। जो भी हो, जब स्वराज की लड़
लम्बी हो गई और ख़िलाफ़त के सवाल में जान न रही तो ल
का उत्साह मन्द पड़ने लगा। अहिंसा में नीति के तौर पर
विश्वास ढीला पड़ने लगा और असत्य का प्रवेश हो गया। जि
लोगों का इन दोनों गुणों में या खद्दर की शर्त में कोई विश्वा
नहीं था, वे इसमें घुस आये, और बहुतों ने तो खुले आम
कॉंग्रेस विधान की अवहेलना करना शुरू कर दिया।

यह बुराई बराबर बढ़ती ही गई। वर्किंग-कमेटी कॉंग्रेस
इस बुराई से मुक्त करने का कुछ प्रयत्न करती रही है, लेकि
दृढ़ता-पूर्वक नहीं, और न वह कॉंग्रेस के सदस्यों की सख्या क
हो जाने के ख़तरे को उठाने के लिये तैयार हो सकी है। मैं ख़ुद
सख्या के बजाय गुण में ही ज्यादा विश्वास करता हूँ।

लेकिन अहिंसा की योजना में ज़बरदस्ती का कोई काम नहीं है
उसमें तो इसी बात पर निर्भर रहना पड़ता है कि लोगों की बु

ार हृदय तक—उसमें भी बुद्धि की अपेक्षा हृदय पर ही
ज्यादा—पहुँचने की क्षमता प्राप्त की जाय।

ो इसका यह अभिप्राय हुआ कि सत्याग्रह-सेनापति के शख्स में
शक्ति होनी चाहिए—वह ताक़त नहीं जो असीमित अस्त्र-
शस्त्रों से प्राप्त होती है, बल्कि वह जो जीवन की शुद्धता, दृढ़ जाग
रूकता और सतत आचरण से प्राप्त होती है। यह ब्रह्मचर्य का
पालन किये बग़ैर असम्भव है। इसका इतना सम्पूर्ण होना आवश्यक
है जितना कि मनुष्य के लिए सम्भव है। ब्रह्मचर्य का अर्थ यहाँ
केवली दैहिक आत्म-सयम या निग्रह ही नहीं है। इसका तो इससे
कहीं अधिक अर्थ है। इसका मतलब है सभी इन्द्रियों पर पूर्ण
संयमन। इस प्रकार अशुद्ध विचार भी ब्रह्मचर्य का भंग है। और
यही हाल क्रोध का है। सारी शक्ति उस वीर्य शक्ति की रक्षा और
ऊर्ध्वगति से प्राप्त होती है, जिससे कि जीवन का निर्माण होता
है। अगर इस वीर्य शक्ति को, नष्ट होने देने के बजाय, संचय किया
जाय, तो यह सर्वोत्तम सृजन-शक्ति के रूप में परिणत हो जाती है।
और या अस्त-व्यस्त, अव्यवस्थित, अवांछनीय विचारों से भी इस
शक्ति का बराबर और अज्ञात रूप से भी क्षय होता रहता है और
चूंकि विचार ही सारी वाणी और क्रियाओं का मूल होता है, इसलिये
ये भी इसीका अनुसरण करती हैं। इसीलिए, पूर्णत नियंत्रित
विचार खुद ही सर्वोच्च प्रकार की शक्ति है। और स्वतः
क्रियाशील बन सकता है। मूकरूप में की जाने वाली हार्दिक
प्रार्थना का मुझे तो यही अर्थ मालूम पड़ता है। अगर मनुष्य ईश्वर

की मूर्ति का उपासक है, तो उसे अपने मर्यादित क्षेत्र के ...
किसी बात की इच्छा भर करने की देर है। जैसा वह ...
वैसा ही वह बन जाता है। जिस तरह चूने माल बन ...
रखने से कोई शक्ति पैदा नहीं होती, उसी प्रकार जो अपने ...
का किसी भी रूप में क्षय होने देता है, उसमें इस शक्ति ...
असम्भव है। प्रजोत्पत्ति के निश्चित उद्देश्य से न किया
जाता काम-सम्बन्ध इस शक्ति-क्षय का एक बहुत ...
है, इसलिए उसकी खास तौर से जो निन्दा की गई है, वह
ही है, लेकिन जिसे अहिंसात्मक कार्य के लिए मनुष्य ...
विशाल समूहों को संगठित करना है, उसे तो, इन्द्रियों के
पूर्ण निग्रह का मैंने ऊपर वर्णन किया है, उसको प्राप्त
प्राप्त करना ही चाहिए।

ईश्वर की कृपा के बगैर यह सम्पूर्ण इन्द्रिय-निग्रह ...
नहीं है। गीता के दूसरे अध्याय में एक श्लोक है—

"विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः,
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।"

अर्थात् जब तक उपवास किये जाते हैं, तब तक इन्द्रि...
विषयों की ओर नहीं दौड़तीं, पर अकेले उपवास से रस ...
नहीं जाते। उपवास छोड़ते ही वे और बढ़ भी सकते हैं। इ...
वश में करने के लिए तो ईश्वर का प्रसाद आवश्यक है। ...
नियमन यांत्रिक या अस्थायी नहीं है। एक बार प्राप्त हो जा...
बाद यह कभी नष्ट नहीं होता। उस हालत में वीर्य शक्ति

न सुरक्षित रहती है कि अगणित रास्तों में से किसी में होकर
ट्रों निकलने की सम्भावना ही नहीं रहती।

कहा गया है कि ऐसा ब्रह्मचर्य यदि किसी तरह प्राप्त किया जा
सका हो तो कन्दराओं में रहने वाले ही कर सकते होंगे। ब्रह्म
को तो, कहते हैं, स्त्रियों का स्पर्श तो क्या, उनका दर्शन भी
न करना चाहिए। निस्सन्देह, किसी ब्रह्मचारी को काम-वासना
किसी स्त्री को न तो छूना चाहिए, न देखना चाहिए और न
के विषय में कुछ कहना या सोचना ही चाहिए, लेकिन ब्रह्मचर्य
यक पुस्तकों में हमें यह जो वर्णन मिलता है उसमें इसके महत्व
अव्यय 'कामवासना पूर्वक' का उल्लेख नहीं मिलता। इस छूट
वजह यह मालूम पड़ती है कि ऐसे मामलों में मनुष्य निष्पक्ष
से निर्णय नहीं कर सकता और इसलिए यह नहीं कहा जा
सकता कि कब तो उस पर ऐसे सम्पर्क का असर पड़ा और कब
हीं। काम विकार अक्सर अनजाने ही उत्पन्न हो जाते हैं।
सलिए दुनिया में आजादी से सबके साथ हिलने-मिलने पर
ह्मचर्य का पालन यद्यपि कठिन है, लेकिन अगर संसार से
ता तोड़ लेने पर ही यह प्राप्त हो सकता हो तो उसका कोई
वेशाप मूल्य ही नहीं है।

जैसे भी हो, मैंने तो तीस वर्ष से भी अधिक समय से
जागृतियों के बीच रहते हुए ब्रह्मचर्य का खासी सफलता के
साथ पालन किया है। ब्रह्मचर्य का जीवन बिताने का
निश्चय कर लेने के बाद, अपनी पत्नी के साथ व्यवहार

को छोड़कर, मेरे बाह्य आचरण में कोई अन्तर नहीं पा
दक्षिण अफ्रिका में भारतीयों के बीच मुझे जो काम करना पड़ा
उसमें मैं स्त्रियों के साथ आजादी के साथ हिलता-मिलता था
ट्रांसवाल और नेटाल में शायद ही कोई ऐसी भारतीय स्त्री होगी
मैं न जानता होऊँ। मेरे लिए तो इतनी सारी बहनें और बेटि
ही थीं। मेरा ब्रह्मचर्य पुस्तकीय नहीं है। मैंने तो अपने तथा
लोगों के लिए, जोकि मेरे कहने पर इस प्रयोग में शामिल हुए
अपने ही नियम बनाये हैं और अगर मैंने इसके लिए निर्दि
निषेधों का अनुसरण नहीं किया है, तो धार्मिक साहित्य तक
स्त्रियों को जो सारी बुराई और प्रलोभन का द्वार बताया गया है
उसे मैं इतना भी नहीं मानता। मैं तो ऐसा मानता हूँ कि मुझमें
जो भी अच्छाई हो वह सब मेरी माँ की बदौलत है। इसलिए
स्त्रियों को मैंने कभी इस तरह नहीं देखा कि कामवासना की
तृप्ति के लिए ही ये बनाई गई हैं, बल्कि हमेशा उसी श्रद्धा के
साथ देखा है जो कि मैं अपनी माता के प्रति रखता हूँ। पुरुष ही
प्रलोभन देने वाला और आक्रमण करने वाला है। स्त्री के स्पर्श
से वह अपवित्र नहीं होता, बल्कि अक्सर वह खुद ही उसका
स्पर्श करने लायक पवित्र नहीं होता। लेकिन हाल में मेरे मन में प्रश्न
जरूर उठा है कि स्त्री या पुरुष के सम्पर्क में आने के लिए ब्रह्मचारी या
ब्रह्मचारिणी को किस तरह की मर्यादाओं का पालन करना चाहिए।
मैंने जो मर्यादायें रक्खी हैं वे मुझे पर्याप्त नहीं मालूम पड़ीं।
लेकिन वे क्या होनी चाहिए, यह मैं नहीं जानता। मैं तो प्रयो

रहा हूँ। इस बात का मैंने कभी दावा नहीं किया कि मैं ी परिभाषा के अनुसार पूरा ब्रह्मचारी बन गया हूँ। अब भी पने विचारों पर उतना नियंत्रण नहीं रख सकता हूँ जितने त्रण की अपनी अहिंसा की शोधों के लिए मुझे आवश्यकता लेकिन अगर मेरी अहिंसा ऐसी हो जिसका दूसरों पर असर और वह उनमें फैले, तो मुझे अपने विचारों पर और अधिक त्रण करना ही चाहिए। इस लेख के प्रारम्भिक वाक्य में ल की जिस प्रत्यक्ष असफलता का उल्लेख किया गया है, का कारण शायद कहीं-न-कहीं किसी कमी का रह जाना है।

अहिंसा में मेरा विश्वास हमेशा की तरह दृढ़ है। मुझे इस त का पूरा विश्वास है कि इससे न केवल हमारे देश की ही री आवश्यकताओं की पूर्ति होनी चाहिए, बल्कि अगर ठीक ह से इसका पालन किया जाय तो यह उस खूनखराबी को भी क सकती है, जो हिन्दुस्तान के बाहर हो रही है और सारे श्चिमी संसार में जिसके व्याप्त हो जाने का अन्देशा है।

मेरी आकांक्षा तो मर्यादित है। परमेश्वर ने मुझे इतनी शक्ति हीं दी है, जो अहिंसा के पथ पर सारी दुनिया की रहनुमाई करूँ, लेकिन मैंने यह कल्पना जरूर की है कि हिन्दुस्तान की अनेक राइयों के निवारणार्थ अहिंसा का प्रयोग करने के लिए उसने मुझे अपना औज़ार बनाया है। इस दिशा में अभी तक जो प्रगति हो चुकी है, वह महान् है, लेकिन अभी बहुत-कुछ करना

बाक़ी है। इतने पर भी मुझे ऐसा लगता है कि इसके लिए ज
तौर पर कॉंग्रेसवादियों की जो सहानुभूति आवश्यक है उसे प्र
माने की शक्ति मुझ में नहीं रही है। जो अपने औजारों को
बुरा बतलाता रहता है वह कोई अच्छा बढ़ई नहीं है। यह
'नाच न आवे, आँगन टेढ़ा' की मसल होगी। इसी तरह बि
हुए कामों के लिए अपने आदमियों को दोष देने वाला सेना
भी अच्छा नहीं कहा जा सकता पर मैं यह जानता हूँ कि मैं
सेनापति नहीं हूँ। अपनी मर्यादाओं को जानने की जितनी बु
मुझमें मौजूद है अगर कभी उसका मेरे अन्दर दिवाला नि
जाय तो ईश्वर मुझे इतनी शक्ति देगा कि मैं उसकी स्पष्ट घो
कर दूँगा।

उसकी कृपा से मैं कोई आधी सदी से जो काम कर रहा
अगर उसके लिए मेरी और ज़रूरत न रही, तो शायद वह
उठा लेगा, लेकिन मेरा खयाल है कि मेरे करने को अभी काफ़ी क
है। जो अन्धकार मेरे ऊपर छा गया मालूम पड़ता है, वह न
जायगा, और स्पष्टतया अहिंसात्मक साधनों से भारत अपने ल
को पहुँच जायगा—फिर इसके लिए चाहे डाँडी-कूच से भी ज़्या
उग्र लड़ाई लड़नी पड़े या उसके बगैर ही ऐसा हो जाय।
ईश्वर से उस प्रकाश की याचना कर रहा हूँ जो अन्धकार
नाश कर देगा। अहिंसा में जिनकी जीवित श्रद्धा हो उन्हें इ
मेरा साथ देना चाहिए।

ह० से० २३-७-३८

३०

उसकी कृपा बिना कुछ नहीं

र डाक्टरों और अपने आप जेलर बनने वाले सरदार वल्लभ
ई तथा जमनालाल जी की कृपा से मैं फिर पाठकों के सम्पर्क
आने के क़ाबिल हो गया हूँ, हालाँकि है यह परीक्षण के तौर
और एक निश्चित सीमा तक ही। इन लोगों ने मेरी स्वतंत्रता
यह बन्धन लगा दिया है और मैंने उसे स्वीकार भी कर लिया
कि फ़िलहाल मैं 'हरिजन' में उससे अधिक किसी हालत में
हीं लिखूँगा जोकि मुझे बहुत जरूरी मालूम पड़े, और यह भी
ला ही कि जिसके लिखने में प्रति सप्ताह कुछ घँटे से अधिक
मय न लगे। सिवा उनके कि जिनके साथ मैंने अभी से लिखा
ी शुरू कर दी है, और किसी की निजी समस्याओं या घरेलू
ठिनाइयों के बारे में मैं निजी पत्र-व्यवहार नहीं करूँगा, और न
मैं किसी सार्वजनिक कार्यक्रम को स्वीकार करूँगा, न किसी
र्वजनिक सभा में भाषण दूँगा या उपस्थित ही होऊँगा। सोने,
ल-अहलाव, मिहनत और भोजन के बारे में भी निश्चित रूप
निर्देश कर दिये गये हैं, लेकिन उनके वर्णन की कोई जरूरत
ीं, क्योंकि उनसे पाठकों का कोई सम्बन्ध नहीं है। मुझे आशा
कि इन हिदायतों का पालन करने में 'हरिजन' के पाठक तथा
वाद-दाता लोग मेरे और महादेव भाई के साथ, जिनके जिम्मे सब
-व्यवहार को भुगताने का काम होगा, पूरा सहयोग करेंगे।

मेरी बीमारी के मूल और उसके लिए किये जाने वाले उप
की कुछ बात पाठकों के लिए अवश्य रुचिकर होगी। जहाँ
मैंने अपने डाक्टरों को समझा है, मेरे शरीर का बहुत सावधा
और सिरदर्दी के साथ निरीक्षण करने पर भी उन्हें मेरे शरीर
अवयवों में कोई खराबी नहीं मिली। उनकी राय में
सम्भवतः 'प्रोटीन' और 'कारबोहाइड्रेट्स' कीक भी, जोकि
और निशास्ते के द्वारा प्राप्त होती है, और बहुत दिनों
रोजमर्रा के सार्वजनिक काम-काज के अलावा लगातार
लम्बे समय तक परेशान कर देने वाली विविध निजी समस्या
में उलझे रहने से यह बीमारी हुई थी। जहाँतक मुझे याद
है, पिछले बारह महीने या इससे भी अधिक समय से मैं इस
को बराबर कहता आ रहा था कि लगातार बढ़ते जानेवाले
की तादाद में अगर कमी न हुई तो मेरा बीमार पड़
निश्चित है। इसलिए, जब बीमारी आई, तो मेरे लिए यह
बात नहीं थी। और बहुत सम्भव है कि दुनिया में इसका
ढिंढोरा ही न पिटता, अगर एक मित्र की जरूरत से
चिन्ता सामने न आती, जिन्होंने कि मेरे स्वास्थ्य को गिरता
कर जमनालालजी को सनसनीदार रुक्का भेज दिया।
जमनालालजी ने यह खबर पाते ही उन सब होशियार डा
को बुला लिया जोकि वर्धा में मिल सकते थे, और विशेष
यता के लिए नागपुर व बम्बई भी खबर भेज दी।

जिस दिन मैं बीमार पड़ा, उस दिन सवेरे ही मुझे

ग्नी मिल गई थी। जैसे ही मैं सोकर उठा, मुझे अपनी गर्दन
ास एक खास तरह का दर्द मालूम पड़ा, लेकिन मैंने
पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया और किसीसे कुछ नहीं कहा।
-भर में अपना काम करता रहा। शाम की हवाखोरी के वक्त
मैं एक मित्र के साथ बातें कर रहा था तो मुझे बहुत थका
मालूम पड़ने लगी और मैं बहुत गम्भीर हो गया। मेरे स्नायु
से पहले पखवाड़े में ऐसी समस्याओं के सोच विचार में पहले ही
ी ढीले पड़ चुके थे, जो कि मेरे लिए मानों स्वराज्य के सव-
ल प्रश्न की ही तरह महत्वपूर्ण थीं।

मेरी बीमारी को अगर इतना तूल न दिया गया होता तो भी
निश्चित चेतावनी प्रकृति मुझे दे रही थी, उसपर मुझे ध्यान
पड़ता और मैंने अपने को थोड़ा आराम देकर उस कठिनाई
हल करने की कोशिश की होती, लेकिन जो कुछ हो गया
पर नजर डालने से मुझे ऐसा मालूम पड़ता है कि जो कुछ
ा वह ठीक ही हुआ। डाक्टरों ने जो असाधारण सावधानी
ने की सलाह दी और उन्हीं के समान असाधारण रूप से उक्त
ों जेलरों ने जो देख भाल रक्खी उसके कारण मजबूरन मुझे
ाम करना पड़ा, जो वैसे मैं कभी न करता, और उससे मुझे
त्म-निरीक्षण का काफी समय मिल गया। इसलिए इससे मुझे
रुय का लाभ ही नहीं हुआ, बल्कि आत्म-निरीक्षण से मुझे
मी मालूम हुआ कि गीता का जो अर्थ मैं समझा हूँ उसका
न करने में मैं कितनी गलती कर रहा हूँ। मुझे पता लगा कि

जो विविध समस्यायें हमारे सामने उपस्थित हैं, उनकी कार्य
राई में मैं नहीं पहुँचा हूँ। यह स्पष्ट है कि उनमें से अनेक
हृदय पर असर डाला है और मैंने उन्हें, अपनी भावुकता
प्रेरित करके, अपने स्नायुओं पर जोर डालने दिया है।
शास्त्रों में कहूँ तो गीता के भक्त को उनके प्रति जैसा अनासक्त
चाहिए वैसा मेरा मन या शरीर नहीं रहा है। सचमुच मेरा
विश्वास है कि जो व्यक्ति प्रकृति के आदेश का पूर्णत: अनुस
करता है उसके मन में बुढ़ापे का भाव कभी आना ही नहीं चाहि
ऐसा व्यक्ति तो अपने मन में अपने को सदा तरोताजा
नौजवान ही महसूस करेगा और जब उसके मरने का समय आ
तो उसी तरह मरेगा जैसे किसी मजबूत वृक्ष के पत्ते गिरते हैं
भीष्म पितामह ने मृत्यु शैया पर पड़े हुए भी युधिष्ठिर को
उपदेश दिया, मेरी समझ में, उसका यही अर्थ है। डाक्टर स
मुझे यह चेतावनी देते कभी नहीं थकते थे कि हमारे आस-पा
जो घटनायें हो रही हैं, उनसे मुझे उत्तेजित हर्गिज नहीं हो
चाहिए। कोई दु:खद या उत्तेजक घटना अथवा समाचार
सामने न आये, इसकी भी खासतौर पर सावधानी रख
गई। यद्यपि मेरा खयाल है कि मैं गीता का उतना पू
अनुयायी नहीं हूँ, जैसाकि इस सावधानी की कारवाई से मालू
पड़ता है, लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि उनकी हिदायतों में स
अवश्य था, क्योंकि मगनवाड़ी से महिलाश्रम जाने की समन
लाल जी की बात मैंने कितनी अनिच्छा से कबूल की, यह मु

क्रम है। जो भी हो, उन्हें यह विश्वास नहीं रहा कि अनासक्त हालत से मैं कोई काम कर सकता हूँ। मेरा बीमार पड़ जाना उनके लिए इस बात का बड़ा भारी प्रमाण था कि अनासक्ति की मेरी जो ख्याति है, वह थोथी है, और इसमें मुझे अपना दोष स्वीकार करना ही पड़ेगा।

लेकिन अभी तो इससे भी अधिक बुरा होने को बाक़ी था। १९०६ से मैं, जान-बूझ कर और निश्चय के साथ, बराबर ब्रह्मचर्य का पालन करने की कोशिश करता रहा हूँ। मेरी व्याख्या के अनुसार, इसमें न केवल शरीर की, बल्कि मन और वचन की पवित्रता भी शामिल है। और सिवा उस अपवाद के, जिसे कि मानसिक स्खलन कहना चाहिए, अपने ३६ वर्ष से अधिक समय के सतत एव जागरूक प्रयत्न के बीच, मुझे याद नहीं पड़ता कि कभी भी मेरे मन में इस सम्बन्ध में ऐसी बेचैनी पैदा हुई हो, जैसी कि इस बीमारी के समय मुझे महसूस हुई। यहाँतक कि मुझे अपने से निराशा होने लगी, लेकिन जैसे ही मेरे मन में ऐसी भावना उठी मैंने अपने परिचारकों और डाक्टरों को उससे अवगत कर दिया, लेकिन वे मेरी कोई मदद नहीं कर सके। मैंने उनसे आशा भी नहीं की थी। अलबत्ता इस अनुभव के बाद मैंने उस आराम में ढिलाई कर दी, जोकि मुझपर लादा गया था। और अपने इस बुरे अनुभव को स्वीकार कर लेने से मुझे बड़ी मदद मिली। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानों मेरे ऊपर से बड़ा भारी बोझ हट गया और कोई हानि हो सकने से पहले ही मैं

सम्हल गया, लेकिन गीता का उपदेश तो स्पष्ट और [illegible]
है। जिसका मन एक बार ईश्वर में लग जाय वह कोई पा[illegible]
कर सकता। मैं उससे कितना दूर हूँ, यह तो वही जान[illegible]
ईश्वर को धन्यवाद है कि अपने महात्मापन की प्रसिद्धि स [illegible]
धोखे में नहीं पड़ा हूँ, लेकिन इस जबर्दस्ती के विश्राम ने मु[illegible]
इतना विनम्र बना दिया है, जितना मैं पहले कभी नहीं था। [illegible]
अपनी मर्यादाएं और अपूर्णताएं भली-भाँति मेरे सामने [illegible]
हैं, लेकिन उनके लिए मैं उतना लज्जित नहीं हूँ जितना कि [illegible]
साधारण से उनको छिपाने में होता। गीता के सन्देश में स[illegible]
तरह आज भी मेरा वैसा ही विश्वास है। उस विश्वास को [illegible]
सुन्दर रूप में परिणत करने के लिए कि जिससे गिरावट का [illegible]
भय ही न हो, लगातार अथक प्रयत्न की आवश्यकता है, ले[illegible]
उसी गीता में साथ-साथ असंदिग्ध रूप से यह भी कहा हुआ [illegible]
कि ईश्वरीय अनुग्रह के बिना वह स्थिति ही प्राप्त नहीं हो सक[illegible]
अगर विधाता ने इतनी गुँजाइश न रक्खी होती तो हमारे [illegible]
पैर ही फूल गये होते और हम अकर्मण्य होगये होते।

ह० से० २६-२-३६

३१

विद्यार्थियों के लिए लज्जाजनक

पंजाब के एक कालेज की लड़की का एक अत्यन्त हृदयस्[illegible]
पत्र क़रीबन दो महीने से मेरी फ़ायल में पड़ा हुआ है। इस ल[illegible]

प्रश्न का जवाब जो अभी तक नहीं दिया इसमें समय के अभाव का तो केवल एक बहाना था। किसी न किसी तरह इस काम से अपने को मैं बचा रहा था, हालाँकि मैं यह जानता था कि इस प्रश्न का क्या जवाब देना चाहिए। इस बीच में मुझे एक और पत्र मिला। यह पत्र एक ऐसी बहन का लिखा हुआ है, जो अनुभव रखती है। मुझे ऐसा महसूस हुआ कि कालेज की इस लड़की की जो यह बहुत वास्तविक कठिनाई है, उसका व्यवस्था करना मेरा कर्त्तव्य है, और इसकी अब मैं और अधिक दिनों तक उपेक्षा नहीं कर सकता। पत्र उसने शुद्ध हिन्दुस्तानी में लिखा है, जिसका एक भाग मैं नीचे उद्धृत कर रहा हूँ—

"लड़कियों और वयस्क स्त्रियों के सामने, उनकी इच्छा के विरुद्ध, ऐसे अवसर आ जाया करते हैं, जबकि उन्हें अकेली जाने की हिम्मत करनी पड़ती है—या तो उन्हें एक ही शहर में एक जगह से दूसरी जगह जाना होता है या एक शहर से दूसरे शहर को। और जब वे इस तरह अकेली होती हैं, तब गन्दी मनोवृत्तिवाले लोग उन्हें तंग किया करते हैं। वे उस वक्त अनुचित और अश्लील भाषा तक का उपयोग करते हैं। और अगर भय उन्हें रोकता नहीं है, तो इससे भी आगे बढ़ने में उन्हें कोई हिचकिचाहट नहीं होती। मैं यह जानना चाहती हूँ कि ऐसे मौक़ों पर अहिंसा क्या काम दे सकती है? हिंसा का उपयोग तो है ही। अगर किसी लड़की या स्त्री में काफी हिम्मत हो तो उस के पास जो भी साधन होंगे उन्हें वह काम में लायगी और एक बार

बदमाशों को सबक़ सिखा देगी। वे कम से-कम हंगामा तो मचा सकती हैं जिससे कि लोगों का ध्यान आकर्षित हो जाय और गुण्डे वहाँ से भाग जायें। लेकिन मैं यह जानती हूँ कि इसके परिणाम-स्वरूप विपत्ति सिर्फ टल जायगी, यह कोई स्थायी इलाज नहीं है। अशिष्ट व्यवहार करनेवाले लोगों का अगर आपको पता है तो मुझे विश्वास है कि उन्हें अगर समझाया जाय, तो वे आपकी प्रेम और नम्रता की बातें सुनेंगे। पर उस आदमी के लिए आप क्या कहेंगे, जो साईकिल पर चढ़ा हुआ किसी लड़की या स्त्री को देखकर, जिसके साथ कि कोई मर्द साथी नहीं है, गंदी भाषा का प्रयोग करता है? उसे दलील देकर समझाने का आपको मौक़ा नहीं है। आपके उससे फिर मिलने की कोई सम्भावना नहीं हो सकता है आप उसे पहचानें भी नहीं। आप उसका पता भी नहीं जानते। ऐसी परिस्थिति में यह बेचारी लड़की या स्त्री क्या करे? मैं अपना ही उदाहरण देकर आपको अपना अनुभव बताती हूँ। २६ अक्तूबर की रात की बात है। मैं अपनी एक सहेली के साथ ७-३० बजे के क़रीब एक ख़ास काम से जा रही थी। उस वक्त किसी मर्द साथी को साथ ले जाना नामुमकिन था, और काम इतना ज़रूरी था कि टाला नहीं जा सकता था। रास्ते में एक सिक्ख युवक साईकिल पर जा रहा था। वह कुछ गुनगुनाता जाता था। जबतक कि हम सुन सकें उसने गुनगुनाना जारी रक्खा। हमें यह मालूम था कि वह हमें लक्ष्य करके ही गुनगुना रहा है। हमें उसकी यह हरकत बहुत नागवार मालूम हुई। सड़क

ई कोई चहल-पहल नहीं थी। हमारे चन्द क़दम जाने से पहले
-लौट पड़ा। हम उसे फ़ौरन पहचान गए, हालाँकि वह अब
क़दमस खासे फ़ासले पर था। उसने हमारी तरफ़ साईकिल
दी। ईश्वर जाने, उनका इरादा उतरने का था, या यूँ ही हमारे
से सिर्फ़ गुज़रने का। हमें ऐसा लगा कि हम खतरे में हैं।
अपनी शारीरिक बहादुरी में विश्वास नहीं था। मैं एक
सत लड़की के मुकाबले शरीर से कमज़ोर हूँ, लेकिन मेरे
में एक बड़ी-सी किताब थी। यकायक किसी तरह मेरे
दर हिम्मत आगई। साईकिल की तरफ मैंने उस किताब को
र से मारा, और चिल्लाकर कहा, "चुहलबाजी करने की तू
र हिम्मत करेगा?" वह मुश्किल से अपने को सभाल सका,
र साइकिल की रफ़्तार बढ़ाकर वहाँ से रफ़ूचक्कर होगया।
न अगर मैंने उसकी साईकिल की तरफ किताब ज़ोर से न
ी होती, तो वह अन्त तक इसी तरह अपनी गन्दी भाषा से
ं तंग करता जाता। यह तो एक मामूली, बल्कि नगण्य-सी
ना है, पर मैं चाहती हूँ कि आप लाहौर आते और हम हत
गिनी लड़कियों की मुसीबतों की दास्तान खुद अपने कानों
त। आप निश्चय ही इस समस्या का ठीक-ठीक हल ढूँढ़
कते हैं। सबसे पहले आप मुझे यह बतायें कि ऊपर जिन
रिस्थितियों का मैंने बयान किया है उनमें लड़कियाँ अहिंसा के
द्धान्त का प्रयोग किस तरह कर सकती हैं, और कैसे अपने
प को बचा सकती हैं? दूसरे स्त्रियों को अपमानित करने की

जिन युवकों को यह बहुत बुरी आदत पड़ गई है, उनका सुर
का क्या उपाय है ? आप यह उपाय न सुझाइएगा कि हमें
नई पीढ़ी के आने तक इन्तज़ार करना चाहिए और तबतक
इस अपमान को चुपचाप बर्दाश्त करती रहें, जिस पीढ़ी ने
बचपन से ही स्त्रियों के साथ भद्रोचित व्यवहार करने की शि
पाई होगी। सरकार की या तो इस सामाजिक बुराई का
विला करने की इच्छा नहीं या ऐसा करने में वह असमर्थ
और हमारे बड़े-बड़े नेताओं के पास ऐसे प्रश्नों के लिए
नहीं। कुछ जब यह सुनते हैं कि किसी लड़की ने अशिष्ट
पेश आने वाले नवयुवकों की अच्छी तरह से मरम्मत
दी है, तो कहते हैं, "शाबाश, ऐसा ही सब लड़कियों को
चाहिए।" कभी-कभी किसी नेता को हम विद्यार्थियों के
दुर्व्यवहार के खिलाफ धुआँधार भाषण करते हुए पाते हैं,
ऐसा कोई नज़र नहीं आता, जो इस गम्भीर समस्या का
निकालने में निरन्तर प्रयत्नशील हो। आपको यह जानकर
और आश्चर्य होगा कि दीवाली और ऐसे ही दूसरे त्योहारों
अखबारों में इस किस्म की चेतावनी की नोटिसें निकला कर
कि रोशनी देखने तक के लिए औरतों को घरों से बाहर
निकलना चाहिए। इसी तरह एक बात से आप जान सक
कि दुनिया के इस हिस्से में हम किस क़दर मुसीबतों में
हुए हैं। ऐसे-ऐसे नोटिसों को जो लिखते हैं, न तो व ही
शर्म खाते हैं और न पढ़ने वाले ही कि ऐसी चेतावनियों

निकालनी चाहिए ?"

एक दूसरी पंजाबी लड़की को मैंने यह पत्र पढ़ने के लिए
या। उसने भी अपने कालेज जीवन के निजी अनुभव के
गार पर इस घटना का समर्थन किया। उसने मुझे बताया कि
सवाददाता ने जो-कुछ लिखा है, बहुत-सी लड़कियों का अनु-
वैसा ही होता है।

एक और अनुभवी महिला ने लखनऊ की अपनी विद्यार्थिनी
यों के अनुभव लिखे हैं। सिनेमा थियेटरों में उनकी पिछली
न में बैठे हुए लड़के उन्हें दिक करते हैं, उनके लिए ऐसी भाषा
प्रयोग करते हैं, जिसे मैं अश्लील के सिवा और कोई नाम
ीं दे सकता। उन लड़कियों के साथ किये जाने वाले भद्दे
ाक भी पत्र-लेखिका ने मुझे लिखे हैं, लेकिन मैं उन्हें यहाँ
दुधृत नहीं कर सकता।

अगर सिर्फ तात्कालिक निजी रक्षा का सवाल हो तो इसमें
न्देह नहीं कि उस लड़की ने, जो अपने को शारीरिक दृष्टि से
मज़ोर बताती है, जो इलाज—साईकिल के सवार पर ज़ोर से
त्मान मार कर—किया, वह बिल्कुल ठीक है। यह बहुत पुराना
लाज है। मैं 'हरिजन' में पहले भी लिख चुका हूँ कि यदि कोई
यक्ति ज़बर्दस्ती करने पर उतारू होना चाहता है तो उसके रास्ते
ं शारीरिक कमज़ोरी भी रुकावट नहीं डालती, भले ही उसके
ाबिले में शारीरिक दृष्टि से कोई बहुत बलवान विरोधी हो।
ौर हम यह भली-भाँति जानते हैं कि आजकल तो जिस्मानी

ताक़त इस्तेमाल करने के इतने ज्यादा तरीके इजाद ह... कि एक छोटी, लेकिन काफी समझदार लड़की किसी ... और विनाश तक कर सकती है। जिस परिस्थिति का जिक्र ... लेखिका न किया है, वैसी परिस्थितियों में लड़कियों का ... रक्षा के तरीके सिखाने का रिवाज आजकल बढ़ रहा है ... यह लड़की यह भी खूब समझती है कि भले ही वह ... आत्म-रक्षा के हथियार के तौर पर अपने हाथ की किताब ... कर बच गई हो, लेकिन इस बढ़ती हुई बुराई का यह कोई ... इलाज नहीं है। भद्दे अश्लील मजाक के कारण बहुत घबरा... डर जाने की जरूरत नहीं, लेकिन इनकी ओर से आँख मूँद ... भी ठीक नहीं। ऐसे सब मामले अखबारों में छपा देने चाहि... ठीक ठीक मालूम होने पर शरारतियों के नाम भी अखबारों ... छप जाने चाहिए। इस बुराई का भण्डाफोड़ करने में किसी ... झूठा लिहाज नहीं करना चाहिए। इस सार्वजनिक बुराई के ... प्रबल लोक-मत जैसा कोई अच्छा इलाज नहीं है। इसमें ... शक नहीं कि इन मामलों को जनता बहुत उदासीनता से ... है, लेकिन सिर्फ जनता को ही क्यों दोष दिया जाय? ... सामने ऐसे गुस्ताखी के मामले भी तो आने चाहिए। चोरी ... मामलों तक के लिए जब पता लगा कर छापा जाता है, तब ... जाकर चोरी कम होती है। इसी तरह जब तक ऐसे मामले ... दबाये जाते रहेंगे, इस बुराई का इलाज नहीं हो सकता। ... और बुराई भी अपने शिकार के लिए अन्धकार चाहते हैं। ...

...पर रोशनी पड़ती है, वे खुद-ब-खुद खत्म हो जाते हैं।
... लेकिन मुझे यह भी डर है कि आजकल की लड़की को भी
... अनेकों की दृष्टि में आकर्षक बनना प्रिय है। वह अति साहस
... पसन्द करती है। आजकल की लड़की वर्षा या धूप से बचने के
... य से नहीं, बल्कि लोगों का ध्यान अपनी ओर खींचने के लिए
... इस तरह के भड़कीले कपड़े पहनती है। वह अपने को रंग कर
... रत को भी मात करना और असाधारण सुन्दर दिखाना चाहती
... ऐसी लड़कियों के लिए कोई अहिंसात्मक मार्ग नहीं है। मैं
... पृष्ठों में बहुत बार लिख चुका हूँ कि हमारे हृदय में अहिंसा
... भावना के विकास के लिए भी कुछ निश्चित नियम होते हैं।
... हिंसा की भावना बहुत महान् प्रयत्न है। विचार और जीवन के
... रीके में यह क्रान्ति उत्पन्न कर देता है। यदि मेरी पत्र-लेखिका
... र उस तरह के-से विचार रखने वाली लड़कियाँ ऊपर बताये गये
... रीके से अपने जीवन को बिल्कुल ही बदल डालें, तो उन्हें जल्दी
... यह अनुभव होने लगेगा कि उनके सम्पर्क में आनेवाले नौजवान
... नका आदर करना तथा उनकी उपस्थिति में भद्रोचित व्यवहार
... रना सीखने लगे हैं, लेकिन यदि उन्हें मालूम होने लगे कि
... नकी लाज और धर्म पर हमला होने का खतरा है, तो उनमें
... स पशु-मनुष्य के आगे आत्म-समर्पण करने के बजाय मर जाने
... का साहस होना चाहिए। कहा जाता है कि कभी-कभी लड़की
... को इस तरह बाँध कर या मुँह में कपड़ा ठूँस कर विवश कर दिया
... जाता है कि वह आसानी से मर भी नहीं सकती, जैसी कि मैंने

सलाह दी है, लेकिन मैं फिर भी जोरों के साथ यह कहता हूँ
जिस लड़की में मुकाबले का दृढ़ संकल्प है, वह उस पर
बनाने के लिये बाँधे गये सब बन्धनों को तोड़ सकती है। उ
सकल्प उसे मरने की शक्ति दे सकता है।

लेकिन यह साहस और यह दिलेरी उन्हीं के लिए सम्भव
जिन्होंने इसका अभ्यास कर लिया है। जिसका अहिंसा पर
विश्वास नहीं है, उन्हें रक्षा के साधारण तरीके सीख कर
युवकों के अश्लील व्यवहार से अपना बचाव करना चाहिए।

पर बड़ा सवाल तो यह है कि युवक साधारण शिष्टाचार
क्यों छोड़ दें, जिससे भली लड़कियों को हमेशा उनसे
जाने का डर लगता रहे ? मुझे यह जान कर दुःख होता है
ज्यादातर नौजवानों में बहादुरी का जरा भी माद्दा नहीं
लेकिन उनमें एक वर्ग के नाते नामवर होने की बाद पैदा
चाहिए। उन्हें अपने साथियों में होने वाली प्रत्येक ऐसी बात
की जाँच करनी चाहिए। उन्हें हर एक स्त्री का अपनी माँ
बहिन की तरह आदर करना सीखना चाहिए। यदि वे शिष्ट
नहीं सीखते, तो उनकी बाकी सारी लिखाई पढ़ाई फ़जूल है।

और क्या यह प्रोफेसरों व स्कूल-मास्टरों का फ़र्ज़ न
कि वे लोगों के सामने जैसे अपने विद्यार्थियों की पढ़ाई के
जिम्मेवार होते हैं उसी तरह उनके शिष्टाचार और सदाचा
लिए भी उनको पूरी तसल्ली दें ?

ह० से० ३१।१२।३८

३२

आजकल की लड़कियां

ग्यारह लड़कियों की ओर से लिखा हुआ एक पत्र मुझे मिला
उनके नाम और पते भी मुझे भेजे गये हैं। उसमें ऐसे हेर
करके जिससे उसके मतलब में तो कोई तब्दीली न हो, पर
पढ़ने में अधिक अच्छा हो जाय, मैं उसे यहाँ देता हूँ—
'एक लड़की की 'आत्म-रक्षा कैसे करें?' शीर्षक शिकायत पर,
३१ दिसम्बर १९३८ के 'हरिजन' में प्रकाशित हुई है, आपने
टीका-टिप्पणी की वह विशेष ध्यान देने के लायक है। आधु
यानी आजकल की लड़की ने आपको इस हद तक उत्तेजित
दिया मालूम पड़ता है कि अन्त में आपने उसे अनेकों की दृष्टि
आकर्षक बनने की शौक़ीन बतला डाला है। इससे स्त्रियों के
आपके जिस विचार का पता लगता है वह बहुत स्फूर्तिदायक
है।

इन दिनों जबकि पुरुषों की मदद करने और जीवन के भार
बराबरी का हिस्सा लेने के लिए स्त्रियाँ बन्द दरवाजों से बाहर
रही हैं, यह निस्सन्देह आश्चर्य की ही बात है कि पुरुषों द्वारा
के साथ दुर्व्यवहार किये जाने पर अभी भी उन्हें ही दोष दिया
है। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि ऐसे उदा-
दिये जा सकते हैं जिनमें दोनों का क़सूर बराबर हो। कुछ
कियाँ ऐसी हो सकती हैं जिन्हें अनेकों की दृष्टि में आकर्षक

बनना प्रिय हो, लेकिन उस हालत में यह भी मानना होगा कि ऐसे पुरुष भी हैं जो ऐसी लड़कियों की टोह में गली-गली फिरते रहते हैं। और यह तो हर्गिज नहीं माना जा सकता मानना चाहिए कि आजकल की सभी लड़कियाँ इस तरह की दृष्टि में आकर्षक बनने की ही शौक़ीन हैं या आजकल के युवक सब उनकी टोह में फिरने वाले ही हैं। आप खुद आज की काफ़ी लड़कियों के सम्पर्क में आये हैं और उनके बल बलिदान एवं स्त्रियोचित अन्य गुणों का आप पर असर पड़ा होगा।

आपको पत्र लिखनेवाली ने जैसे बदचलन आदमियों जिक्र किया है उनके खिलाफ़ लोकमत तैयार करने का सवाल है, यह करना लड़कियों का काम नहीं है। यह शर्म के लिहाज से नहीं, बल्कि उसके असर के लिहाज कहती हूँ।

लेकिन संसार-भर में जिसकी इज़्ज़त है ऐसे आदमी की ऐसी बात कही जाने से एक बार फिर उसी पुरानी और लोकोक्ति की पैरवी की जाती मालूम पड़ती है कि 'स्त्री नर द्वार है।'

इस कथन से यह न समझिए कि आजकल की लड़ आपकी इज़्ज़त नहीं करतीं। नवयुवकों की तरह ही वे भी सम्मान करती हैं। उन्हें तो सबसे बड़ी यही शिकायत है कि नफ़रत या दया की दृष्टि से क्यों देखा जाय। उनके तौर-त

सचमुच दोषपूर्ण हों तो वे उन्हें सुधारने के लिए तैयार हैं,
' उनकी मलामत करने से पहले उनके दोष को अच्छी तरह
कर देना चाहिए। इस सम्बन्ध में वे न तो स्त्रियों के प्रति
। की झूठी भावना की छाया का ही सहारा लेना चाहती
वे न्यायधीश द्वारा मनमाने तौर पर अपनी निन्दा की जाने
चाप बर्दाश्त करने के लिए ही तैयार हैं। सचाई का
। तो करना ही चाहिए, आजकल की लड़की में, जिसे कि
कथनानुसार अनेकों की दृष्टि में आकर्षक बनना प्रिय
सका मुकाबिला करने जितना साहस पर्याप्त रूप में
न है।"

के पत्र भेजने वालियों को शायद यह पता नहीं है कि चालीस
से ज्यादा हुए तब दक्षिण अफ्रीका में मैंने भारतीय स्त्रियों
ा का कार्य करना शुरू किया था, जबकि इनमें से किसी का
जन्म भी न हुआ होगा। मैं तो ऐसा कुछ लिख ही नहीं
जो नारीत्व के लिए अपमानजनक हो। स्त्रियों के प्रति
की भावना मेरे अन्दर इतनी ज्यादा है कि मैं उनकी बुराई
चार ही नहीं कर सकता। स्त्रियाँ तो, जैसाकि अंग्रेजी में
श गया है, हमारा सुन्दरार्द्ध हैं। फिर मैंने जो लेख लिखा
चार्थियों की निर्लज्जता पर प्रकाश डालने के लिए था,
यों की कमजोरियों का ढोल पीटने के लिए नहीं। अलबत्ता
ा निदान बतलाने के लिए, अगर मुझे उसका ठीक इलाज
ा हो तो, मुझे उन सब बातों का उल्लेख करना लाजिमी

नहीं करता। यह सच है। इसका कारण देखने पर मालूम होगा
पशु अपनी जिह्वेन्द्रिय पर पूरा-पूरा निग्रह रखते हैं—इच्छा
नहीं, स्वभावत: ही। केवल चारे पर अपनी गुजर करते हैं—
भी महज पेट भरने लायक ही खाते हैं। वे जिन्दा
लिए खाते हैं, खाने के लिए जीते नहीं हैं, पर हम तो
बिलकुल विपरीत हैं। माँ बच्चे को तरह-तरह के सुस्वादु
कराती है। वह मानती है कि बालक के साथ प्रेम दिखाने
यही सर्वोत्तम रास्ता है। ऐसा करते हुए हम उन चीजों में
डालते नहीं, बल्कि ले लेते हैं। स्वाद तो रहता है भूख में।
के वक्त सूखी रोटी भी मीठी लगती है और बिना भूख
को लड्डू भी फीके और अस्वादु मालूम होंगे, पर हम तो
चीजों को खा-खाकर पेट को ठसाठस भरते हैं और फिर
कि ब्रह्मचर्य का पालन नहीं हो पाता। जो आँखें ईश्वर
देखने के लिए दी हैं उनको हम मलिन करते हैं और देख
वस्तुओं को देखना नहीं सीखते। 'माता को क्यों गायत्री न
चाहिए और बालकों को यह क्यों गायत्री न सिखावे ?'
छानबीन करने की अपेक्षा उसके तत्त्व—सूर्योपासना—को
कर सूर्योपासना कराये तो क्या अच्छा हो। सूर्य की उपास
सनातनी और आर्यसमाजी दोनों कर सकते हैं। यह तो मैंने
अर्थ आपके सामने उपस्थित किया है। इस उपासना के
क्या हैं ? अपना सिर ऊँचा रखकर, सूर्य नारायण के दर्शन
आँख की शुद्धि करना। गायत्री के रचयिता ऋषि थे, द्र

ने कहा कि सूर्योदय में जो नाटक है, जो सौन्दर्य है, जो लीला
ह और कहीं नहीं दिखाई दे सकती। ईश्वर के जैसा सुन्दर
धार अन्यत्र नहीं मिल सकता और आकाश से बढ़कर भव्य
भूमि कहीं नहीं मिल सकती। पर कौन माता आज बालक
आँखें धोकर उसे आकाश-दर्शन कराती है? बल्कि माता के
में तो अनेक प्रपंच रहते हैं। बड़े-बड़े घरों में जो शिक्षा
ती है उसके फल-स्वरूप तो लड़का शायद बड़ा अधिकारी
ा, पर इस बात का कौन विचार करता है कि घर में जाने
ने जो शिक्षा बच्चों को मिलती है उससे कितनी बातें वह
ण कर लेता है। माँ-बाप हमारे शरीर को ढँकते हैं, सजाते हैं,
इससे कहीं शोभा बढ़ सकती है? कपड़े बदन को ढकने के लिए
सर्दी-गर्मी से रक्षा करने के लिए हैं, सजाने के लिए नहीं। जाड़े
ठिठुरते हुए लड़के को जब हम अंगीठी के पास धकेलेंगे, अथवा
ल में खेलने-कूदने भेज देंगे, अथवा खेत में काम पर
ह देंगे, तभी उसका शरीर वज्र की तरह होगा। जिसने
चर्य का पालन किया है उसका शरीर वज्र की तरह जरूर
ा चाहिए। हम तो बच्चों के शरीर का नाश कर डालते हैं।
उसे जो घर में रखकर गरमाना चाहते हैं उससे तो उसकी
ड़ी में इस तरह की गरमी आती है जिसे हम छाजन की
मा दे सकते हैं। हमने शरीर को दुलरा कर उसे बिगाड़
ता है।

यह तो हुई कपड़े की बात। फिर घर में तरह-तरह की बातें

करके हम उनके मन पर बुरा प्रभाव डालते हैं। उनकी रु
बातें किया करते हैं, और इसी किस्म की चीजें और रास्ते
दिखाये जाते हैं। मुझे तो आश्चर्य होता है कि हम मर्द
ही क्यों न हो गये ? मर्यादा तोड़ने के अनेक साधनों
हुए भी मर्यादा की रक्षा हो रहती है। ईश्वर ने मनुष्य की
इस तरह से की है कि पतन के अनेक अवसर आते हुए भी
बच जाता है। ऐसी उसकी लीला गहन है। यदि ब्रह्मचर्य के
से ये विघ्न हम दूर कर दें तो उसका पालन बहुत आसान
जाय।

ऐसी हालत होते हुए भी हम दुनिया के साथ शारीरिक
बला करना चाहते हैं। उसके दो रास्ते हैं। एक आसुरी
दूसरा दैवी।—आसुरी मार्ग है—शरीरबल प्राप्त करने के लि
किस्म के उपायों से काम लेना, हर तरह की चीजें खाना, शरा
मुकाबले करना, गो-मांस खाना इत्यादि। मेरे लड़कपन में
एक मित्र मुझसे कहा करता कि मांसाहार हमें अवश्य
चाहिए, नहीं तो अंग्रेजों की तरह हट्टे-कट्टे हम न हो सकेंगे। ज
को भी जब दूसरे देश के साथ मुक़ाबला करने का समय
तब वहाँ गो मांस भक्षण का स्थान मिला। सो यदि आसुरी
से शरीर को तैयार करने की इच्छा हो तो इन चीजों का
करना होगा।

परन्तु यदि दैवी साधन से शरीर तैयार करना हो तो ब्र
ही उसका एक उपाय है। जब मुझे कोई नैष्ठिक ब्रह्मचारी

...य मुझे अपने पर दया आती है। इस अभिनन्दन-पत्र में मुझे ...ठक ब्रह्मचारी कहा है। सो मुझे कहना चाहिए कि जिन्होंने इस ...भिनन्दन-पत्र का मजमून तैयार किया है उन्हें पता नहीं है कि ...ष्ठिक ब्रह्मचर्य किस चीज का नाम है। और जिसके बाल बच्चे ... हैं उसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी कैसे कह सकते हैं? नैष्ठिक ब्रह्मचारी ...न तो कभी बुखार आता है न कभी सिर दर्द करता है, न कभी ...सी होती है और न कभी अपेंडिसाइटिस होता है। डाक्टर ...ग कहते हैं कि नारंगी का बीज आँत में रह जाने से भी ...पेंडिसाइटिस होता है, परन्तु जिसका शरीर स्वच्छ और निरोगी ...ता है उसमें ये बीज टिक ही नहीं सकते। जब आँतें शिथिल ... जाती हैं तब वे ऐसी चीजों को अपने आप बाहर नहीं निकाल ...कतीं। मेरी भी आँतें शिथिल हो गई होंगी। इसी से मैं ऐसी ...ई चीज हजम न कर सका हूँगा। बच्चे ऐसी अनेक चीजें खा ...ते हैं। माता इसका कहाँ ध्यान रख सकती है? पर उसकी ...ाँत में इतनी शक्ति स्वाभाविक तौर पर ही होती है। इसीलिए ...चाहता हूँ कि मुझपर नैष्ठिक ब्रह्मचर्य के पालन का आरोपण ...रके कोई मिथ्याचारी न हों। नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का तेज तो मुझसे ...नेक-गुना अधिक होना चाहिए। मैं आदर्श ब्रह्मचारी नहीं। ..., यह सच है कि मैं वैसा बनना चाहता हूँ। मैंने तो आपके ...मने अपने अनुभव की कुछ बूँदें पेश की हैं, जो ब्रह्मचर्य की ...मा बताते हैं। ब्रह्मचारी रहने का अर्थ यह नहीं कि मैं किसी ...ी को स्पर्श न करूँ, अपनी बहन का स्पर्श न करूँ, पर ब्रह्म...

चारी होने का अर्थ यह है कि स्त्री का स्पर्श करने म किसी प्र
का विकार न उत्पन्न हो, जिस तरह कि कागज का स्पर्श करने
नहीं होता। मेरी बहन बीमार हो और उसकी सेवा करा
उसका स्पर्श करते हुए ब्रह्मचर्य के कारण मुझे हिचकना प
यह ब्रह्मचर्य तीन कौड़ी का है। जिस निर्विकार दशा का
हम मृत शरीर को स्पर्श करके कर सकते हैं उसी का
जब हम किसी बड़ी सुन्दरी युवती का स्पर्श करके कर
तभी हम ब्रह्मचारी हैं। यदि आप यह चाहते हों कि बालक
ब्रह्मचर्य को प्राप्त करें, तो इसका अभ्यास-क्रम आप नहीं
सकते, मुझ जैसा अधूरा भी क्यों न हो, पर ब्रह्मचारी ही
सकता है।

ब्रह्मचारी स्वाभाविक सन्यासी होता है। ब्रह्मचर्याश्रम सन्
श्रम से भी बढ़कर है, पर उसे हमने गिरा दिया है। इसस
गृहस्थाश्रम भी बिगड़ा है, वान प्रस्थाश्रम भी बिगड़ा है
सन्यास का तो नाम भी नहीं रह गया है। ऐसी हमारी
अवस्था हो गई है।

ऊपर जो आसुरी मार्ग बताया गया है उसका अनुकरण
तो आप पाँच-सौ वर्षों तक भी पठानों का मुकाबला न कर
दैवी-मार्ग का अनुकरण यदि आज हो तो आज ही पठा
मुकाबला हो सकता है, क्योंकि दैवी साधन मे आवश्यक
सिक परिवर्तन एक क्षण में हो सकता है, पर शारीरिक प
करने हुए युग बीत जाते हैं। इस दैवी-मार्ग का अनुकरण

। होगा अब हमारे पल्ले पूर्वजन्म का पुण्य होगा, और माता-
हमारे लिए उचित सामग्री पैदा करेंगे।
न० २६ १-२५

३४

विवाह सस्कार

[गांधी सेवा सघ के हुदली में हुए तृतीय अधिवेशन में
जी की पोती तथा श्री० महादेव देसाई की बहन का विवाह
था।
अपने स्वभाव के विपरीत, गांधीजी ने उस दिन सबकी
पति में वर-वधुओं से जो कहना था वह नहीं कहा, बल्कि
ी तौर पर उन्हें उपदेश दिया। किन्तु गांधीजी के वे विचार
दम्पतियों के लिए हितकर हैं, अत: मैं उन विचारों को नीचे
ा रूप में देने का, जहाँतक मुझसे हो सकेगा, प्रयत्न
हूँ। —म० ह० दे०]

'तुम्हें यह जानना ही चाहिए, कि मैं इन सस्कारों में उसी
क विश्वास करता हूँ, जहाँतक कि ये हमारे अन्दर कर्तव्य
। की भावना को जगाते हैं। जब से मैंने अपने सम्बन्ध में
र करना शुरू किया, तभी से मेरी यह मनोवृत्ति है। तुमने
मंत्रों का उच्चारण किया है और जिन प्रतिज्ञाओं को लिया
सब-की-सब सस्कृति में थीं, पर तुम्हारे लिए उन सबका

अनुवाद कर दिया गया था। संस्कृत का हमने इसलिए [illegible]
लिया, क्योंकि मैं जानता हूँ कि संस्कृत-शास्त्रों में वह [illegible]
जिसके प्रभाव के नीचे आना मनुष्य पसन्द ही करेगा।

"विवाह संस्कार के समय पति ने जो इच्छायें प्रकट [illegible]
उनमें एक यह भी है कि वधू अच्छे निरोगी पुत्र की जननी [illegible]
इस कामना से मुझे आघात नहीं पहुँचा। इसके मानी यह [illegible]
कि सन्तान पैदा करना लाजिमी है, पर इसका अर्थ यह [illegible]
यदि सन्तान की आवश्यकता है, तो शुद्ध धर्म भावना से [illegible]
करना जरूरी है। जिसे सन्तान की जरूरत नहीं, उस [illegible]
करने की कोई आवश्यकता ही नहीं। विषय-भोग की तृप्ति [illegible]
किया हुआ विवाह विवाह नहीं। वह तो व्यभिचार है। [illegible]
आज के विवाह-संस्कारों का अर्थ यह है कि जब स्त्री-पुरुष
की ही सन्तति के लिए स्पष्ट इच्छा हो, केवल तभी उन्हें [illegible]
की अनुमति मिलती है। यह सारी ही कल्पना पवित्र है। [illegible]
इस काम को प्रार्थनापूर्वक ही करना होगा। कामोत्तेजना
विषय-सुख की प्राप्ति के लिए साधारणतया स्त्री-पुरुष [illegible]
प्रेमासक्ति देखने में आती है, उसका इस पवित्र कल्पना में [illegible]
नहीं। अगर दूसरी सन्तान नहीं चाहिए, तो स्त्री-पुरुष का
सम्भोग जीवन में केवल एक ही बार होगा। जो दम्पति [illegible]
और शरीर से स्वस्थ नहीं हैं उन्हें सम्भोग करने की [illegible]
श्यकता नहीं, और अगर वे ऐसा करते हैं तो वह 'व्यभिचार
अगर तुमने यह सीखा हो कि विवाह विषय-तृप्ति के लिए [illegible]

यह चीज भूल जानी चाहिए। यह तो एक वहम है। तुम्हारा
ही संस्कार पवित्र अग्नि की साक्षी में हुआ है। तुम्हारे अन्दर
ी काम-वासना हो उसे वह पवित्र अग्नि भस्म कर दे।
'एक और वहम से तुम्हें अलग रखने के लिए मैं तुमसे
ा। यह वहम दुनिया में आजकल जोरों से फैलता जा
है। यह कहा जा रहा है कि इन्द्रिय-निग्रह और संयम
: तरीके हैं, और विषय-वासना की अबाध तृप्ति और
न्द प्रेम सबसे अधिक प्राकृतिक वस्तु हैं। इससे अधिक
ाकारी वहम कभी सुनने में नहीं आया। हो सकता
ं तुम आदर्श तक न पहुँच सको, तुम्हारा शरीर अशक्त हो,
ुससे आदर्श को नीचा न कर देना, अधर्म को धर्म न बना
। अपनी आत्म-निर्बलता के क्षणों में मेरा यह कहना याद
ा। इस पवित्र अवसर की स्मृति तुम्हें डाँवाडोल न होने दे,
तुम्हें इन्द्रियग्रह की ओर ले जाय। विवाह का अर्थ ही
य निग्रह और काम-वासना का दमन है। अगर विवाह का
दूसरा अर्थ है, तो फिर वह स्वार्पण नहीं, किन्तु सन्तति
त को छोड़कर किसी दूसरे प्रयोजन से किया हुआ विवाह हैं।
ाह ने तुम्हें मैत्री और समानता के स्वर्ण-सूत्र से बाँध दिया
पति को अगर 'स्वामी' कहा गया है तो पत्नी को 'स्वामिनी'।
दूसरे के दोनों सहायक हैं, जीवनके समस्त कार्य और कर्तव्य
करने में वे एक-दूसरे का सहयोग करने वाले हैं। लड़को!
से मैं यह कहूँगा कि अगर ईश्वर ने तुम्हें अच्छी बुद्धि और

उच्चतम भावनायें सच्ची हैं तो तुम अपनी पत्नियों में भी अपन इन सद्गुणों का प्रवेश करो। उनके तुम सच्चे शिक्षक और मार्ग-दर्शक बनना, उन्हें मदद देना और उन्हें मार्ग दिखाना, पर कभी उनके बाधक न बनना, न उन्हें ग़लत रास्ते पर ले जाना। तुम्हारे बीच में विचार, वचन और कर्म का पूर्ण सामञ्जस्य हो। तुम अपने हृदय की बात एक-दूसरे से न छिपाओ, तुम एकात्म बन जाओ।

"मिथ्याचारी या दम्भी न बनना। जिस काम का करना तुम्हारे लिए असम्भव हो, उसे पूरा करने के निष्फल प्रयत्नों में अपना स्वास्थ्य न गिरा बैठना। इन्द्रिय-निग्रहसे कभी किसीका स्वास्थ्य नष्ट नहीं होता। जिससे मनुष्यका स्वास्थ्य नष्ट होता है, वह निग्रह नहीं किन्तु बाह्य अवरोध है। सच्चे आत्म निग्रही व्यक्ति की शक्ति तो दिन-दिन बढ़ती है, और शान्ति के वह अधिकाधिक समीप पहुँचता जाता है। आत्म-निग्रह की सबसे पहली सीढ़ी विचारों का निग्रह है। अपनी मर्यादाओं को समझ लो, और जितना हो सके उतना ही करो। मैंने तो तुम्हारे सामने आदर्श रखदिया है—एक समकोण खींच दिया है। अपनी शक्ति के अनुसार जितना तुम से हो सके उतना प्रयत्न इस आदर्श तक पहुंचने का करना। पर अगर तुम असफल हो जाओ तो दुःख या शर्म का कोई कारण नहीं। मैंने तो तुम्हें सिर्फ यह बतलाया है कि जो यज्ञोपवीत संस्कार की तरह विवाह भी एक स्वार्पण संस्कार है, एक नया जन्म धारण करना है। मैंने तुम से जो कहा है, उससे भयभीत

न होना, और न कोई दुर्बलता महसूस करना। हमेशा विचार, वचन और कर्म की पूर्ण एकता को अपना लक्ष्य बनाये रहना। विचार में जितनी सामर्थ्य है, उतनी और किसी वस्तु में नहीं। कर्म वचनका अनुसरण करता है और वचन विचार का। संसार एक महान् प्रबल विचार का ही परिणाम है, और जहाँ विचार प्रबल और पवित्र है, वहाँ परिणाम भी हमेशा प्रबल और पवित्र होगा। मैं चाहता हूँ कि तुम एक उच्चादर्श का अभेद्य कवच धारण करके जाओ, और मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि तुम्हें कोई भी प्रलोभन हानि नहीं पहुँचा सकेगा, कोई भी अपवित्रता तुम्हारा स्पर्श नहीं कर सकेगी।

"जिस विधियों को तुम्हें समझाया गया है, उन्हें याद रखना। 'मधु-पर्क' की सीधी-सादी दीखनेवाली विधि को ही ले लो। इसका अभिप्राय यह है कि सारा संस्कार मधु से परिपूर्ण है, जरूरत सिर्फ यह है कि जब बाकी सब लोग उसमें से अपना हिस्सा ले लें, तब तुम उसे ग्रहण करो। अर्थात् त्याग से ही आनन्द मिलता है।"

"लेकिन," एक वर ने पूछा, "अगर सन्तानोत्पत्ति की इच्छा न हो, तो क्या विवाह ही नहीं करना चाहिए?"

"निश्चय ही नहीं," गाँधी जी ने कहा, "आध्यात्मिक विवाहों में मेरा विश्वास नहीं है। कई ऐसे उदाहरण जरूर मिलते हैं कि जिनमें पुरुषों ने शारीरिक सम्भोग का कोई खयाल न कर सिर्फ स्त्रियों की रक्षा करने के विचार से ही विवाह किये, लेकिन यह

निश्चय है कि ऐसे उग्दाहरण बहुत कम बिरले ही हैं। प
वैवाहिक जीवन के बारे में मैंने जो कुछ लिखा है, वह सब !
ज़रूर पढ़ लेना चाहिए। मुझ पर तो, मैंने महाभारत में जो
पढ़ा है, दिन पर-दिन उसका ज्यादह-से-ज्यादह असर पड़ता
रहा है। उसमें व्यास के नियोग करने का वर्णन है। उसमें व्य
को सुन्दर नहीं बताया है, बल्कि यह तो इससे विपरीत
उनकी शक्ल-सूरत का उसमें जो वर्णन आया है, उससे मा
पड़ता है कि देखने में वह बड़े कुरूप थे, प्रेम-प्रदर्शन के लिए
हाव-भाव भी उन्होंने नहीं बताये, बल्कि सम्भोग से पहले अ
सारे शरीर पर उन्होंने घी चुपड़ लिया था। उन्होंने जो सम
किया वह विषय-वासना की पूर्ति के लिए नहीं, बल्कि सन्ता
पत्ति के लिए किया था। सन्तान की इच्छा बिल्कुल स्वाभा
है, और जब एक बार यह इच्छा पूर्ण हो जाय, तो फिर सम
नहीं करना चाहिए।

मनु ने पहली सन्तति को धर्मज अर्थात् धर्म-भावना से उत्प
बताया है और उसके बाद पैदा होनेवाले को कामज अर्थात् क
वृत्ति के फल-स्वरूप पैदा होनेवाला कहा है। सार रूप में वैवा
सम्बन्धों का यही विधान है। और 'विधान ही ईश्वर है' व
विधान या नियम का पालन ही ईश्वर की आज्ञा को मानना है
यह याद रक्खो कि तीन बार तुमसे यह वचन लिया गया है
'किसी भी रूप में मैं इस विधान का भंग नहीं करूंगा।' अ
मुट्ठी-भर स्त्री-पुरुष ही हमें ऐसे मिल जाय, जो इस विधान से ब

तैयार हों तो बलवान और सच्चे स्त्री-पुरुषों की एक जाति-की
ति पैदा हो जायगी।"

३५.

अश्लील विज्ञापन

एक मासिक पत्र में प्रकाशित एक अत्यन्त बीभत्स पुस्तक के
ापन की कतरन एक बहन ने मुझे भेजी है और लिखा है'—
" के पृष्ठों पर नजर डालते हुए यह विज्ञापन मेरे देखने
आया। मैं नहीं जानती कि यह मासिक पत्र आपके पास जाता
या नहीं। आपके पास यह जाता भी हो तो भी मेरे खयाल में
सकी तरफ नजर डालने का आपको कभी समय नहीं मिलता
गा। पहले भी एक बार मैंने आपसे 'अश्लील विज्ञापनों' के
रे में बात की थी। मेरी यह बड़ी ही इच्छा है कि इस विषय
आप किसी समय कुछ लिखें। जिस पुस्तक का यह विज्ञापन
उस क़िस्म की पुस्तकों की आज बाजार में बाढ़-सी आ रही
यह बिल्कुल सची बात है, पर जैसे जवाबदार पत्रों के लिए
या यह उचित है कि वे ऐसी गन्दी पुस्तकों की बिक्री को प्रोत्सा-
दें? इन चीजों से मेरा स्त्री-हृदय इतना अधिक दुखता है
कि मैं सिवा आपके और किसी को लिख नहीं सकती। ईश्वर
स्त्री को एक विशेष उद्देश्य के लिए जो वस्तु दी है उसका
ापन सम्पटता को उत्तेजन देने के लिए किया जाय, यह चीज
नी हीन है कि इसके प्रति घृणा शब्दों से प्रकट नहीं की जा
।

सकती । मैं चाहती हूँ कि इस सम्बन्ध में भारत के प्रमुख अखबारों और मासिक-पत्रों की क्या जवाबदारी है, इसके बारे में आप लिखें। आपके पास आलोचना के लिए भेज सकूँ, ऐसा यह कोई पहली ही कतरन नहीं है।"

इस विज्ञापन में से कुछ भी अंश मैं यहाँ उद्धृत नहीं करना चाहता। पाठकों से सिर्फ इतना ही कहता हूँ कि जिस पुस्तक का यह विज्ञापन है उसमें के व्यजित लेखों का वर्णन करने में जितनी अश्लील भाषा का उपयोग किया जा सकता है उतना किया गया है। इस पुस्तक का नाम 'स्त्री के शरीर का सौन्दर्य' है, और विज्ञापन देनेवाला फ़र्म पाठकों से कहता है कि जो यह पुस्तक खरीदेगा उसे 'नववधू के लिए नया ज्ञान' और 'संभोग अथवा समोगी को कैसे रिझाया जाय ?' नामक यह दो पुस्तकें और मुफ्त दी जायँगी।

इस क़िस्म की पुस्तकों का विज्ञापन करनेवालों को मैं किस तरह रोक सकता हूँ या पत्र-सम्पादकों और प्रकाशकों से उनके अखबारों द्वारा मुनाफा उठाने का इरादा मैं छुड़वा सकता हूँ, ऐसी आशा अगर यह बहन रखती है तो वह व्यर्थ है। ऐसी अश्लील पुस्तकों या विज्ञापनों के प्रकाशकों से मैं चाहे जितनी अपील करूँ उसमें कोई मतलब निकलने का नहीं, किन्तु मैं इस पत्र लिखनेवाली बहन से और ऐसी ही दूसरी विदुषी बहनों से इतना कहना चाहता हूँ कि वे बाहर मैदान में आवें और जो काम खास करके उनका है, और जिसके लिए उनमें खास योग्यता है उस काम को

करादें। अक्सर देखने में आया है कि किसी मनुष्य को खराब
दे दिया जाता है और कुछ समय बाद वह स्त्री या पुरुष ऐसा
ने लगता है कि वह खुद खराब है। स्त्री को 'अबला' कहना
बदनाम करना है। मैं नहीं जानता कि स्त्री किस प्रकार अबला
ऐसा कहने का अर्थ अगर यह हो कि स्त्री में पुरुष की जैसी
शविक वृत्ति नहीं है या उतनी मात्रा में नहीं है जितनी कि पुरुष
होती है, तो यह आरोप माना जा सकता है, पर यह चीज तो
ी को पुरुष की अपेक्षा पुनीत बनाने वाली है, और स्त्री पुरुष
अपेक्षा पुनीत तो है ही। वह अगर आघात करने में निर्बल
, तो कष्ट सहन करने में बलवान है। मैंने स्त्री को त्याग और
हिंसा की मूर्ति कहा है। अपने शील या सतीत्व की रक्षा के
लए पुरुष पर निर्भर न रहना उसे सीखना है। पुरुष ने स्त्री के
सतीत्व की रक्षा की हो ऐसा एक भी उदाहरण मुझे मालूम नहीं।
ह ऐसा करना चाहे तो भी नहीं कर सकता। निश्चय ही राम
सीता के या पाँच पाण्डवों ने द्रौपदी के शील की रक्षा नहीं की।
न दोनों सतियों ने अपने सतीत्व के बल से ही अपने शील की
रक्षा की। कोई भी मनुष्य बगैर अपनी सम्मति के अपनी इज्जत
आबरू नहीं खोता। कोई नर-पशु किसी स्त्री को बेहोश करके
उसकी लाज लूट ले तो इससे उस स्त्री के शील या सतीत्व का
नाश नहीं होगा, इसी तरह कोई दुष्टा स्त्री किसी पुरुष को जड़
बना देने वाली दवा खिलादे और उससे अपना मनचाहा कराये
तो इससे उस पुरुष के शील या चारित्र्य का नाश नहीं होता।

आश्चर्य तो यह है कि पुरुषों के सौन्दर्य की प्रशंसा में पुस्त
बिल्कुल नहीं लिखी गईं। तो फिर पुरुष की विषय-वासना उत्त
जित करने के लिए ही साहित्य हमेशा क्यों तैयार होता रहे ? क
बात तो नहीं कि पुरुष ने स्त्री को जिन विशेषणों से भूषित किय
है उन विशेषणों को सार्थक करना पसन्द है ? स्त्री को क्या य
अच्छा लगता होगा कि उसके शरीर के सौन्दर्य का पुरुष अपन
भोग-लालसा के लिए दुरुपयोग करे ? पुरुष के आगे अपनी देह क
सुन्दरता दिखाना क्या उसे पसन्द होगा ? यदि हाँ, तो किस लिए
मैं चाहता हूँ कि ये प्रश्न सुशिक्षित बहनें खुद अपने दिल से पूछें
ऐसे विज्ञापनों और ऐसे साहित्य से उनका दिल दुखता हो तो उन्
इन चीजों के लिए अविराम युद्ध चलाना चाहिए, और एक क्ष
में वे इन चीजों को बन्द करा देंगी। स्त्री में जिस प्रकार बुर
करने की, लोक का नाश करने की शक्ति है, उसी प्रकार भल
करने की, लोक-हित-साधन करने की शक्ति भी उसमें सोई हुई प
है। यह भान अगर स्त्री को हो जाय तो कितना अच्छा हो
अगर वह यह विचार छोड़ दे कि वह खुद अबला है और पुर
के खेलने की गुड़िया होने के ही योग्य है तो वह खुद अपना तथ
पुरुष का—फिर चाहे वह उसका पिता हो, पुत्र हो या पति हो—
जन्म सुधार सकती है, और दोनों के ही लिए इस संसार क
अधिक सुखमय बना सकती है। राष्ट्र राष्ट्र के बीच के पागलपन
भरे युद्धों से और इससे भी ज्यादा पागलपन-भरे समाज-नीति क
नींव के विरुद्ध छड़े जाने वाले युद्धों से अगर समाज को अपना

र नहीं होने देना है, तो स्त्री को पुरुष की तरह नहीं, जैसे
कुछ स्त्रियाँ करती हैं, बल्कि स्त्री की तरह अपना योग देना
होगा। अधिकांशतः बिना किसी कारण के ही मानवप्राणियों
संहार करने की जो शक्ति पुरुष में है उस शक्ति में उसकी हम
करने से स्त्री मानवजाति सुधार नहीं सकती। पुरुष की जिस
से पुरुष के साथ-साथ स्त्री का भी विनाश होने वाला है उस
में से पुरुष को बचाना उसका परम कर्तव्य है, यह स्त्री को
झ लेना चाहिए। यह वाहियात विज्ञापन तो सिर्फ यही बताता
के हवा का रुख किस तरफ है। इसमें बेशर्मी के साथ स्त्री का
नुचित लाभ उठाया गया है। 'दुनिया की जंगली जातियों की
यों के शरीर-सौन्दर्य' को भी इसने नहीं छोड़ा।

से० २१ ११ ३६

• ३६

अश्लील विज्ञापनों को कैसे रोका जाय ?

अश्लील विज्ञापन सम्बन्धी मेरा लेख देखकर एक सज्जन
खते हैं—

"जो अखबार, आपने लिखा, वैसी अश्लील चीजों के
ज्ञापनों का प्रकाशन रोकने के लिए बहुत-कुछ कर सकते हैं।"
इश्तहार देते हैं उनके नाम जाहिर कर के आप अश्लील

इन सज्जन ने जिस सेंसरशिप की मुझे सलाह दी है उसका

मार मैं नहीं ले सकता, लेकिन इससे अच्छा एक उपाय मैं सुभ
सकता हूँ। जनता को अगर यह अश्लीलता अखरती हो,
जिन अखबारों या मासिक-पत्रों में आपत्तिजनक विज्ञापन निक
उनके ग्राहक यह कर सकते हैं कि उन अखबारों का ध्यान
ओर आकर्षित करें और अगर फिर भी वे ऐसा करने से बाज
आयें तो उन्हें खरीदना बन्द करदें। पाठकों को यह जान
खुशी होगी कि जिस बहन ने मुझे अश्लील विज्ञापनों की शि
यत भेजी थी, उसने इस दोष के भागी मासिक-पत्र के सम्पाद
को भी इस बारे में लिखा था, जिसपर उन्होंने इस भूल के ि
खेद-प्रकाश करते हुए उसे आगे से न छापने का वादा किया है

यह कहते हुए भी मुझे खुशी होती है कि मैंने इस बारे में
कुछ लिखा, उसका कुछ अन्य पत्रों ने भी समर्थन किया है
'निस्पृह' (नागपुर) के सम्पादक लिखते हैं—

"अश्लील विज्ञापनों के बारे में 'हरिजन' में आपने जो
लिखा है उसे मैंने बहुत सावधानी के साथ पढ़ा। यही नहीं,
मैंने उसका अविकल अनुवाद भी 'निस्पृह' में दिया है और
छोटी-सी सम्पादकीय टिप्पणी भी उसपर मैंने लिखी है।

मैं बतौर नमूने के एक विज्ञापन इस पत्र के साथ भेज र
हूँ, जो अश्लील न होते हुए भी एक तरह से अनैतिक तो है
इस विज्ञापन में साफ़ झूठ है। आमतौर पर गाँववाले ही
विज्ञापनों के चक्कर में फँसते हैं। मैं ऐसे विज्ञापन से

मेरा इन्कार करता रहा हूँ और इस विज्ञापनदाता को भी यही लिख रहा हूँ, जैसे अख़बार में निकलने वाली समस्त पाठ्य-सामग्री पर सम्पादक की निगाह रहना जरूरी है, उसी तरह विज्ञापनों पर नज़र रखना भी उसका कर्तव्य है। और कोई सम्पादक अपने अख़बार का ऐसे लोगों द्वारा उपयोग नहीं होने दे सकता, जो भोले-भाले देहातियों की आँखों में धूल झोंक कर उन्हें ठगना चाहते हैं।

१० २-१-२७

परिशिष्ट भाग

१

सन्तति निरोध की हिमायतिन

दरिद्रनारायण की सेवा में अपना सब-कुछ समपरा कर देने वाले बूढ़े किसान से सर्वथा विपरीत, इंग्लैण्ड की एक श्रीमती हाउ-मार्टिन हैं, जो कृत्रिम सन्तति-निरोध की उग्र प्रचारिका और भारत के ग़रीबों की मदद के लिए अपना सन्देश लेकर भारत पधारी हैं। गांधीजी के पास आप इस इरादे से आई हैं कि या तो उन्हें अपने विचारों का बनालें या खुद उनके विचारों पर आ जायँ। निस्सन्देह, आप हिन्दुस्तान में पहली ही बार आई हैं और यहाँ के ग़रीबों की हालत अभी आपने मुश्किल से ही देखी होगी, इसलिए ब्रिटेन की गन्दी बस्तियों के अपने अनुभव की ही आपने चर्चा की और उन 'अबलाओं' का बड़ा पक्ष लिया, जिन्हें एक सशक्त पुरुष के आगे झुकना पड़ता है।

लेकिन इस पहली ही दलील पर गांधीजी ने उन्हें आड़े हाथों लिया। 'कोई स्त्री अबला नहीं है।' गाँधीजी ने कहा, "कमज़ोर से-कमज़ोर स्त्री भी पुरुष से ज़्यादा बल रखती है, और अगर आप भारत के गाँवों में चलें तो मैं यह बात आपको दिखला देने के लिए पूरी तरह तैयार हूँ। यहाँ कोई भी स्त्री आपसे यही कहेगी कि उसकी इच्छा न हो तो माई का जाया कोई ऐसा लाल नहीं जो उसपर बलात्कार कर सके। यह बात अपनी

पत्नी के साथ के खुद अपने अनुभव से मैं कह सकता हूँ, और यह याद रखिए कि मेरा उदाहरण कोई विरला ही नहीं है। सच तो यह है कि झुकने के बजाय मर जाने की भावना मौजूद हो तो कोई राक्षस भी स्त्री को अपनी दुष्ट चेष्टा के लिए मजबूर नहीं कर सकता। यह तो परस्पर की रजामन्दी की बात है। स्त्री-पुरुष दोनों में ही पशुत्व और देवत्व का सम्मिश्रण है, और अगर हम उनमें से पशुत्व को दूर कर सकें तो यह श्रेष्ठ और हितकर ही होगा।"

"लेकिन", श्रीमती हाउ-मार्टिन ने पूछा, "अगर पुरुष अभि- घातों से बचने के लिए अपनी पत्नी को छोड़कर पर-स्त्री के पास जाये तो बेचारी पत्नी क्या करे ?"

"यह तो आप अपनी बात बदल रही हैं, लेकिन यह याद रखिए कि अगर आप अपनी दलील को निर्भ्रान्त न रक्खेंगी तो आप जरूर गलत परिणाम पर पहुँचेंगी। व्यर्थ की कल्पनायें करके पुरुष को पुरुष से कुछ और तथा स्त्री को स्त्री से अन्यथा बताने की कोशिश न कीजिए। आपके सन्देश का आधार क्या है, यह तो मुझे समझ लेने दीजिए। जब मैंने यह कहा कि सन्तति-निरोध का आपका प्रचार काफी फैल चुका है, तब इस विनोद के पीछे कुछ गम्भीरता थी, क्योंकि मुझे यह मालूम है कि ऐसे भी कुछ स्त्री-पुरुष हैं जो समझते हैं कि सन्तति-निरोध में ही हमारी मुक्ति है। इसलिए, मैं आपसे इसका आधार समझ लेना चाहता हूँ।"

"मैं इसमें संसार की मुक्ति नहीं देखती", श्रीमती हाउ-मार्टिन ने कहा, "मैं तो सिर्फ यही कहती हूँ कि सन्तति-निरोध का कोई रूप इख्तियार किये बगैर प्रजा की मुक्ति नहीं है। आप प्रेम एक तरीक़े से करेंगे, मैं दूसरे तरीक़े से करूँगी। आपके तरीक़े का भी मैं प्रतिपादन करती हूँ लेकिन सभी हालात में नहीं। आप तो, मालूम होता है, एक सुन्दर वस्तु को ऐसा समझते हैं मा

यह कोई आपत्तिजनक चीज हो, पर यह याद रखिए कि दो पथ जब नये जीवन का निर्माण करने जाते हैं तो वे पशुत्व से ऊपर उठकर देवत्व के अत्यन्त निकट होते हैं। इस क्रिया में कोई बात ऐसी है जो बड़ी सुन्दर है।"

"यहाँ भी आप भ्रम में हैं", गांधीजी ने कहा, "नये जीवन का निर्माण देवत्व के अत्यन्त निकट है, इस बात को मैं मानता हूँ। मैं जो-कुछ चाहता हूँ वह तो यही है कि यह इसी रूप में ही किया जाये। मतलब यह कि पुरुष-स्त्री नये जीवन का निर्माण करने यानी सन्तानोत्पत्ति के सिवा और किसी इच्छा से सम्भोग न करें, लेकिन अगर वे खाली काम-वासना शान्त करने के लिए ही सम्भोग करें तब तो वे शैतानियत के ही बहुत नजदीक होते हैं। दुर्भाग्यवश, मनुष्य इस बात को भूल जाता है कि वह देवत्व के निकटतम है, अपने अन्दर विद्यमान पशु-वासना के पीछे भटकने लगता है और पशु से भी बदतर बन जाता है।"

"लेकिन पशुत्व की आपको क्यों निन्दा करनी चाहिए ?"

"मैं निन्दा नहीं करता। पशु तो, उसके लिए कुदरत ने जो नियम बनाये हैं, उनका पालन करता है। सिंह अपने क्षेत्र में एक श्रेष्ठ प्राणी है और मुझको खा जाने का उसे पूरा अधिकार है, लेकिन मेरी यह खासियत नहीं है कि मैं पंजे बढ़ाकर आपके ऊपर झपटूँ। मैं ऐसा करूँ तो अपने को हीन बनाकर पशु से भी बदतर बन जाऊँगा।"

"मुझे अफसोस है," श्रीमती हाउ-मार्टिन ने कहा, "कि मैंने अपने भाव ठीक तरह व्यक्त नहीं किये। इस बात को मैं स्वीकार करती हूँ कि अधिकांश मामलों में इससे उनकी मुक्ति नहीं होगी, लेकिन यह ऐसी बात जरूर है जिससे जीवन ऊँचा बनेगा। मेरी बात आप समझ गये होंगे, हालाँकि मुझे शक है कि मैं अपनी

बात बिलकुल स्पष्ट नहीं कर पाई हूँ।"

"नहीं-नहीं, मैं आपकी अव्यवस्थितता का कोई बेजा फ़ायदा नहीं उठाना चाहता। हाँ, यह ज़रूर चाहता हूँ कि मेरा दृष्टिकोण आप समझ लें। राक्षतफ़हमियों पर न चलिए। उपरि मार्ग और अधो-मार्ग में से कोई एक आदमी को जरूर चुनना होगा, और उसमें पशुत्व का अंश होने के कारण वह उपरि मार्ग के बजाय अधो-मार्ग ही आसानी से चुनेगा—खासकर जबकि अधो-मार्ग उसके सामने सुन्दर आवरण से परिवेष्टित हो। सद्गुण के पर्दे में पाप सामने आने पर मनुष्य आसानी से उसका शिकार हो जाता है, और मेरी स्टोप्स तथा दूसरे (कृत्रिम सन्तति-निरोध के हिमायती) यही कर रहे हैं। मैं अगर विलासिता का प्रचार करना चाहूँ तो, मैं जानता हूँ, मनुष्य आसानी से उसे ग्रहण कर लेंगे। मैं जानता हूँ कि आप-जैसे लोग अगर निस्वार्थ भाव से उत्साह के साथ अपने सिद्धान्त के प्रचार में लगे रहे तो आख़िरकार शायद आपको विजय भी मिल जाये, लेकिन मैं यह भी जानता हूँ कि ऐसा करके आप निश्चित रूप से मृत्यु के मार्ग पर पहुँचेंगे—इसमें शक नहीं कि ऐसा आप करेंगे इस बात को बिलकुल न जानते हुए कि आप कितनी शरारत कर रहे हैं। अधोमार्ग की प्रकृति ऐसी है कि उसके लिए किसी समर्थन या दलील की ज़रूरत नहीं होती। यह तो हमारे अन्दर मौजूद ही है, और अगर हम इस पर रोक लगाकर इसे नियंत्रित न रक्खें तो रोग और महामारी फैल सकता है।"

श्रीमती हाऊ-मार्टिन ने जो अब तक देवत्व और शैतानियत के बीच भेद को स्वीकार करती मालूम पड़ती थीं, कहा कि ऐसा कोई भेद नहीं है और लोग समझते हैं उससे कहीं ज्यादा परस्पर-सम्बद्ध हैं। सन्तति निरोध की सारी फिलासफी के पीछे

रसल यही बात है, और सन्तति-निरोध के हिमायती यह जाते हैं कि यही उनका रामबाण इलाज है।

"तो आप ऐसा समझती हैं कि देव और पशु एक ही चीज़ क्या आप सूर्य में विश्वास करती हैं ? अगर करती हैं तो आप यह नहीं सोचतीं कि छाया में भी आपको विश्वास ा ही चाहिए ?" गांधीजी ने पूछा।

"आप छाया को शैतान क्यों कहते हैं ?"

"आप चाहें तो उसे ईश्वर-इतर कह सकती हैं।"

"मैं यह नहीं समझती कि छाया में 'ईश्वरेतर' नहीं है। जीवन सर्वत्र है।"

"जीवन का अभाव जैसी भी कोई चीज़ है। क्या आप ती हैं कि हिन्दू लोग अपने अपने प्रियतमों तक के र को उनकी जीवन-ज्योति के बुझते ही जल्द-से-जल्द कर भस्म कर देते हैं ? यह ठीक है कि समस्त जीवन में मूल-एकता है, लेकिन विभिन्नता भी है। हमारा काम है कि विभिन्नता में प्रवेश करके उसके अन्दर समाविष्ट एकता का लगायें, लेकिन बुद्धि का द्वारा नहीं, जैसाकि आप प्रयत्न ने की कोशिश कर रही हैं। जहाँ सत्य है, वहाँ असत्य भी र होना चाहिए, इसी तरह जहाँ प्रकाश है, वहाँ छाया भी र होगी। जब तक आप तर्क और बुद्धि ही नहीं, बल्कि शरीर भी सर्वथा उत्सर्ग न कर दें तबतक आप इस व्यापक ज्ञान अनुभूति नहीं कर सकते।"

श्रीमती हाउ-मार्टिन भौचक्की रह गईं, और उनकी मुला-ा का समय बीता जा रहा था, लेकिन गाँधीजी ने कहा, ां, मैं आपको और वक्त देने के लिए भी तैयार हूँ, लेकिन के लिए आपको यहाँ आकर मेरे पास ठहरना होगा। मैं भी

आपसे कम उत्साही नहीं हूँ, इसलिए अबतक आप मुझ पर विचारों का न बना लें या खुद मेरे विचारों पर न आ[illegible] तब तक आपको हिन्दुस्तान से नहीं जाना चाहिए।"

यह आनन्दप्रद वार्त्ता सुनते हुए, जो दूसरे कार्य क्रमों के कार[illegible] यहाँ रोकनी पड़ी, मुझे असीसी के सन्त फ्रॅंसिस के इन मह[illegible] शब्दों का स्मरण हो आया—"प्रकाश ने देखा और अन्धकार [illegible] हो गया, प्रकाश ने कहा, 'मैं वहाँ जाऊँगा ?' शान्ति ने दृष्टि [illegible] और युद्ध भाग गया, शान्ति ने कहा, 'मैं वहाँ जाऊँगी।' प्र[illegible] उदित हुआ और घृणा उड़ गई, प्रेम ने कहा, 'मैं वहाँ जाऊँग[illegible] और यह बात सूर्य-प्रकाश की भाँति सर्वत्र फैलकर हमारे [illegible] में प्रवेश कर गई।

—महादेव देसा[illegible]

२

पाप और सन्तति निग्रह के विषय में

गाँधीजी के ध्यान में सारे दिन ग्राम और ग्रामवासी रहते हैं, और स्वप्न भी उन्हें इसी विषय के आते हैं। स्वामी या[illegible] नन्द नाम क एक सन्यासी सोलह बरस अमेरिका में रहकर अ[illegible] अभी स्वदेश वापिस आये हैं। गत सप्ताह राँची जाते हुए गाँ[illegible] जी से मिलने के लिए व यहाँ उतर पड़े और दो दिन ठह[illegible] उनके साथ गाँधीजी का जो खासा लम्बा सम्वाद हुआ उ[illegible] भी उनके इस ग्राम-चिन्तन की काफी स्पष्ट झलक दिखाई दे[illegible] थी। स्वामी योगानन्द केवल धर्म प्रचार क लिए अमरिका गय[illegible]

उनके कहे अनुसार उन्होंने आचरण और उपदेश के द्वारा तप का आध्यात्मिक संदेश ससार को देने का ही सब जगह किया। उनका यह दृढ विश्वास है कि, 'भारतवर्ष के यक्ति स ही जगत् का उद्धार होगा।'

गाँधीजी के साथ उन्हें पाप और सन्तति निग्रह इन दो तों पर चर्चा करनी थी। अमेरिका के जीवन की काली बाजू ने अच्छी तरह देखी थी, और अमेरिका के युवकों और तियों के विलासितामय जीवन की एक-एक बात पर प्रकाश नेवाली पुस्तक के लेखक जज लिंडसे के साथ उनका बहुत निकट का परिचय था।

गाँधीजी ने कहा, "'दुनिया में पाप क्यों है,' इस प्रश्न का देना कठिन है। मैं तो एक ग्रामवासी जो जवाब देगा वही कता हूँ। जगत् में प्रकाश है तो अन्धकार भी है। इसी तरह पुण्य है, वहाँ पाप होगा ही। किन्तु पाप और पुण्य तो री मानवी दृष्टि से है। ईश्वर के आगे तो पाप और पुण्य ी कोई चीज़ ही नहीं। ईश्वर तो पाप और पुण्य दोनों से ही है। हम ग़रीब ग्रामवासी उसकी लीला का मनुष्य की वाणी वर्णन करते हैं, पर हमारी भाषा ईश्वर की भाषा नहीं है।

"वेदान्त कहता है कि यह जगत् माया रूप है। यह निरूपण मनुष्य की तोतली वाणी का है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि मैं बातों में पड़ता ही नहीं। ईश्वर के घर के गूढ़-से-गूढ़ भेद नने का भी मुझे अवसर मिले तो भी मैं उन्हें जानने की हामी मरूँ। कारण यह कि मुझे यह पता नहीं कि मैं वह सब नकर क्या करूँगा। हमारे आत्म-विकास के लिए इतना ही नना काफ़ी है कि मनुष्य जो-कुछ अच्छा काम करता है ईश्वर

आपसे कम उत्साही नहीं हूँ, इसलिए जबतक आप मुझे अप
विचारों का न बना लें या खुद मेरे विचारों पर न आज
तब तक आपको हिन्दुस्तान से नहीं जाना चाहिए।"

यह आनन्दप्रद वार्त्ता सुनते हुए, जो दूसरे कार्य-क्रमों के कारण
यहीं रोकनी पड़ी, मुझे असीसी के सन्त फ्रांसिस के इन मह
शब्दों का स्मरण हो आया—"प्रकाश ने देखा और अन्धकार हु
हो गया, प्रकाश ने कहा, 'मैं वहाँ जाऊँगा ?' शान्ति ने दृष्टि फें
और युद्ध भाग गया, शान्ति ने कहा, 'मैं वहाँ जाऊँगी।' प्र
उदित हुआ और घृणा उड़ गई, प्रेम ने कहा, 'मैं वहाँ जाऊँग
और यह बात सूर्य प्रकाश की भाँति सर्वत्र फैलकर हमारे अ
में प्रवेश कर गई।

—महादेव देसाई

२

पाप और सन्तति-निग्रह के विषय में

गाँधीजी के ध्यान में सारे दिन ग्राम और ग्रामवासी
रहते हैं, और स्वप्न भी उन्हें इसी विषय के आते हैं। स्वामी योग
नन्द नाम के एक सन्यासी सोलह बरस अमेरिका में रहकर अभी
अभी स्वदेश वापिस आये हैं। गत सप्ताह रांची जाते हुए गाँधी
जी से मिलने के लिए वे यहाँ उतर पड़े और दो दिन ठहरे।
उनके साथ गाँधीजी का जो खासा लम्बा सम्वाद हुआ उसमें
भी उनके इस ग्राम-चिन्तन की काफी स्पष्ट झलक दिखाई देती
थी। स्वामी योगानन्द केवल धर्म प्रचार के लिए अमेरिका गय थे

ौर उनके कहे अनुसार उन्होंने आचरण और उपदेश के द्वारा ारतवर्ष का आध्यात्मिक संदेश संसार को देने का ही सब जगह ्यत्न किया। उनका यह दृढ़ विश्वास है कि, 'भारतवर्ष के यति ान से ही जगत् का उद्धार होगा।'

गाँधीजी के साथ उन्हें पाप और सन्तति निग्रह इन दो ्षयों पर चर्चा करनी थी। अमेरिका के जीवन की काली बाजू ्होंने अच्छी तरह देखी थी, और अमेरिका के युवकों और ्वतियों के विलासितामय जीवन की एक-एक बात पर प्रकाश ालनेवाली पुस्तक के लेखक जज लिंडसे के साथ उनका बहुत ्ही निकट का परिचय था।

गाँधीजी ने कहा, " 'दुनिया में पाप क्यों है,' इस प्रश्न का ्तर देना कठिन है। मैं तो एक ग्रामवासी जो जवाब देगा वही ्सकता हूँ। जगत् में प्रकाश है तो अन्धकार भी है। इसी तरह ्हाँ पुण्य है, वहाँ पाप होगा ही। किन्तु पाप और पुण्य तो ्मारी मानवी दृष्टि से है। ईश्वर के आगे तो पाप और पुण्य ्सी कोई चीज़ ही नहीं। ईश्वर तो पाप और पुण्य दोनों से ही ्रे है। हम ग़रीब ग्रामवासी उसकी लीला का मनुष्य की वाणी ्वर्णन करते हैं, पर हमारी भाषा ईश्वर की भाषा नहीं है।

"वेदान्त कहता है कि यह जगत् माया रूप है। यह निरूपण ्ी मनुष्य की तोतली वाणी का है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि मैं ्न बातों में पड़ता ही नहीं। ईश्वर के घर के गूढ़-से-गूढ़ भेद ्जानने का भी मुझे अवसर मिले तो भी मैं उन्हें जानने की हामी ्भरूँ। कारण यह कि मुझे यह पता नहीं कि मैं वह सब ्जानकर क्या करूँगा। हमारे आत्म विकास के लिए इतना ही ्जानना काफ़ी है कि मनुष्य जो-कुछ अच्छा काम करता है ईश्वर

निरन्तर उसके साथ रहता है। यह भी ग्रामवासी का ही निरू-
पण है।"

"ईश्वर सर्वशक्तिमान् तो है ही, तो वह हमें पाप से मुक्त
क्यों नहीं कर देता ?" स्वामीजी ने पूछा।

"मैं इस प्रश्न की भी उधेड़-बुन में नहीं पड़ना चाहता। ईश्वर
और हम बराबरी के नहीं हैं। बराबरी वाले ही एक दूसरे से ऐसे
प्रश्न पूछ सकते हैं, छोटे-बड़े नहीं। गाँववाले यह नहीं पूछते कि
शहरवाले अमुक काम क्यों करते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि
अगर हमने वैसा किया तो हमारा सर्वनाश तो निश्चित ही है।"

"आपके कहने का आशय मैं अच्छी तरह समझता हूँ।
आपने यह बड़ी जोरदार दलील दी है। पर ईश्वर को किसने
बनाया ?" स्वामीजी ने पूछा।

"ईश्वर यदि सर्वशक्तिमान् है तो अपना सिरजनहार उसे
स्वयं ही होना चाहिए।"

"ईश्वर स्वतन्त्र सत्तावान् है या लोक-तन्त्र में विश्वास करने
वाला ? आपका क्या विचार है ?"

"मैं इन बातों पर बिलकुल विचार नहीं करता। मुझे ईश्वर की
सत्ता में तो हिस्सा लेना नहीं, इसलिए ये प्रश्न मेरे लिए विचार-
णीय नहीं है। मैं तो, मेरे आगे जो कर्तव्य है, उसे करके ही
सन्तोष मानता हूँ। जगत् की उत्पत्ति कैसे हुई, और क्यों हुई,
इन सब प्रश्नों की चिन्ता में मैं क्यों पड़ूँ ?"

"पर ईश्वर ने हमें बुद्धि तो दी है ?"

"बुद्धि तो जरूर दी है, पर वह बुद्धि हमें यह समझने में सहा-
यता देती है कि जिन बातों का हम ओर-छोर नहीं निकाल सकते
उनमें हमें माथापच्ची नहीं करनी चाहिए। मेरा तो यह दृ

है कि सबे ग्रामवासी में अद्भुत व्यावहारिक बुद्धि होती
इससे यह कमी इन पहेलियों की उलझन में नहीं
।

व मैं एक दूसरा ही प्रश्न पूछता हूँ। क्या आप यह मानते
ण्यात्मा होने की अपेक्षा पापी होना सहल है, अथवा
ढ़ने से नीचे गिरना आसान है।"
पर से तो ऐसा मालूम होता है, पर असल बात यह है
। होने की अपेक्षा पुण्यात्मा होना सहज है। कवियों ने कहा
कि नरक का मार्ग आसान है, पर मैं ऐसा नहीं मानता।
भी नहीं मानता कि संसार में अच्छे आदमियों की अपेक्षा
ग अधिक हैं। अगर ऐसा है तो ईश्वर स्वयं पाप की मूर्ति
एगा, पर वह तो अहिंसा और प्रेम का साकार रूप है।"
या मैं आपकी अहिंसा की परिभाषा जान सकता हूँ?"
ंसार में किसी भी प्राणी को मन,वचन और कर्म से हानि
ाना, अहिंसा है।"
धीजी की इस व्याख्या पर से अहिंसा के सम्बन्ध में
लम्बी चर्चा हुई, पर उस चर्चा को मैं छोड़ देता हूँ।
न' और 'यंग इंडिया' में न जाने कितनी बार इस विषय
र्चा हो चुकी है।
अब मैं दूसरे विषय पर आता हूँ," स्वामीजी ने कहा, "क्या
सन्तति-निग्रह के मुकाबले में संयम को अधिक पसन्द
?"
मेरा यह विश्वास है कि किसी कृत्रिम रीति से या पश्चिम
लित मौजूदा रीतियों से सन्तति-निग्रह करना आत्मघात
नि यहाँ जो 'आत्मघात' शब्द का प्रयोग किया है उसका अर्थ
हीं है कि प्रजा का समूल नाश हो जायगा। 'आत्मघात'

शब्द को मैं इससे ऊँचे अर्थ में लेता हूँ। मेरा आशय यह है
सन्तति-निग्रह की ये रीतियाँ मनुष्य को पशु से भी बदतर
देती हैं, यह अनीति का मार्ग है।"

"पर हम यह कहाँ तक बर्दाश्त करें कि मनुष्य अविच
साथ सन्तान पैदा करता ही चला जाय ? मैं एक ऐसे आदमी
जानता हूँ, जो नित्य एक सेर दूध लेता था और उसमें
मिला देता था, ताकि उसे अपने तमाम बच्चों को बाँट
बच्चों की संख्या हर साल बढ़ती ही जाती थी। क्या
आप पाप नहीं मानते ?"

"इतने बच्चे पैदा करना कि उनका पालन-पोषण न हो
यह पाप तो है ही, पर मैं यह मानता हूँ कि अपने कर्म के
से छुटकारा पाने की कोशिश करना तो उससे भी बड़ा पाप
इससे तो मनुष्यत्व ही नष्ट हो जाता है।"

"तब लोगों को यह सत्य बतानेका सबसे अच्छा व्यावह
मार्ग क्या है ?"

"सबसे अच्छा व्यावहारिक मार्ग यह है कि हम संयम
जीवन बितावें। उपदेश से आचरण ऊँचा है।"

'मगर पश्चिम के लोग हम से पूछते हैं कि तुम लोग
को पश्चिम के लोगों से अधिक आध्यात्मिक मानते हो, फि
हम लोगों के मुकाबले में तुम्हारे यहाँ बालकों की मृत्यु
संख्या में क्यों होती है ? महात्माजी, आप मानते हैं कि म
अधिक संख्या में सन्तान पैदा करें ?'

"मैं तो यह मानने वाला हूँ कि सन्तान बिलकुल ही पैदा न
जाय।"

"तब तो सारी प्रजा का नाश हो जायगा ?"

"नाश नहीं होगा, प्रजा का और भी सुन्दर रूपान्तर

ा। पर यह कभी होने का नहीं, क्योंकि हमें अपने पूर्वजों
ः विषयवृत्ति का उत्तराधिकार युगानुयुग से मिला हुआ है।
की इस पुरानी आदत को काबू में लाने के लिए बहुत बड़े
। की जरूरत है तो भी वह प्रयत्न सीधासादा है। पूर्ण त्याग
ब्रह्मचर्य ही आदर्श स्थिति है। जिससे यह न हो सके, वह
से विवाह करले, पर विवाहित जीवन में भी वह संयम से
"

"जन-साधारण को संयममय जीवन की बात सिखाने की क्या
के पास कोई व्यावहारिक रीति है?"

"जैसा कि एक क्षण पहले मैं कह चुका हूँ, हमें पूर्ण संयम की
ना करनी चाहिए, और जन-साधारण के बीच जाकर संयम
जीवन बिताना चाहिए। भोग-विलास छोड़ कर ब्रह्मचर्य के
अगर कोई मनुष्य रहे तो उसके आचरण का प्रभाव अवश्य
नता पर पड़ेगा। ब्रह्मचर्य और अस्वाद व्रत के बीच अवि
भ सम्बन्ध है। जो मनुष्य ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहता
ह अपने प्रत्येक कार्य में संयम से काम लेगा, और सदा नम्र
र रहेगा।"

स्वामीजी ने कहा—"मैं समझ गया। जनसाधारण को संयम
ानन्द का पता नहीं, और हमें यह चीज उसे सिखानी है,
मैंने पश्चिम के लोगों की जिस दलील के बारे में आपसे कहा
उस पर आपका क्या मत है?"

"मैं यह नहीं मानता कि हम लोगों में पश्चिम के लोगों की
ा आध्यात्मिकता अधिक है। अगर ऐसा होता तो आज
ा इतना अधःपतन न होगया होता। किन्तु इस बात से कि
चम के लोगों की उम्र औसतन हम लोगों की उम्र से ज्यादा
ी होती है, यह साबित नहीं होता कि पश्चिम में आध्यात्मिकता

है। जिसमें अध्यात्म-वृत्ति होती है उसकी आयु अधिक लम्बी ह
ही चाहिए यह बात नहीं है, बल्कि उसका जीवन अधिक अ
अधिक शुद्ध होना चाहिए।

—महादेव देसाई।

३

श्रीमती सेंगर और सन्तति निरोध

श्रीमती मार्गरेट सेंगर अभी थोड़े ही समय पहले गाँ
से वर्धा में मिली थीं। गाँधीजी ने उन्हें अच्छी तरह समय
था। भारतवर्ष छोड़ने के पहले उन्होंने 'इलस्ट्रेटेड वीकली
एक लेख लिखा है, जिसमें यह दिखाया गया है कि गाँधी
साथ उनकी जो बात-चीत हुई उससे उन्हें कितना थोड़ा लाभ
हुआ है। गाँधीजी से यह मार्ग-दर्शन प्राप्त करने के लिए
थीं। "अगणित लोग आपको पूजते हैं, आपकी आज्ञा पर
हैं, फिर उनसे आप इस सम्बन्ध में क्यों नहीं कहते ? उनके
आप कोई ऐसा मंत्र क्यों नहीं देते कि जिससे वे सन्मार्ग
चलना सीखें ?"—यह वे चाहती थीं। "देश के लाखों स्त्री-पु
का हित आपने किया है, तो फिर इस विषय में भी आप
कीजिए।" यह उनकी माँग थी। पहले दिन अच्छी तरह
करने के बाद जब वे तृप्त नहीं हुइ तो दूसरे दिन भी उन्होंने
देर तक बातें कीं। अब वे अपने लेख में यह लिखती हैं
गाँधीजी को तो भारत की महिलाओं का कुछ ज्ञान ही नहीं,
उन्हें महिलाओं के मन का ही कुछ पता नहीं; क्योंकि उन्होंने
सारी बात-चीत में दो ऐसी बेहूदी बातें कीं कि जिनसे

त प्रकट हो गया। गाँधीजी ने इस बात-चीत में अपनी
ा निचोड़ दी थी, अपनी आत्म-कथा के कितने ही प्रकरण
ाम भाषा में बताये थे, किन्तु उन सबका मथितार्थ इस
ा ने यह निकाला कि गाँधीजी को स्त्रियों की मनोवृत्ति का
ज्ञान ही नहीं।

ाँधीजी से श्रीमती सेंगर स्त्रियों के लिए एक उद्धारक मंत्र
चाहती थीं। और वह मंत्र उन्हें मिला, पर वह तो असल में
ाहती थीं कि उनके अपने मंत्र पर गाँधीजी मोहर लगा
इसलिए यह सुवर्ण मंत्र उन्हें दो कौड़ी का मालूम
। उन्हें भले ही वह दो कौड़ी का मालूम हुआ हो, पर
की स्त्रियों को वह मंत्र देना जरूरी है, उन्हें वह कौड़ी
का मालूम नहीं जँचेगा। गाँधीजी ने तो उनसे बार-बार
करके यह भी कहा था कि मुझसे आपको एक ही बात
सकती है। मेरे और आपके तत्त्वज्ञान में जमीन आसमान
न्तर है। इन सब बातों को उस समय तो उन्होंने अच्छा
दिया, पर खुद उन्होंने जो लेख प्रकाशित कराया है,
उन्हें जरा भी महत्त्व नहीं दिया।

ाँधीजी ने तो पीड़ित स्त्रियों के लिए यह सुवर्ण मन्त्र दिया
—"मैंने तो अपनी स्त्री के गज से ही तमाम स्त्रियों का
नेकाला है। दक्षिण अफ्रिका में अनेक बहनों से मैं मिला—
य और भारतीय दोनों से ही। भारतीय स्त्रियों से तो मैं
से मिल चुका था, ऐसा कहा जा सकता है, क्योंकि उनसे
ाम किया था। सभी से मैं तो डुँडी पीट-पीट कर कहता था
तुम अपने शरीर की—आत्मा की तरह शरीर की भी—
नी हो, तुम्हें किसीके वश में होकर नहीं बरतना है,
री इच्छा के विरुद्ध तुम्हारे माता-पिता या तुम्हारा पति

तुमसे कुछ नहीं करा सकता, लेकिन बहुत-सी बहनें अपने पति से 'ना' नहीं कह सकतीं। इसमें उनका दोष नहीं। पुरुषों ने उन्हें गिराया है, पुरुषों ने उनके पतन के लिए अनेक तरह के शास्त्र रचे हैं, और उन्हें बाँधने की जजीर को भी उन्होंने सोने की जंजीर का नाम दे रक्खा है। इसलिए ये बेचारी पुरुष की ओर आकर्षित हो गई हैं। मगर मेरे पास तो एक ही सुवर्ण-मार्ग है और वह यह कि ये पुरुषों का प्रतिरोध करें। यह वे उन्हें साफ-साफ बतला दें कि उनकी इच्छा के विरुद्ध पुरुष उनके ऊपर सन्तति का भार नहीं डाल सकते। इस प्रकार का प्रतिरोध कराने में अपने जीवन के शेष वर्ष यदि मैं खर्च कर सकूँ, तो फिर सन्तति निग्रह-जैसी बात का कोई प्रश्न ही नहीं रहता। पुरुष यदि पशु-वृत्ति लेकर उनके पास जायँ तो वे स्पष्ट रूप से 'ना' कहदें, यह शक्ति अगर उनमें आजाय तो फिर कुछ भी करने की जरूरत नहीं। यहाँ हिन्दुस्तान में तो सन्तति-निग्रह का प्रश्न ही नहीं रहेगा। सभी पुरुष तो पशु हैं नहीं। मैंने तो अपने निकट सम्पर्क में आई हुई अनेक स्त्रियों को यह प्रतिरोध की कला सिखाई है। असल प्रश्न तो यह है कि अनेक स्त्रियाँ प्रतिरोध करना ही नहीं चाहतीं मेरा तो यह विश्वास है कि ९९ प्रतिशत स्त्रियाँ बिना किसी कटुता के अपने प्रेम से अपने पतियों से यह प्रार्थना कर सकती हैं कि हमारे ऊपर आप बलात्कार न करें। यह चीज असल में उन्हें सिखाई नहीं गई, न माता-पिता ने ही सिखाई, न समाज-सुधारकों ने ही। तो भी कुछ पिता ऐसे देखे हैं कि जिन्होंने अपने दामाद से यह बात कही है और कुछ अच्छे पति भी देखने में आये हैं कि जिन्होंने अपनी स्त्री की रक्षा की है। मेरी सौ-सौ बात की एक बात है कि स्त्रियों को प्रतिरोध का जो जन्म-सिद्ध अधिकार है, उसका उन्हें निर्भय

उपयोग करना चाहिए।"

र यह बात श्रीमती सेंगर को बेहूदी-सी मालूम हुई।
ो के आगे तो उन्होंने नहीं कहा, पर अपन लेख में वे कहती
इस सारी बात से गाँधीजी का अज्ञान ही प्रकट होता है,
स्त्रियों में इस तरह का प्रतिरोध करने की शक्ति ही नहीं।
स्त्रियाँ यह प्रतिरोध नहीं करतीं, यह तो गाँधीजी भी खुद
है, पर उनका कहना यह है कि प्रत्येक शुद्ध सुधारक का
व्य होना चाहिए कि वह स्त्रियों को इस तरह का प्रतिरोध
ी शिक्षा दे। क्रोध, द्वेष और हिंसा की दावाग्नि महात्मा
ज़माने में भी सुलग रही थी, किन्तु उन्होंने उपदेश दिया
, अहिंसा का। उस उपदेश का पालन आज भी कम ही
, पर इससे यह कोई नहीं कहता कि महात्मा ईसा को मानव
का ज्ञान न था।

मती सेंगर बम्बई की चालियों में कुछ स्त्रियों से मिलकर आई
र कहती थीं कि उन स्त्रियों के साथ बात करने पर उन्हें
गा कि उन स्त्रियों को यदि सन्तति-निग्रह के साधन प्राप्त
ं तो उन्हें बड़ी खुशी हो। ईश्वर जाने, वे वहाँ किस चाली
थीं, और उनका दुभाषिया कौन था! मगर गाँधीजी ने तो
ह कहा कि, "हिन्दुस्तान के गाँवों में आप जायें तो आपके
-निग्रह के इन उपायों की वे लोग बात भी सहन नहीं
। आप इनी-गिनी पढ़ी-लिखी स्त्रियों को आप भले ही
सकें, पर इससे आप यह न मान लें कि हिन्दुस्तान की
की ऐसी मनोवृत्ति है।"

किन श्रीमती सेंगर को ऐसा मालूम हुआ कि इस प्रतिरोध
गार्हस्थ्य जीवन में कलह बढ़ेगा, स्त्रियाँ अप्रिय हो जायँगी,
नी के विवाहित जीवन की सुगन्ध और सुन्दरता नष्ट हो

आयगी। बात तो यह थी कि इस प्रतिरोध से यह सब एक बात नहीं, पर बिना शरीर-सम्बन्ध का विवाहित जीवन ही हो जाता है, ऐसा वे मानती हैं। इसलिए शरीर-सम्बन्ध के वि यह विद्रोह की सलाह ही उनके गले नहीं उतरती। अनेक कुछ उदाहरण उन्होंने गाँधीजी के आगे रक्खे और कहा देखिए, इन पति-पत्नियों का जीवन अलग-अलग रहने से दुः मय होगया था, पर उन्होंने सन्तति-निग्रह करना सीखा, इससे वे लोग विवाहित जीवन का आनन्द भी उठा सके, उनका जीवन भी सुखी हुआ।" गाँधीजी ने कहा—"मैं भी पचासों उदाहरण दूसरे प्रकार के दे सकता हूँ। शुद्ध संयमी से कभी दुःख की उत्पत्ति नहीं हुई, किन्तु आत्म-संयम ख खरी वस्तु है। आत्म-संयम रखनेवाला व्यक्ति अपने जीवन को जबतक संयत नहीं करता, तबतक उसमें वह सफल नहीं सकता। मेरा तो यह विश्वास है कि आपने जो उदा दिये हैं वे तो संयम-हीन, बाह्य त्याग करके अन्तर से विष सेवन करनेवालों के उदाहरण हैं। उन्हें यदि मैं सन्तति-निग्र उपायों की सिफारिश करूँ तो उनका जीवन तो और भी हो जाय।"

कुँवारे स्त्री-पुरुषों के लिए तो यह साधन नरक का द्वार देंगे। इस विषय में गाँधीजी को शंका ही नहीं थी। उन्होंने अनुभव भी सुनाये, मगर श्रीमती सेंगर की चर्चा की बातची यह जान पड़ा कि वे कुँवारे पुरुषों के लिए इन उपाय सिफारिश नहीं कर रही हैं। उन्होंने तो इतना पूछा कि "विवा के लिए भी क्या आप इन साधनों की अनुमति नहीं देते?" ग जी ने कहा, "नहीं, विवाहितों का भी यह साधन सत्यानाश करें श्रीमती सेंगर ने अपने लेख में जो दलील इसके विरुद्ध रक्ख

यह दलील उन्होंने बातचीत में नहीं दी थी। वे लिखती हैं—"यदि सन्तति-निग्रह के साधन से ही मनुष्य अत्यन्त विषयी अथवा व्यभिचारी बनते हों, तब तो गर्भाधान के बाद के नौ मास में भी अतिशय विषय और व्यभिचार के लिए क्या गुजाइश नहीं रहती ?" दलील की खातिर तो यह दलील दी जा सकती है, पर मालूम होता है कि श्रीमती सेंगर ने इस बात का विचार नहीं किया कि स्त्री-जाति के लिए ही यह दलील कितनी अपमानजनक है। बहुत ही दबाई हुई अथवा एकाध अत्यन्त विषयान्ध स्त्री को छोड़कर क्या कोई गर्भवती स्त्री अपने पति की भी विषय वासना के वश होती है ?"

मगर बात असल में यह थी कि श्रीमती सेंगर और गाँधीजी की मनोवृत्तियों में पृथ्वी-आकाश का अन्तर था। बातचीत में विषयेच्छा और प्रेम की चर्चा चली। गाँधीजी ने कहा कि विषयेच्छा और प्रेम ये दोनों अलग-अलग चीजें हैं। श्रीमती सेंगर ने भी यही बात कही। गाँधीजी ने अपने अनुभव का प्रकाश डालकर कहा कि "मनुष्य अपने मन को चाहे जितना धोखा दे, पर विषय विषय है, और प्रेम प्रेम है। कामरहित प्रेम मनुष्य को ऊँचा उठाता है, और काम-वासना वाला सम्बन्ध मनुष्य को नीचे गिराता है।" गाँधीजी ने सन्तानोत्पत्ति के लिए किये हुए धर्म्य सम्बन्ध का अपवाद कर दिया। उन्होंने दृष्टान्त देकर समझाया कि "शरीर-निर्वाह के लिए हम जो कुछ खाते हैं, वह अस्वाद है, आहार है, पर जो जीभ को प्रसन्न करने के लिए खाते हैं वह आहार नहीं, अस्वाद नहीं, किन्तु स्वाद है और विहार है। हलवा या पकवान या शराब मनुष्य भूख या प्यास बुझाने के लिए नहीं खाता-पीता, किन्तु केवल अपनी विषय-लोलुपता के वश होकर ही इन चीजों को खाता-पीता है। इसी तरह शुद्ध सन्तानोत्पत्ति के

उनका सारा सौन्दर्य और बल केवल शारीरिक सुन्दरता ही में है ? पुरुषों की लालसा-भरी विकारी आँखों को तृप्त करने की क्षमता में ही है ? इस पत्र की लेखिकायें पूछती हैं और उनका पूछना बिलकुल न्याय है कि क्यों हमारा हमेशा इस तरह वर्णन किया जाता है, मानों हम कमजोर और दब्बू औरतें हों जिनका कर्तव्य केवल यही है कि घर के तमाम हलके-से हलके काम करती रहें और जिनके एकमात्र देवता उनके पति हैं। जैसी वे हैं वैसी ही उन्हें क्यों नहीं बताया जाता ? वे कहती हैं, 'न तो हम स्वर्ग की अप्सरायें हैं, न गुड़िया हैं, और न विकार और दुर्बलताओं की गठरी ही हैं। पुरुषों की भाँति हम भी तो मानवप्राणी ही हैं। जैसे वे, वैसी ही हम भी हैं। हम में भी आजादी की वही आग है।' मेरा दावा है कि उन्हें और उनके दिल को मैं काफी अच्छी तरह जानता हूँ। दक्षिण अफ्रीका में एक समय मेरे आस-पास स्त्रियाँ ही-स्त्रियाँ थीं। मर्द सब उनके जेलों में चले गये थे। आश्रम में कोई ६० स्त्रियाँ थीं। और मैं उन सब लड़कियों और स्त्रियों का पिता और भाई बन गया था। आपको सुनकर आश्चर्य होगा कि मेरे पास रहते हुए उनका आत्मिक बल बढ़ता ही गया, यहाँतक कि अन्त में वे सब खुद-ब-खुद जेल चली गईं।

मुझसे यह भी कहा गया है कि हमारे साहित्य में स्त्रियों का आमतौर देवता के सदृश वर्णन किया गया है। मेरी राय में इस तरह का चित्रण भी बिलकुल गलत है। एक सीधी-सी कसौटी मैं आपके सामने रखता हूँ। उनके विषय में लिखते समय आप उनकी किस रूप में कल्पना करते हैं ? आपको मेरी यह सूचना है कि आप कागज पर कलम चलाना शुरू करें, उससे पहले यह खयाल करलें कि स्त्री-जाति आपकी माता है। और मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आकाश से जिस तरह इस प्यासी धरती

: सुन्दर शुद्ध जल की वर्षा होती है, इसी तरह आपकी लेखनी
मी शुद्ध-से-शुद्ध साहित्य-सरिता बहने लगेगी। याद रखिए,
5 स्त्री आपकी पत्नी बनी, उससे पहले एक स्त्री आपकी माता
। कितने ही लेखक स्त्रियों की आध्यात्मिक प्यास को शान्त
ते के बजाय उनके विकारों को जागृत करते हैं। नतीजा
: होता है कि बेचारी कितनी ही भोली स्त्रियाँ यही सोचने में
ना समय बरबाद करती रहती हैं कि उपन्यासों में चित्रित
ायों के वर्णन के मुक़ाबले में वे किस तरह अपने को सजा और
ा सकती हैं। मुझे बड़ा आश्चर्य होता है कि साहित्य में उनका
ा-शिख-वर्णन क्या अनिवार्य है ? क्या आपको उपनिषदों,
ान और बाइबिल में ऐसी चीजें मिलती हैं ? फिर भी क्या
पको पता नहीं कि बाइबिल को अगर निकाल दें तो अंग्रेजी
ा का भण्डार सूना हो जायगा। उनके बारे में कहा जाता है
उसमें तीन हिस्से बाइबिल है और एक हिस्सा शेक्सपियर।
ान के अभाव में अरबी को सारी दुनिया भूल जायगी। और
ासीदास के अभाव में ज़रा हिन्दी की कल्पना तो कीजिए।
ाजकल के साहित्य में स्त्रियों के विषय में जो-कुछ मिलता है,
ी बातें आपको तुलसी-कृत रामायण में मिलती हैं ?"

सस्ता साहित्य मण्डल

'सर्वोदय साहित्य माला' की पुस्तकें

[नोट— × चिन्हित पुस्तकें अप्राप्य हैं]

१—दिव्य जीवन ।=)
२—जीवन-साहित्य १।)
३—तामिल वेद ।।।)
४—व्यसन और व्यभिचार ।।।=)
५—सामाजिक कुरीतियाँ × (जब्त) ।।।)
६—भारत के स्त्री-रत्न (तीन भाग) ३)
७—अनोखा × १।=)
८—ब्रह्मचर्य-विज्ञान ।।।=)
९—यूरोप का इतिहास २)
१०—समाज-विज्ञान × १।।)
११—खद्दर का सम्पत्ति शास्त्र × ।।।=)
१२—गोरों का प्रभुत्व × ।।।=)
१३—चीन की आवाज़ × ।-)
१४—दक्षिण अफ्रिका का सत्याग्रह १।)
१५—विजयी बारडोली × २)
१६—अनीति की राह पर ।।=)
१७—सीता की अग्नि-परीक्षा ।-)
१८—कन्या शिक्षा ।)
१९—कर्मयोग ।=)
२०—कलवार की करतूत =)
२१—व्यावहारिक सभ्यता ।।)
२२—अँधेरे में उजाला ।।)
२३—स्वामीजी का बलिदान ×
२४—हमारे ज़माने की गुलामी (जब्त)
२५—स्त्री और पुरुष
२६—सफाई
२७—क्या करें ?
२८—हाथ की कताई-बुनाई ×
२९—आत्मोपदेश
३०—यथार्थ आदर्श जीवन ×
३१—जब अंग्रेज नहीं आये
३२—गंगा गोविंदसिंह ×
३३—श्रीरामचरित्र
३४—आश्रम-हरिणी
३५—हिंदी मराठी कोष ×
३६—स्वाधीनता के सिद्धान्त ×
३७—महान् मातृत्व की ओर ।।
३८—शिवाजी की योग्यता
३९—तरंगित हृदय
४०—नरमेध
४१—दुखी दुनिया
४२—जिन्दा लाश
४३—आत्म-कथा (गाँधीजी) १)
४४—जब अंग्रेज आये × (जब्त) १।
४५—जीवन विकास

सानोंकाविगुल × (अप्राप्य) =) ७०—बुद्ध-वाणी ||=)
फाँसी ! |=) ७१—काँग्रेस का इतिहास २||) —)
अनासक्तियोग-गीताबोध ७२—हमारे राष्ट्रपति १)
(श्री० नवजीवन माला) ७३—मेरी कहानी (ज नेहरू) २||)
वर्ण विहान × (अप्राप्य) |=) ७४—विश्व-इतिहास की झलक
मराठों का उत्थान पतन २||) (जवाहरलाल नेहरू) ८) =)
बापू के पत्र १) ७५—पुत्रियाँ कैसी हों ? ||)
जगत × |=) ७६—नया शासन विधान-१ |||)
युगधर्म × (अप्राप्य) १=) ७७—(१) गाँवों की कहानी ||)
स्त्री-समस्या १|||) ७८—(२ ६) महाभारत के पात्र ||)
विदेशी कपड़े का ७९—सुधार और सगठन १)
मुकाबिला × ||=) ८०—(३) संतवाणी ||)
चित्रपट |=) ८१—विनाश या इलाज |||)
राष्ट्रवाणी × ||=) ८२—(४) अंग्रेजी राज्य में
इंग्लैण्ड में महात्माजी |||) हमारी आर्थिक दशा ||)
रोटी का सवाल १) ८३—(५) लोक-जीवन ||)
दैवी सम्पद् |=) ८४—गीता-मंथन १||)
जीवन-सूत्र |||) ८५—(६) राजनीति प्रवेशिका ||)
हमारा कलंक ||=) ८६—(७) अधिकार और कर्तव्य ||)
बुदबुद ||) ८७—गांधीवाद समाजवाद |||)
संघर्ष या सहयोग ? १||) ८८—स्वदेशी और ग्रामोद्योग ||)
गांधी-विचार-दोहन |||) ८९—(८) सुगम चिकित्सा ||)
एशिया की क्रान्ति × ९०—(१०) पिता के पत्र पुत्री
(अप्राप्य) १|||) के नाम (ज० नेहरू) ||)
हमारे राष्ट्र निर्माता २ १||) ९१—महात्मा गांधी |=)
स्वतन्त्रता की ओर १||) ९२—ब्रह्मचर्य ||)
आगे बढ़ो ! ||) ९३—हमारे गाँव और किसान ||)

'नवजीवनमाला' की पुस्तकें

१ गीताबोध—महात्मा गांधी कृत गीता का सरल तात्पर्य
२ मङ्गल प्रभात—महात्मा गांधी के जेल से लिखे सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य आदि व्रतों पर प्रवचन
३ अनासक्तियोग—महात्मा गांधी कृत गीता की टीका—श्लोक सहित ≡) सजिल्द ।)
४ सर्वोदय—रस्किन के Unto This Last का गांधीजी द्वारा किया गया रूपान्तर—
५ नवयुवकों से दो बातें—प्रिंस क्रोपाटकिन के 'A word to Young men' का अनुवाद—
६ हिन्द-स्वराज्य—महात्माजी की भारत की मौजूदा समस्या पर लिखी प्राचीन पुस्तक जो आज भी ताजी है—
७ छूतछात की माया—खानपान-सम्बन्धी नियमों व व्यवहार के बारे में श्री आनन्द कौसल्यायन की दिलचस्प पुस्तक
८. किसानों का सवाल—ले० डॉ० अहमद की इस छोटी-सी पुस्तिका में भारत के इन ग़रीब प्रतिनिधियों के सवाल पर बड़ी सुन्दरता से विचार किया गया है। हरेक भारतीय को इसको समझना और पढ़ना चाहिए।
९ ग्राम-सेवा—आजकल ग्राम सेवा की ही चर्चा सुनाई देती है—पर यह ग्राम-सेवा किस प्रकार हो—इस पर गांधीजी ने इसमें विशद प्रकाश डाला है।
१० खादी और गादी की लड़ाई—आचार्य विनोबा के ग्राम और समाज-सेवा-सम्बन्धी लेख और व्याख्यान का संग्रह

मधुमक्खी पालन—श्री शां० मो० चित्रे ने इसमें हमारे एक भूले हुए ग्रामोद्योग पर वैज्ञानिक दृष्टि से प्रकाश डाला है और बताया है कि हम इसे किस प्रकार साधें। =)

गावों का आर्थिक सवाल—गाँवों की आर्थिक समस्या को समझानेवाली पुस्तक ≡)

राष्ट्रीय गायन—चुने हुए बढ़िया देशभक्तिपूर्ण राष्ट्रीय गायन =)

खादी का महत्व—खादी की महत्ता के बारे में कई पहलुओं पर विचार। बम्बई सरकार के पार्लमेण्टरी सक्रेटरी श्री गुलजारी लाल नन्दा द्वारा लिखित। —)॥

सामयिक साहित्य माला

कॉंग्रेस-इतिहास (१६३५-३६) ।—)

दुनिया का रंगमंच (जवाहरलाल नेहरू) =)

हम कहाँ हैं ? " =)

आगे होनेवाले प्रकाशन

१ जीवन शोधन—किशोरलाल मशरूवाला
२. समाजवाद पूँजीवाद—
३ फेसिस्टवाद
४ नया शासन विधान—(फेडरेशन)
५ हमारी आजादी की लड़ाई (२ भाग)—(हरिभाऊ उपाध्याय)
६ सरल विज्ञान—१ (चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय)
७ गांधी साहित्य माला—(इसमें गाँधीजी के चुने हुए लेखों का संग्रह होगा—इस माला में २० पुस्तकें निकलेंगी। प्रत्येक का दाम ॥) होगा। पृष्ठ सं० २००-२५०)
८ टाल्स्टाय ग्रन्थावलि—(टाल्स्टाय के चुने हुए निबन्धों, लेखों और कहानियों का संग्रह। यह १५ भागों में होगा। प्रत्येक का मूल्य ॥), पृष्ठ संख्या २००-२५०)
९ बाल साहित्य माला—(बालोपयोगी पुस्तकें)
१० लोक साहित्य माला—(इसमें भिन्न-भिन्न विषयों पर २० पुस्तकें निकलेंगी। मूल्य प्रत्येक का ॥) होगा और पृष्ठ संख्या २००-२५० होगी। इसकी ८ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।)
११ नवराष्ट्र माला—इसमें संसार के प्रत्येक स्वतन्त्र राष्ट्रनिर्माताओं और राष्ट्रों का परिचय है। इस मालाकी पुस्तकें २००-२५० पृष्ठों की और सचित्र होंगी। मूल्य ।॥)
१२. नवजीवन माला—छोटी-छोटी नवजीवनदायी पुस्तकें।

सस्ता साहित्य मण्डल
सर्वोदय साहित्य माला नवासीवाँ ग्रन्थ

[लोक साहित्य माला आठवीं पुस्तक]

[८९ ८]

सुगम चिकित्सा

लेखक
श्री चतुरसेन शास्त्री

सस्ता साहित्य मण्डल
दिल्ली लखनऊ

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री,
सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली।

संस्करण
जून १९३९ २०००
मूल्य
आठ आना

मुद्रक
हरनामदास गुप्त
भारत प्रिंटिंग प्रेस
नया बाजार, दिल्ली

तीन बातें

—इस किताब में सिर्फ वही बातें बताई गई हैं जिन्हें जानकर देहात के साधारण पढ़े लिखे भाई अपने गाँव की अच्छी सेवा कर सकते हैं। इसमें ऐसी कोई दवा नहीं है जो मामूली क़स्बों में आसानी से न मिल सके—न कोई ऐसी पेचीदा बात ही है जो समझ में न आ सके।

—इस किताब में कोई दवा या युक्ति ऐसी नहीं है जो किसी भी हालत में (ग़लत इस्तैमाल की जाने पर भी) किसी क़िस्म का नुक़सान कर सके। इस प्रकार की जोखिम का पूरा ख़याल रक्खा गया है।

—इस किताब की भाषा बहुत सीधी-सादी है और दवाइयों तथा बीमारियों के नाम भी बहुत सरल हैं। सब दवाइयाँ प्रचलित नामों से या तो जंगलों में या बाजारों में मिल जाती हैं। जो बीमारियाँ पेचीली हैं उनकी चर्चा संक्षेप में की गई है।

जीवन इन्स्टीटयूट
शाहदरा, दिल्ली
ता० २०-५-३९

श्रीचतुरसेन वैद्य

विषय-सूची

हमारे रहने का घर	—३
तन्दुरुस्ती	—१०
दिन और रात के काम	—१२
ऋतुचर्या	—२१
तत्व की बातें	—२५
रोगी-परीक्षा	—३१
रोगी की टहल	—३५
फ़ायदेमंद इलाज	—४०
बुखार और उसका इलाज	—४६
कीड़ों की बीमारियाँ	—५३
११ चमड़ी की बीमारियाँ	—६५
१२ छाती और गले की बीमारियाँ	—८२
१३ पेट की बीमारियाँ	—८८
१४ बड़ी-बड़ी बीमारियाँ	—९४
१५ स्त्रियों की बीमारियाँ	—११२
१६ बच्चों की बीमारियाँ	—११८
१७ चोट और अकस्मात्	—१२५
१८. तेल और मरहम	—१४५
१९. कुछ अंग्रेज़ी दवाइयाँ	—१४८
२० परिभाषा संबंधी ख़ास-ख़ास बातें	—१५४
२१ धातुओं की भस्म	—१६३
२२ काम के शास्त्रीय नुसख़े	—१७३
२३ छोटे बच्चों की परवरिश के सम्बन्ध में	—१८८

चित्र-सूची

हमारे शरीर का ढांचा

मस्तिष्क

चित्र नं० १ सेंकने के लिए कपड़ा गरम करने की विधि

चित्र ,, २ कमर सेंकने की विधि —

चित्र ,, ३ पैर सेंकने की विधि —

चित्र ,, ४ कूल्हे के दर्द में सेंकने की विधि —

चित्र ,, ५ एनीमा देने की विधि —

चित्र ,, ६ खून निकलने पर घाव वाला अंग हृदय से ऊपर रहना चाहिए। इससे घाव से खून कम बहेगा। —

चित्र ,, ७ घाव वाला अंग 'पैर'—हृदय से ऊपर रहना चाहिए, इससे खून कम बहेगा। —

चित्र ,, ८ घाव का खून बन्द करने की विधि —

चित्र ,, ९ से १० तक पट्टियाँ बांधने के जुदे-जुदे तरीके —११२

सुगम चिकित्सा

हमारे शरीर का ढांचा

: १ :
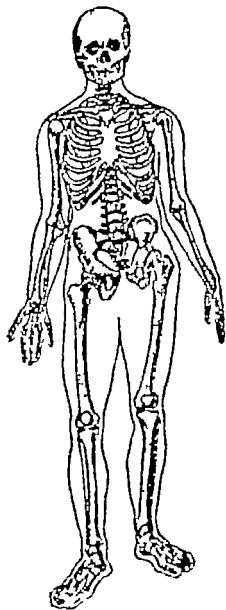
हमारे रहने का घर

यह शरीर ही हमारे रहने का घर है। इस घर को स्वयं ईश्वर
बनाया है, इसकी कारीगरी अद्भुत है, इसमें निरालापन यह है
यह घर हमारे साथ-साथ चलता फिरता है और हम इसमें से
र नहीं आ जा सकते। यह दुनिया के सब घरों मे छोटा है।
दुमंजिला है और उसके ऊपर एक गुम्बज है। फिर भी उसकी
ी ऊँचाई सिर्फ चार हाथ ही है। इस घर में एक मजेदार
ेषता यह भी है कि जैसे और घरों में कई आदमी रह सकते
इसमें कोई नहीं रह सकता, सिर्फ मैं ही रह सकता हूँ। यह घर
न के दामों नहीं बेचा जा सकता, न दूसरे के काम आ सकता
जब हम उसमें से निकल जाते हैं तो वह गिर पड़ता है। और
लोग या तो उसे जला देते हैं या धरती में गाड़ देते हैं।

इस घर की दो खिड़कियाँ हैं, जो सुबह धोकर साफ़ की जाती
रात को किवाड़ बन्द कर लिये जाते हैं उनमें कोई चटखनी
ी है। घर के सामने एक दर्वाजा है और दो दर्वाजे अगल-बगल

हैं। सामने का दर्वाजा दो किवाड़ों से जो ऊपर-नीचे हैं बन्द हो जाता है। बाहर की खबर हम अगल-बगल के दर्वाजों में सुनते हैं। घर के आगे दो चौकीदार हरदम खड़े रहते हैं। इस घर में एक चक्की भी है जिसमें खाना पीसा जाता है, और एक कुआं है जिससे घर के सब हिस्सों में पानी पहुँचता है। इसके सिवा थोड़े के दो छोटे-छोटे तार हैं जो घर के हर हिस्से में खबर पहुँचाते हैं।

इस घर की ठठरी हड्डियों की बनी है। वह बहुत मजबूत है और काफी बोझ उठा सकती है। इस ठठरी के बिना बाग नहीं

घर की ठठरी

उठ सकते थे। ये हड्डियाँ दो चीजों से बनी हैं। एक तो एक प्रकार का चूना है दूसरी एक लचीली चीज है। हड्डी को अगर जला दो तो लचीली चीज जल जायगी, चूना ही रह जायगा। अगर हड्डी को तेज सिरके में डाल दो तो सिरका चूने को खा जायगा और फिर हम हड्डी को मोड़ सकते हैं। बुड्ढों की बनिस्बत बच्चों की हड्डियों में चूना कम होता है। इसी से बालकों को चोट कम लगती है। और बूढ़े की हड्डी अगर बहुत से टूट जाय तो फिर मुश्किल से जुड़ती है। बहुत-सी हड्डियाँ भीतर से खोखली होती हैं। अगर ये ठोस होतीं तो बहुत भारी होतीं। ये गेहूँ की नरई के समान ही हैं। इसीसे मजबूत और हल्की हैं। कहीं-कहीं भीतरी खोखली जगह में घी के समान एक मोटा गूदा भरा रहता है इसका पोषण खून से होता है। किसी-किसी हड्डी में खून के भीतर जाने की नालियाँ होती हैं, पर हड्डियों के

हुत कम खून की जरूरत होती है। पूरे आदमी की हड्डियाँ अगर
ला ली जाँय तो उनका वजन ४ ५ सेर ही होता है।

दोनों टाँगें घर के खम्भे हैं। इनके तीन हिस्से हैं। ऊपर घुटनों
क जाँघ है। दूसरा हिस्सा टखनों तक टाँग है। तीसरा हिस्सा
पाँव है। सारे घर में सबसे बड़ी हड्डी जाँघ में
है। उसके ऊपर का हिस्सा गोल है जो कूल्हे के
कंगूरे में बैठ जाता है। नीचे वाला सिरा टाँग की बड़ी हड्डी
सम्हाला जाता है। टाँग में दो लम्बी हड्डियाँ हैं जिनमें आगे
की पतली और पीछे वाली मोटी है। इनके सिवा एक घुटने
जुड़ी है जो छोटी-सी गोल हड्डी है। यही टाँग के मुड़ने म
द करती है। दोनों पाँवों में कुल ६० हड्डियाँ हैं, जो एक दूसरे से
ी हैं। अगर पाँव में एक ही हड्डी होती तो न तो टाँग मुड़
ती, न हम उछल-कूद सकते।

घर के बीच का भाग एक बड़े भारी खम्भे पर उठा है जिसे
रीढ़ की हड्डी कहते हैं। यह २४ छोटी-छोटी हड्डियों से
जंजीर की तरह जुड़ी हैं और मुड़ सकती हैं।
यह बीच में से खोखली होती है।

दोनों हाथ इस घर के पहरेदार हैं। और उसकी रखवाली
करते हैं। बाँहों की हड्डियाँ लगभग टाँगों ही
जैसी और वे इस कारीगरी से जोड़ी गई हैं कि
सानी से मुड़ सकती हैं तथा बोझ उठा सकती हैं।

खोपड़ी घर का गुम्मज है। उसमें घर की सबसे कीमती

के खम्भे

ा खम्भा

रेदार

चीज दिमाग रक्खी है। दाँतों के अलावा सिर में २२ हड्डियाँ और हैं। कपाल का आकार अंडे के समान है और

सर का गुम्मज

हड्डी के जोड़ दानेदार हैं। अज्ञानी लोग इन्हें ब्रह्मा के लिखे लेख बताते हैं। यह गुम्मज गले पर रखा है। धड़ की ऊपरवाली ७ हड्डियां ही को गला कहते हैं।

इस घर में १८० ऐसी चूलें हैं जिनपर जुड़ी हुई हड्डियाँ आसानी से इधर उधर घूम सकती हैं। साथ ही हड्डियाँ मजबूती से बाँध कर रक्खा गई हैं कि कोई इधर उधर नहीं हो सकती। इन चूलों के पास में

चूल और बांध

अद्भुत थैली है जिसमें चिकनाई भरी रहती है और उसमें चूल रात-दिन चिकनी बना रहती है, रगड़ से घिसती नहीं।

सिवाय दाँतों के सारे घर की हड्डियाँ पतले गमड़े से ढकी हुई हैं। दूसरा ढकना मांस के पट्टे हैं। ये ४०० हैं। इनका रंग लाल है।

ढकना

इनमें चारों ओर लोहू बहता है। ये इस तौर से बने हैं जैसे बहुत-सा सूत इकट्ठा कर रखा हो। इनके अनेक रूप हैं। कुछ चपटे, कुछ लम्बे और कुछ नुकीले होते हैं। ये दो प्रकार के हैं। एक वे जो खुद ही हिलत-चलत रहते हैं जैसे दिल और फेफड़ों में। हम सोते हैं तब भी ये चलते रहते हैं। कुछ हमारे हिलाने से हिलते हैं। घर का चलना-फिरना उठना बैठना, फिरना इन्हीं पट्ठों से पूरा करता है। मिहनत करने से ये पट्टे ताकतवर और बेकार बैठने से कमजोर हो जाते हैं। चमड़ा कोमल और चमकीला होता है। उसमें ऐसी चैतन्यता है कि

मक्खी भी उसपर बैठ जाय तो हमें मालूम हो जाती है। इस चमड़े में दो अस्तर हैं। ऊपर का अस्तर बहुत पतला है, उसका काम नीचे के अस्तर की रक्षा करना है। इसीमें जलने से फफोला पड़ता है। यह हमेशा नई बनती जाती है और ऊपर से घिसती जाती है। मिहनत करने से यह मोटी बन जाती है। इसीसे नाखून भी बनते हैं। इसी के नीचे मोटी कोमल चमड़ी है। इसीमें छूने की ताकत है। पसीने की थैलियाँ इसीमें हैं। मिल्ली और चमड़े के बीच में वह जगह है जहाँ देह का रंग रहता है। चमड़े में लाखों छेद हैं जिनका काम पसीने के साथ मैल और जहर को शरीर से बाहर निकालना। ये छेद इतने छोटे-छोटे हैं कि चमड़े पर १ रुपया रखा जाय तो उसके नीचे ३ हजार छेद आजाते हैं। जो आदमी देह को मैला रखते हैं उनके ये छेद रुक जाते हैं और वह बीमार हो जाता है। चमड़ी के ऊपर हथेली और तलुओं को छोड़कर छोटे-छोटे बाल होते हैं। सिर पर और पुरुषों की डाढ़ी मूछों पर ज्यादा हो जाते हैं। इनकी जड़ें चमड़ी में घुसी होती हैं और देह की नालियों से वे पाले जाते हैं।

इस देहरूप घर में छाती और पेट की कोठरियों में बहुत-सा सामान भरा हुआ है। यह सब सामान बड़े काम का है। इन्हींसे घर का सारा कारबार चलता है।

घर का सामान

इनमें २ फेफड़े, १ दिल, श्वास की नाली, खाने की नाली। जिगर, तिल्ली, गुर्दे, मसाने, गर्भाशय, छोटी आंत, बड़ी आंत आदि

आदि खास हैं। जिनका खुलासा वर्णन हमने अन्यत्र किया है। इन सबको अत्यन्त सावधानी से रखा गया है।

दाँत हमारे घर की चक्की हैं। ये ३२ हैं। छोटे बच्चों के दाँत नहीं होते क्योंकि उनकी उनको ज़रूरत नहीं रहती। बच्चे ज्यों-ज्यों बड़े होते जाते हैं, दाँत निकलते जाते हैं। पहले आगे के निकलते हैं फिर पीछे के। परन्तु बच्चों का आपका छोटा होता है। जब वह बड़ा हो जाता है तब यह छोटी चक्की काम नहीं देती। सो ये दूध के दाँत गिर जाते हैं और नये दाँत निकलते हैं जो जीवन-भर काम देते हैं। बच्चों के दाँत बीस होते हैं। बड़ों के ३२ होते हैं जो २० वर्ष की आयु में पूरे हो जाते हैं। दाँतों को बचपन ही से साफ़ रखने की आदत जिनको नहीं होती, व जल्द ही दाँतों को खो देते हैं और तकलीफ़ पाते हैं।

घर की चक्की

इस घर का तारघर मस्तिष्क में है। यह खोपड़ी में रखा है। इसकी शकल अखरोट के गूदे के समान है। रीढ़ की हड्डी में होकर इस में दो तार जुड़े हुए हैं। एक संवाद मस्तक तक पहुँचाता है, दूसरा मस्तक से संवाद ले आता है। इन तारों के जाल सारे शरीर में फैले हुए हैं। अगर कहीं सुई चुभाई जाय तो किसी-न-किसी तार में ज़रूर चुभ जायगी। सोचन-विचारने की शक्ति इसी में है। इसी में ख़राबी आने से आदमी पागल हो जाता है। अगर किसी इन्द्री का कोई तार टूट जाता है तो उसमें छूने की शक्ति नहीं रहती।

तार घर

हमारे रहने का घर

ड़कियाँ

हमारी दोनों आँखें इस घर की खिड़कियाँ हैं, ये बड़ी बारीकी से बनी हैं और हरेक चीज़ इन्हींके द्वारा हम देख लेते हैं।

श पाने के द्वार

सन्देश पाने के द्वार दो हैं, जो कान कहाते हैं। इनसे शब्द को हम पहचानते हैं। कान में एक बारीक झिल्ली का पर्दा है जिसमें शब्द टकराता है तो हमें का ज्ञान हो जाता है। कान में तिनका देने से यह पर्दा फट ता है और हम बहरे हो जाते हैं।

र का बड़ा दर्वाज़ा

घर का बड़ा दर्वाज़ा मुँह है। इसीसे भोजन भीतर आता है, यह ज़ा बन्द रहे तो शरीर गिर जायगा। इसके भीतर स्वाद को परखनेवाली जीभ है। जब खाना दाँतों की चक्की में पीसकर मुँह की लार से तर किया ता है तो जीभ के सहारे गीला होकर गले से उतरकर भीतर जाता । अच्छे भोजन की जाँच तीन चौकीदार करते हैं। पहले आँख ख लेती हैं, फिर नाक सूँघ लेता है, और तब जीभ परख लेती है, ब खाना हम पसन्द करते हैं।

इस तरह यह कारीगरी का घर है, जिसका कोई मोल-तोल नहीं हो सकता है।

: २ :

तन्दुरुस्ती

जिन्दगी दुनिया की सबसे बड़ी न्यामत है। पर उसका सच्चा आनन्द तभी है जब तन्दुरुस्ती ठीक है। तन्दुरुस्ती ठीक न रहने से जिन्दगी का मजा किरकिरा हो जाता है। ऐसा आदमी न तो सुख भोग सकता है न कोई काम-काज ही कर सकता है। वह खुद तो तकलीफ पाता ही है, घर के दो-चार आदमी भी उसकी टहल में लगे रहते हैं और काम का हर्ज होता है। इसके सिवा रोगी आदमी से दूसरों को भी खतरा रहता है, क्योंकि कुछ रोग छूत के होते हैं और उड़कर दूसरों को लग जाते हैं। फिर तन्दुरुस्ती जब एक बार खराब हो जाती है तो फिर उसका सुधार मुश्किल से होता है। रुपया भी खर्च होता है और हर्जा भी होता है, फिर भी कभी-कभी पहले जैसी तन्दुरुस्ती नहीं मिलती। इसलिए हरेक आदमी को अपनी तन्दुरुस्ती का ख्याल रखना चाहिए।

बेसमझ आदमी यह कहा करते हैं कि बीमारी पर अपना बस नहीं है, देवताओं के कोप से बीमारी होती है, इसीसे वे रोगी होने पर दवा-दारू तो नहीं करते देवी-देवताओं की पूजा करते हैं। या रोग को भूत प्रेत का असर समझ कर स्याने दिखाने में

ाड़-फूक कराते हैं और मुफ्त में अपनी जान देते हैं। उन्हें जानना
ाहिए कि बीमारी पैदा होने के कई अलग-अलग कारण होते हैं।
हुत-सी बीमारी तो खास किस्म के कीड़ों से होती हैं। ये कीड़े
इन बारीक होते हैं कि आँखों से नहीं दीखते। ये या तो खाने
ने की चीजों के साथ या साँस के साथ पेट में पहुँच जाते हैं
ौर रोग पैदा कर देते हैं। कुछ बीमारियाँ खान पान की गड़बड़ी
ौर रहन-सहन की खराबी से होती हैं। इसलिए जरूरी है कि
न्दुरुस्ती कायम रखने के लिए नीचे लिखी आठ बातों का पूरा
ा खयाल रखा जाय—

१—हल्का ताजा सादा भोजन ठीक समय पर करो और साफ पानी पियो।

२—खुली हवा और धूप में रहो।

३—ठीक समय पर पाखाना पेशाब जाओ। और आँख नाक को साफ रखो—अच्छी तरह स्नान करो।

४—सर्दी और गर्मी के अचानक हमले से शरीर को बचाओ।

५—धूल-गर्द, भीड़भाड़ और गंदगी से दूर रहो।

६—खूब मिहनत करो और खूब आराम करो। आराम और काम का समय पक्का करलो।

७—किसी क़िस्म का नशा न करो, भंग, शराब, गांजा, सुलफा, अफीम, चाय, चाट पानी और मिर्च-मसाला से दूर रहो।

८—बीमार पड़ने पर पूरा आराम करो और समझदार डाक्टर या वैद्य से इलाज कराओ।

: ३ :

दिन और रात के काम

हरएक तन्दुरुस्त आदमी को ४ घड़ी रात रहते जागना और

जागना

परमेश्वर का नाम लेना चाहिए। फिर और बिस्तर छोड़कर पाखाने जाना चाहिए।

अगर गाँव बस्ती हो तो १ मील दूर जंगल में जाना चाहिए। यदि घर में पाखाने हों और वे पक्के हों तो फिनाइल से धुलवाने चाहिएँ और कच्चे हों तो साफ होने के बाद गड्ढे में सूखी मिट्टी डाल देना चाहिए। पाखाने जाने के बाद मैले पर राख छिड़क देना चाहिए, जिससे मक्खी न बैठे और बदबू न फैले। आब-दस्त के लिए कम-से-कम १।। सेर पानी

शौच

जरूर ले जाना चाहिए। पानी ताजा रखना चाहिए। इस्तिंजा [illegible] पर अच्छी तरह उंगली से गुदा के भीतर तक सफाई करनी चाहिए। जिससे मल गुदा में लगा न रह जाय। लिंगेन्द्रिय की खाल को उलटकर उसका मैल खूब अच्छी तरह साफ करना चाहिए। ऐसा न करने से प्रमेह की बीमारी हो जाती है। [illegible]

[इ]स ढङ्ग से पाखाना-दस्त लेना चाहिए कि मैला उनकी जननेन्द्रिय [की] ओर न लग जाय। उन्हें गुदा-द्वार साफ करने के बाद भली [भाँति] जननेन्द्रिय को भी पानी से साफ करना चाहिए। तन्दुरुस्त [आद]मी का मल बँधा हुआ, चिकना और अक्सर पीला होता है [और] एक ही बार में आसानी से निकल जाता है, कोठा साफ और [हल्का] हो जाता है। सुबह का पेशाब भी हल्का-साफ सुनहरे रङ्ग [का] होता है।

[मि]ट्टी से और मिल सके तो साबुन से अच्छी तरह हाथ साफ [कर]के मुँह धोना और कुल्ला-दाँतन करना चाहिए। इस काम में [ह]ाथ धोना सबसे ज़्यादा ध्यान देने की बात दाँतन या मंजन है। हरेक तन्दुरुस्त आदमी के दाँत मोती स[मान स]फ़ेद और चमकदार और लोहे के समान मज़बूत होने चाहिएँ। [ऐसा त]भी हो सकता है जब वे साफ रहेंगे। क्योंकि दाँत गन्दे रहने [से द]ाँतों की जड़ में कीड़ा लग जाता है। खाना खाने के बाद [अच्]छी तरह कुल्ला न करने से उनकी दराजों में अन्न का जूठन [र]ह जाता है जो रात को सड़ जाता है। सुबह यदि दाँत ठीक [तौ]र पर साफ न किये गये तो कीड़ा बनकर दाँतों की जड़ों को [ख]ा डालता है। दाँतन नीम, बबूल, खैर, महुआ, मौलसिरी की [क]रनी चाहिए। वह कनी उँगली के बराबर मोटी और बारह [अं]गुल लम्बी होनी चाहिए। दाँतन इस होशियारी से दाँतों पर [र]गड़ना चाहिए कि जिससे मसूढ़े छिल न जायँ। दाँतन कर चुकने [पर] उसे चीरकर उससे जीभ साफ करनी चाहिए। दाँतन अगर

न मिल सके तो उपले की राख या नरम कोयला रगड़कर उं
दाँत साफ करना चाहिए और फिर खूब अच्छी तरह कु
चाहिए।

जिनके मुँह, दाँत, जीभ, होंठ, तालू आदि में घाव हों, जिन्हें
हो, साँस-खाँसी, उल्टी, हिचकी, जुकाम, तृषा की बीमा
उन्हें दाँतन न करना चाहिए। नीचे लिखा मंजन सबों क
बहुत मुफीद है —

अच्छा हल्दी, गुलाबी फटकरी का फूला, बादाम के ि
कोयला, सैंधा नमक और सफ़ेद जीरा। सबका बारीक
मंजन बना लेना चाहिए।

हो सके तो हफ़्ते में दो-चार नहीं तो हर हफ़्ते हजामत
का नियम रखना चाहिए। नाई से बनाने के बजाय अपने ह
हजामत
ही बनाने की आदत रखनी चाहिए। इस
से खर्च की बचत होगी दूसरे नाई के औज
अक्सर छूत की बीमारी आदि के होने का डर रहता है। गो
दर्मी उस्तरा बहुत सस्ते और अच्छे मिलते हैं। शहरों में
ब्लेड बहुत सस्ते मिलते हैं। उससे पाँच मिनट में हजाम
जाती है। हजामत बनाकर मोटे खद्दर के अंगोछे को पा
भिगोकर मुँह को रगड़कर पोंछना चाहिए जिससे बद
उसका मैल निकल जाय। नाक के बाल नहीं उखाड़ना चा
इससे आँखों की जोत कम पड़ जाती है। कभी-कभी रात को
समय मैल के दूध की मलाई या मक्खन या रोगन के लिए

गड़ना चाहिए। इससे चेहरा चमकदार हो जाता है और
ां मिट जाती हैं।

दुनिया में आँखें बड़ी चीज हैं। हाथ मुँह धोने के समय
ों को साफ़ ताजा पानी से अच्छी तरह धोना चाहिए। छींटे
मार-मार कर आँखें धोना अच्छा है। आँवले
की सफ़ाई
के पानी से आँखें धोने से आँखों की रोशनी
होती है। कभी-कभी प्याज का टुकड़ा आँखों पर मलना
ए। इससे जहरीला पानी निकल जाता है। असली रसौत
आँखों में हर आठवें दिन आँजना अच्छा है। सेंधा नमक
मिश्री दोनों बराबर लेकर खूब बारीक घोट लो। उनका
आँखों की बड़ी बढ़िया दवा है। रोज सलाई भरकर लगान
आँखें साफ़ और तेज रहती हैं।

कसरत करने से शरीर फुर्तीला, सुडौल और सुखी रहता है।
मा सुधरता है। बुढ़ापा पास नहीं फटकता। दण्ड भरना,
मुग्दर फेरना, बैठक लगाना, लाठी चलाना, दौड़ना,
रत
कुश्ती लड़ना, कबड्डी खेलना, ये सबसे अच्छी
रतें हैं। इनमें कौड़ी भी खर्च नहीं होती। जब सांस जोर-जोर
आन लगे, थकावट मालूम पड़े, और माथे पर पसीना आ
ए तब कसरत बन्द करदो। ज्यादा कसरत करने से सांस,
सी, दमा, आदि रोग होजाते हैं। कसरत करके अच्छी खुराक
खाने से शरीर सुख जाता है। भरे-पेट और रात में कसरत
ीं करना चाहिए। सर्दी में बराण्डे में और गर्मी में खुले मैदान

में कसरत करना चाहिए। छोटे-छोटे बच्चों को खेल-कूद, दौड़-धूप और दिल खुश रखनेवाली कसरतें करनी चाहिएं। शुरू में थोड़ी-थोड़ी कसरत करें पीछे धीरे धीरे बढ़ायें।

कसरत के बाद शरीर में तेल की मालिश करनी चाहिए। तिल का तेल सबसे अच्छा है। सिर में, हाथों में, छाती-पसली और रीढ़ की हड्डी में तथा पैर के तलुओं में खूब

मालिश

मालिश की जानी चाहिए। कान में भी तेल डालना चाहिए। बुखार के मरीज़, बदहज़मी वाले और जिन्हें दस्त लग रहे हों, मालिश न करें। स्त्रियों को कभी-कभी उबटना भी करना चाहिए। भुने जौ का आटा या बेसन उबटन के लिए अच्छा है।

सबसे अच्छा स्नान बहती नदी या कुएं का है। तालाब में भी स्नान हो सकता है, पर पानी साफ़ होना चाहिए। बरसात में नदी में न नहाना चाहिए। स्नान के समय हमेशा

स्नान

बदन को खूब रगड़-रगड़कर धोना चाहिए। जिन्हें गठिया की बीमारी हो या अजीर्ण हो, जुकाम हो, आँख, कान और दस्तों की बीमारी हो, उन्हें नहाना नहीं चाहिए। नहाकर सूखे तौलिये से बदन पोंछ डालना चाहिए।

साफ़-सादा और हल्के हों। न बहुत तंग न ढील। कम-से-कम कपड़े पहनने चाहिएं। बनियान ज़रूरी चीज़ है, जो हमारे

बदन के पसीने को सोख लेती है। यह स्नान के

कपड़े

बाद रोज़ धुलना चाहिए। इसके बाद कुर्ता और धोती काफ़ी पोशाक है। कपड़ों में खद्दर सबसे सस्ता और आराम

द है। हरेक स्त्री-पुरुष को स्नान के समय अपने कपड़े साबुन या
ोडा जो सुलभ हो सके, उससे रोज धो डालने चाहिएँ। रङ्गीन
और गोटे किनारी के कपड़े जहाँतक सम्भव हो काम में न लाने
हिएँ। उन्हें साफ करने में बड़ी दिक्कत पेश आती है। मैले
पड़े पहनना बड़ी शर्म की बात है। जो लोग साफ कपड़े पहनते
उनकी सब इज्जत करते हैं।

कुछ लोग स्नान के बाद हवाखोरी करते हैं और कुछ लोग
सके पहले। हवाखोरी के लिए खुले मैदान या सुन्दर बगीचों में
हवाखोरी
जाना अच्छा है। खेतों में भी हवाखोरी के लिए
जाना अच्छा है। पर वहाँ गन्दगी न रहनी
चाहिए। रोजाना कम-से-कम दो मील का चक्कर लगाना चाहिए।
श्रम-कार्य के लिए घूमना और हवाखोरी एक बात नहीं है।
हवाखोरी में मस्तिष्क प्रफुल्ल रहना चाहिए। सब चिन्ता त्याग
देना चाहिए। धूल उड़ती हो या तेज धूप हो या बारिश हो उस
समय हवाखोरी नहीं करनी चाहिए। पूर्वी हवा भारी-गरम, और
चिकनी होती है। गठिया वाय, बवासीर, बुखार और दमे के
बीमारों को पुर्वा हवा में नहीं घूमना चाहिए। पछवा हवा तेज,
रूखी, और रस्ती है। जख्म भरती है, चर्बी को सुखाती है।
हवाखोरी के लिए अच्छी है। उत्तरी हवा ठण्डी और गीला करने
वाली है। बरसात के दिनों में बादल खुले हों तो उत्तरी हवा में
घूमना चाहिए। उत्तरी हवा में भीगना खतरनाक है। दक्षिणी
हवा मन को खुश करनेवाली, खून को साफ करनेवाली, हल्की,

ठण्डी, ताक़त देने वाली और आँखों को हितकारी है। इसम दू
घूमना चाहिए। जब चारों ओर की हवा चले तो समझ
चाहिए कि कोई भयानक बीमारी फैलेगी। खबरदार हो जाना
चाहिए।

भोजन हमारे शरीर को बलवान रखता है और काम करने
से जो हमारी ताक़त खर्च होती है, वह भोजन से पूरी होती है।

भोजन

भोजन में तीन चीजें होनी चाहिएँ, एक पुष्टिकारक
दूसरी चिकनाई, तीसरा नमक। गेहूँ, जौ, चना
मटर, ज्वार, बाजरा, चावल, दाल, तरकारी फल आदि बारी-बारी
से खाने चाहिएँ। अकेले चावल या दाल-रोटी ही न खानी चाहिए
हरी तरकारी भोजन की जरूरी चीजें हैं। फल अवश्य खाने
चाहिएँ। दूध, दही, छाछ और ताजा घी भोजन में जरूर रहने
चाहिए। सर्दियों के दिनों में गुड़, काजू, अखरोट, मूंगफली
बादाम खाने से बदन में चिकनाई और पुष्टि बनी रहती है। फलों
में आड़ू, अँगूर, आम, केला, अमरूद और नारंगी बहुत अच्छे
हैं। पर बीमारों को अँगूर और अनार ही खाना चाहिए। बच्चों
को मिठाई न खिलाकर फल और तरकारी खिलाना चाहिए।
चना, मूँग, और मोठ, ज्वार पानी में भिगोकर टोकरे में भरकर
एक गीली बोरी से ढक दी जाय, जब वह उपज आवे तो उबाल
कर या कच्चा ही खाने से बहुत गुणकारी होता है।

भोजन को पकाने के तीन तरीक़े हैं। उबालना, भूनना, और
तलना। तलना अच्छा नहीं है। तला हुआ भोजन देर में पचता

क्योंकि यह पेट में २ ३ घन्टे पड़ा रहता है। रसोई घर साफ़
रहना चाहिए और बर्तन भी। वहाँ सील न रहनी
ए, न अँधेरा रहना चाहिए। हवा आये और धुआँ निकलने
उसमें काफ़ी खिड़कियाँ रहनी जरूरी हैं। कूड़े-कचरे के लिए
ढक्कनदार कनस्तर या कोई बर्तन रक्खा जाय। नालियाँ पक्की हों।
जालीदार आलमारी में रक्खा जाय जिससे मक्खी, मच्छर
पर न बैठ सकें। चूहे, मक्खी, चींटी, झींगुर, और दूसरे
कीड़े बहुत मैले होते हैं, उनके पैरों में हज़ारों भयानक
के जन्तु चिमटे रहते हैं, जब वे भोजन पर बैठते हैं तो
भोजन में छोड़ देते हैं। इसलिए इनसे भोजन को बिल्कुल
ना चाहिए। चावल, दाल, तरकारी को खूब साफ़ पानी में धोना
ए और बर्तन खूब साफ़ करके तब खाना पकाना चाहिए।
हुआ खाना गरम रहते खा लिया जाय। बासी खाना बहुत
बीमारियों की जड़ है।

खाना खाने की जगह उजालेदार और साफ़-सुथरी रहे।
ना खाने के समय खूब प्रसन्न रहना तथा धीरे-धीरे चबाकर
ना चाहिए। भोजन का समय दोपहर और शाम को नियत
लेना जरूरी है। रात को सोने से ३ घण्टा पहले खाना जरूर
लेना चाहिए। बड़े आदमी का २४ घण्टे में दो बार और बच्चों
तीन बार खाना काफ़ी है। जबतक पहला खाया भोजन पच न
दुबारा नहीं खाना चाहिए। भोजन के बाद थोड़ा टहलना
विश्राम करना चाहिए।

दिन काम-काज के लिए बनाया है। इसलिए सुबह उठ कर

काम-काज

दिन भर के काम का प्रोग्राम बनालो और उसके अनुसार काम करो। दिन में सोना बुरी आदत है। गर्मी के दिनों के अलावा कभी दिन में न सोना चाहिए।

तन्दुरुस्त आदमी को ज्यादा-से-ज्यादा ८ घण्टे सोना चाहिए है। या ६ घण्टे की अच्छी नींद भी काफी है। रात को जल्दी में

सोना

जाना और सुबह जल्दी उठना बहुत जरूरी है। सोने का कमरा हवादार, खुला और साफ हो। ज्यादा आदमी एक कमरे में या एक बिस्तर पर नहीं सोने चाहिए। बिछौने पर चादर चस्तर बिछाई जाय और वह ४-५ दिन में बदली जानी चाहिए। सर्दियों में भी कमरा बन्द न करना चाहिए। न मुँह ढाँपकर सोना चाहिए। जलती हुई अँगीठी कमरे में रख कर सोना बहुत खतरनाक है, ऐसा कभी न करना चाहिए।

: ४ :

ऋतु-चर्या

हिन्दुस्तान में ६ ऋतुयें होती हैं। चैत-बैसाख बसन्त। जेठ-साढ़ गर्मी। सावन-भादों बरसात। क्वार-कातिक शरद। अगहन-पूस हेमन्त। माह फागुन शिशिर।

गंगा के दक्षिणी किनारों के देशों में ४ महीने वर्षा होती है। एक वर्ष में दो अयन होते हैं। १–उत्तरायण २–दक्षिणायण। मकर की संक्रान्ति से कर्क की संक्रान्ति तक ६ महीने उत्तरायण और कर्क की संक्रान्ति से मकर की संक्रान्ति तक ६ महीने दक्षिणायन होता है। शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म उत्तरायण में और वर्षा, शरद हेमन्त दक्षिणायन में गिने जाते हैं। उत्तरायण में सूर्य बलवान होते हैं जिससे धरती का रस सोखने से सब वनस्पति और प्राणि कमजोर हो जाते हैं। दक्षिणायण में चन्द्रमा बलवान होने से अमृत वर्षा होती है। इससे धरती के प्राणियों और वनस्पतियों को नया बल मिलता है।

बसन्त ऋतु में आसमान साफ रहता है। ढाक, कमल, मौल...
और आम फूलते हैं। वन उपवन की शोभा बढ़ती है, दक्षिण-मन्द...

बसन्त

चलती है वृक्षों में नये पत्ते और कोपल प्रगट हो...
बसन्त-ऋतु में सर्दी का इकट्ठा हुआ कफ पाचन...
शक्ति को मन्द करता है इससे इस मौसम में कफकारी चीज़ न...
खानी चाहिएँ। हल्का-रूखा, कड़वी, कसैली और नमकीन चीज़...
खानी चाहिए। पोशाक और बिछौना हल्का होना चाहिए। दि...
में नहीं सोना चाहिए। खूब कसरत करना, घूमना तैरना ...
चावल, मूँग, जौ, चना ज़्यादा खाना चाहिए।

ग्रीष्म में सूरज की किरणें तेज़ होती हैं। धूप तेज़ पड़ती है...
नैऋत्य कोण की झुलसाने वाली हवा चलती है। पानी सूख जा...

ग्रीष्म

है। वनस्पति मुर्झा जाती है। इस ऋतु में म...
चिकनी, ठण्डी चीज़ें—शर्बत, छाछ, दूध-मल...
दाल-भात, सरकारी खाना, छत पर सोना, दोनों समय स्ना...
करके सफ़ेद कपड़े पहनना और धूप से बचना चाहिए।

वर्षा में बारिश होती है। नदियाँ जल से भर जाती हैं। पृ...
हरी-भरी हो जाती है। पुरवा हवा चलती है। इस ऋतु में हाज़...

वर्षा

कम होजाता है। हल्का और जल्दी हज़म हो...
वाली चीज़ें सेवन करना चाहिए। थोड़ा सि...
का सेवन अच्छा है। नींबू चूसना भी फायदेमन्द है। इस मौ...
में सब मौसम आ जाती हैं। कभी गर्मी, कभी सर्दी, कभी बरसा...
इसलिए एहतियात रखनी चाहिए। पानी छानकर पीना, बदन...

ा से बचाना जरूरी है। घर के चारों ओर घास-फूस न इकट्ठी
देना चाहिए, न सील होने देना चाहिए। हवादार छप्पर या
में सोना, मच्छरों से बचना और मच्छरदानी काम में लाना
जरूरी है। नीम की लकड़ी के धुएँ से मच्छर भागते हैं। दही-
,उर्द की दाल, नदी स्नान, बारिश में भीगना त्याग देना चाहिए।
शरद ऋतु में पित्त का कोप होता है। इसलिए मौसमी बुखार
ा है। घी के बने भोजन, गेहूँ, जौ, चना, मूँग, चावल आदि

शरद

पदार्थ खाने चाहिए। यह मौसम जुलाब के लिए
अच्छा है। ज्यादा मिहनत न करे, गरम चटपटे
र्थ न खाय, दिन में न सोवे, सर्दी और धूप से बचे।

हेमन्त में उत्तरी हवा चलती है। यह ऋतु ठण्डी और बलकारी

हेमन्त

है। खट्टे-मीठे, नमकीन पदार्थ खाय। तेल
मालिश करे। गेहूँ, उर्द, बाजरा, तिल, ईख का
रस, सेवन करे। गर्म कपड़े पहने। शिशिर में भी हेमन्त की
ते रह।

जो आदमी तन्दुरुस्त रहना चाहता है उसे चाहिए कि रोज के
म-काज, खान-पान, रहन-सहन ऋतु और अपनी शक्ति के अनु
र रखे। मन, वचन, कर्म से पवित्र रहे। ईश्वर से डरता रहे।
र दुखियों पर दया रखे। पड़ोसियों और सम्बन्धियों से प्रेम
।। सत्य व्यवहार करे। काम, क्रोध, लोभ, मोह से दूर रहे।
र चार इन्द्रियों को वश में रखे। क्रोध न करे। छोटों का अपराध
मा करे। महमान की खातिर करे। मीठा बोले। पराई स्त्री और

चारपाई, चटाई या तख्त पर चित्त लिटाओ। साधारण सफ़ाई के लिए मामूली गरम पानी ही काफ़ी है। पर पेड़ू में दर्द हो या दर्द ज़रा तेज़ कर लेना चाहिए। बीमार से गज़-भर ऊँचाई पर दीवार में कील ठोककर बरतन को टाँग दो और नली को घी से चिकना करके योनि में डाल दो—पानी आने दो। मासिक-धर्म रुक-रुक कर आता हो तो दो-तीन बार दिन भर में करना चाहिए। [illegible] की बीमारी में ज़रा-सी गुलाबी फिटकरी पानी में मिलाकर पिचकारी देनी चाहिए।

कोठा साफ़ करने के लिए यही पिचकारी गुदा में लगाई जा सकती है। इसके लिए रोगी को दाहिनी करवट लिटाओ, दाहिना पैर सिकोड़ दो, बाँया फैला दो और धीरे से नली गुदा में [illegible] सीधी लगाकर प्रवेश कर दो। इस काम के लिए दो या ढाई सेर पानी होना चाहिए। सादा पानी से भी काम चल सकता है। पर पेट में भारी दर्द हो, पेट सख़्त हो, गुठले पड़ गये हों तो पानी में एक चम्मच नमक और ज़रा-सा साबुन नहाने का घोल दो। योनि और गुदा के काम की अलग अलग नालियाँ बाज़ार में दवावालों के यहाँ मिलती हैं। इसे ३। इंच गुदा में भीतर डाल दो। पिचकारी देने पर जब थोड़ा पानी रह जाय तब नली निकाल लो—टट्टी आने की इच्छा को ज़रा देर रोको और रोगी के पेट को हाथ से दबाओ। बच्चों को भी इससे लाभ होगा, पर नली छोटी होनी चाहिए। (देखो चित्र नं० ५)

साफ़ बोतल में गरम पानी भरकर मुँह कसकर डाट दो और

चित्र नं० ४ कूल्हे के दर्द में सेंकने की विधि

चित्र नं० ५ एनीमा देने की विधि

चित्र नं० ६ खून निकलने पर घाव वाला अङ्ग (हृदय) से ऊपर रखना चाहिए। इससे घाव से खून कम बहेगा।
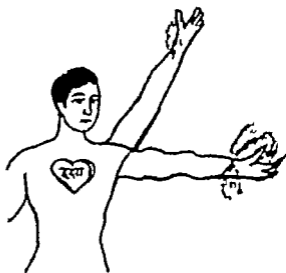
े भीगे अगोछे में लपेटकर सेक करने के काम में ला सकते हो, दांत का दर्द या कमर का दर्द इससे जल्द आराम होता है। बदन में गर्मी बनाए रखने के

र्म बोतल

प जांघ में, बगलों में, पैर की पिंडलियों और टखनों के नीचे े तौलिये में लपेट कर बोतलें रखने से देर तक बदन में गर्मी यम रखी जा सकती है।

एक साफ मोटे खद्दर के टुकड़े को लेकर ठण्डे पानी में भिगोओ। र बिना निचोड़े हवा में फैलाकर २४ झटके दो और हिलाओ इससे कपड़ा बिल्कुल ठण्डा हो जायगा। उसकी गद्दी बनाकर सिर पर रखने से बुखार की गर्मी

ठण्डी गद्दी

म होती है, पेडू पर रखने से पेशाब उतरता है। इसमें सिर पर रने के लिए थोड़ा सिर्का और पेडू पर रखने के लिए शोरा भी लाया जा सकता है।

बीमार को जब हम नहला नहीं सकते तो स्पंज करके उसके न को साफ करना चाहिए। इस काम में दो अगोछे होने चाहिएँ। पहले भीगे अगोछे को निचोड़कर उससे एक-एक अङ्ग साफ करना, पीछे सूखे

स्पंज

पोंछते जाना चाहिए। बुखार उतारने में भी स्पंज बहुत मदद ता है।

: ९ :

बुख़ार और उसका इलाज

बुख़ार की बीमारी सब जीव जन्तुओं को जन्मते और मर...
समय ज़रूर होती है। सब बीमारियों में बुख़ार ख़ास है। बुख़...
कई क़िस्म के होते हैं। यहाँ हम थोड़े में ख़ास-ख़ास बुख़ारों क...
वर्णन करेंगे।

सब क़िस्म के बुख़ारों में शुरू में ये लक्षण होते हैं। मुँह क...
स्वाद ख़राब हो जाना, शरीर का भारीपन, खाने-पीने में अरुचि...
आँखों में बेचैनी, नींद ज़्यादा आना, हाथ पैरों का टूटना, जम्...
आना, बदन काँपना, सर्दी लगना, थकान पड़ना, रोंगटे खड़े...
होना, और आलस।

पीछे जब वायु का ज़ोर हुआ तो जम्हाई आती है, पित्त क...
ज़ोर होने पर अरुचि हो जाती है। सब क़िस्म के बुख़ारों...
चमड़ी ख़ूब गर्म हो जाती है।

थर्मामीटर बुख़ार देखने की एक काँच की नली होती है। इस...

भीतर पारा भरा रहता है और नलीपर नम्बर लिखे रहते हैं। इसके नीचे के हिस्से को जिसमें पारा भरा रहता है बगल में दबाकर रखना चाहिए। पहले वहाँ का पसीना पोंछ लेना चाहिए। बगल में नली इस तरह रखनी चाहिए कि पारे का हिस्सा बाहर न रह जाय। बदन की गर्मी से पारा ऊपर उठेगा। ऊपरी हिस्से में निशान और नम्बर लिखे रहते हैं। पारा जहाँतक उठे उसी हिसाब से बुखार जानना चाहिए। अक्सर लोग बगल में नली लगाई जाती है पर मुँह में भी लगाते हैं। मुँह में जीभ के नीचे नली लगाना चाहिए। छोटे बच्चों के गुदा में लगाना चाहिए। बुखार को देखने का सबसे अच्छा समय सुबह-शाम है। लेकिन ज्यादा बीमारी हो तो ११ या २-२ घण्टे में भी देखा जा सकता है।

थर्मामीटर

तन्दुरुस्त आदमी के शरीर की गर्मी ९८॥ डिगरी होती है। २५ बप से कम उम्र के आदमी की कुछ ज्यादा होती है। कसरत करने, दौड़ने, धूप में रहने या भोजन करने से कुछ बढ़ जाती है और दिन में थकान,थकने आदि से कम हो जाती है। मामूली बुखार १०१॥ डिग्री गर्मी हो तो फिक्र की बात नहीं है। १०४ डिग्री तक होने से बुखार तेज गिना जाता है, १०५॥ होने से खतरा और १०८॥ होने से मृत्यु होती

है। पर कुछ बुखार जैसे निमोनिया में या सन्निपात में या दाह ज्वर में १०६ या १०७ डिग्री बुखार कुछ देर का होजाता है। पर १०१ और १०४ डिग्री के भीतर बुखार ठहर जाय तो यह नाशक है। पुराने बुखारों में रात को ज्वर कम होजाता है।

कुछ क़िस्म के बुखार शोक, आनन्द, जागन, थकन, मीगन, जुकाम, नजले आदि से पैदा होजाते हैं। इन में पूरा आराम करना चाहिए। और उनके कारणों को दूर करना चाहिए।

वात के बुखार में कांपना, कभी सर्दी कभी गर्मी लगना, दें और गला सूखना, नींद न आना, छींक न आना, दर्द होने आदि लक्षण होते हैं।

पित्त के बुखार में तेज़ बुखार, पतला दस्त, नींद कम, उल्टी पसीना, मुँह का स्वाद कडुआ, जलन होना, प्यास ज्यादा, गर्म होंठ और नाक का पक जाना आदि लक्षण होते हैं।

कफ के बुखार में मन्दा बुखार, आलस, मुँह का स्वाद मीठा भूख नहीं, जी मिचलाना, नींद ज्यादा, जुकाम आदि लक्षण होते हैं।

१—करंजुआ के बीज की मींग १ पाव लेकर उसमें १ छटांक काली मिर्च मिलाकर चने-सी गोली पानी में बनाकर ताजे पानी के साथ काम में लाने से सब प्रकार के बुखार का फ़ायदा करती है।

२—गिलोय, सोंठ और पीपलामूल एक-एक पैसा-भर का काढ़ा सुबह शाम पीने से वायु का और कफ का बुखार आराम होता है।

३—गिलोय, धनिया, नीम की छाल, लाल चन्दन, कमलगट्टे की मींग, हरेक ५ ५ माशा कूट-छानकर ३ पाव जल में औटाये, आध पाव रहे तो ६ माशा शहद मिलाकर पीये। सब प्रकार के गर्मी के बुखार को फायदा करता है।

सन्निपात के बुखार में, जिसमें रोगी बेहोश होजाता है, बक-वाद करता है या उठ-उठकर भागता है, जीभ जली हुई क जैसी होजाती है, बदन में लाल या काले चकत्ते पड़ जाते हैं, सिर में सूजन आजाती है। ऐसे रोगी का इलाज बहुत होशियार डाक्टर से कराना चाहिए। नीचे लिखा काढ़ा इसमें बहुत फायदा करेगा—

१—कटेहली, सोंठ, गिलोय और कूट इनको ६ ६ माशा लेकर १ पाव पानी में पकावे। १ छटाँक रहने पर छानकर दो या तीन बार पीओ।

२—काला जीरा, कूट, अरण्ड की जड़, बड़ा गूलर, सोंठ, गिलोय, दशमूल, कपूर, काकड़ासींगी, जवासा और विसखपरा सब २ माशा डेढ़ पाव गाय के पेशाब में पकाकर १ छटाँक रहने पर छानकर पीने से सन्निपात में बेहोश पड़ा बीमार भी अच्छा होगा।

सन्निपात के बुखार में जब हालत बहुत खराब होजाय और नाड़ी कमजोर हो जाय, बदन ठण्डा हो जाय तो कस्तूरी और कपूर १ / रत्ती मिलाकर पान के रस में देना और हाथ-पैरों में गरम बोतल रखना।

नाड़ी कमज़ोर होना

निमोनिया में दोनों फेफड़े सूज जाते हैं। खाँसी होती है, नाड़ रङ्ग का मटमैला चिकना कफ बड़ी तकलीफ से निकलता

है। छाती के छूने में दर्द होता है। यह रोग पाँचों मलल
आराम होता है। अतः अच्छे डाक्टर-वैद्य से इलाज कराना चाहिए

निमोनिया

कभी-कभी खून भी निकलता है। मानवें दि
पेशाब और पसीना ज्यादा आता है। न
की चाल १ मिनट में १२० तक होजाती है, ज्वर १०४ डिग्री
होता है। नींद नहीं आती, साँस कष्ट से लिया जाता है। क
कभी मुँह पर फुन्सी होजाती है। कभी-कभी फेफड़ा मढ़ जाता
और सड़े हुए दूध की मलाई की भाँति बदबूदार बलगम निक
है। बूढ़े और बालक को बहुत मुश्किल से आराम होता है।

कभी-कभी इसमें बेहोशी और सरसाम भी होजाता है। इ
के लिए अगर डाक्टर का बन्दोबस्त न हो तो दशमूल के काढ़े
पीपल का चूर्ण बुरकी डालकर दिन-रात में ३ ४ बार पीना चाहिए
बाजरा और नमक की पोटली से सेंकना चाहिए। गरम पा
पीने को दो। कफ निकलने में कष्ट हो तो अदरक का रस नम
मिला, गरम-गरम मुँह में भरकर थूकना चाहिए।

पुराना बुखार—१० दिन बीतने पर बुखार पुराना हो जा
है। इसके लिए यह काढ़ा बहुत अच्छा है—

गिलोय, नीम की छाल, लाल चन्दन, पद्माख, मुलहटी
बुरकी, मोथा और बड़ी हरड़। ४ ४ माशे का काढ़ा शहद मिला
कर पीना चाहिए।

ज्वर में प्यास—ज्यादा हो तो पके हुए पानी में सौंफ की
पोटली बनाकर चूसन को दो।

नरदाह—हो तो गीले कपड़े से शरीर को स्पंज करो। हाथ के तलुओं पर काँसे के बरतन घिसो।

ज्वर में पसीना ज्यादा हो—तो गरम-गरम भुने चने छिलका उतारकर पोटली बनाकर पसीने की जगह फेरो। पेट्रोल या तार का तेल मलो।

ज्वर में उल्टी होने पर—खस, चन्दन घिसकर मिश्री मिलाकर पिलाओ।

ज्वर में कब्ज होने पर—२॥ तोला अरण्डी का तेल गर्म दूध या जल में पिलाओ।

ज्वर में पेशाब रुक जाय तो—२ रत्ती से ६ रत्ती तक शोरा पानी में मिलाकर दो-दो घण्टे में दो।

ज्वर में हिचकी हो—तो राई का चूर्ण ६ माशा आध-सेर पानी में मिलाकर थोड़ी देर रखदो, वही पानी निथार कर रोगी को पिलाओ।

ज्वर में श्वास हो तो—मोर का पंख जलाकर शहद में चटाओ।

ज्वर में खाँसी हो तो—बहेड़ा घी चुपड़ भूभल में दबा दो और मुँह में रखकर रस चूसने दो।

ज्वर में अरुचि हो तो—सैन्धा-नमक और अदरक का रस मुँह में रखकर कुल्ले कराओ।

ज्वर आराम होने पर—खान-पान आदि का ऐसा बन्दोबस्त हो कि कब्ज न रहे और बदहज्मी न हो। ज्यादा मिहनत भी न हो। वरना दुबारा बुखार आना बहुत बुरा है।

मलेरिया, मोतीझरा, चेचक तथा छूत के बुखारों का वर्णन हमने अन्यत्र किया है।

नीचे बुखार के कुछ आजमूदा नुसखे लिखे जाते हैं। जिनसे सब प्रकार के बुखार आराम होते हैं।

१—नीलोफर ६ माशा, खूबकलाँ ४॥ माशा दोनों को दद पाव पानी में औंटाओ, आधपाव रहे तो छानकर थोड़ी मिश्री डालकर पिओ।

२—सफेद कत्था ४ भाग, कपूर १ भाग, पानी में जङ्गली बेर के समान गोली बनाकर सेवन करने से गर्मी का ज्वर दूर होता है।

३—सफ़ेद कत्था १ माशा, संखिया १ रत्ती, पीस मोठ के बराबर गोली बनावे। जाड़ा चढ़ने से पहले १ गोली खाय। जाड़ बुखार की बढ़िया दवा है।

४—हरताल वरकी, फटकरी प्रत्येक १ तोला २॥ माशा ग्वारपाठा के रस में नीम के सोटे से घोंटे जिसमें पैसा जड़ा हो। १२ पहर घोटकर टिकिया बनावे और छाया में सुखाकर मिट्टी के बर्तन में ऊपर नीचे पीपल की राख भरकर कपरोटी कर गढ़ा खोद जङ्गली उपलों की आँच दे। ठण्डा होने पर निकाले, एक चावल खुराक है। भोजन दूध चावल दे। एक दिन में कफ और पित्त के ज्वर को आराम करेगा।

५—हींग और नमक दो माशे सेर भर जल में औटाय जब ६ माशा रहजाय पीवे, चौथैया जाय।

६—नौसादर ३ रत्ती कालीमिर्च दो नग बारी के दिन सूर्य खाने से बारी रुक जाती है।

: १० :

कीड़ों की बीमारियां

कुछ बीमारियाँ कीड़ों से होती हैं। ये कीड़े बहुत छोटे होते हैं और आँख से नहीं देखे जा सकते। ये बहुत भयानक होते और जो बीमारियाँ इनसे होती हैं वे भी भयानक होती हैं। ० में ६० मौत इन्हीं बीमारियों से होती हैं जो कीड़ों से पैदा ती हैं। ये कीड़े इतने बढ़ते हैं कि एक रात-दिन में एक ७५ करोड़ जाते हैं। सील, अन्धेरा, सड़ा-गला, साग-पात और गढ़ों का ना पानी इन कीड़ों की जन्मभूमि है। ये हैजा, चेचक, मोतीझरा, बुखार, तपेदिक, डिपथिरिया, ताऊन, गर्मी, मोसमी बुखार, आदि रोगों को पैदा करते हैं। इसीसे ये बीमारियाँ छूत की कह ती हैं। क्योंकि यह चढ़कर दूसरों को लगती हैं। इसलिए सब लोगों को दो बातों में होशियार रहना चाहिए। एक तो यह कि जब ऐसी बीमारियाँ फैली हों तो अपना बचाव करे, दूसरे जब ऐसे बीमार की टहल करनी पड़े तो अपनी हिफाजत रखे। याद रखन की बात है कि यह कीड़े ४ ढंग से शरीर में घुसते हैं। या तो खाने

पीने की चीजों के साथ मुँह के रास्ते, या नाक के रास्ते साँस के साथ हवा में, या कहींसे चमड़ी कट गई हो तो उस रास्ते से। अथवा खटमल, पिस्सू, जूँ, या मच्छर के काटने से जिनके अंदर पहले ही से ये कीड़े होते हैं। इनसे बचने की रीति यह है कि ऐसे रोगियों के कपड़े-लत्ते, बरतन, खाना अलग रखा जाय, और अपने काम में न लिया जाय। रोगी को भी अलग कमरे में रखा जाय, उसके कपड़े, बरतन काम में लाने से पहले गर्म पानी में खूब उबाल लेने चाहिएं और उसका वमन, पेशाब, थूक वगैरा उठाकर उसके हाथ भी अच्छी तरह साफ कर लेने चाहिए। जहाँ कोई बीमारी फैली हो वहाँ से कहीं चला जाना चाहिए और यदि रहना पड़े तो हरी साग-सब्जी और फल खाना छोड़ देना चाहिएं। पानी उबाल कर पीना चाहिए। अपने शरीर को जरूम लगने से रोकना चाहिए और मक्खी, मच्छर, पिस्सू, आदि के काटने से बचाना चाहिए।

तपेदिक बहुत खराब बीमारी है। इसे क्षय रोग कहते हैं। बहुत होशियारी से इसका जल्द इलाज करने से यह आराम हो सकती है। जिनकी पतली चपटी छातियाँ होती हैं और कन्धे झुके हुए रहते हैं उन्हें इस बीमारी के लगने का डर रहता है। इस बीमारी का शुरू में वजन कम होने लगता है। जुकाम-सा मालूम देता है, सूखी खाँसी का धसका चलता रहता है। ये लोग जल्दी थक जाते हैं। कुछ हफ्ते बाद हर रोज शाम को हल्का बुखार रहने लगता है। और सुबह-शाम ठसके की खाँसी आती है। कुछ दिन बाद रात को पसीना आने लगता है।

तपेदिक

मी-कभी छाती में दर्द होता है और थूक में लाल रक्त मिला ता है। भूख मर जाती है और रोगी चिड़चिड़ा और निराश जाता है। इसकी खखार में रोग के कीड़े होते हैं। इसलिए स होशियारी से थूकना चाहिए। अगर वह मरीज़ लापरवाही से र उधर थूक देगा, तो वह थूक धूल में मिलकर सूख जायगा और र-उधर उड़कर साँस के साथ मुँह में चला जायगा और बीमारी रा करेगा। सबसे अच्छी बात तो यह है कि बीमारी शुरू होवे उसका इलाज अच्छे डाक्टर या वैद्य से कराओ। हरेक बड़े र में इस बीमारी के खास शफ़ाखाने बन गये हैं। जिनमें मे बीमारों को दवा दी जाती है।

तपेदिक कई तरह की होती है। छाती की तपेदिक में खाँसी स्य बात है। कण्ठमाल भी तपेदिक ही की बीमारी है। इसमें र रूखा होजाता है और निगलने में तकलीफ़ होती है। हड्डियों तपेदिक होने से टाँग छोटी पड़ जाती है क्योंकि यह ज्यादातर ड़ के जोड़ पर होता है। रीढ़ की हड्डी पर होने से कूबड़ निकल ता है। बच्चों को जब कण्ठमाल निकलती है वह पीला और र्बल हो जाता है, आँख दुखती हैं और कान बहने लगता है। न पर और आगे पीछे गिल्टियाँ निकल आती हैं।

सब क़िस्म के तपेदिक का बढ़िया इलाज यह है कि रोगी खूब आराम करे, फ़िक्र और मिहनत से बचे, हल्का और पुष्टिकारक ना खाय, और बदन की ताक़त बढ़े ऐसा उपाय करे। हर ाफ़ ताज़ी हवा में रहे, धूप, धूल, भीड़ और बन्द जगह में न रहे।

दिन में पेड़ के नीचे चारपाई पर पड़ रहना अच्छा है। उस दूध, मलाइ, चावल गेहूँ की रोटी, मक्खन, अंगूर, दाख, हरी तरकारी और ताजे फल दे सकते हैं। पर हाजमे का खयाल रखना। अगर आदत हो, अण्डे और मांस का रस भी दिया जा सकता है। मछली का तेल (Cod Liver Oil) जो सब अँग्रेजी दवा बेचन वालों के यहाँ मिलता है तपेदिक की अच्छी दवा है पर यह दवा नहीं, खुराक है। सुबह सबसे पहले एक ग्लास गर्म दूध बकरी या गाय का पीना बहुत अच्छा है। इससे खाँसी कम उठती है। मरीज को रोज टट्टी जाना जरूरी है। अगर बुखार तेज हो तो ठण्डे पानी से स्पज करना चाहिए। अगर मुँह से खून आवे तो उसे बिल्कुल बिस्तर पर लेटे रहना चाहिए। अगर ज्यादा खून थूके तो ठण्डे पानी में साफ कपड़े के टुकड़े भिगोकर छाती पर रखना चाहिए। आराम होने पर भी ऐसे रोगी को बहुत एहतियात से रहना चाहिए, जिससे बीमारी पीछे न लग जाय। तपेदिक के मरीज को ब्रह्मचर्य से रहना जरूरी है।

१—नम गरू घी में भूनलो। इसे २१ बार आँवले के रस में घोटो। एक छटाँक गरू में एक बार में एक छटाक रस डाल बिल्कुल सूख जाने पर दुबारा डालो। २१ बार पुट जाने पर सुरक्षित शीशी में भरलो। खुराक ४ रत्ती से एक माशा तक है। सुबह शाम शहद में चटाओ। सब किस्म के तपेदिक में फायदा करेगी।

२—केकड़ा नाम का एक जानवर पानी में मकड़ी की शकल

ता है। यह सूखा हुआ बड़े-बड़े पंसारी की दुकान पर भी मिलता
। उसे कुल्हिया में जलालो और उसीकी राख ६ तोला, मेलखड़ी,
द कत्था, कतीरा, बबूल का गोंद, पोस्त के दाने, गेरू सब
१ तोला लो। ६ ६ माशा अफ़ीम और कपूर मिलाओ। कूट-पीट
र बेर-सी गोली बनाओ। हर वक्त मुँह में रखकर चूसने को दो।
स खून थूकने में आराम मिलेगा।

३—अडूसे का ताजा पत्तों का रस निकाल कर २ तोला ६
शा शहद मिलाकर सुबह शाम पीने को दो।

४—कण्ठमाल में मुर्दे की जली हुई हड्डी चिता से लाकर
रह की पर्दी या सिर्के में पत्थर पर घिसकर लेप करो फ़ायदा
रगा। साथ में बकरी के कन्धे की हड्डी कुल्हिया में जलाकर १५
त खाय। खुराक चवन्नी भर पानी के साथ।

५—गाय के खुर और सींग मीठे तेल में जलाकर तेल छान
र रखले। उसका कण्ठमाल की गाँठों पर लेप करे।

६—सीतोपलादि चूर्ण और च्यवनप्राश तपेदिक की बहुत
च्छी दवा है।

हैज़े का हमला अक्सर रात को होता है। घोड़े के पेशाब
के समान दस्त आने लगते हैं, पेट में ऐंठन होती है, साथ ही क़ै

हैज़ा

होती है। क़ै में पहले खुराक निकलती है और
पीछे दस्त जैसी चीज क़ै में भी निकलने लगती
है। प्यास बहुत लगती है, टाँगें, बाँह और पीठ ऐंठने लगती हैं।
थोड़ी देर बाद आँखें भीतर धसने लगती हैं और नीचे काले गढ़े

चाहिए। उसे अकेला न रहने दे, न डरावे, धमकावे। इस का
के अलग अलग सरकारी शफाखान बने होते हैं। यहाँ एक नु
देते हैं, यह पागलपन को बहुत आराम करता है—

बच, छोटी हरड़, कूठ कड़ुआ, शतावर, गिलोय, वि
वायबिड़ङ्ग, शंखाहूली सब बराबर लेकर चूर्ण बनाना। चार
की मात्रा घी के साथ चाटना। इससे सब प्रकार के पाग
आराम होता है।

सुजाक होने से पेशाब की नाली में पहले जलन होता है
सफेद और पीले रङ्ग का मवाद निकलता है। यह बीमारी जि

सुजाक और गर्मी

पुरुष को होती है, उसके साथ सहवास कर
उसकी धोती, तौलिया जिसमें मवाद लग
हो, इस्तैमाल करने से या जहाँ उसने पेशाब, पाखाना कि
वहाँ से यह रोग लग जाता है। पर ऐसा बहुत कम हो
मुख्य रोग लगने का कारण सहवास ही है।

सहवास के तीसरे दिन रोग के लक्षण जाहिर होते हैं।
पेशाब की नाली में खुजली और जलन तथा चुभन जैसा
होता है। पेशाब करते समय तकलीफ होती है, और पत
के जैसी चीज पेशाब की नाली से निकलती है। कुछ दि
यही चीज गाढ़े मवाद के रूप में निकलने लगती है। इस
पर अगर ठीक इलाज हो तो दो महीने में अच्छा हो जा
अगर सूजन पेशाब की नाली में पुरानी पड़ गई तो महीनों
तक जारी रहती है। इस बीमारी से दिल में

ड़ियों में और गुर्दे में बीमारियाँ हो जाती हैं, जो बहुत खतर
हैं। अगर इसका मवाद आँखों में छू जाय तो उसके अन्धे
ने का खतरा है। बीमार को आराम से लेटना चाहिए।
बहुत पीना चाहिए। पानी में नीबू निचोड़कर पीना
ा करता है। दस्त में क़ब्ज़ हो तो दस्त साफ़ लाने की दवा
चाहिए। इन्द्री में दर्द और सूजन ज्यादा हो तो गर्म पानी में
थोड़ी देर में भिगोना चाहिए। इससे दर्द मिटेगा। हाथ को
रखना चाहिए। खाने का सोडा दिन में दो-तीन बार आधा
च, आधा गिलास पानी में मिलाकर पीना चाहिए। यह दवा
र के बाद एक या दो घण्टे बाद पीना चाहिए। और किसी
डाक्टर-वैद्य का इलाज करना चाहिए। नीचे लिखी दवा
क की बहुत बढ़िया दवा है—माजूफल, कत्था पपरिया,
ोधन, एक-एक तोला लेकर कपड़छन कर चन्दन के तेल तीन
में मिला २४ गोली बनाना। प्रतिदिन चार से छः गोली तक
क साथ खाना और सिर्फ दूध-भात भोजन करना चाहिए।
रुत में आराम हो जायगा।
रोजे का तेल जो अंग्रेजी दवावालों के यहाँ मिलता है इस
री में बहुत फ़ायदा करता है। पाँच से २० बूँद तक बतारो
ाशी में, दिन में पाँच-छः बार खाना चाहिए।
स्त्रियों में पुरुषों से यह रोग लग जाता है। वे शुरू में शर्म से
ो नहीं। पीछे उन्हें अनेक रोग लग जाते हैं। ऐसी स्त्रियों को
और बाँझ का रोग हो जाता है। उन्हें खाने में यही दवा

जो पुरुषों को दी जाती है देना चाहिए। और योनि-स्थान में पि
कारी देनी चाहिए। तथा जबतक आराम न हो पूरा विश्राम कर
चाहिए, गर्म जल में बैठना भी फायदेमन्द है।

यह बड़ी घिनौनी बीमारी है। यह इस रोग के रोगी स्त्री-पुरुष
साथ सहवास करने से लग जाती है। यदि माता को बीमारी
और उसके गर्भ रह गया तो गर्भ में ही बालक

गर्मी

भी यह बीमारी लग जाती है। यह रोग भी छ
से लग जाता है। अतः बीमार का हुक्का, कपड़े, बिछौना इस्तेम
न करना चाहिए।

सबसे पहले अण्डकोषों में या इन्द्री की सुपारी पर एक छोटी
सी फुन्सी उठती है। यह साधारण सहवास के पाँच-छः दिन
होता है। इसके छः-सात हफ्ते बाद तमरू-तमरू जैसे दाने
शरीर पर निकल आते हैं। सिर दर्द, मितली होती है, भूख कम
हो जाती है। गला बैठ जाता है। बगल और गुदा के आस-पा
चेपवाले घाव दीख पड़ते हैं। बाल झड़ने लगते हैं।

महीनों और बरसों रोग के गुजर जाने पर रोग की शायरी
अवस्था आती है, जब बड़े गहरे घाव शरीर के भिन्न-भिन्न भाग
में निकलते हैं। नाक सड़ जाती है, और गिर पड़ती है। नाक
जगह सिर्फ छेद रह जाता है। खोपड़ी की हड्डी गल जाती है।
की, और कहीं की भी हड्डी गल सकती है। कभी-कभी इन्द्रिय
गल-सड़ कर गिर जाती है।

रोग हुआ है, यह मालूम होते ही सत्-पट इलाज कर

। और अच्छे वैद्य-डाक्टर का इलाज करना चाहिए, पटर दवा देकर रोगी का जीवन खतरे में न डालना चाहिए। भी हम यहाँ एक अच्छा नुसखा लिखते हैं, और कोई उपाय तो फिर यही नुसखा देना चाहिए।

१—पारा शुद्ध, अजवान खुरासानी, भिलावा, अजमोद, ड, प्रत्येक तीन-तीन माशा लेना, गुड़ पुराना तीन तोला माशा कूट-छानकर जंगली बेर के बराबर गोली बनाना। एक गोली दोनों समय इस तरह निगलना कि दाँतों से न लगे। ड़ी, दाल-भात और गेहूँ का फुलका फीका खाय। खटाई से बचे, पाँच दिन में आराम हो।

भिलावा और पारा शुद्ध करके डालना चाहिए। इनके शुद्ध ने की विधि अन्यत्र लिखी है। इस दवा को शुरू करने से र आधा जुलाब लेना जरूरी है। आराम होने पर खून साफ न की यह दवा पीवे।

२—चिरायता, शाहतरा, छः-छः माशा, रात को मिट्टी के रे में आधपाव पानी में भिगोदो। सुबह मल-छानकर शहद ाकर पियो। अगर ऊपर की दवा से मुँह आ जाय तो फिटकरी गारे करे। आराम होने पर भी परहेज रखे। घी ज्यादा खाय।

: १५ :

स्त्रियों की बीमारियाँ

यह बीमारी अक्सर स्त्रियों को होती है। इसके कई कारण हैं। जो यहाँ विस्तार से नहीं लिखे जा सकते। लेकिन इसके दो मुख्य कारण होते हैं। या तो किसी बीमारी की वजह से खून की कमी हो जाय या किसी कारण से गर्भाशय और स्त्री अण्डकोषों का ठीक-ठीक काम न हो। इस बीमारी में कभी तो बहुत देर से आना होता है या जल्द-जल्द होता है। कमर में दर्द, बेचैनी, भारीपन और सिर दर्द की शिकायत रहती है।

मासिक धर्म की गड़बड़ी

१—वायविडङ्ग पाँच माशा, अकरकरा पाँच माशा, गुड़ पुराना तिबरसा तीन तोला, दालचीनी तीन माशा, गुलाब के फूल दो माशा सबको पाँच छटाँक पानी में पकाओ। दो छटाँक रहे तो गुनगुना छानकर पिलाओ। मासिक धर्म के दिनों में दिन में दो बार देना चाहिए। सब प्रकार के कष्ट दूर होंगे। मासिक खुलकर होगा। सदा गर्म रखना चाहिए।

२—गर्म पानी में बैठाना या पिचकारी लगाना भी अच्छा है। अक्सर औरतें इन दिनों गन्दी रहती हैं तथा गन्दे कपड़े का चिथड़ा काम में लाती हैं, यह बहुत बुरी बात है। कपड़ा साफ़ लिया जाय और बदन भी साफ़ रक्खा जाय तथा ताज़ा और हल्का भोजन किया जाय।

प्रदर

इस रोग में चिकना, बदबूदार पतला या गाढ़ा लुआब-सा योनि से निकलता रहता है, कमर में दर्द, कभी-कभी हल्का बुख़ार बना रहता है। यह भाव कभी कभी काला-पीला गर्म फेनीला या लाल रंग का निकलता है।

शुरू-शुरू में इस रोग में हर तीसरे दिन फिनाइल की पिचकारी देना चाहिए। दो सेर गुनगुने पानी में दस बूँद फिनाइल ही काफ़ी है। इसके बाद यह दवा देना चाहिए।

१—आँवला सूखा एक पाव लेकर घी में धीमी आँचपर भून लो, बाद में बराबर कच्ची खांड मिला, कूट छानकर शहद में चटनी-सी बनालो। एक-एक तोला सुबह शाम खाने से बहुत फ़ायदा करता है।

२—मूँगे की भस्म भी बहुत गुणकारी है।

३—सुपारी पाक इस रोग की बढ़िया दवा है।

४—कच्चा पका केला तथा गूलर खाना बहुत गुण करता है।

रक्तप्रदर—जिसे पैर जाना भी कहते हैं। अगर खून बहुत ज्यादा निकलता है, तो रोगी को ठण्ढे पानी के टब में बैठाओ।

१—पुराने घड़े का ठीकरा पानी में घिसकर दे।

२—चूल्हे की लाल मिट्टी और गारा पानी के साथ फँकी दो।

३—रसौत, आम की गुठली, जामुन की गुठली, धाय के फूल, धौलाई की जड़, मुलहटी, बराबर लेकर, कूट-छान चूर्ण बनाकर ६-६ माशा सुबह शाम चावल के धोवन के साथ दो।

४—पुराना रक्त-प्रदर होने पर ये लड्डू बहुत गुण करते हैं। छिले हुए चने का बेसन एक पाव, घी आधा एक पाव धीरे धीरे आग पर भूनो। पीछे ठण्डा करके एक पाव कच्ची खांड और दस तोला मेलखड़ी पीसकर मिला, एक छटांक के लड्डू बनाओ, एक लड्डू रोज खाना चाहिए। खुराक सादा और हल्की।

गर्भिणी

गर्भावस्था में औरतों को बहुत से रोग होजाते हैं। बुखार, सूजन, दस्त लगना, उल्टी, सिर घूमना, [illegible] जाना, गर्भ में तकलीफ आदि। इनका इलाज भी खास होता है। नहीं तो गर्भ गिरजाने का खतरा रहता है।

१—बुखार होने पर लाल चन्दन, खस, मुलहटी इनका सत्तपात या काढ़ा, शहद और चीनी मिलाकर पिलाना चाहिए। दूध पीने को देना।

२—दस्त लगने पर आम और जामुन की छाल का काढ़ा चीनी, शहद मिलाकर पिलाना, धान की खील पानी में भिगोकर खाने को देना।

३—पत्थर फोड़कर दो तोला [illegible] का मल दूध में मिलाकर देना।

४—सूजन होने पर-सूखी मूली, विसखपरा, गोखरू, ककड़ी के बीज, खीरे के बीज का काढ़ा चीनी मिलाकर देना।

५—सेहुड के पत्ते का रस सूजन पर मलने से या उपले की राख रगड़ने से सूजन आराम होती है।

६—उल्टी होने में जरा-सी अजवाइन गर्म पानी से फँकी करना ाद में एक पाव गर्म दूध पीना।

७—सिर दर्द करे या भारी हो तो बादाम या कद्दू का तेल सिर र मालिश करना।

गर्भ भाव

१—पहले महीने में धब्बा दीखे तो मुलहटी, सागवान के बीज और देवदारु छः-छः माशा लेकर पोटली बना एक पाव दूध में बराबर पानी मिला, औटाकर जब पानी जल जाय तब देना।

२—दूसरे महीने में काले तिल, मजीठ और सनावर पका कर देना।

३—तीसरे में अनन्तमूल और चौथे में मुलहटी और सौंफ। पाँचवे में कटहली और खिरनी की छाल पकाकर देना।

४—सातवें महीने में सिंघाड़ा, कमल की डण्डी, किसमिस, कसेरू और मुलहटी। आठवें में कैथबेल, कटहली, ईख की जड़। और नवें में मुलहटी, अनन्तमूल पकाकर पिलाना।

५—अगर गर्भपात न रुके तो मुलतानी मिट्टी पानी में भिगो कर वही पानी लगातार पीने को देना। उसीमें कपड़ की गद्दी भिगोकर पेड़ू पर रखना। पलङ्ग का पायता ऊँचा रखना चाहिए।

२—गर्म पानी से सेक करनी चाहिए।

कभी-कभी दूध में खराबी हो जाती है, जिसे पीने से बच्चा बीमार हो जाता है। दूध की बूँद काँच की शीशी में पानी भरकर टपकानी चाहिए। दूध घुल जाय तो अच्छा और नीचे बैठ जाय, तार-तार हो जाय तो खराब।

दूध दूषित हो

१—दशमूल, नीम का पत्ता, सतावर, लाल चन्दन का काढ़ा पिलाने से दूध शुद्ध हो जाता है।

२—दूध सूख जाने पर वन कपास की जड़, और ईख की जड़ बराबर कांजी में पीसकर आधा तोला खाने को देना।

३—सुहाग सोंठ, बच्चा पैदा होने पर खिलाने से जच्चा को बहुत गुण दिखाती है, ताक़त देती है, शरीर को ठीक रखती है।

वहाँ वह बारबार छुयेगा। वहाँ अगर दूसरा आदमी छुयेगा तो वह ज्यादा रोवेगा। जब बालक के सिर में दर्द होता है तो वह अपनी आँखें मूंद लेता है।

गुदा में दर्द होने से बालक को प्यास ज्यादा लगती है और वह बेहोश हो जाता है। दस्त बदबूदार आने लगे और उसका रङ्ग बदल जाय तो समझना चाहिए कि उसके पेट में कब्ज या बदहज्मी है। तब उसे रेवनचीनी का छिलका कूटकर सात रत्ती माँ के दूध या पानी में देना चाहिए। दस्त का रङ्ग भी बदल जायगा और पेट भी साफ हो जायगा।

अगर दस्त का रङ्ग सफेद हो तो छोटी इलायची, पोदीना, पीपल, कालीमिर्च, कालानमक, सब चीजें बराबर ले कूटकर छान प्रतिदिन दोनों समय तीन-चार रत्ती देना चाहिए।

अगर बालक को मामूली दस्त आवें और जरा-जरा सा आवे खुलकर न हो तो गर्मपानी में थोड़ा अरण्डी का तेल मिलाकर पिलाओ।

अगर पेचिश हो तो सौंफ को जरा-से पानी में पीसकर गुन गुना पिला दो।

जब बालक के पेट में कीड़े पड़ जाते हैं तो वह बार-बार मूत्रेन्द्रिय को हाथ लगाता है, मलता है, मोबीबार गुदा और नाक को खुजाता है, दाँत किसकिसाता है। ऐसी हालत में पहले एरण्ड का तेल गर्मपानी में पिलाओ। इससे आराम न हो तो यह काढ़ा पिलाओ—मोथा, घूहाकानी, त्रिफला, देवदारू, सैंजन के बीज इसके

६ हंसली जाना—यह हंसली एक हड्डी है, जो हंसली की भाँति गले में दोनों कन्धों से लगी है। बच्चे को गोद में लेती बार उसकी गर्दन में हाथ न लगाने से या झटका लग जाने से यह उतर जाती है। ऐसे बच्चों के गले में चाँदी की हसली पहनाना चाहिए जो बोझ को सम रक्खे। और किसी होशियार दाई से मुतवा दो।

७ काग गिरजाना—यह गर्मी से होता है। बालक दूध पीना छोड़ देता है या पीकर तुरन्त डाल देता है। बहुत रोता है पर रोया नहीं जाता।

चूल्हे की राख और कालीमिर्च उँगली पर लगाकर उंगली से तालुराई से ऊपर उठा दो।

गर्म चीज खाने को न दो, मुलतानी मिट्टी सिरके में पीसकर तालुए पर लगा दो।

८ आंख दुखना—पहले तीन दिन कुछ न करो। छोटा बच्चा हो तो कड़ुआ तेल कान में डाल दो और तालू पर भी मल दो, पाँच रत्ती फटकरी बारीक पीसकर एक तोला गुलाब जल में घोल दो, उसकी कई बूंदें दिनभर टपकाओ, या घीगुवार का गूदा, हल्दी, रसौत, सब मिलाकर पैर के तलुओं से बांध दो।

९ खाँसी—यह बहुत बुरी बीमारी है। अगर तर हो तो नाक की मुँहबन्द डोंडी गिनकर जितनी हों उतनी ही कालीमिर्च गिनकर, पाँचों नोन डाल, कुल्हिया में रख, कपरौटीकर आग में फूंक लो, इसे बच्चे को चटाओ।

फूकर खाँसी बच्चे को बहुत कष्ट देती है। बालक खाँसते-खाँसते

उल्टी कर देता है। यह खाँसी दूसरे बच्चों को लग जाती है। इसकी अच्छी दवा यह है, कि कालीमिर्च एक तोला, पीपल छः माशा, अनारदाना आठ तोला, पुराना गुड़ सोलह तोला, जवाखार एक तोला सबको इकट्ठा कर ममल-छान गोली बनाओ, इससे भयानक से भयानक खाँसी भी आराम होजाती है।

बच्चों को खाँसी, दस्त और बुखार साथ-साथ हो तो यह कर काकड़ासींगी, पीपल, अतीस, मोथा पीसकर चटावे। अगर सिर्फ खाँसी और बुखार हो तो सुहागा अधभुना बराबर कालीमिर्च पीस, घीगुआर के रस में चने बराबर गोली बनाओ। बहुत फायदा होगा।

१० पेट चलना—अगर दाँतों के कारण हो तो कुछ उपाय न करे। और कारण से हो तो सोंठ, अतीस, नागरमोथा, नेत्रबाला इन्द्र जौ इनका काढ़ा पिलावे।

अगर दस्त के साथ ज्वर भी हो तो यह काढ़ा दे। अतीस, काकड़ासींगी, पीपल इनका चूर्ण शहद में चटाओ। अगर प्यास ज्यादा हो तो मोथा, सोंठ, अतीस, इन्द्रजौ, खस इनका काढ़ा दो। अगर आँव हो तो वायविडङ्ग, अजमोद, पीपल, धारोष्ण पीस ठण्डे पानी से दे। अथवा सोंठ, अतीस, भुनी हींग, मोथा, कुड़े की छाल, चीता इनका चूर्ण गर्म पानी के साथ दो। अगर खून भी आये तो पाखान भेद सोंठ पानी में घिसकर दो। अफारा हो तो सेन्धानमक, सोंठ, इलायची बड़ी भुनी हींग, और भारङ्गी महीन पीसकर गर्म पानी के साथ पिलाओ।

११ कान बहना—बालक के माँ के दूध की धार बच्चे के कान डालो। या पठानी लोध बारीक पीस कान में फूँक दो। सुदर्शन पत्ते का रस टपकाओ।

१२ गला आजाना—शहतूत का शर्बत चटाओ।

१३ कोई आजाना—इसे कहते हैं जिससे आँख की बाहरी कोर त पक जाती है। दर्द होता है, खाज चलती है, घाव बढ़ता जाता इसका उपाय यह है कि कपड़े की पोटली-सी बनाकर हाथ पर दो। अथवा मुँह की फूँक से गर्म करो, फिर आँख को सेको काजल में सफेदा रगड़कर और उँगलियों में भरकर दिए की पर उँगलियों को तनिक सेको तथा गर्म-गर्म ही आँख पर मलो।

१४ रोहे—रोहों से आँख यदि बहुत सूज गई हो तो चाकसू स कर छीलकर घिसकर आँख में आँजे। दिनमें दो-तीन बार।

१५ तालू पक जाना—या बैठ जाना। मुलतानी मिट्टी कई बार कर दिन में कई बार तालुए पर रक्खो।

१६ जुकाम—इस रोग में बच्चा बार-बार पानी माँगता है। रे की गुठली घिसकर पिलाओ।

१७ मुँह के छाले—सफेद हों और मुँह लाल होगया हो तो ते घुट्टी दे, फिर वंशलोचन पपरिया कत्था और छोटी इला ीज की बारीक बुरकी बनाकर बुरक दो।

१८—ज्वर बच्चों की सबसे भयानक बीमारी है, इसका इलाज ी अच्छे डाक्टर-वैद्य से कराना चाहिए। क्योंकि ज्वर के

* ज्वर

कारण को समझना कठिन है। ठीक-ठीक नहीं समझने से न जाने क्या विकार पैदा हो। फिर भी क़ब्ज़ हो तो एरण्ड का तेल दो। नीम की हरी-हरी गाँठ छिलका छीलकर पचीस लो उसमें सात काली मिर्च डाल पानी में पीसलो। तीन दिन दोनों समय पिलाओ बच्चों के बुख़ार की बहुत गुणकारी दवा है। यह मात्रा बड़े आदमी के लिए है। बच्चे की उम्र के लिहाज से पिलाओ।

: १७ :

चोट और अकस्मात्

बहुधा ऐसा होता है, कि सफ़र और जङ्गल में, समय-कुसमय कभी ऊँची जगह से गिर जाने, कुचल जाने आदि से या अन्य किसी अकस्मात् से चोटें लग जाती हैं। प्राय: ऐसे स्थानों में डाक्टर का मिलना संभव नहीं होता। ऐसी दशा में यह उचित है कि प्रत्येक मनुष्य को ऐसे अवसर पर कुछ कर्तव्य का ज्ञान होना चाहिए, जिससे यदि कभी ऐसी दुर्घटना हो जाय तो, जबतक डाक्टर की सहायता न मिले तबतक रोगी की उपयुक्त व्यवस्था होसके। सबसे प्रथम नीचे लिखी बातों पर ध्यान देना चाहिए।

१—घाव से निकलते लोहू को सबसे पहले बन्द करो।

२—घाव में किसी तरह की मैल काँटा, शीशे का टुकड़ा आदि न रहने देना चाहिए।

३—घाव में मक्खी आदि न बैठने देना चाहिए।

४—बेहोश घायल के चारों तरफ़ भीड़ न होने देना चाहिए।

४—जिसकी हड्डी आदि टूट गई हो, उसे आराम से किस तरह उपयुक्त स्थान पर पहुँचाना।

घाव के प्रकार—घाव कई प्रकार के होते हैं।

१—जिनमें से खून निकले।

२—जिनमें से खून न निकले।

३—धारवाले औजार, जैसे छुरी, चाकू, आदि के घाव।

४—कुचले हुए घाव, जैसे गाड़ी आदि के नीचे आ जाने से हो जाते हैं। जिनमें थोड़ा खून निकलता हो।

५—नील पड़ना—कुचले घाव में से खून न निकलने से नील हो जाता है। इसमें नीली दर्दनाक सूजन हो आती है।

६—नोकदार शस्त्र के घाव, जैसे तीर, सूई, काँटा आदि के इन घावों का रूप छोटा होता है, पर बहुत गहरे होते हैं। यदि ये घाव नाड़ी या धमनी तक पहुँचते हैं तो मृत्यु कर देते हैं।

७—बन्दूक की गोली आदि के घाव। इनमें कभी-कभी हड्डी भी टूट जाती है। आज-कल डाक्टर एक यन्त्र की सहायता से गोली निकाल सकते हैं।

८—ज़हरी जानवरों के काटने के घाव, जैसे पागल कुत्ते साँप आदि के।

अधिक चोट लगने से सूजन बढ़ी, लाल और पीड़ायुक्त होती है और चोट के जगह पर चमड़ी के नीचे खून के इकट्ठे होने से एक नीली रङ्ग की दर्ददार सूजन होजाती है।

कुचलना

मोच आजाने में भी यही बात होती है।

१—चोट की जगह को शरीर से ऊँचा करलो, यदि पाँव पर
ट हो तो लेट जाना चाहिए और कुछ देर तक चलना बन्द
उपचार
रखना चाहिए। यदि हाथ में हो तो हाथ को
रुमाल से गले में लटका देना चाहिए। सिर
नीचे तकिया न लगाना चाहिए, बल्कि एक आदमी उसकी टाँगें
ए रहे। अगर जरूरत हो तो नक़ली ढङ्ग से साँस चलानी
हिए। अगर वह पानी पी सके तो पानी पीने को दो। पर
शी की हालत में पानी मुँह में मत डालो। बेहोशी की हालत में
नी फेफड़े में चला जाता है, इससे नुक़सान पहुँचने का डर है।
मामूली घाव, जिससे खून निकल रहा हो, दो हालतों में प्राण
क करते हैं। या तो उनका खून बन्द न हो या घाव में मैल
ी या कोई जहरीली चीज रह जाय। इसलिए उचित है कि
ी वक्त खून बन्द करने और घाव को होशियारी से धोकर साफ
ने का बन्दोबस्त करना चाहिए। हाथों को घाव में लगाने से
ले राख, मिट्टी या साबुन से धो लेना चाहिए और घावों के
स-पास से कपड़ों को दूर रखना चाहिए।
सबसे अच्छा तो यह है कि घाव को गर्म किये पानी को
ा करके धोना चाहिए। पर ऐसा न बन पड़े तो साफ ठण्डे
ी से ही काम लेना चाहिए। पट्टी लगाने के लिए साफ रुई और
ा काम में लाना चाहिए। यह पट्टी और रुई डेढ़ घण्टे तक
ी में उबाल लिये जायँ।
खून बन्द करने का उपाय—पहले यह देखना चाहिए कि खून

नाड़ी, धमनी या बारीक नाड़ियों में से किसमें से निकल रहा
यदि बारीक नाड़ी में से खून निकलता हो तो घबड़ाने की
बात नहीं है, वह खुद ही बन्द हो जायगा।

सूजन के लिए चोट के स्थान पर बरफ़ रखना या ठण्डे प
में कपड़ा भिगोकर लपेट देना चाहिए। दर्द ज्यादा हो या
पुरानी पड़ गई हो तो गर्म पानी में कपड़ा भिगोकर और निच
कर उस जगह को सेकना चाहिए। लेकिन चोट अगर जोर
हो तो जरूर डाक्टर को दिखाने की जल्दी करनी चाहिए।

अगर चोट बड़ी हो, जैसे सिर के बल ऊपर से गिर गया
जिससे दिमाग में कुछ नुकसान होगया हो या पैरों के बल
गया हो जिससे कमर में धमक लग गई हो। ऐसा रोगी अ
बेहोश होगया हो, सांस और नाड़ी की गति धीमी होगई हो
उसकी दशा चिन्ता जनक समझनी चाहिए। खासकर चोट
सिर में हो तो मरने का ज्यादा खतरा है। ऐसे आदमी को जल
ही पीठ के बल लिटा देना चाहिए और उसके चारों ओर दर्श
भीड़ न होने देना चाहिए। यदि जङ्गल या सफर में ऐसा मौ
हो तो जहाँतक बन पड़े बिना हिलाय किसी डाक्टर के
पहुँचा देना चाहिए। कपड़े ढीले कर देने चाहिएं। पानी पास
हो तो उससे मुँह पर छींटे मारना चाहिए।

नाड़ी से जब खून निकलता है तब उसकी धार बराबर,
लेकिन रुक-रुक के निकलती है, जैसे पिचकारी का पानी निकल
है। इस खून का रङ्ग बिलकुल लाल होता है। यदि धमनी से

निकलता होगा तो वह कुछ गाढ़ा और काला होगा। उसकी धार ऐसी नहीं उछलेगी, जैसे सोते में जल बहता है, उस तरह निकलेगा। धमनियाँ चमड़ी के नीचे तमाम शरीर में हैं, किन्तु हाथ-पाँव के ऊपरी भाग में उनके जाल बिछे हैं। बारीक नाड़ियों से बहुत धीरे-धीरे पानी की बूँदों के समान खून घाव के मुँह पर इकट्ठा हो जाता है। ये शरीर के रग-रग में फैली हैं।

बारीक नाड़ियों का खून सिर्फ ठण्डे पानी के धोने से, बरफ लगाने से, या अपने आप हवा लगने से, बद हो जायगा। धमनी से निकलते खून को बद करने की कोशिश करती बार यह याद रहे कि धमनियां में खून हृदय की ओर आता है। इसलिए हाथ या पाँव को धड़ और हृदय से ऊँचा करके घाव के उस तरफ दबाव पहुँचाओ जिधर से खून घाव के मुँह पर आ रहा हो। (देखो चित्र ७ ६)

जबतक खून बन्द न हो, हाथ या पाँव उठाये रहना चाहिए। अगर बरफ पास हो तो उसे कपड़े में लपेट कर घाव पर रखना चाहिए। हाथ-पाँव पर कोई गहना वगैरा कोई चीज हो तो उसे हटा देना चाहिए। खून बन्द होजने पर उस पर पट्टी लगा देना चाहिए। हाथ के घाव में हाथ को रूमाल से बांध कर लटका देना चाहिए।

नाड़ी से खून निकलना भयंकर है। झटपट खून बन्द करने के उपाय करना चाहिए।

घाववाले अङ्ग को धड़ से ऊँचा उठाना ही जरूरी है। फिर

खास नाड़ी को दबाइयों या घाव में साफ उंगली को डाल
कटी हुई नाड़ी के मुँह को दबाना चाहिए। यदि उँगली से भी र
बहना न रुके तो—साफ महीन कपड़े का टुकड़ा या रूमाल घ
में भरकर उसे खूब दबाना चाहिए। यदि हो सके तो किसी डाक
को फौरन बुलवालो। पर यदि घायल को किसी सवारी में डाल
अस्पताल लजाया जाय तो यह बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहि
कि धड़ या हृदय से घाववाली जगह ऊँची रहे (देखो चित्र नं०

पर अगर निकट अस्पताल वगैरा न हो तो यही ठी
है कि कपड़े या रूई की एक गेंद-सी बनाकर उसे घाव पर र
दबा कर बांध देनी चाहिए।

यदि रूई या वस्त्र न हो तो धोती या तौलिया में एक गां
देकर वहीं घाँव पर बाध देना चाहिए। या रुपया, ठीकरा, या मा
पत्थर का टुकड़ा ही रुमाल वगैरा में लपेटकर उसी तरह बां
देना चाहिए।

परन्तु यदि घाव गर्दन में है, तो घाव में उगली देकर दबा
के अलावा दूसरा उपाय नहीं है। क्योंकि ऊपर बताई हुई रीति
कपड़ा लपटने से तो मृत्यु ही होने का भय है।

गले और कन्धे के घाव के लिए यथासम्भव शीघ्र चिकित्स
बुला लेना ही ठीक है।

हाथ या पांवों में से यदि खून किसी तरह बन्द न हो तो हा
या पांव के ऊपर रबर का मोटा चौड़ा फीता या नली खूब कसक
बाँध देना चाहिए। यह न मिले तो एक रूमाल को दो पेंठ क
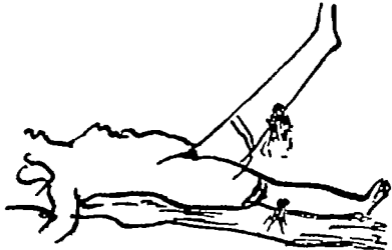
चित्र नं० ७ घाववाला अङ्ग 'धड़' हृदय से ऊपर रहना चाहिए,
इससे खून कम बहेगा ।
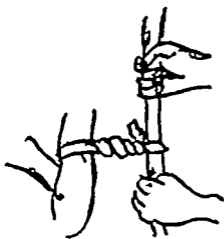
चित्र नं० ८
घाव का खून बन्द करने
विधि

बांध देना चाहिए। फिर एक लकड़ी लेकर उसे खूब मरोड़िये जब तक कि खून निकलना बन्द न हो। (देखो चित्र नं० ८) पर यह जान लेना चाहिए कि हाथ पैर को इस तरह कसना खतरनाक है। यदि दो-ढाई घण्टे इस तरह हाथ-पांव कसे रहें तो नीचे का भाग मुर्दा हो जाता है। इसलिए यह उपाय तभी काम में लाना चाहिए कि जब और उपाय काम न दें।

जब घाव का खून बन्द होजाय तब उसे सावधानी से धोना चाहिए, जिससे घाव में मैल मिट्टी न रहे। आइडोफार्म (पीले रङ्ग की मीठी गन्धवाली अंग्रेजी दवा) मिल जाय तो थोड़ी घाव पर छिड़क कर और साफ रूई लगाकर पट्टी बांध देनी चाहिए।

यदि घायल बेहोश हो तो खून बन्द कर चुकने पर पट्टी बाँधने के बाद उसे होश में लाने के उपाय करने चाहिए। यदि वह पानी पी सकता हो तो माशा-भर नमक पानी में घोलकर उसे पिलाना चाहिए, फिर नीचा सिर और ऊँचा पैर करके लिटा दीजिए। यानी तकिया सिर की जगह पांवों के नीचे लगा दीजिए। ऐसा करने से मस्तक में रक्त पहुँचने से जल्दी होश आयगा।

कभी-कभी रेल वगैरा से हाथ-पाँव बिल्कुल कट जाने पर बिल्कुल खून नहीं निकलता। ऐसी हालत में ठण्डे पानी से घाव को धीरे-धीरे धोकर साफ रुई कपड़े में कटे हाथ-पाँव को लपेट देना चाहिए। परन्तु जल्दी-से-जल्दी उसे अस्पताल पहुँचा दो क्योंकि ऐसे घाव जल्दी सड़ने लगते हैं जिससे रोगी को बहुत तकलीफ होती है।

कभी-कभी आदमी पेट के बल पत्थर वगैरा पर गिर पड़, तो अमाशय से ख़ून की उल्टी होती है। यह ख़ून काले रङ्ग का आता है। पर यदि लाल रङ्ग का आवे तो समझना कि ख़ून मुँह फेफड़े या गले से आया है। ऐसे आदमी को ठण्डा पानी या बरफ़ देना चाहिए।

ख़ून की क़य

पट्टी डेढ़ या ढाइ इञ्च चौड़ी, पतली गजों की हो, जो पानी की धुली हो पर जिनमें कलफ़ न हो। उन्हें आध घण्टे तक पानी में पकाकर सुखा लेना चाहिए, रुई भी बहुत साफ़ धुनी हुई हो। परन्तु कुसमय में रुमाल, धोती, तौलिया वगैरा से भी काम चल सकता है। पर इस हालत में पट्टी रगीन न होनी चाहिए। पट्टी बाँधने की सब से सरल विधि कपड़े को तिकोना करके सरलता से बाँध देना है। आवश्यकता होने पर इसके कइ पर्त करके, लम्बी पट्टी के समान भी बाँधा जा सकता है।

पट्टी बांधना

सिर के घावों के लिए भी पट्टी, बड़े रुमाल व अँगोछे से, दोनों किनारों के बीच थोड़ा फाड़कर बना लेना चाहिए।

परन्तु गले में हाथ बाँधने के लिए या कुहनी में घूसे, हाथ पैर आदि घावों के लिए इस तरह बाँधने की ज़रूरत नहीं, सिर्फ़ हाथ को एक रुमाल या अँगोछे में लटका लेना चाहिए।

कम चौड़े स्थानों पर जैसे उँगलियाँ, हाथ-पाँव, जाँघ, धड़ आदि के लिए इन पट्टियों की ज़रूरत पड़ती है।

इन पट्टियों का बाँधना और लपेटना ज़रा मुश्किल है। पट्टियाँ

पट्टियां बांधने के जुदे-जुदे तरीक़े

सिर पर पट्टी बांधना

चित्र न० ९
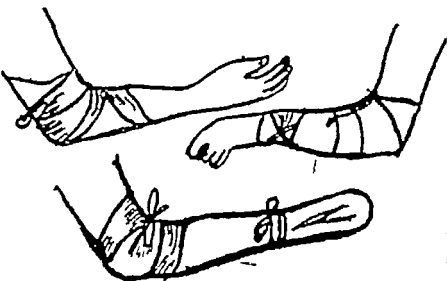
चित्र न० १०

चित्र नं० ११

चित्र नं० १० कोहनी और घुटने पर पट्टी बांधने की विधि

चित्र नं० १२ प्रकलाई पर पट्टी बांधने की विधि

पहले से लपेटकर तैयार रखनी चाहिए, फिर उन्हें पिन या गाँठ बाँधकर रहने दो। पट्टी बाँधने से घाव के किनारे मिले रहते हैं, दबाव पड़ने से खून कम निकलता है, और मक्खी, धूल आदि से घाव सुरक्षित रहता है। (पट्टी बाँधने के अलग अलग तरीक़ों के लिए सामने के पृष्ठ पर चित्र न० ६ से १७ तक देखिए)

छत से गिर जाने या पेड़ पर से गिर जाने पर हड्डी टूट जाय

जोड़ और हड्डियों में चोट

या जोड़ उखड़ जाय तो सावधान रहो और जोड़ बैठाने का काम अनाड़ी आदमी से न कराओ। वरना रोगी हमेशा के लिए अयोग्य हो जायगा।

मोच प्रायः टखने या कलाई में आती है। सन्धि के एकदम मुड़जाने से उसको बाँधने वाली नसें थोड़ी खिचकर फट जाती हैं।

मोच

कभी-कभी बारीक नालियां और कभी जोड़ की थैली के फट जाने से मोच की जगह सूज जाती हैं। खून और सन्धि का पानी जमा होजाने से ऐसा होता है। गाँठ पर दर्द होता है, पर जोड़ हिल सकता है। मोच आते ही जल्द-से जल्द हृदय की ओर दबाकर मालिश शुरू कर दो। दस-पन्द्रह मिनट तक ऐसा करने से दर्द, सूजन कम हो जाती है। अगर दर्द बहुत ही ज्यादा हो तो ठण्डे पानी में कपड़ा भिगोकर जोड़ पर दबाकर लपेट दो।

जोड़ पर बहुत ज़ोर पड़ने से जोड़ उखड़ जाता है। सबसे

जोड़ हट जाना

अधिक कन्धे के फूले के जोड़ हट जाया करते हैं। कभी-कभी जबड़े और कुहनी तथा घुटने के जोड़ भी उखड़ जाते हैं।

इनका उपाय यह है कि उसके जोड़ों को खूब अच्छी तरह मिलाओ। हाथ का जोड़ उखड़ गया हो तो अंगोछा बाँधकर हाथ गले में लटकाओ। और चौबीस घंटे के भीतर भीतर डॉक्टर को दिखा दो।

जोड़ उखड़े हुए मरीज को उठने न दो और न उसे हाथ-पाँव फैलाने या सीधा करने दो, उखड़ी जगह पर गीला कपड़ा लपेट दो। और झटपट अस्पताल पहुँचा दो। अगर बदन पर चुस्त कपड़ा हो तो उसे उतारो मत, फाड़ डालो। अगर दर्द ज्यादा हो और आदमी मजबूत हो तो उसे कुछ नशा पिला दो।

हड्डी टूटने के दो प्रकार होते हैं, एक यह जिसमें हड्डी टूटकर भी घाव नहीं होता, दूसरा घाव होकर हड्डी बाहर आ जाती है।

हड्डी टूटना

पिछले प्रकार में प्राण का भय है। अगर जरा भी गड़-बड़ हुई तो जख्म के सड़ जाने का अंदेशा है। अगर विघ्न न हुआ तो बालक और जवान की हड्डी छः मास में जुड़ जायगी। बूढ़ों को कुछ ज्यादा कष्ट होगा। टूटी हड्डी की पहचान यह है कि वह भाग हिल नहीं सकता, दर्द बहुत होता है और नीचे का हिस्सा फूल जाता है।

अगर सिर्फ एक ही हड्डी टूटी हो तो उस हिस्से को चारों ओर से किसी चीज से लपेट दो। बाँस की खपच्चियाँ या पत्ते इस काम के लिए अच्छी हैं। अगर घाव हो तो पहले घाव को बाँध दो और बीमार को झटपट अस्पताल पहुँचा दो।

चित्र नं० १४ हाथ में चोट लगने पर गले में हाथ लटकाने की विधि

चित्र नं० १५ रान में पट्टी बाधने की विधि

चित्र नं० १६ उँगली पर पट्टी बांधने की विधि

चित्र नं० १७ पैर में पट्टी बांधने की विधि

अकस्मात—

अक्सर अचानक कभी-कभी दुर्घटनायें हो जाती हैं। उनके कुछ घरेलू उपाय भी यहाँ लिखते हैं।

आग से जलना

अगर कपड़ों में आग लग जाय तो फौरन धरती में लेट जाना चाहिए। आग फौरन बुझ जायगी। भागना नहीं चाहिए, भागने से हवा लग-लग कर आग और फैलेगी। कोई कम्बल, टाट, लाजम, या मोटा कपड़ा शरीर पर लपेट लिया जाय। जो अङ्ग जल जाय वहाँ यह दवा लगावे।

१—आधसेर चूना के पानी में आधसेर नारियल का तेल डाल कर हिलाओ, और रूई के फाये से लगाओ। बार-बार लगाते रहने से ठण्डक पहुँचेगी और रोगी को आराम हो जायगा। आलू को पानी में घिसकर लगाने से भी फ़ायदा होता है। जख्म होजाय तो उसपर तिल के तेल को फाये से चुपड़कर इमली की छाल का चूर्ण बुरक दे। नारियल का तेल दो छटाँक, राल पिसी हुई दो छटाँक, कपूर तीन तोला, मिलाकर खूब घोटो, फिर इसमें समाये उतना पानी मिलाओ, इस मरहम से जले को फौरन आराम होता है।

पानी में डूबना

पानी में डूबने से आदमी इसलिए मर जाता है कि हवा फेंफड़े में नहीं पहुँचती। अगर डूबता आदमी निकाल लिया जाय तथा साँस लेता हो तो वह बच जायगा।

पानी में डूबे आदमी को झटपट पानी से निकालकर शरीर से कपड़ा दूर-कर शरीर को पोंछ डालो, देखो शरीर गर्म हो तो

इलाज करो, वरना फजूल है। अक्सर डूबे हुए आदमी की नब्ज और साँस बन्द हो जाती है। इसमें घबराओ मत, होशियारी से उसके आँखों की पुतली देखो। अगर तुम्हारी परछाई उसमें दीखे तो जीवित समझो वरना मृतक।

पहले मुह और नथुनों को साफ करो। मुह खोलो और जीभ को धीरे धीरे आगे को खींचो जिससे हवा भीतर जाय। गर्दन और छाती पर से कसा हुआ कपड़ा हटा दो।

रोगी को चित्त लिटाकर तकिया लगा दो, कि सिर और कन्धे ऊपर जाँय, फिर रोगी के हाथ कोहनी पर से पकड़कर वहीं तक उठाओ कि सिर के ऊपर मिल जाय। दो सेकण्ड बाद पीछे बाहें नीचे झुका दो और पसलियें मिलाकर कस कर दबाओ। एक घण्टे तक तथा जरूरत हो तो और देर तक करते रहो। एक मिनट में १४ बार यह कसरत कराओ, इससे रोगी का साँस चलन लगेगा।

इस तरकीब से साँस चलने लगे और दिल काम करने लगे, तो रोगी को रुई के गर्म फायों से या ऊनी कपड़े की गद्दी से या गर्म पानी की बोतलों से सेको। और गुनगने तेल की मालिश करो, तथा गर्म बिछोने पर सुलादो। होश में आने पर गर्म दूध पीने को दो।

गर्मी में बहुत देर कड़ी धूप में काम करना या रस्ता चलने से असहनीय प्यास, ज्वर, बेहोशी, आँखें लाल,

लू लगना

भ्रम आदि होकर बीमार बेहोश हो जाता है। इसीको लू लगना कहते हैं।

ऐसे बीमार को ठण्डी जगह में लिटाओ, फिर केले आदि के पत्ते से ठण्डे पानी के छींटे दो, चन्दन या नीम की लकड़ी घिस कर बार-बार पिलाओ। कच्ची कैरी आग में भून उसका पना बना कर पिलाओ। सुगन्धित चीज़ सुंघाओ।

अगर स्वास बन्द होजाय तो ऊपर लिखी विधि से सांस चलाओ। गले में कुछ अटक रहा होतो धीरे-धीरे गुद्दी में मुक्की मारो कि वह चीज नीचे को खिसक जाय।

फाँसी लगना या गला घुटना

बेहोशी

ठण्डे पानी के छींटे दो। इससे फ़ायदा न हो तो कोई तेज़ सुंघनी नाक में फूक दो। पान में खाने का चूना और नवसादर मिलाकर सुंघाओ। सांस बन्द हो गया हो तो ऊपर लिखी क्रिया करो।

ज़हर और नशे

इसमें पहला काम तो यह है कि उल्टी करादो। एक बड़े चम्मच में राई या नमक गर्म पानी में मिलाकर खूब पिलाने से उल्टी हो जायगी। अफीम और धतूरे से गहरी नींद आती है। इसमें बीमार को सोने मत दो। टहलाओ, मुंह पर पानी के छींटे दो। खाने की तम्बाकू पानी में घोलकर पिलाने से भी उल्टी हो जाती है। संखिया खा लिया हो तो फौरन एक पाव-भर घी पिला दो। सखिया थोड़ा होगा तो पच जायगा वरना उल्टी हो जायगी।

घी बार-बार पिलाते रहो। प्यास हो तो दूध पिलाओ। दूध और घी संखिये की परम औषध है। भँग का नशा होने पर

उसे फूट-छान बराबर खांड मिलाकर कच्चे दूध से फँकी लेने से प्रमेह आराम होता है, धातु पुष्ट होती है।

७—एक गोले में बड़ का दूध दुहकर भर लो, फिर छेद बन्द कर दूध में पकालो। जब सबका मावा होजाय चीनी शहद मिलाकर खाओ। धातु पुष्ट होगी।

८—दो तोला बिनौले की मींग गाय के आध सेर दूध में पका कर खाने से धातु पुष्ट होता है।

९—अण्डकोष की सूजन में या नस उतर आने में तमाखू का पत्ता अण्डकोष पर गर्म करके बाँधो, थोड़ी देर में जल्दी होगी और नस चढ़ जायगी।

१०—बकरी की मेंगनी और खुरासानी अजवाइन बराबर पानी में घोटकर गुनगुना लेप करे।

११—साँप की केंचली की धूनी देने से मशा तुरन्त होजाता है।

१२—राल, आंवला, लाल चन्दन, चीनी या गोंद, सुहागा, कत्था, बराबर पानी में पीसकर दाद को खुजाकर लगाने से दाद को आराम होगा।

१३—तीन तोला मनसिल पीसकर एक पाव सरसों के तेल में मिलाकर पकावे। जब धुआँ न रहे तो तेल का बर्तन होशियारी से पानी भरी बाल्टी में डाल दो। तेल पानी पर तैर जायगा। उसे निथारकर लगाने से सब प्रकार की खुजली तर-सूखी आराम होगी। इसमें जुलाब लेना जरूरी है।

१४—बबूल की सूखी पत्तियाँ पीसकर हाथों पर मलने से हाथों में पसीना आना रुकता है।

१५—उंगलियाँ सूज जाय या उनकी घाई सड़ जाय तो मुर्गी का पर जलाकर बुर्को।

१६—औरंगजेबी फोड़ा, जिसमें छेद हो जाते हैं, इस दवा से आराम होगा। बेलगिरी की मींग, कत्था, नीलाथोथा, बराबर लेकर गोली बनावे और घिसकर लगावे।

चोट-मोच—

१७—चोट लगने से जब खून जम जाय तो यह हलुआ बहुत गुण करता है। एक माशा फिटकरी पीसकर चार तोला घी में भूनो, फिर उस घी में आटा भून और चीनी डाल हलुआ बनाकर खिलाओ।

१८—तिल की खल कूटकर गरम जल में घोल ले, फिर कपड़े पर लपेटकर वह कपड़ा मोच पर बाँधने से मोच को फायदा करता है।

१९—बारहसिंघे का सींग पानी में घिसकर पीने से छाती की चोट का दर्द फौरन आराम होता है।

मुहासे-छीप—

२०—अजवाइन पानी में पकाकर उस पानी से मुँह धोने से मुहासे आराम होते हैं।

२१ हल्दी और काले तिल, भैंस के दूध में पीसकर मलने से छीप को फायदा होगा।

मद—

२२—पीपल के पत्ते गर्म करके सीधी ओर से बाँधा तो फो आराम हो।

२३—गन्दा बिरोजा कपड़े पर फैलाकर मद पर बाँधा सेक करो।

२४ बच्चों की पसली चलना—चसारे रेवन दो रत्ती-से चार र तक दूध या पानी में मिलाकर बच्चे की उम्र के लिहाज़ से इससे उल्टी-दस्त आकर छाती साफ हो जायगी।

२५ कमलबाय—विन्दरल के बीज दो तीन घण्टा पानी भिगोकर मसल-छान कर नाक में टपकाना। पानी निकल तबीयत साफ हो जायगी। तीन माशा पान में खाने का चूना पकी हुई केले की फली में रखकर खिलाने से कमलबाय होती है।

२६ गजापन—आँवला जलाकर, पावभर पोस्त के डोडे ज कर, आधपाव मेंहदी, कबेला, प्रत्येक छ-छ तोला, नीलाथोथ भुना सुहागा, भड़भूजे के छप्पर का धुंआ, भट्टी की राख, प्रत्ये डेढ़-डेढ़ तोला कूट छानकर सरसों के तेल में मिलाकर मालिश कर

२७—गधे की लीद आधी सूखी हो, उसे एक गड्ढे में रख ऊपर थोड़े कोयले जलावे, उसके ऊपर काँसी की थाली जिस किनारे उल्टे हों, इस भाँति रखे कि उसके किनारे दो अंगुल पृथ से उठे रहें ताकि लीद का धुआँ थाली में संचार होता रहे। बालों को गंज पर मले।

२८ हाथ पावों का फट जाना—मेंहदी पानी में पीसकर लगाने से हाथ-पावों का फटना दूर होता है।

२६ खाजन—नौसादर मीठे तेल में पीसकर मले।

३० मकड़ी मल जाना — अमचूर पानी में घिसकर लगाओ।

३१ सुस्ती की दवा—समुद्रसोख, विधारी फन्द, सरफोका की जड़, कलौंजी, रास्ना, रेवनचीनी, माजूफल, बेल के फूल, नीम के फूल, बराबर सबको भाड़ी के अर्क में घोटकर बेर के समान गोली बनाकर सुबह शाम खाय तो बल पुष्टि करे।

बहुत पेशाब आने की दवा

३२ बंशलोचन एक तोला, सालम मिश्री एक तोला, समुद्र सोख पांच तोला, तालमखान पांच तोला, मुसली सफेद दस तोला, बबूल की फली दस तोला, बिनोले की गिरी दस तोला बराबर पीस बरा बर खाँड मिला, ६ माशे से एक तोला तक पानी के साथ या जामन के सिर्के के साथ खाने से पेशाब ज्यादा आना कम होता है।

आँख के जाले का तथा धुन्ध का अंजन

३३ शीशे की गोली चलाई हुई सोलह माशे, पीपल छोटी सात नग, सीसे के बारीक पत्र करके क्रैंची से काट लो फिर दोनों चीजों खरल कर सुर्मा बनाकर रक्खो। सोन के समय आँखों में आँजो।

३४ तूतिया एक माशा, रीठा दो पानी में घोटकर बाजरे के बराबर गोली बनाकर घिस कर पिलाय। कै दस्त होकर आराम हो जायगा। यह दवा उस वक्त दी जाय जब और दवा से आराम न हो।

बच्चों की पसली चलने की दवा

३५ सैंधा नमक एक पाव, तीन पव मैंजने के अर्क में खरल कर गोली बना हंडिया रख मुँह बन्द कपरोटी करके फूँक दो। गर्म पानी के साथ छः माशा खाय।

हाजमे तथा दर्द की दवा

३६ गन्धक का तेजाब एक तोला, शोरा कल्मी चार माशा, हीरा कसीस चार माशा, कुनैन चार माशा सत फौलाद विलायती चार माशा सब को तीन पाव पानी में मिला एक शीशी में रखो, खुराक चार तोला से आठ तोला तक। दर्द फौरन आराम होगा। तिल्ली माह दिन में अच्छी हो जायगी।

तिल्ली और जिगर की दवा

३७ टूटी हड्डी जोड़ने का नुसखा—पक्की हव महीन पीसकर थोड़े दूध में मिलावे। इसके चावल बनाकर खीर बना, तीन हफ्ते खाय हड्डी जुड़ जाय।

: १८ :

तेल और मरहम

ये तेल और मरहम भिन्न-भिन्न रोगों में फ़ायदेमन्द हैं। बनाकर पास रखना चाहिए।

१ हर क़िस्म के दर्द का तेल—मिट्टी का तेल एक बोतल, कपूर आठ तोला, हल्दी की गाँठ भूभल में भुनी हुई छः अदद, काली मिर्च आठ माशे, सब दवा पीसकर तेल में मिलाकर रक्खो, जहाँ दर्द हो मालिश करो, फौरन फायदा करेगा।

२ कपूर का तेल—कपूर, पिपरमेन्ट, अजवाइन का सत, दार चीनी का तेल, बराबर मिलाकर एक घण्टा धूप में रक्खो। सबका तेल हो जायगा। खाने और लगाने सब काम में आता है। सब प्रकार के दर्द तथा जहरीले जानवरों के काटे में फ़ायदा करता।

३ घाव भरने का तेल—संभालू के पत्ते, कराश के पत्ते, चमेली के पत्ते, धतूरे के पत्ते प्रत्येक साढ़े तीन माशा आधा-सेर मीठे तेल में पीसकर जलाओ, जल जाने पर छानकर काम में लाओ, बहुत उम्दा तेल है।

४ पाव का तेल—नीम के पत्तों की टिकिया बनाकर जलाकर तेल छानलो, यह भी जख्म को भरता है तथा कान के दर्द में भी मुफ़ीद है।

५ सिर में लगाने का तेल—कपूर, बालछड़, नागर मोथा, कंकोल, गुगल, राल जावत्री, लौंग, नख, सबकी छेढ़ तोला लुगदी पोस दस तोला मीठा तेल में पकाओ। एक-पाव बकरी का दूध डाल दो, इसीमें एक-पाव आँवलों का काढ़ा मिलादो, एक पाव आँवला दो सेर पानी में पकाकर एक पाव पानी रख लेना चाहिए। जब पानी जलकर सिर्फ तेल रह जाय, छानकर काम में लो, बहुत अच्छा तेल है।

६ जख्म का मरहम सादा—प्याज, साबन, कत्था प्रत्येक ग्न-ग्न तोला, नीम की पत्तियाँ दस माशे, मीठा तेल साढ़ेछ तोला पहले प्याज की टुकड़ियाँ करके तल में जलावे, फिर नीम की पत्तियाँ जलाकर कत्था पीसकर डालदे, और थोड़ा-सा बत्र जलाकर मिला दे। फिर रगड़कर काम में लावे। बहुत उम्दा मरहम है। सब किस्म के जख्मों पर फ़ायदा करता है।

७ बिवाई का मरहम—राल, घी, प्रत्येक एक तोला आठ मारा, मोम ५ माशे। घी गर्म कर मोम मिला दो, फिर राल डालकर पाँव को भलीभाँति धोकर मरहम भर दो। दिन में चार-पांच बार करो फ़ायदा होगा।

८ भगंदर का मरहम—कीमुख (गध का हरे रग का) चमड़ा जलाया हुआ, पपरिया कत्था, सेलखरी, मोम प्रत्येक एक तोला

आठ माशे, गाय का घी सौ बार का धुला हुआ, मोम को घी में मिलाकर ठण्डा होनेपर सब दवाइयाँ पीसकर मिला दे और मरहम बनाले। यह मरहम बत्ती में लपेट कर भी नासूर भगदर में रक्खा जा सकता है। ऊपर भी फाया रखना होता है।

: १६ :

कुछ अंग्रेजी दवाइयां

तेल आलियम-सिनेमोमाई—(दारचीनी का तेल) दस्तों के बन्द करने के लिए काम में लाया जा सकता है। मात्रा एक से पाँच बूँद तक।

आलियम कोपाइना—(मिरोजे का तेल) सुजाक और प्रमेह की मूत्रकृच्छ्र, स्त्रियों का अतिरिक्त रक्तस्राव मय की उत्तम दवा है।

आलियम क्रोटिन—(जमालगोटे का तेल) सख्त बीमारियों में जब यन्त्र लग जाता है, जैसे वायगोला, जलन्धर, मक्का, पागलपन आदि में तीव्र जुलाब के तौर पर देते हैं। मात्रा एक से दो बूँद तक।

आलियम क्यूपब—(सीतलचीनी का तेल) इस स्त्रियों के प्रमेह और सुजाक तथा ममाने की मोजिरा में रते हैं। मात्रा पाँच से बीस बूँद तक।

ओलियम सिनामस्टर सन्यूटेन्स—(मालकांगनी का तेल) बुद्धि और स्मृति को बढ़ाता है। जलन्धर को नष्ट करता है। मात्रा एक से पाँच बूँद।

ओलियम टारबिन्थ—(तारपीन का तेल) पेशाब और पसीने को लाता है। दस्तावर नहीं है। पेट के केंचुओं को मारता है। गुर्दे की बीमारी में या पेट के अफारे में मुफीद है। जलन्धर की बीमारी में पेशाब लाने को, दर्द-पट्ठे और थोड़ी मात्रा में मिर्गी में भी देते हैं। फलालेन को गर्म पानी में भिगो और निचोड़ कर तथा इससे तर करके सोजिश और दर्द की जगह पर रखते हैं। छाती-पेट पर भी कफ को दबाने के लिए रखा जाता है। खून की क़ै होने पर रक़ाबी में गरम पानी भरके इसकी बूँदें टपकाकर भाप मुँह में पहुँचाते हैं।

ओलियम केरयफ्यूली—(लौंग का तेल) वायगोला, मासी खौलिया व पट्ठों की बीमारी, अफारा आदि को उत्तम है। उत्तम लिखा है। मात्रा तीन से दस बूँद तक।

ओलियम मेसीडिस—(जावत्री का तेल) कफ को दबाता है, स्तम्भक है, पाचन शक्ति को बढ़ाता है। दस्त,खून, आधासीसी, मिरगी, औरतों के कमर दर्द के लिए मुफीद है।

ओलियम पाईप्रिस—(काली मिर्च का तेल) मुआफ या बारी के बुखार में बहुत मुफीद है। दाद पर लगाने से फायदा करता है, बवासीर के लिए भी मुफीद है। मात्रा दो से दस बूँद।

ओलियम सिनेपिस—(राई का तेल) अत्यन्त हाजिम, पेट और

सिर दर्द को फ़ायदा करता है। खाँसी, फेफड़े का दर्द, छाती का दर्द इसके लगाने से जाता है।

ओलियम पाइरीथ्री—(अकरकरे का तेल) इसे तिला की भाँति काम में लाया जाता है।

आलियम कोरियण्डर—(धनिये का तेल)सुजाक में,पेशाब की जलन में देते हैं। पेचिश को भी लाभ देता है। मात्रा एक-से-पाँच बूँद तक।

आलियम एली—(लहसन का तेल) गठिया पर मलने के लिए मुफ़ीद है। कान में डालने से बहरापन जाता है।

आलियम कैपसीशाई—(लाल मिर्च का तेल) हैजे को और जिस जगह का पानी लगता हो उसके लिए मुफ़ीद है। मात्रा एक से पाँच बूँद तक।

आलियम ट्रिटीसी—(गेहूँ का तेल) इसे गिल्टी की बीमारियों में लगाते हैं। और बिवाई बन्द करने में फ़ायदामन्द है।

सत—

एक्सट्रक्ट-एकोनाइट—(मीठे तेलिये का सत) पट्ठे के दर्द में गुणकारी व चढ़े बुखार को उतारता है। दिल के परदे के भारी होजाने में, जलन्धर,तपेदिक़, व फेफड़ों की सूजन, और प्लूरिसी में मुफ़ीद है। मात्रा एक से दो ग्रेन तक।

एक्सट्रैक्ट एलोग—(एलवे का सत) दस्त लाने के वास्ते बच्चों के पेट पर लेप करते हैं। पुराने क़ब्ज़ के लिए उम्दा दवा है। जिन स्त्रियों को मासिक-धर्म न होता हो या कम होता हो तो उसे खोलने को फ़ौलाद के साथ एक सप्ताह पूर्व से देना चाहिए।

बच्चों के चुनेमुने मारने को गुदा में पिचकारी देते हैं। मात्रा एक चौथाई से चार ग्रेन तक।

एक्सट्रैक्ट-बेलाडोना—(धतूरे का सत) कफ, पसीना, और दूध को सुखाता है। आँख की पुतली फैलाने के लिए और पेशाब लाने के लिए, सोजिश की बीमारी में, किसी जुलाब की दवा के साथ देते हैं। खासकर पथरी, या गुर्दे की पथरी के फंस जाने में, गुर्दे की बीमारी में, दमे की बीमारी में, पट्ठे के दर्द में, कमर के दर्द में फायदेमन्द है। मात्रा आधा से एक ग्रेन तक।

एक्सट्रैक्ट-कैनेबिस—(चरस का सत) खाँसी, दमा, दर्द अरधी, अकडवाय, बावले कुत्ते के काटे में, गठिया, सरसाम, सुजाक, कमलवाय में देने से फायदा होता है।

एक्सट्रैक्ट कन्थारिडिस—(सत तेलनीमक्खी) इसका तिला भी बहुत गुण कारी है। छाती के दर्द की बीमारियों में बाहर भी लगाया जाता है। हाथ-पैरों के जोड़ों में दर्द होने पर या खून जम जाने पर या चोट लग जान पर लगाते हैं। सुजाक की पीप को बन्द कर देता है। दिमाग की बीमारी में मुफीद है। बालों को पैदा करता और बढ़ाता है। इसका फाया कनपटी पर रखने से दुखती आँखों को बहुत गुण होता है। कान के पीछे लगाने से बहरे पन को व बहते हुए कान व कान के दर्द को दूर करता है। मात्रा पाँच से दस बूँद।

एक्सट्रैक्ट हायोस्यामी—(सत खुरासानी अजवायन) मसान की जलन या जलन से थोड़ा-थोड़ा पेशाब उतरे तो उसको मुफीद

है। खाँसी और तपेदिक में लाभ देती है। मात्रा तीन से छः ग्रेन तक।

एक्सट्रैक्ट बेरियन—(पाषाणभेद का सत) बड़ी बीमारी से उठने पर ताकत लाने के लिए इसे देते हैं। पुरानी गठिया और आँतों के कीड़े मारने को मुफीद है।

एक्सट्रैक्ट-नेक्सवामिका—(सत कुचला) बदहज्मी, कब्ज, फालिज, या रोग से उठने पर कमजोरी को बहुत फायदेमन्द है। इसे क़ब्ज रोकने को हैजे में, दमा, मृगी, कोंच निकलने में देते हैं। नामर्दी की भी यह अच्छी दवा है। मात्रा १/३० से १/१२ ग्रेन तक।

एक्सट्रैक्ट रियाई कम्पौंरड—(सत रेवनचीनी) बच्चों को जुलाब के तौर पर देते हैं। बहुत फायदा होता है। दस्त, बदहज़मी, क़ब्ज, बायगोला व अफारे में, मुँह की बीमारी आदि में फायदेमन्द है। मात्रा पाँच से १५ ग्रेन तक।

स्प्रिट-एमोनिया—

स्प्रिट एमोनिया एरोमेटिक—खाँसी और शिद्दत के बुखार में। मात्रा बीस से तीस बूँद। निहायत कमजोरी के कारण निढाल होने से बच्चा इससे होश में आ जाता है।

स्प्रिट कैम्फर—हैजे व खाँसी में। पाँच से तीस बूँद तक।

स्प्रिट क्लोरोफ़ार्म—दमा, खाँसी, दर्द पेट, दर्द गुर्दा आदि में। मात्रा दस से साठ बूँद तक।

एमोनिया कार्ब—वायुगोला, मिरगी, मूर्छा, पुरानी खाँसी व कफ में। मात्रा छ से दस ग्रेन तक।

एमोनिया ब्रोमाइड—नींद लानेवाला है। खून को साफ करता है। दर्द और पट्ठों की बीमारी, पागलपन, खफ़्त, आधासीसी सबमें फ़ायदा करता है। खाँसी और हिचकी की उम्दा दवा है। मात्रा पाँच से बीस ग्रेन तक।

टिंचर—

टिंचर-सिन्कोना—पुष्टि और भूख को बढ़ाता है। बदहज़मी व पुराने ज्वर में मुफ़ीद है। मात्रा आधा से एक ड्राम तक।

टिंचर आयोडीन—वर्म जिगर व तिल्ली व आतशक के सब वर्म व गिल्टी को लगाने के लिए उत्तम है। बहुत थोड़ी मिक़दार में खाते भी हैं। मात्रा पाँच से बीस बूँद। प्लेग में खिलाने से लाभ देता है।

टिंचर कमीला—पेट के कीड़े और कद्दूदाने के मारने को बतौर जुलाब देते हैं।

टिंचर-यूकेलिपटस—जाड़े बुखार को बहुत मुफ़ीद है। मात्रा दस से तीस बूँद।

टिंचर जिंजर—अफारा, पेट के दर्द को आराम करता है। मेदे को पुष्ट करता है, दस्तावर है, दर्दों को रफ़ा करता है, हाज़िम है। मात्रा दस से तीस ग्रेन तक।

:९०:

परिभाषा सम्बन्धी खास-खास बातें

वैद्यक के ग्रन्थों में कुछ बातें ऐसी लिखी होती हैं जिनमें पारिभाषिक शब्द आते हैं, उनके खास ही अर्थ होते हैं। उनके न जानने से बहुत से लोग शास्त्रीय नुसखे ठीक-ठीक नहीं बना सकते। इसलिए हम इस अध्याय में परिभाषा-सम्बन्धी बातें लिखते हैं।

नाप-तोल

एक सरसों का एक जौ, एक जौ की एक रत्ती, छः रत्ती का एक आना। (सुश्रुत के मत से) चार रत्ती का एक माशा, चार माशा का एक शाण, दो शाण का एक कोल (लगभग एक तोला)। दो कोल का एक कर्ष, दो कर्ष की एक शुक्ति, दो शुक्ति का एक पल (आठ तोला)। दो पल की एक प्रसृति, दो प्रसृति की एक अँजलि या एक कुड़व (आधा सेर)। दो कुड़व का एक शराप,दो शराप का एक प्रस्थ, दो प्रस्थ का एक आढ़क (आठ सेर)। चार आढ़क का एक द्रोण (३२ सेर)। दो द्रोण का एक कुम्भ (६४ सेर)। एक पल का एक तुला (१२॥ सेर)। २००० पल का एक भार। दो कुम्भ की द्रोणी या गोणी। (३ मन ८ सेर) चार गोणी का एक खारी, (१२ मन ३२ सेर)।

सब जगह शास्त्रीय नुसख़ों में साफ़-साफ़ बातें नहीं लिखी होती। कहीं-कहीं अनुक्त बातें होती हैं। जहाँ अनुक्त होती हैं; वहाँ इस प्रकार समझ लेना चाहिए। किसी

अनुक्त द्रव्य

वनस्पति की कौन चीज़ काम में लेनी चाहिए यह अगर साफ़-साफ़ न लिखा हो तो उसकी जड़ लेनी चाहिए। दवा पकाने का बर्तन कैसा हो यह न लिखा हो तो मिट्टी का बर्तन लेना चाहिए।

दवा की जड़ें अगर पतली हों तो सबकी सब लेना, अगर मोटी हो तो जड़ की छाल लेना चाहिए।

द्रव की चीज़ न लिखी हो तो पानी लेना चाहिए। चन्दन में लाल चन्दन, मूत्र में गो-मूत्र, सरसों में सफ़ेद सरसों, नमक में सेंधा नमक, दूध घी में गाय का दूध-घी। तमाम दवाइयाँ नई लेनी चाहिए, सिर्फ़ गुड़, घी, शहद, धनिया, पीपल और हींग पुरानी लेनी चाहिए।

कहीं-कहीं कुछ दवाइयाँ नहीं मिलती हैं, उनकी जगह दूसरी दवाइयाँ ली जा सकती हैं। किस दवा की जगह कौन दवा ली जाय, इसका कुछ सकेत यहाँ देते हैं। पुराना

प्रतिनिधि

गुड़, न मिले तो नया गुड़ चार पहर धूप में रख कर काम में लेना, सोरठमिट्टी न मिले तो कीचड़ की पपड़ी लेना। तगर की जगह हार सिङ्गार, लोह भस्म की जगह मण्डूर, सफ़ेद सरसों की जगह लाल सरसों, गजपीपल और चाभ की जगह पीपलामूल, केसर की जगह हल्दी, मोती की जगह सीप, हीरे

की जगह चुन्नी या कौड़ी भस्म। सोना और चाँदी की जगह लोहभस्म, पोकरमूल की जगह कूठ, रसौत की जगह दार हल्दी फूल की जगह नया फल, मेद की जगह असगंध। महामेद की जगह अनन्तमूल। जीवक की जगह गिलोय, ऋषभप की जगह विदारीकन्द, ऋद्धि की जगह सौंफ, वृद्धि की जगह लालमखाना, काकोली और चीरकाकोली की जगह सतावर। कस्तूरी की जगह खटाशी। और कोई खास दूध न मिले तो गाय ही का दूध काम में लाना चाहिए। मिलावा धवारस न हो तो लालचन्दन डालना। और भी जो दवा न मिले उसकी जगह दूसरी चीज़ उसी गुण की डाल देना चाहिए।

काढ़े में जितनी दवाइयाँ हों वे सब मिलाकर दो तोला होनी चाहिएँ। उन्हें ३२ तोला पानी में औंटाना और आठ तोला रहने पर उतार कर छान लेना। काढ़े में कोई चीज़ मिलाना हो तो पीने के समय मिलाना। मिलाने वाली दवा की मात्रा आधा तोला होनी चाहिए। अगर कई दवा एक साथ मिलाकर लेनी हो तो सब मिलाकर आधा तोला होनी चाहिए काढ़ा बासी नहीं पीना चाहिए। ताज़ा काढ़ा औंटाकर गरम रहते हुए पीना चाहिए।

काढ़ा बनाना

इसे शास्त्र में शीत कषाय या हिम भी कहते हैं। शीत कषाय बनाने के लिए दो तोला दवा कूटकर बारह तोला पानी में पहले दिन शाम को भिगो रखना और सुबह छान कर पीना। फाँट बनाने के लिए कुटी हुई दवा-

सर्द काढ़ा

इयों चौगने गर्म पानी में थोड़ी देर भिगो रखना और फिर छान कर काम में लेना।

कच्ची या पक्की दवा पानी में पीस लेने से वह कल्क कहाती है। कची दवा कुचलकर रस निकालने को स्वरस कहते हैं। इन सब चीजों को पञ्चकषाय कहते हैं। किसी चीज का रस पुटपक करना हो तो, वह दवा कूटकर जामन या बड़ के पत्तों में लपेटकर उस पर मजबूत रस्सी से कस देना, फिर दो अँगुल मिट्टी का लेप कर देना, फिर सुखाकर आग में लाल कर लेना। पीछे भीतर की चीज को निचोड़ कर रस निकाल लेना चाहिए।

चूर्ण बनाने की सबसे अच्छी तरकीब यह है कि सब दवाइयाँ अच्छी तरह अलग अलग कूट-छान कर कपड़छान करे, फिर सबको मिलाकर इकट्ठा करले। अगर किसी चीज की भावना देना हो तो उस रस की भावना देकर छाया में सुखाना और फिर काम में लेना।

चूर्ण

जिन दवाइयों की गोलियाँ बनानी हों उनका अच्छी तरह चूर्ण करके जिस रस में गोली बनानी हो, उस रस में, खरल कर भलीभाँति घोटना चाहिए। फिर जैसा विधान हो वैसी छोटी-बड़ी गोली बनाना। अगर गोली बनाने में किसी खास द्रव का उल्लेख न हो तो, पानी में गोली बनाना चाहिए। अगर गोली का परिमाण न लिखा हो तो एक रत्ती की गोली बनाना चाहिए। जिस रस की भावना देनी हो, वह रस दवा में डालकर,दिन को धूप और रात को ओस में रखना चाहिए।

गोली

अगर किसी दवा की कई दिन की भावना देने का विधान हो तो, वह दवा उतने ही दिन, दिन में धूप और रात में ओस में रखना।

मोदक बनाने में जहाँ साफ़-साफ़ परिमाण न लिखा हो वहाँ सब दवाइयों से दूना गुड़ या शहद में मोदक बनाना। अगर चाशनी करना हो तो दवा से दुगनी चीनी को चीनी से तिहाई पानी में चाशनी कर, चाशनी पक्की होने पर आग पर, चाशनी रखते हुए ही उसमें दवा डाल देनी चाहिए।

मोदक

अवलेह या चटनी बनाने के लिए पहले काढ़ा तैयार करके फिर उसे औंटाकर गाढ़ा करना। अगर चीनी से अवलेह बनाना हो तो दवा से चौगुनी चीनी या गुड़ की चाशनी करना। अगर किसी द्रव के साथ अवलेह बनाना हो तो वह द्रव भी दूना लेना चाहिए।

अवलेह

गुगुलपाक करने में जरा खटपट होती है। गुगुल को साफ़ करके दशमूल के गर्म काढ़े में मिलाकर छान लेना या गुगुल की पोटली कपड़े में ढीली बाँधकर दोलायन्त्र में (हाँडी में लकड़ी के सहारे लटका कर) गाय के दूध या त्रिफला के काढ़े में पकाना। गल जाने पर छान लेना। फिर धूप में सुखाकर घी मिलाना। इसके बाद आवश्यक दवाइयाँ मिलाकर गोली बना लेना।

गुगुल पाक

एक गज गहरा एक गढ़ा खोदकर उसका तीन भाग कपड़े उपलों से भर लेना। उसके ऊपर दवा की सम्पुट रखकर बाकी कण्डे ऊपर

पुट पाक

भर देना और उसमें आग लगा देना। जब सब जलकर ठण्डा होजाय तो भीतर से दवा को निकाल लेना, सम्पुट करने के लिए दो शकोरों में दवा बन्द कर अच्छी तरह कपट मिट्टी करके सुखा लेना चाहिए।

आसव के लिए दवा को कूटकर गर्म पानी में भिगोना होता है। और अरिष्ट के लिए पकाना होता है। बाद में गुड़ या चीनी

आसव अरिष्ट

मिलाकर चिकने बर्तन में रखकर सन्धान करना होता है। सन्धान करने में इस बात का ध्यान रखना होता है कि अधिक सन्धान होकर कहीं सिरका न होजाय। आसव का ठीक सन्धान हुआ है या नहीं इसे जानने के लिए यह तरकीब है कि एक दीवासलाई जलाकर बर्तन के भीतर लगानी चाहिए, अगर वह बुझ जाय तो जानना कि आसव तैयार है। यह भी खयाल रखना पड़ता है कि उसमें मद ५ प्रतिशत से अधिक न हो, नहीं तो सरकारी क़ानून का झंझट आता है।

दवाइयों में घी और तेल पकाने से पहले उसे मूर्छान करने से उसके गुण बढ़ते हैं। इसकी विधि यह है कि तिल के तेल की

घी और तेल पकाना

मूर्छा करनी हो तो लोहे की कड़ाई में तेल को चढ़ाना, जब झाग बैठ जाय तो उतार कर थोड़ा ठण्डा होनेपर, उसमें पिसी हुई हल्दी का पानी, फिर मजीठ का पानी, फिर लोध-मोथा, आँवला, बहेड़ा, हरड़, केवड़े का फूल, वेमवाला इन सब चीज़ों की तेल से आठवाँ भाग मिलाकर तल का चौगना पानी देकर पाक करना और थोड़ा पानी रहते नीच

उतारना। इसके बाद सात दिन तक योंही रहने देना। इसके बाद जिन-जिन चीज़ों का तेल पकाना हो,उनका वज़न अगर नुसखे में न लिखा हो तो जिनकी लुगदी हो वह कुल मिलाकर वज़न में तेल से चौथाई हों और जिनका काढ़ा हो या दूध, पानी, रस, आदि हो,वह तेल से चौगना हो। द्रव पदार्थ कोई न होतो सिर्फ़ पानी ही चौगना हो।

सरसों के तेल की मूर्छा के लिए हल्दी, मजीठ, आँवला, मोथा, बेल की छाल, अनार की छाल, नागकेसर, काला जीरा, नेत्रवाला, वालुका, बहेड़ा—ये सब चीज़ें डालकर पकाना चाहिए।

घी की मूर्छा के लिए उसे आगपर चढ़ाकर जब झाग मर जाय तब उतारकर ठण्डा कर, पहले हल्दी का पानी, फिर नींबू का रस, उसके बाद पिसी हुई हरड़, आँवला, बहेड़ा, और मोथा डालना। और चौगना पानी डालकर पकाना। पानी जलने पर उतार लेना। चार सेर घी में सब द्रव्य आठ तोला लेना।

बीमार और बीमारी की प्रकृति के अनुसार ही दवा खाने का समय नियत करना चाहिए। पित्त के विकार में जुलाब आदि हो तो,सुबह दवा देनी चाहिए। अपानवायु की खराबी होने पर भोजन के पहले समानवायु के प्रकोप होने पर मध्य में, व्यान वायु के प्रकोप में भोजन के बाद, उदान के प्रकोप में शाम को भोजन के साथ और प्राणवायु के प्रकोप में शाम को भोजन के बाद दवा देनी चाहिए। हिचकी, बेहोशी, बाँयटे, कम्पन आदि के

दवा खाने का समय

रोगों में पहले और पीछे भी दवा देने का नियम है। मन्दाग्नि और अरुचि रोग में भोजन के साथ दवा दी जानी चाहिए। अजीर्ण नाशक दवा रात ही को सेवन करना चाहिए। प्यास, कै, हिचकी श्वांस और जहर के केस में बारम्बार दवा देनी चाहिए। आमतौर पर सुबह के समय ही दवा देने का रिवाज है, पर यदि कई दवाइयाँ बारी-बारी से रोज सेवन करना हो तो तीन या चार घण्टे के अन्तर से दवा दी जा सकती है।

अनेक दवाइयों के खाने के बाद कुछ अनुपान लेने की परिपाटी है। दवा खाने के बाद जो पतली दवा ली जाय उसे अनुपान कहते हैं। शहद आदि में दवा चाटने से उसे भी अनुपान कहा जा सकता है। उत्तम और

अनुपान

ठीक अनुपान के साथ औषध देने से वह ठीक काम करती है। इसी से जहाँतक सम्भव हो सब दवाइयाँ अनुपान के साथ ही सेवन करानी चाहिए। जो रोग नाशक दवा हो, अनुपान भी वही रोग नाशक हो। कफ की बीमारियों में शहद, अदरक का रस, तुलसी या पान का रस अनुपान में लेना अच्छा है। पित्त के रोग में परवल का रस, पित्त पापड़े का रस, गिलोय का काढ़ा या नीम की छाल का काढ़ा लेना चाहिए। वात के रोग में-गिलोय का रस या चिरायता का रस लेना चाहिए। विषम ज्वर में—शहद, पीपल का चूर्ण, तुलसी के पत्ते का रस, हार सिंगार के पत्ते का रस, बेल के पत्ते का रस, काली मिरच का चूर्ण लेना चाहिए। दस्तों की बीमारी में-बेल का मुरब्बा या चावलों का धोवन, खाँसी और

श्वास में तथा जुकाम में अड़ुसे का पत्ता, तुलसी का पत्ता, पान, अदरक अड़ुसे की छाल, मुलहटी, कटेहली कटहल, और कूठ का काढ़ा, पथ्य, तालीसपत्र पीपल, काकड़ा सींगी और वंशलोचन का चूर्ण। वात-खाँस में बहेड़े का काढ़ा। खून की उलटी होने पर अड़ूसे के पत्ते का रस, या बकरी का दूध। घएडू-कामला आदि में पित्तपापड़ा या गिलोय का रस। दस्त लाने के लिए—निसोत,सनाय का पानी, या कुटकी का काढ़ा। पेशाब साफ लाने के लिए-शोरे का पानी या गोखरू का काढ़ा। पेशाब रोकने के लिए-गूलर या जामुन की बीज का चूर्ण। प्रमेह रोग में—कच्ची हल्दी का रस, आँवले का रस, प्रदर में—गिलोय का रस। रजोदर्शन के लिए-दुरहुर के पत्ते का रस,मन्दाग्नि में अजवाइन, अजमोद और सौंफ का पानी या पीपल, पीपला मूल, मिरच, चाय, सोंठ और हींग का चूर्ण कृमि रोग में विडंग का चूर्ण। वमन रोग में बड़ी इलायची का काढ़ा। वायु रोग में त्रिफला का पानी, सवावर का रस, वीर्य वृद्धि के लिए मक्खन-मलाई का अनुपान ठीक होता है।

रोग और रोगी के बलाबल को देखकर उक्त अनुपानों में काढ़ा या भिगोया हुआ पानी एक छटाँक अथवा दवा का रस दो तोला। चूर्ण का अनुपान हो तो शहद के साथ लिया जाय। पर पित्त रोग में शहद न लिया जाय।

:२१:

धातुओं की भस्म

सोना-चाँदी आदि धातुओं को भस्म करने से पहले उन्हें शुद्ध करना चाहिए। सोना-चाँदी और ताम्बा आदि धातुओं को बहुत पतला पत्तर करके आग में गर्म कर पहले मीठे तेल में, फिर गाय के मट्ठे में। फिर काँजी में इस के बाद गोमूत्र में और अन्त में कुलथी के काढ़े में सात-सात बार बुझाना। राँग और जस्त गलाकर बुझाना चाहिए।

शोधन

सोने के पत्तरों को कैंची से काटकर बराबर शुद्ध पारे में खरल करके गोला बनाना। फिर एक मिट्टी के शकोरे में सोने के वजन बराबर गन्धक का चूर्ण रख, ऊपर वह गोला रख, उसपर गन्धक भरकर दूसरे शकोरे से ढक देना। फिर ऊपर मिट्टी करके ३० जङ्गली उपलों की आँच में फूकना। ठण्डा होने पर बाहर निकालकर फिर इसी तरह पारे के साथ घोटकर पकाना। इसी तरह १४ बार करने से सोना भस्म होजायगा।

सोने की भस्म

सोने की भस्म ठण्डी, वीर्यवर्धक बलदायक, भारी, रसायन, कड़वी, कसैली, पुष्टिकारक, नेत्रों को शक्तिदाता, हृदय को प्रिय, बुद्धिदाता, आयु को बढ़ाने वाली, कान्ति और वाणी को उत्तम करने वाली, सब प्रकार के विषों का नाश करने वाली, तथा क्षय की नाशक है। इसकी मात्रा दो रत्ती है।

सोने की भस्म के गुण

सोने की तरह चांदी का भी पत्तर बनाकर बराबर पारे के साथ खरल में घोटना, फिर बराबर हरताल, गन्धक और नींबू के रस में खरलकर, सोने की तरह फूक लेना। इसी तरह दो-तीन पुट देने में चाँदी की भस्म हो जाती है।

चान्दी की भस्म

चान्दी की भस्म के गुण—चान्दी की भस्म, ठण्डी, दस्तावर, आयु स्थिर करने वाली और प्रमेह को आराम करने वाली है। इसकी मात्रा दो रत्ती है।

बराबर पारा और गन्धक को बड़े कागजी नींबू में कज्जली कर ताम्बे के पत्र पर लेप करदे। फिर उन्हें दो शकोरों में बन्दकर कपर-मिट्टी करे और पाँच सेर जङ्गली उपलों में रखकर फूक दे। ताम्बे की भस्म खाने से जी मिचलाया करता है। इस लिए ताम्बे की भस्म को नींबू के रस में घोटकर गोला बनाना और उसे धूप में सुखाना, फिर उसे एक साबुत अमीकन्द में रखकर उसपर कपरौटी कर धूप में सुखाना। सुखने पर गजपुट में फूक लेना। इस तरह करने पर

ताम्बे की भस्म

उसे खाने से उल्टी नहीं होती। इस क्रिया को अमृतीकरण कहते हैं। ताम्रभस्म की मात्रा दो से चार रत्ती तक है।

ताम्रभस्म के गुण—ताम्बे की भस्म दस्तावर, कोढ़, श्वास, खाँसी, बवासीर, शूल, सूजन, उदररोग, पाण्डु रोग, और दाह को दूर करती है।

लोहे की कढ़ाई में राँग गलाकर उसमें राँग के वज़न को बराबर पहले हल्दी का, फिर अजवाइन का, फिर जीरे का, उसके बाद इमली की छाल का, और पीपल की छाल का चूर्ण एक-एक कर बारी-बारी से डालता जाय और कलछी से चलाता जाय। राँग की सफ़ेद साफ़ भस्म हो जायगी। इसी तौर पर जस्त की भस्म भी होगी। मात्रा दो से चार रत्ती तक है।

राँग की भस्म

राँग की भस्म दस्तावर, गरम, नेत्रों को लाभदायक, कुछ पित्तकारक, प्रमेह, कफ, कृमि, श्वास, को आराम करने वाली है। यह प्रमेह की अत्युत्तम दवा है। इन्द्रियों को बलवान और देह को सुखी करती है।

राँग की भस्म के गुण

जस्त की भस्म के गुण—जस्त की भस्म कड़वी, कसैली, ठंडी, आँखों को हितकारी, प्रमेह और पाँडुरोग को फ़ायदेमन्द है। श्वास को आराम करती है।

लोहे की कढ़ाई में सीसा और जवाखार एक साथ धीमा आँचपर चढ़ाना, सीसे की राख होने तक बार-बार उसमें जवाखार

सीसे की भस्म

डालकर चलाते रहना। जब लाल रंग होजाय तो नीचे उतार पानी से धोकर आँच पर सुखा लेना। इस तरह सीसे की पीली भस्म तैयार होती है। इस की मात्रा चार से छः रत्ती तक है।

सीसे की भस्म में राङ्ग के समान ही गुण है। खासतौर पर यह प्रमेह-नाशक है। अगर सीसे का निरन्तर सेवन किया जाय तो

सीसे की भस्म का गुण

हाथी के समान बल होता है। जीवन बढ़ता है। अग्नि वृद्धि होती है। कामदेव चैतन्य होता है। क्षय, गुल्म, वातविकार, शूल, और बवासीर को आराम करता है।

रेती के लोहे को गर्म करके दूध, कॉजी, गोमूत्र और त्रिफला के काढ़े में तीन-तीन बार बुझाना। दूध, कॉजी और गोमूत्र लोहे

लोह भस्म

का दूना, और लोहे का अठगुना त्रिफला,चौगुन पानी में औटाना, एक भाग पानी रहते छान लेना, फिर लोहे को बीस बार गजपुट में आँच देना। लोहा जितनी बार फूँका जायगा उतना ही अधिक गुणकारी होगा। हजार आँच का लोहा अत्युत्तम होता है। लोहे की उम्दा भस्म पानी पर तैरती है। इसकी मात्रा दो से चार रत्ती तक है।

लोह भस्म के गुण—लोहा काबिज है, विष, शूल, सूजन, बवासीर, तिल्ली, पाँडु, प्रमेह और मेद को फ़ायदा करता है।

मण्डूर भस्म—मण्डूर यानी लोहे की १०० बरस की पुरानी कीट को १०० बार तपा-तपा कर गोमूत्र में बुझवा दे। गजपुट में

फूकने से मण्डूर भस्म होजाती है। जो गुण लोहे के हैं वही मण्डूर के हैं। इसकी मात्रा १॥ माशे तक है।

भस्म के लिए काला अभ्रक लेना चाहिए। पहले काला अभ्रक आँच में लाल करके दूध में बुझाना, फिर तपक अलग अलग कर चौलाई के रस या किसी खट्टे रस में आठ पहर भावना देना। इससे अभ्रक शुद्ध होता है। शुद्ध अभ्रक चार भाग और चावल का धान एक भाग कम्बल में एक साथ बाँधकर तीन दिन पानी में भिगो रखना, फिर हाथ से मलकर जब छोटे-छोटे बालू के कण के समान होजाय तब उसकी भस्म करना। इसे धान्याभ्र कहते हैं। धान्याभ्र को गोमूत्र में घोट कर गजपुट में फूकने से अभ्रकभस्म तैयार होती है। जबतक अभ्रक में चमक रहे तबतक बराबर पुट देते रहना चाहिए। हजार पुटी अभ्रक उत्तम होता है।

अभ्रक भस्म

अभ्रक भस्म सवा सेर, त्रिफला का काढ़ा दो सेर, गाय का घी एक सेर, सबको इकट्ठा लोहे की कढ़ाइ में धीमी आँच पर चढ़ाना, जब सब जल जाय तब छानकर रखना। अभ्रक भस्म की मात्रा दो से छः रत्ती तक है।

तीन भाग सोना मार्खी, एक भाग सेंधा नमक, बड़ नीबू क रस में, घोटकर लोहे की कढ़ाई में पकाना, और बारबार चलात रहना। जब लोहपात्र लाल हो जाय तो समझना कि स्वर्णमाक्षिक शुद्ध होगया। यही स्वर्ण माक्षिक कुल्थी के काढ़े में या तिल के तेल में अथवा मट्ठा या बकरी

सोना मार्खी

के दूध में, मर्दन कर गजपुट में फूँकना। इसी भाँति शोध मात्रिक मेदाशृङ्गी और खट्टे नीबू के रस में भिगोकर तेज धूप में रखने से शुद्ध होता है।

सोनामाखी की भस्म हल्की, रसायन, नेत्रों को हितकारी, कोढ़, सूजन, बवासीर, प्रमेह, पाण्डु, कुष्ठ और बवासीर तथा क्षय को लाभ दायक है। इसकी मात्रा छः रत्ती तक है।

सोना माखी का गुण

अशुद्ध स्वर्ण माखी—अन्धा कर देती है। कोढ़ और क्षय पैदा करती है। इससे भलीभाँति शोध कर काम में लेना चाहिए।

तूतिया शोधन—खट्टे नीबू के रस में खरल कर सवा सेर उपलों की आँच देने से, फिर तीन दिन दही के पानी की भावना देने से तूतिया शुद्ध होता है। यह नेत्र रोग और विषनाशक है। तथा वमन कारक है।

गोमूत्र की तरह गन्धवाला, काला रंग वाला, कड़वा, कसैला, शीतल, चिकना, भारी शिलाजीत होता है। पहले उसे गर्म पानी में भिगोकर रखना, फिर कपड़े से एक मिट्टी के बर्तन में छानकर दिन-भर धूप में रखना। शाम को पानी के ऊपर की मलाई बर्तन में निकालना। इसी तरह रोज धूप में रखकर मलाई लेना। यही मलाई शोधित शिलाजीत है। असली शिलाजीत आग में देने से लिङ्ग की भाँति ऊपर को उठता है और धुँआ नहीं देता।

शिलाजीत शोधन

प्रमेह नाशक, गर्म, रसायन, उन्माद, सूजन, क्षय कोढ़, पथरी,

शिलाजीत के गुण — शोथ, उदर, अपस्मार, वस्तीरोग बवासीर, खाँसी, श्वास, और पेशाब के रोगों को फ़ायदा करता है। इसकी मात्रा चार रत्ती से १॥ माशे तक है।

रसौत—रसौत को बड़े नीबू के रस में मिलाकर दिन-भर धूप में रखने से अथवा पानी मिलाकर छान लेने से शोधित होता है।

सिन्दूर—दूध या किसी खट्टे रस की भावना देने से सिन्दूर शुद्ध होता है।

सुहागा—आग पर रखकर खील करने से शुद्ध होता है।

शङ्खादि—शङ्ख सीप, और कौड़ी काँजी में एक पहर दौला यन्त्र में औटाने से शुद्ध होता है। और कुल्हड़ में रखकर आग में जलाने से भस्म होजाता है।

समुद्रफेन—कागज़ी नीबू के रस में पीसने से समुद्रफेन शुद्ध होजाता है।

गेरू—गाय के दूध में घिसने या गाय के घी में भूनने से गेरू शुद्ध होता है।

हीराकस—भङ्गरैया के रस में एक दिन भिगोने से हीराकस शुद्ध होता है।

खपर — सात दिन दौलायन्त्रमें गोमूत्र के साथ औटाने से खपरिया शुद्ध होता है। फिर आगपर चढ़ाकर, गल जाने पर क्रमश: सेंधा नमक डालते हुए ढाक की लकड़ी से चलाते जाना। राख की तरह हो जाने पर नीचे उतार लेने से खर्पर तैयार होता है।

मीठाविष—या मीठा तेलिया, छोटे-छोटे टुकड़े करके, तीन दिन गोमूत्र में भिगोने से शुद्ध होता है। गोमूत्र रोज़ बदलना चाहिए। फिर उसकी छाल निकाल डालना।

जमालगोटा—जमालगोटे के बीज के बीच में जो जीभ होती है उसे निकालकर, दोलायन्त्र में दूध के साथ औटाने से यह शुद्ध होता है।

धतूरे का बीज—कूटकर गोमूत्र में चार पहर भिगो रखने से धतूरे के बीज शुद्ध होते हैं।

अफ़ीम—अदरख के रस की बारह भावना देने से अफ़ीम शुद्ध होती है।

भाँग—पानी से धोकर सुखा लेने से भाँग शुद्ध होती है।

कुचला—घी में भूनने से कुचला शुद्ध होता है।

गोदन्ती हरताल—एक हाँडी में थोड़ा गोबर रखकर उसपर एक पान रखकर गोदन्त रखना और हाँडी का मुँह बाँधकर कपड़ा और मिट्टी का लेपकर चार पहर आग में रखने से गोदन्त ऊपर लग जायगा। वही शुद्ध गोदन्ती है। सब काम में लेना।

भिलावा—पक्का भिलावा जो पानी में डूब जाय लेकर ईंट के चूर्ण में घिसने से शुद्ध होता है।

हींग—लोहे की कढ़ाई में थोड़े घी में भूनने से लाल होनेपर हींग शुद्ध होता है।

नौसादर—चूने के पानी में दोलायन्त्र में औटाने से नौसादर शुद्ध होती है। या गर्म पानी में खरल कर मोटे कपड़े से छान कर

पानी में एक बर्तन में रखना, ठण्डा होने पर नीचे जो पदार्थ जम जाय वही शुद्ध नौसादर है।

गन्धक शोधन—लोहे की कढ़ाई में थोड़ा घी गरम कर, उसमें गन्धक चूर्ण डालना। गन्धक गल जाने पर पानी मिलाए दूध में डालना, इसी तरह सब गन्धक गल जाने पर पानी मिलाए दूध में डालना, फिर अच्छी तरह धोकर काम में लेना।

हरताल—तबक़ी हरताल पहले सफेद कोहड़े के रस में, फिर चूने के पानी और तेल में। एक-एक बार दोलायन्त्र में औटाने से हरताल शुद्ध होता है।

हरताल भस्म—एक पका हुआ काशीफल लेकर हरताल की शुद्ध डली को चूने में लपेटकर उसमें रख कपरोटी कर गजपुट की आँच दे तो हरताल भस्म हो। यह हरताल भस्म कोढ़, घातशक, और रक्त-विकार की उत्तम दवा है। मात्रा दो से छ: रत्ती तक है।

हिंगुल शोधन—हिंगुल को नीबू के रस और भेड़ के दूध में सात-सात भावना देने से हिंगुल शुद्ध होता है। भेड़ का दूध न मिले तो भैंस के दूध ही से सात भावनाएँ देनी चाहिए। इससे हिंगुल शुद्ध होता है।

हिंगुल से पारा निकालना

हिंगुल से जो पारा निकाला जाता है, उसकी विधि यह है कि हिंगुल को चूरा करके एक मोटे कपड़े में पोटली बाँधो। उसपर हिंगुल के बराबर वजन का कपड़ा लपेट दो। यह गोला एक चौड़े मुँह की हाँडीमें रखकर उसपर दूसरी हाँडी रक्खो,बीच में कोई चीज़ अट

कादो, जिससे उसका मुँह कुछ खुला रहे, और गोले में आँच लगादो। ठण्डा होने पर दोनों हाँडियोंमें से पारा इकट्ठा करके कपड़े में छान लो। यह पारा शुद्ध होता है।

कज्जली—शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक बराबर लेकर उस समय तक खरल किया जाय जबतक कि दोनों मिलकर काजल की तरह काले न हो जायँ और चमक न जाती रहे। कहीं-कहीं दूना गन्धक मिलाकर कज्जली बनाते हैं।

रस सिन्दूर

पारा और गन्धक की कज्जली कपरौटी की हुई आतशी शीशी में भरकर एक हाँडी में अठन्नी के बराबर पेंदी में छेद कर, उसपर अभ्रक का एक टुकड़ा रख, उसपर शीशी टिकाकर हाँडी को रेत से गले तक भरदे। फिर उसे चूल्हे पर चढ़ाकर पहले हल्की फिर तेज आँच क्रमश दे। बोतल से पहले नीले रङ्ग का धुँआ निकलेगा। फिर धुँआ बन्द होकर जब आँच निकलने लगे तब आग बुझा दे और ठण्डा होने पर बोतल तोड़ कर ऊपर के भाग में लगे हुए रस सिंदूर को निकाल ले।

चन्द्रोदय

पारा गन्धक की कज्जली में एक भाग सोने का पत्तर डाल कर भलीभाँति घीक्वार के रस में घोटे। फिर रस सिंदूर की भाँति पाक करे तो चन्द्रोदय सिद्ध हो। इसकी मात्रा एक चावल है। और विशेष अनुपान से सब रोगों में काम में आता है।

:२२:

काम के शास्त्रीय नुसखे

काढ़े

१ गुडूच्यादि काढ़ा—गिलोय, धनिया, नीमकी छाल, पदमाख, लालचन्दन, इन चीजों के काढ़े को गुडूच्यादि कहा गया है। इससे सब प्रकार के नये ज्वर, नये दाह, वमन, अरुचि दूर होती है। अग्नि चैतन्य होती है।

२ क्षुद्रादि काढ़ा—कटेहली, चिरायता, कुटकी, सोंठ, गिलोय, और अरंड की जड़। इन छः दवाइयों का काढ़ा पीने से सब प्रकार का ज्वर जिसमें खाँसी, श्वास तथा कफ भी है, आराम होता है।

३ लघुक्षुद्रादि काढ़ा—कटेहली, सोंठ गिलोय, और अरंडी की जड़, इन चार दवाइयों का काढ़ा पीने से प्रबल कफ वायु खाँसी साँस, अरुचि पीठ या छाती का दर्द वाला ज्वर भी आराम होता है।

४ दशमूल काढ़ा—शालपर्णी, पृष्टिपर्णी, छोटी कटेहरी, बड़ी कटेहरी, गोखरू, बेलगिरी, अरनी, स्योनाक, कम्भारी, पादल, इन दस चीजों का काढ़ा पीने से वात, कफ का ज्वर, न्युमोनिया, प्रसूति ज्वर, सन्निपात ज्वर दूर होता है। इस काढ़े में पीपल का चूर्ण डालना चाहिए।

५ अष्टादशाङ्ग काढ़ा—दशमूल, चिरायता, कुटकी, नागरमोथा, धनिया, इन्द्र जौ, सोंठ, देवदारु, और गजपीपल, इन अठारह दवाइयों का काढ़ा सब प्रकार के सन्निपात ज्वरों तथा निमोनिया में अत्यन्त लाभदायक है।

६ देवदार्वादि काढ़ा—देवदारु, बच, कूठ, पीपल, सोंठ, काय फल, नागरमोथा, चिरायता, कुटकी, धनिया, बड़ी हरड़, गजपीपल, धमासा, गोखरू, कटेहली, अतीस, गिलोय, काकड़ासींगी, काला जीरा, लाल धमासा, इन बीस दवाइयों का काढ़ा पीने से प्रसूति रोग, शूल, खाँसी, ज्वर, मूर्छा, आम, कफ वायु और मस्तक पीड़ा दूर होती है।

७ धान्य पंचक—धनिया, नत्रवला, बेलगिरी, नागरमोथा, और सोंठ, इनका काढ़ा पट की आँव को निकालता है। तथा दीपन पाचन करता है।

८ धातक्यादि काढ़ा—धाय के फूल, बेलगिरी, लोध, नत्रवाला और गजपीपल का काढ़ा शीतल करके तथा शहद मिलाकर पिलाने से बच्चों को हरे-पीले दस्तों में बहुत फायदा होता है।

९ पुनर्नवादि काढ़ा—सोंठ की जड़, हरड़, नीम की छाल, दारु हल्दी, कुटकी, पटोल पत्र, गिलोय, और सोंठ, इन का काढ़ा गोमूत्र में मिलाकर पीने से पाण्डुरोग, खाँसी, पेट की बीमारियों, श्वास और शूल तथा सर्वाङ्ग की सूजन दूर होती है।

१० कटेहली का काढ़ा—कटेहली के काढ़े में पीपल का चूर्ण मिलाकर पीने से खाँसी तुरन्त दूर होती है।

११ रास्नादि काढ़ा—रास्ना, गिलोय, देवदारु, सोंठ, और अरण्ड की जड़ का काढ़ा पीने से वायु की सब बीमारियाँ दूर होती हैं।

१२ मंजिष्ठादि काढ़ा—मजीठ, हरड़, बहेड़ा, आँवला, कुटकी, बच, दारुहल्दी, गिलोय, नीम की छाल, इन नौ दवाइयों का काढ़ा वात रक्त, खाज, फोड़ा-फुन्सी, कोढ़ और सब प्रकार के रक्त विकार में फायदेमन्द है।

चूर्ण

१ त्रिफला चूर्ण—हरड़, बहेड़ा, आँवला, बराबर चूर्ण करके फंकी लेने से प्रमेह, सूजन, विषम ज्वर, कफ, पित्त, और कुष्ट आराम होता है। त्रिफला का चूर्ण विषम मात्रा में घी और शहद के साथ लेने से सब प्रकार की आँखों की बीमारी आराम होती है।

२ त्रिकुटा चूर्ण—सोंठ मिर्च काली, पीपल, तीनों का चूर्ण अग्नि वर्धक, कफ, चर्बी, कोढ़, जुकाम, अरुचि, आमदोष प्रमेह, बाय गोला, और गले की बीमारियों को आराम करता है।

३ सुदर्शन चूर्ण—हरड़, बहेड़ा, आंवला, हल्दी, दारुहल्दी, छोटी कटेहली, बड़ी कटेहली, कचूर, सोंठ, मिरच, पीपल, पीपरा मूल मूर्वा, गिलोय, धमासा, कुटकी, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, त्रायमाण, नेत्रबाला, नीम की छाल, पोहकरमूल, मुलहटी, कुड़े की छाल, अजवायन, इन्द्रजौ, भारंगी, संहजने के बीज, फिटकरी, बच, दारचीनी, पदमाख, चन्दन, अतीस, खरैटी, शालपर्णी, पृष्ट

पर्णी, सतावर, असगन्ध, लौंग, मशालोचन, कमलगट्टा, बिदारीकंद, पद्माख, जावत्री, तालीसपत्र इन सब के वजन से आधा चिरायता डाल चूर्ण करले। यह सुदर्शन चूर्ण है। इसे ताजा पानी से सेवन करने से वात पित्त, कफ द्वंद, सन्निपात के ज्वर, विषम ज्वर, आगन्तुक ज्वर, धातु जन्य ज्वर, मानस ज्वर, इत्यादि सम्पूर्ण ज्वर, शीत ज्वर, एकादिक, आदि ज्वर, मोह, तन्द्रा, भ्रम, तृषा, श्वास, खाँसी, पाण्डु, हृदय रोग, कामला, शूल आदि सब दूर होते हैं।

४ हरीतक्यादि चूर्ण—काला नमक, बड़ी हरड़, काली मिर्च, सौंठ, चारों बराबर ले इन्हें अलग अलग (नमक के सिवा) घी में भून कर चूर्णकर छः-छः मासे की मात्रा में दिन में तीन बार दही के साथ खाने से तथा खिचड़ी-दही पथ्य लेने से पेचिश को आराम होजाता है।

५ गंगाधर चूर्ण—नागरमोथा, इन्द्र जौ, बेलगिरी, पठानी लोध, मोचरस और धाय के फूल, इनका चूर्ण करके छाछ में गुड़ मिलाकर उसके साथ चूर्ण को पीवे तो सब प्रकार का अतिसार आराम हो।

६ लवंगादि चूर्ण—लौंग, कपूर, इलायची, दालचीनी, नागकेसर, जायफल, खस, सौंठ, काला जीरा, अगर, वंशलोचन, जटामांसी, नीला कमल, पीपल, सफेद चन्दन, तगर, नेत्रबाला और कंकोल, इनका चूर्ण कर, चूर्ण से आधी मिश्री मिला, उपयुक्त मात्रा में सेवन करे। इसमें अग्नि प्रदीप होती है, रुचिकारक है, पुष्टिकारी है, वात, पित्त, कफ को शमन करता है। हृदय रोग,

कण्ठ रोग, खांसी, हिचकी, पीनस, क्षय, श्वास, अतिसार, अरुचि, संग्रहणी, प्रमेह सबको लाभदायक है।

७ जातीफलादि चूर्ण—जायफल, लौंग, इलायची, तमालपत्र, दालचीनी, नागकेसर, कपूर, सफेद चन्दन, कालेतिल, वंशलोचन, तगर, आंवला, तालीस पत्र, पीपल, हरड़, फालाजीरा, चीते की छाल, सोंठ, वायविडंग और काली मिर्च सब बराबर और सबके बराबर भाँग, और फिर सबके बराबर मिश्री। मात्रा एक तोला शहद के साथ। संग्रहणी, खांसी, श्वास, अरुचि, क्षय, वायु, कफ का विकार और पीनस आराम होती है।

८ महाखाण्डव चूर्ण—काली मिर्च, नाग केसर, तालीस, सेंधा-नमक, काला नमक, खारी नमक, समुद्र नमक, मिनहारी नमक, प्रत्येक एक-एक तोला। पीपलामूल, चित्रक, दारचीनी, पीपल, इमली की छाल, जीरा दो-दो तोले। धनिया, अमलवेत, सोंठ, बड़ी इला-यची के दाने, छोटा बेर, अजमोद, नागरमोथा तीन-तीन तोला। सब का चौथाई अनारदाना, और फिर सबकी आधी मिश्री। यह महाखाण्डव चूर्ण हुआ। इससे अरुचि, मन्दाग्नि, हृदयरोग, खाँसी, अतिसार, कण्ठ रोग, उदर रोग, मुख रोग, हैजा अफारा, बवासीर, गोला कृमि, तथा वमन आराम होता है।

९ नारायण चूर्ण—चीते की छाल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, सोंठ, मिरच, पीपल, जीरा, दारूहेर, वच, अजवाइन, पीपलामूल, सौंफ, वन तुलसी, अजमोद, कचूर, धनिया, वायविडंग, मगरल, पोकर मूल, सज्जी, जवाखार, सेंधानमक, कालानमक, खारी-

नमक,समुद्रनमक, मनिहारी नमक, कूट ये सब एक-एक तोला। इन्द्रायण की जड़ दो तोला,निसोथ तीन तोला,दन्ती तीन तोला,पीली थूहर चार तोला, सबको कूट पीस कर चूर्ण बनाये। मात्रा चार माशा। इसे हृदय रोग, पाण्डुरोग, खाँसी,श्वास,भगंदर,मन्दाग्नि, ज्वर, कोढ, संग्रहणी, में शराब के संग दे। पेट फूलने पर सिरके के साथ दे, गुल्म रोग, उदर रोग, अजीर्ण आदि को उप युक्त अनुपान से दे तो सब रोगों का प्रशमन करे।

१० पंचसम चूर्ण—सोंठ, हरड़, पीपल, निसोथ, कालानमक, सब बराबर ले बारीक पीस चूर्ण करे। यह शूल, पेट का फूलना मन्दाग्नि, बवासीर, और आमवात को नष्ट करेगा।

११ सितोपलादि—मिश्री सोलह तोला, वंशलोचन आठ तोला, पीपल चार तोला,छोटी इलायची के बीज दो तोला, दालचीनी एक तोला, सबको कूट-पीस कर घी और शहद के साथ सेवन करे, तो श्वास, खाँसी, क्षय, हाथ-पैरों का दाह, मन्दाग्नि, जीभ की शून्यता, पसली का दर्द, अरुचि, ज्वर, ऊर्ध्वगत, रक्तपित्त सब दूर हो।

१२ लवणभास्कर—पाँचोंनमक, धनिया, पीपल, पीपलामूल, कालाजीरा, पत्रज, नागकेशर, तालीस पत्र, और अमलवेत ये दस दवाइयाँ दो दो तोला। काली मिर्च, जीरा, सोंठ एक-एक तोला। अनारदाना चार तोला,दारचीनी और इलायची छै-छै माशे। सबको कूट छान कर चूर्ण करे। इसे दही के पानी या दही की मलाई से अथवा छाछ या शराब के साथ चार माशा ले, तो उदर गोला,

तिल्ली, क्षय, बवासीर, संग्रहणी, कोढ़, मलबद्धता, भगंदर, सूजन, शूल, श्वास, खांसी, आमपात, मन्दाग्नि ये सब रोग दूर हों।

१३ एलादि चूर्ण—छोटी इलायची के दाने, फूलप्रियगु, नागरमोथा, बेर की गुठली, पीपल, सफेद चन्दन, खील, लौंग, नागकेसर इन नौ दवाइयों का चूर्ण शहद और मिश्री मिला कर चाटने से उल्टी होने को रोकता है।

१४ शतावर चूर्ण—शतावर, गोखरू, कौंच के बीज, गंगेरन, खरेटी, तालमखाना, इनका चूर्ण रात को गाय के दूध के साथ फंकी करने से वीर्य पुष्ट होता है, और काम शक्ति बढ़ती है।

गोला

१ संजीवनी वटी—बायविडंग, सोंठ, पीपल, बड़ी हरड़, आँवला, बहेड़ा, बच, गिलोय, भिलावे, मीठाविष, सब बराबर लेकर गाय के मूत्र में पीस कर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बनाय। यह गोली एक अजीर्ण में अदरख के रस में, हैजे में दो गोली और साँप के विष पर तीन तथा सन्निपात में चार गोली खाय।

२ कोपापिवटी—सोंठ, मिरच, पीपल, अमलबेत, चव, तालीसपत्र, चित्रक, जीरा, इमली की छाल, ये नौ दवाइयाँ एक-एक तोला। दालचीनी, इलायची, पत्रज आठ-आठ माशा, पुराना गुड़ बीस तोला मिलाकर गोली बना काम में ले। यह गोली पीनस, जुकाम, खाँसी, साँस, इन रोगों को दूर कर रुचि उत्पन्न करे और आवाज को शुद्ध करे।

३ सूरण वटी—सूखा जमीक़न्द दो तोला, चीते की छाल सोलह तोला, सोंठ चार तोला, काली मिरच दो तोला, लेकर सबको कूट पीसकर चूर्ण करे, चूर्ण के बराबर गुड़ मिलाकर गोली बनावे, यह बवासीर की अच्छी दवा है। सब प्रकार की बवासीर को आराम करती है।

४ चन्द्रप्रभा वटी—कचूर, बच, नागरमोथा, चिरायता, गिलोय, देवदारु, हल्दी, अतीस, दारु हल्दी, पीपरामूल, चीते की छाल, धनिया, हरड़, बहेड़ा, आँवला, चव्य, वायविड़ङ्ग, गज पीपल, सोंठ, काली मिरच, पीपल, स्वर्ण माक्षिक भस्म, सज्जी, जवाखार, सेंधा नमक, काला नमक, विड नमक, ये २७ दवाइयाँ चार-चार माशा। निसोत दन्ती तमाल पत्र दालचीनी इलायची दाना, वंशलोचन ये छः दवा सोलह-सोलह माशा। लोह भस्म दो तोला मिश्री चार तोला शिलाजीत आठ तोला गुगल आठ तोला इन सबको एकत्र कूट पीसकर एक जीव करके बेर के समान गोली बनावे। यह सब रोगों पर चलती है। प्रमेह, मूत्र कृच्छ्, मूत्राघात पथरी कब्ज पेट फूलना शूल प्रमेह, अण्डकोप की वृद्धि, पाँडु रोग, कामला, हलीमक, कमर पीड़ा, साँस, खाँसी, कोढ़, बवासीर, खाज तिल्ली भगन्दर, दाँत के रोग नेत्र रोग स्त्रियों के रजोधर्म सम्बन्धी रोग पुरुषों के वीर्य विकार, मन्दाग्नि अरुचि आदि आराम होते हैं।

५ योगराज गुगल—सोंठ मिरच पीपल चव्य पीपल मूल चीते की छाल भुनी हींग अजमोद, सरसों जीरा, काला जीरा,

रेणुका, इन्द्रजौ, पाढ़, वायविडङ्ग, गजपीपल, कुटकी, अतीस, भारंगी, वच, मूर्वा, जवासा चार-चार माशा। सबसे दूना त्रिफला सबको कूट चूर्ण कर, सब चूर्ण के बराबर शुद्ध गुगल सबको खरल में डालकर खूब बारीक पीस गुड़ के समान पाककर मिलावे, फिर बंग, चांदी भस्म, नागेश्वर,लोहसार, अभ्रक, मण्डूर और रस सिन्दूर प्रत्येक चार-चार तोला लेकर गूगल में डाले, और अच्छी तरह कूटे। घी का हाथ लगाता जाय, फिर चार-चार माशे की गोली बनावे। यह गूगल त्रिदोष नाशक और रसायन है। बिना पथ्य के भी गुण करता है। इससे सम्पूर्ण वायुरोग, कोढ़, बवासीर, संग्रहणी, प्रमेह, वातरक्त, नाभिशूल, भगन्दर, उदावर्त क्षय, गुल्म, मृगी, उरोग्रह, मन्दाग्नि, खांसी, श्वास, अरुचि ये सब रोग नष्ट होते हैं। धातु विकार को दूर करता है। और स्त्रियों के रजोदर्शन सम्बन्धी रोगों को दूर करता है। पुरुषों की धातु वृद्धि करके उन्हें पुत्र देता है। बाँझ स्त्रियों को गर्भ देता है। रास्नादि काढ़े के साथ सेवन करने से समस्त वात रोग को दूर करता है। दारुहल्दी के काढ़े के साथ प्रमेह को दूर करता है। गो-मूत्र के साथ सेवन करने से पाण्डु रोग को आराम करता है। शहद के साथ सेवन करने से मेदरोग को गुण करता है। नीम की छाल के काढ़े में कुष्ट को फायदा करता है। वातरक्त रोग में गिलोय के काढ़े के साथ खाय। शूल और सूजन में पीपल के काढ़े से सेवन करे। वातरक्त में गिलोय के काढ़े से खाय। नेत्ररोग में त्रिफला के काढ़े के साथ सेवन करे। उदररोग में पुनर्नवादि काढ़े के साथ

खाय। नेत्ररोग में त्रिफला के काढ़े से सेवन करे। इसी प्रकार अपनी बुद्धि से भिन्न-भिन्न रोगों पर इसे देना चाहिए।

६ गोखुरादि गुग्गल—११२ तोला गोखरू जौकुट करके छःगुने पानी में चढ़ाकर आधा शेष रहन पर उतारले,तब शुद्ध गूगल २८ तोला अच्छी तरह कूटकर उसमें मिला दे। फिर उसका गुड़ के समान पाक करे। गाढ़ा होने पर ये दवाइयाँ मिलावें। सोंठ,मिरच, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, नागरमोथा चार-चार तोला। बाद में कूटकर झरबेर के समान गोली बनाले। इसके सेवन करने से पेशाब रुकना, पथरी की बीमारी, मूत्रकृच्छ, प्रदर रोग, मूत्राघात, वातरक्त, वायी के रोग, धातु विकार आदि आराम होवे हैं।

७ काँचनार गुग्गल—कचनार की छाल ४० तोला, हरड़, बहेड़ा, आँवला, आठ-आठ तोला, वरना चार तोला, इलायची, दारचीनी, तमालपत्र एक-एक तोला लेना। फिर सब को कूट-छानकर चार चार माशे की गोली बनाना। मुण्डी या खैरसार के काढ़े में प्रातः काल खाने से कण्ठ माला में बहुत फायदा करती है। अपची, अर्बुद गाँठ, गोला, भगन्दर, आदि रोग भी इससे दूर होवे हैं।

अवलेह

१ च्यवन प्राश—पाठा, अरनी, कारमरी, बेल की छाल, स्योना पाठा, गोखरू, शालपर्णी, प्रष्टिपर्णी, दोनों कटेहली, तीनों पीपल, काकड़ासींगी, दाख, गिलोय, हरड़ खरेटी, भूमि आँवला, अडूसा, असगन्ध, सतावर, कचूर, जीवक ऋषभक, नागरमोथा,

पोकरमूल, कौवाडोंडी, मूगपर्णी, मापपर्णी, विदारीकन्द, माठ की जड़, कमल मेधा, महामेदा, छोटी इलायची, अगर, चन्दन, प्रत्येक चार-चार तोला। इन्हें थोड़ा कूटकर रखले। फिर बड़े-बड़े आँवले ५००, बड़े मटके में पोटली बाँध, डालकर उसमें १०२४ तोला पानी में दवा डालकर पकाओ। जब दवा का रस पानी में आजाय और आँवला गल जाय तब पोटली मे आँवला निकालकर गुठली दूर करके कपड़े में रगड़ कर छान ले। फिर उसे २८ तोला मीठे तेल में बाद में उतने ही घी में भूने। जब पानी का अश न रहे तब उतारे। अब काढ़े में तीन सेर खाँड डालकर चाशनी करे। जब दो तार की चाशनी होजाय तब उसमें उपरोक्त आँवला डाल कर पकावे। जब दीवले पड़ने लगे तब उतार ले। ठण्डा होने पर नीचे लिखी दवाइयाँ मिलादे। पीपल आठ तोला, वंशलोचन सोलह तोला, दालचीनी, इलायची, तेजपात नौ-नौ माशा। शहद चौबीस तोला। बस च्यवनप्राश तैयार है। क्षीण पुरुष को मोटा-ताजा बनाने में अपूर्व है। यह अवलेह बालक, वृद्ध, अल्पवीर्य, नपुंसक, शोषरोगी, हृद्रोगी, और स्वर क्षीण को लाभकारी है। श्वास, कास, प्यास, वातरक्त, उरोग्रह, वीर्य दोष, मूत्र दोष, मय को दूर करता है। इसके प्रयोग से बुद्धि स्मरण शक्ति, रमण-शक्ति, शरीर कान्ति और वर्ण प्राप्त होता है। अजीर्ण का नाश होता है।

२ मुसलीपाक—मूसली सफेद का चूर्ण बीस तोला। गाय का दूध चार सेर। दोनों को पकाकर मावा करे, फिर आध सेर ताजे घी में भूने। इसके बाद डेढ़ सेर खाँड की चाशनी कर उसमे मिलादे।

साथ ही नीचे लिखी दवाइयाँ कूटकर कपड़छान कर डालदे। गोंद बबूल बत्तीस माशा, बादाम की मींग बत्तीस माशा, गोला कतरा हुआ बत्तीस माशा, जायफल, जावत्री, लौंग, केसर, बाब, छेबर, बालछड़, कौंच के बीज, तज, पत्रज, सफेद इलायची, नाग केसर, मिर्चे काली, पीपल, सोंठ, जावची, सालम मिश्री, चोबचीनी पिस्ता, चिरोंजी, प्रत्येक सोलह-सोलह माशा। कुलीजन, अजमोद सुना, पौदीना, मस्तगी, उशाब, मूंगे की भस्म आठ-आठ माशा। कस्तूरी दो माशा, मोती एक माशा, वर्क चाँदी बीस नग, वर्क सोना बीस नग, गोंद घी में भून लेना चाहिए। अन्तमें चार माशा अभ्रक भस्म मिलाकर ढाई तोले का लड्डू बनाना चाहिए। अत्यन्त पुष्टिकारक, वीर्य वर्धक, और ताकत देनेवाला है। पेशाब की ज्यादती को रोकता है।

३ चोबचीनी पाक—चोबचीनी पाँच तोला, असगन्ध नागौरी बारह माशा, मूसली सफेद, लौंग, जावत्री, छुहरा, बहलोचन, प्रत्येक बारह-बारह तोला। बिदिया कन्द, सतावर, कौंच के बीज की मींग, जायफल, अकरकरा, कुलीजन, केसर, अजवान, हालों, मेथी मस्तगी ढाक का गोंद, सत गिलोय, सफेद इलायची दारचीनी पत्रज, बड़ी इलायची के दाने कमल गट्टे की मींग तोदरी सफेद, जीरा गुलाब का, जीरा काला, मूँगे की भस्म, प्रत्येक आठ आठ माशा। अम्बर, बालछड़, अगर, नवोली, छ-छ माशा, किशमिश सोलह माशा, बादाम गिरी अड़तालीस माशा, बहमन दोनों सोलह माशा, पिस्ता अड़तालीस माशा, कस्तूरी तीन माशा, उशपा ग्यारह

माशा, मोती छः माशा, चाँदी के वर्क नौ माशा, वर्क सोने के साढ़े तीन माशा, अम्बर दो माशा, सगेयशव चार माशा, गोखरू बड़े छःमाशा, खाल-मखाना छः माशा। सबको कपड़छान चूर्ण करके शहद में मिलाकर चालीस दिन, दो तोला रोज खाय, खटाई गुड़ का परहेज रक्खे तो चालीस दिन में बिगड़ा हुआ खून शुद्ध होजाय।

४ सुहाग सोंठ—कसेरू, सिंघाड़ा, कमलगट्टा, मोथा, जीरा, काला जीरा, जायफल, जावत्री, लौंग, नागकेसर, तेजपात, दारचीनी, कचूर, धाय के फूल, इलायची, मोथा, धनिया, गजपीपल, पीपल, मिर्च, सतावर, प्रत्येक चार-चार तोला। सोंठ का चूर्ण एक सेर, मिश्री १२० तोला। घी एक सेर, दूध गाय का आठ सेर। पहले दूध में सोंठ डालकर मावा पकावे, फिर इसे घी में भूने, इसके बाद चाशनी कर सब दवाइयों का चूर्ण उसमें मिलादे।

५ सुपारी पाक—बीस तोला चिकनी सुपारी, कूटकर कपड़छान करे, फिर उन्हें ढाई सेर गाय के दूध में पकाकर मावा पकावे। जब मावा जम जाय तो आध सेर ताजा घी डालकर उसे भून ले। इसके बाद नीचे लिखी दवा कूट छान कर मिलादे। चिरौंजी, गोला, दो-दो तोला, जायफल, जावत्री, लौंग, नागकेसर, तेजपात, इलायची छोटी, वंशलोचन चार-चार माशा मिलाकर पाक सिद्ध करे। मात्रा दो तोला। स्त्रियों के प्रदर रोग की बहुत उम्दा दवा है।

तेल

१ विषगर्भ तेल—मिलावा, मालकाँगनी, धतूरे का पंचांग, और मीठा तेलिया, सब एक-एक तोला। तेल तिल का आध सेर, मिलाकर पकाओ। जब मिलावे जलकर तैरने लगें और उनमें सींक छिद जाय, तब उसे उतारकर छानकर काम में लो। यह सब प्रकार की वायु की बीमारी दर्द आदि के लिए उत्तम है।

२ नारायण तेल—असगन्ध, गंगेरन की छाल,बेलगिरी, पाठा, कटेहली, बड़ी कटेहली, गोखरू, अतिबला, नीम की छाल, वेह, पुनर्नवा, पमरन, अरनी, प्रत्येक आध-आध सेर। इन्हें जौकुट कर के सोलह सेर पानीमें पकाकर चार सेर रक्खे। फिर काढ़ेको छान कर काढ़े में एक सेर तिल का तेल, चार सेर सतावर का रस और चार सेर गाय का दूध उसमें मिलादे। तथा नीचे लिखी दवा इयों की लुगदी पीसकर मिलावे। कूठ, इलायची बड़ी, सफेद चन्दन मूर्वा, बच, जटामाँसी, सेंधा नमक असगन्ध, गमेरन, रास्ना, सौंफ, देवदारु, शालपर्णी, पृष्टपर्णी, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, और तगर। ये सब मिलाकर बीस तोला लिए जायँ। फिर सबको पकाकर तेल रहने पर छान लिया जाय। यह प्रसिद्ध नारायण तेल है। इसे सूघने, खाने, मालिश करने आदि के काम में लिया जा सकता है। इससे लकवा, वातव्याधि, अर्धांग वायु, कमर का दर्द, कम्प वात, पंगुता आदि सभी रोग दूर होते हैं।

३ मरिच्यादि तेल—काली मिरच, हरताल, निसोत, लालचन्दन नागरमोथा, मनसिल, जटामांसी, हल्दी, दारुहल्दी देवदारु,

इन्द्रायन की जड़, कनेर की जड़, कूट, आक का दूध, गाय के गोबर का रस। सब एक-एक तोला। शुद्ध मीठा तेलिया दो तोला, सरसों का तेल एक सेर, और तेल से दूना गाय का पेशाब, सबको पकावे। जब तेल रह जाय तब छानकर रक्खो। यह कोढ़, खाज, चकत्ता, फोड़ा, दाद, छाजन, सबको आराम करता है।

४ लाक्षादि तेल—चार सेर लाख को सोलह सेर पानी में पकाकर चार सेर बाकी रहने पर उतारकर छान लो। इसमें एक सेर तिल का तेल तथा चार सेर दही का तोड़ डालकर नीचे लिखी दवाइयों की लुगदी करके मिलादो। सौंफ, असगन्ध, हल्दी, देवदारु, कुटकी, रेणुका, मुर्वा, कूट, मुलेहटी, सफेद चन्दन, नागरमोथा, और रास्ना, ये सब एक-एक तोला। तेल बाकी रहने पर छानकर काम में लो। पुराने बुखार को दूर करता है। तपेदिक़, खाँसी, पीनस, आदि को गुणकारी है।

:२३:

छोटे बच्चों की परवरिश के सम्बन्ध में

अक्सर सौ में से पचास बच्चे अपनी आयु के पहले ही वर्ष में मर जाते हैं, और इसका कारण यह होता है कि उनकी ठीक-ठीक परवरिश नहीं होने पाती। माताएँ अक्सर बच्चों के पालन सम्बन्धी नियमों को नहीं जानतीं। सबसे बड़ी गलती उनसे दूध पिलाने के सम्बन्ध में होती है। अक्सर माताएँ बच्चों को चाहे जब दूध पिलाने लगती हैं। अगर बालक पेट के दर्द या अजीर्ण से रो रहा हो तो भी उसके मुँह में दूधी ठूँस देती हैं। इस का यह फल होता है कि अक्सर बालकों को अपच की शिकायत रहा करती है। और यह अन्य सैंकड़ों बीमारियों को उत्पन्न कर देती है, जिससे प्राय: बच्चों की जान पर आ बनती है। हमेशा यह खयाल रखना चाहिए कि बच्चा हो या बड़ा उसे वही खुराक फायदा पहुँचावेगी जो भली-भाँति हजम होगी। खुराक की ठूँसा-ठूँस करना बच्चे के लिए किसी भी रूप में लाभदायक नहीं है। इसलिए छोटे बच्चों को दूध पिलाने के नियमों की पाबन्दी बड़ी बारीकी से की जानी चाहिए।

दूध पिलाती बार माता को इन बातों का ध्यान रखना चाहिए—

(१) क्रोध में दूध न पिलावे—यदि ऐसा अवसर हो भी तो थोड़ा जल पीकर जब क्रोध ठण्डा होजाय तब पिलावे।

(२) पसीने आ रहे हों, या मल-मूत्र, वमन आदि का वेग हो तो दूध नहीं पिलाना चाहिए।

(३) एक स्तन से दूध कभी न पिलावे, क्योंकि दूसरे में दूध इकट्ठा होकर सूजन पड़ जावेगी।

(४) बच्चे का दूध पीने का समय नियत कर लेना चाहिए। नीचे की सारणी में हम उपयुक्त समय लिखते हैं। इसीके अनुसार बालक को दूध पिलाना चाहिए।

१ महीने के बालक को	एक-घण्टे पीछे
३ महीने ,, ,,	दो ,, ,,
६ महीने ,, ,,	तीन ,, ,,
९ महीने ,, ,,	चार ,, ,,

नौ महीने की अवस्था तक बालक को निरा दूध पिलावे। अन्य कोई वस्तु खाने को न दे। कहा भी है—नौ महीने भरे, और नौ महीने धरे। परन्तु बालक सबल हो और उसकी पाचन शक्ति ठीक तो छठे महीने में भी अन्न दे सकते हैं। आश्वलायन सूत्र में लिखा है—

षष्ठे मास्यन्नप्राशनम् । १ । घृतौदनं तेजस्काम । २ ।
दधिमधुघृत मिश्रितमन्न प्राशयेत ॥

अर्थात्—छटे महीने बालक को अन्नप्राशन संस्कार कराये

जो अपने बालक को तेजस्वी कराना चाहे वह प्रथम-प्रथम उसे घृत और भात दे। अथवा दही शहद घृत मिला अन्न दे।

दूध पिलाने की विधि—माता सीधी पलोथी मारकर बैठे, प्रथम स्तन धोकर एकाध बूँद धरती पर गिरावे, पीछे बालक के मुँह में स्तन दे। प्रथम दाहिना स्तन पिलावे पीछे बाँया। लेटकर दूध कभी नहीं पिलाना चाहिए, इससे बालक का कान बहने लगता है। बालक को गोद में लेकर और एक हाथ उसके मस्तक के नीचे लगाकर मस्तक को ऊँचा रक्खे, तब पिलावे। नींद में न पिलावे। यदि कोई विशेष बात न हो तो माता ही को बालक को दूध पिलाना चाहिए। जिस माता का बालक दूध नहीं पीते उससे बच्चे को कुछ भी स्नेह नहीं होता। स्त्री बालक को दूध पिलाने से निरोग भी रहती है, बरन ऐसी स्त्री के गर्भस्राव और गर्भपात का रोग भी नहीं होता।

यूरोप में स्त्रियाँ अपना यौवन बनाये रखने के लिए—बच्चों को दूध नहीं पिलातीं—धाय रखती हैं। इसपर हम अधिक टीका-टिप्पणी करना नहीं चाहते। असल में यह बात उन्हीं को शोभा देती है। बालक का दूध एकदम न छुड़ावे—बरन् दूध पीने के साथ ही कभी-कभी खीर, खिचड़ी, साबूदाना, भात आदि दे। मिठाई सर्वथा बन्द रक्खो। मिठाई विष है, यह जान रक्खो। इससे मेदे में कीड़े पड़ जाते हैं और मेदा सड़ने लगता है। हाँ, फलों का अभ्यास गुणकारी हो सकता है और फल अवश्य बच्चे को समय-समय पर देने चाहिए।

दूध छुड़ाने का सुगम उपाय यह है कि माता बालक से कुछ दिन के लिए अलग हो जावे, या रात को अपने पास न सुलावे। दूसरी स्त्री के पास सुला दे।

और यदि मातामें शक्ति होवो जबतक गर्भ न रहे,बच्चेको दूध पिलाये जाय। इससे अधिक पौष्टिक और गुणदायक वस्तु ससार में बच्चे के लिए नहीं है। कहावत भी तो है—"देखें तैने अपनी माता का कितना दूध पिया है।"

दूध पिलाकर बालक का मुँह धो डालना चाहिए, जिससे मक्खी आदि काट न खाय। या मुख के रोग न उत्पन्न हों।

जब ये चिन्ह माता के शरीर में दीखें तो दूध तुरन्त बन्द कर देना चाहिए।

(१) जब माता के स्तनों में दूध न रहे।

(२) जब माता के कानों में सनसनाहट मालूम हो।

(३) आँखों में अँधेरा-सा जान पड़े।

(४) आँखों में पीड़ा हो।

(५) मस्तिष्क में धमक और चित्त व्याकुल हो।

(६) मूर्छा और थकावट जान पड़े,देह काँपे,भूख न लगे,अजीर्ण हो, पेट में दर्द हो, ज्वर हो, पेट में सनसनाहट हो, मानों पेट बैठा जाता है, चलते-फिरते देह में दर्द हो, मुखपर पीलापन छा रहा हो, टकने सूज आये हों।

छ महीनेतक बच्चे की गर्दन नहीं ठहरती। इसलिए गर्दन के पीछे हाथ लगाये रहना चाहिए। असावधानी करने से बालक की गर्दन

में झटका चला जाता है और बालक मर जाता है। बालक को इन दिनों न सीधा बैठावे, न सीधा गोदी में ले, क्योंकि ऐसा करने से पीठ में कुब्ब निकल आता है, क्योंकि उसकी रीढ़ की हड्डी बहुत नरम होती है। एक वर्ष से पूर्व बालक को अपने पैरों कभी न खड़ा न करे,इससे पाँव चिपड़ा जाते हैं। जब बालक स्वयं खड़ा होसके तभी खड़ा करे, या होने दे। उसे अपनी नींद सोने और उठने दे।

परन्तु दूध पी कर ही तुरन्त बालक को न सोने दे,इससे उसका भोजन पचता नहीं है और स्वप्न भी बुरे दीखते हैं। तीन वर्ष की आयु तक तो बालक को दिन में सोने दे, पीछे केवल रात्रि के ही सोन की आदत डाले,दिन में नहीं।

बहुधा स्त्रियाँ काम करने के लालच से बच्चे को अफ़ीम आदि देकर सुलाती हैं। सभी जानते हैं अफ़ीम विष है,सो नन्हें-से बच्चेको विष देना डायन माता ही का काम है, जो बहुत बुरा है। ऐसे नशों से बालकों के मस्तिष्क बचपन से ही निर्बल और खुरक होजाते हैं।

सोती बार माता बालक को अपनी देह से चिपटाकर न सुलावे और यदि ऐसा ही हो तो उसे सदा करवट लेकर अर्थात् उसकी पीठ माता की ओर रख कर सुलावे।

बिछौना नरम और सूखा रहना चाहिए। कोई वस्तु चुभती न हो। पोतड़े भीगने पर तुरन्त बदल देना चाहिए।

बच्चों को धूल मिट्टी में न होने देना चाहिए। रात्रि को नीम या सरसों के तेल का काजल आँखों में लगा दिया करें और प्रभात को

काजल मुख धोकर फिर लगा देना चाहिए।

बहुतेरी माताएँ भूत-प्रेत, डाकनी-मसान के झपेटों से बच्चे को बचाने के लिए बीसियों कठले, गन्डे-तावीज़ से बच्चों का शरीर भर देती हैं, पर इन सबमें मैल भर जाने से छोटे-छोटे कीड़े अण्डे—दे देते हैं और रोग का जमघट जम जाता है। रोग से बचना तो एक ओर रहा—ऐसे ही बच्चे सदा रोगी रहते हैं।

मुख से लार टपककर भी कपड़े अधिक मैले रहते हैं, इससे उचित तो यह है कि एक रूमाल उसके गले में बँधा रहे। उसे रोज़ धोना और साफ़ करना चाहिए। यदि अधिक लार बहे तो यह दवा बनाकर रख ले और एक माशा नित्य कई बार चटावे।

एक पाव मिश्री को एक छटाक गुलाब-जल में चाशनी करो। जब चाशनी एक तार की आजाय तो उसमें २॥ तोला रूमीमस्तगी असली बारीक पीसकर अच्छी तरह मिलावे और किसी इमतबान में भरकर रखले।

बच्चों की आँत सटककर अण्डकोष में लटक आती हैं। इस लिए उचित तो यह है कि कटियन्धन (कौंधनी) पहनाये रक्खे-जिससे यह नस दबी रहती है। यदि धसक गई हो तो बालक को जाँघिया पहनाये रक्खे, इससे ठीक रहती है।

बालक को रोज़ भ्रमण कराना चाहिए। जाड़ों में दोपहर और धूप के समय। गर्मी में साँझ-सवेरे, वर्षा में जब बादल न हों या बूँद न पड़ती हों। हर दशा में बालक को गर्मी-सर्दी दोनों से बचाये रक्खे।

जब बालक तीन वर्ष का होजाय तो उसे नित्य आंखों में पान डालनी चाहिए। यदि वह दुर्बल होगा के पानी में सेंधा नमक डाल दे। इससे थोड़े ही दिन बालक समर्थ और पुष्ट होजाता है। पानी में मेथी या र कर गरम करले, उससे स्नान भी गुणकारी होता है।

आगे पान और बालों में चौथे या पाँचवे दिन प डालना चाहिए और जिन दिनों में दाँत निकलते हों अवश्य डाले। इससे आँख नहीं दुखती और कनपटी जो में भड़का करती है, नहीं भड़कती और चैन पड़ता है।

बालकों के सिर पर मैल जम जाता है उसको भी धोक देना चाहिए। पीछे तेल डालदे, इससे मस्तक में तरी रहत अच्छी आती है, खुश्की नहीं पड़ती। ऐसा न करने से व्य आती है जिससे न तो बाल बढ़ते हैं और न दृढ़ होते हैं, न बलवान रहता है जिससे बालक बहुधा मूर्ख और निर्बु जाते हैं।

हैं, यहाँतक कि मल-मूत्र तक त्याग कर देते हैं इसका प्रभाव आगे बच्चों पर बहुत बुरा पड़ता है।

डरे बालक का उपाय—यदि बालक किसी प्रकार डर गया हो तो उसका उपाय यह है कि उसे डरा-धमकाकर और घुड़की से न बोले,न चिल्लाकर बोले, वरन बहुत ही स्नेह से धीमी-धीमी तसल्ली दे। उसे अकेला न छोड़े,न अँधेरे में छोड़े,रात्रि-भर दिया जलावे जिससे आँख खुलने पर वह उजाला ही देखे। अक्सर बालक सोते-सोते चौंक उठते हैं, तब उचित है कि उसकी छाती पर हाथ धरे रहे, कुछ दिन में ऐसा करने से बच्चे का डर जाता रहेगा।

एक काम अवश्य करना चाहिए।प्रति मास बालक को तौलते रहना चाहिए। यह नियम है कि बच्चा जब बीमार होने को होता है उससे बहुत प्रथम से ही उसका वज़न घटने लगता है। या बहुत पहले से ही वज़न बढ़ना रुक जाता है। वैसी अवस्था में तुरन्त वैद्य को दिखाना और उसकी सम्मति से भोजन या धाय को तुरन्त बदल देना चाहिए। ऐसा करने से बच्चे को बीमार होने की नौबत ही नहीं आयगी।

जन्म के सप्ताह में तो बच्चा तौल में कुछ घटता है फिर बढ़ने लगता है। पहले ५ महीने तक तन्दुरुस्त बच्चे को १ तोले स ७।। तोले तक रोज़ बढ़ना चाहिए। और इसके बाद में छ:-सात महीने तक दस माशे-से दो तोला तक बराबर बढ़ना चाहिए,पाँच-छ: मास के बच्चे का वज़न जन्म से दूना होना चाहिए। और एक साल के बच्चे का जन्म से तिगुना हो जाना चाहिए। इसके बाद वज़न

जब बालक तीन वर्ष का होजाय तो उसे नित्य प्रातःकाल नहलाने की बान डालनी चाहिए। यदि वह दुर्बल हो तो उसके नहाने के पानी में सेंधा नमक डाल दे। इससे थोड़े ही दिन में निर्बल बालक सबल और पुष्ट होजाता है। पानी में मेथी या मेंहदी डाल कर गरम करले, उससे स्नान भी गुणकारी होता है।

उनके कान और बालों म चौथे वा पाँचवे दिन कड़वा तेल डालना चाहिए और जिन दिनों में दाँत निकलते हों उन दिनों अवश्य डाले। इससे आँख नहीं दुखती और कनपटी जो इस दशा में भड़का करती है, नहीं भड़कती और चैन पड़ता है।

बालकों के सिर पर मैल जम जाता है उसको भी धोकर निकाल देना चाहिए। पीछे तेल डालदे, इससे मस्तक में तरी रहती है, नींद अच्छी आती है, खुश्की नहीं बढ़ती। ऐसा न करने से प्यास बढ़ जाती है जिससे न तो बाल बढ़ते हैं और न दृढ़ होते हैं, न मस्तक बलवान रहता है जिससे बालक बहुधा मूर्ख और निर्बुद्धि रह जाते हैं।

सँभाले न रखने से बहुधा बच्चों को मिट्टी खाने की आदत पड़ जाती है। जिससे पेट बढ़ जाता है। मूत्र सफेद आने लगता है और अजीर्ण हो जाता है तथा सारे शरीर का रंग सफेद पड़ जाता है। दूसरे-तीसरे दिन बच्चे को थोड़ा गुड़ खिला देना चाहिए।

उन्हें कभी नहीं डराना चाहिए। डरने से बच्चे कभी-कभी ऐसे डर जाते हैं कि वे सदा के लिए डरपोक बन जाते हैं। वह भय कभी उनके हृदय से नहीं निकलता। स्वप्न में यही बात देखकर वे डर उठते

हैं, यहाँतक कि मल-मूत्र तक त्याग कर देते हैं इसका प्रभाव आगे बच्चों पर बहुत बुरा पड़ता है।

डरे बालक का उपाय—यदि बालक किसी प्रकार डर गया हो तो उसका उपाय यह है कि उसे डरा धमकाकर और घुड़की से न बोले, न चिल्लाकर बोले, वरन् बहुत ही स्नेह से धीमी-धीमी तसल्ली दे। उसे अकेला न छोड़े, न अँधेरे में छोड़े, रात्रि-भर दिया जलाये जिससे आँख खुलने पर वह उजाला ही देखे। अक्सर बालक सोते-सोते चौंक उठते हैं, तब उचित है कि उसकी छाती पर हाथ धरे रहे, कुछ दिन में ऐसा करने से बच्चे का डर जाता रहेगा।

एक काम अवश्य करना चाहिए। प्रति मास बालक को तौलते रहना चाहिए। यह नियम है कि बच्चा जब बीमार होने को होता है उससे बहुत प्रथम से ही उसका वजन घटने लगता है। या बहुत पहले से ही वजन बढ़ना रुक जाता है। ऐसी अवस्था में तुरन्त वैद्य को दिखाना और उसकी सम्मति से भोजन या धाय को तुरन्त बदल देना चाहिए। ऐसा करने से बच्चे को बीमार होने की नौबत ही नहीं आयगी।

जन्म के सप्ताह में तो बच्चा तौल में कुछ घटता है फिर बढ़ने लगता है। पहले ५ महीने तक तन्दुरुस्त बच्चे को १ तोले से ।। तोले तक रोज बढ़ना चाहिए। और इसके बाद में छः-सात महीने तक दस माशे-से दो तोला तक बराबर बढ़ना चाहिए, पाँच-छः मास के बच्चे का वजन जन्म से दूना होना चाहिए। और एक साल के बच्चे का जन्म से तिगुना हो जाना चाहिए। इसके बाद वजन

बढ़ना कुछ कम होजाता है। दूसरे साल पौने तीन सेर तीसरे साल तीन सेर, इसीतरह सातवें साल तक प्राय: दो सेर ही बढ़ता है। आठवें से ग्यारहवें तक तीन सेर सालाना बढ़ता है, ग्यारहवें साल तक लड़के लड़कियों से अधिक बढ़ते हैं। पन्द्रहवें साल तक लड़कियाँ ज्यादा बढ़ती हैं। फिर उसके बाद लड़कों की बारी आती है।

जन्म के समय बच्चा आठ-नौ गिरह लम्बा होता है दो-तीन महीने तक लम्बाई जल्दी-जल्दी बढ़ती है। एक वर्ष पूरा होनेपर बच्चा साढ़े तीन गिरह बढ़ चुकता है और छटे साल जन्म से दूनी ऊँचाई हो जाती है। सात से तेरह वर्ष तक लड़के की ऊँचाई थोड़ी-थोड़ी बढ़ती जाती है। तेरह से सत्रह तक कद जल्दी-जल्दी बढ़ता है। इसके बाद फिर बढ़ना कम होजाता है। लड़कियाँ बारह-से-चौदह तक जल्दी-जल्दी बढ़ती हैं। बच्चों के क़द में बढ़ने का खयाल अधिक नहीं रखना चाहिए। लम्बाई का खयाल रखना चाहिए, क्योंकि तौल में ही घटने-बढ़ने पर तन्दुरुस्ती की जाँच होती है। पृष्ठ १६७ पर दिये गये नकशे से इसका ठीक-ठीक ज्ञान होगा।

एक और बात ध्यान में रखनी चाहिए। अगर दूध छूटने पर बच्चा अन्न खाकर रहने लगे तो उसे चिकना-चुपड़ा मसालेदार खाना कभी न खिलावे, न मिठाई की बान लगावे।

दाँत निकलना—जिन दिनों बालकों को दाँत निकलते हैं उन दिनों उनकी लार बहुत निकलती है। इसलिए उनके गले में एक रुमाल या अँगोछा बँधा रहना चाहिए। भीगने पर सूखा बदलना चाहिए और उसे धोकर सुखादे। इसी प्रकार हर घड़ी गले में सूखा कपड़ा

बच्चों की ऊँचाई और वजन का नाप बताने वाला नक्शा। (पृष्ठ १६६ देखिए)

किस उमर तक	औसत लम्बाई	औसत वजन	
१ सप्ताह	९ गिरह	३ सेर	लड़की की तोल लड़कों की तोल से आध सेर कम समझना चाहिए। यह औसत तोल है। कम ज्यादा भी हो सकता है।
१ मास	९ गिरह	४ सेर	
३ मास	९॥ गिरह	५॥ सेर	
६ मास	११। गिरह	७॥ सेर	
९ मास	११। गिरह	९ सेर	
१ वर्ष	१३ गिरह	१० सेर	
१॥ वर्ष	१३॥ गिरह	११ सेर	
२ वर्ष	१४॥ गिरह	१३ सेर	
३॥ वर्ष	१६ गिरह	१६॥ सेर	
५ वर्ष	१८ गिरह	२० सेर	
६ वर्ष	१९॥ गिरह	२२ सेर	
८ वर्ष	२१॥ गिरह	२७ सेर	
१० वर्ष	२३ गिरह	३३ सेर	
१२ वर्ष	२५ गिरह	३६ सेर	
१५ वर्ष	२८ गिरह	४५ सेर	

बँधा रक्खे। ऐसा करने से बालक की छातीपर ठण्ड नहीं पहुँचने पाती। छाती में ठण्ड पहुँचने से छाती के अनेक रोग खाँसी इत्यादि उत्पन्न होकर महादुःख देते हैं।

इन दिनों फेफड़े,मस्तक-पक्वाशय का काम ठीक नहीं रहता है। इसी से खाँसी, अपच, अफारा, दस्त, उलटी, फोड़े-फुन्सी इत्यादि रोग हो जाते हैं।

इन दिनों शुद्ध वायु सेवन कराना परमावश्यक है। यह बच्चोंको अमृत की तरह हितकारी है। इसी सिद्धान्त के लिये शास्त्र में चतुर्थ मास में निष्क्रमण संस्कार का विधान किया है।

अगर माता का दूध सूखगया हो और पूरा दूध न उतरता हो। अथवा दूध को पानी में डालने से वह पानी में घुल न जाय, बल्कि नीचे बैठ जाय तो यह दवा माता को दे —

(१) वन कपास की जड़, ईख की जड़ बराबर काँजी में पीस कर ६ माशे पिलाना।

(२) हल्दी, दारुहल्दी, पँवाड़ के बीज (चक्रमर्द) इन्द्रजौ, मुलहटी प्रत्येक को छै माशे लेकर एक पाव पानी में काढ़ा करना और दोनों समय पिलाना।

(३) वच, मोथा, अतीस, देवदारु, सोंठ, सतावर, अनन्तमूल, सब का काढ़ा पूर्ववत बनाकर पिलाना। इससे दूध की वृद्धि होती है।

खीर, मखाने,किशमिश दाख, खीरा, आदि पौष्टिक पथ्य खाने को देना चाहिए।

यदि माता का दूध बहुत ही दूषित हो गया है तो उसका न

पिलाना ही अच्छा है। वैसी अवस्था में दो ही उपाय हैं—या तो कोई धाय लगाई जाय, और नहीं तो गाय का दूध दिया जाय।

धाय ऐसी हो कि जितने दिन के बालक के लिए धाय चाहिए उतने ही दिन का बालक उसकी गोद का हो। दस-पाँच दिन की न्यूनता की कोई बात नहीं,क्योंकि ऐसा न होने से उसका दूध बच्चेकी प्रकृति के अनुकूल न होगा। धाय में इतनी बातें देखनी चाहिए—

(१) युवा और सुन्दर हो, बहुत मोटी या कृश नहीं।
(२) उसकी सन्तान मर तो नहीं जाती।
(३) उसे कोई रोग—कोढ़ खाज, दमा, क्षय,आदि तो नहीं है
(४) गर्भवती तथा ऋतुमती न हो।
(५) क्रोधी, झूठी, खवार, गन्दी,और वात्सल्यहीना न हो।
(६) सुशीला, हँसमुख,सतोषी हो।
(७) पहलौठी न हो। दूसरे-तीसरे की जनी हो। स्तन ऊँचे, कठोर और लम्बे हों।

यदि ऐसी धाय न मिले तो उसे गाय का दूध देना ही ठीक होगा,किन्तु इस दूध को नीचे की विधि से ठीक करना होगा,क्योंकि गाय का दूध भारी और गाढ़ा होता है। सो वह यदि बिना पतला किये बालक को दिया जावेगा तो बच्चे का पेट बिगड़ जावेगा और रोगी हो जायगा।

साधारणतः बराबर गरम पानी मिलाकर दूध को पतला दे। और यदि वह न पचे तो यह विधि करे—

पान में खाने का चूना दो पैसा-भर लेकर एक बड़ी बोतल में

साफ पानी भरकर उसमें डाल दे। और कसकर डाट लगा दे। और खूब हिलावे, फिर पानी को ठहरने दे। पाँच-छै घण्टे पीछे उसका पानी निथार कर दूसरी बोतल में डाल दे। यह चूर्णोदक हुआ। यही चूर्णोदक एक तोला, गरम पानी एक तोला, दूध कच्चा आठ तोला मिलाकर थोड़ी चीनी मिलाकर पिलाओ—पाचन होगा।

दूध पिलाने की काँच की डुट्टी आती हैं, पर वे अच्छी तरह साफ नहीं होती—काँचमें बहुत शीघ्र ही कीड़े पड़ जाते हैं। सो उस का प्रयोग हानिकारक है। इससे यदि उसे प्रयोग करना है, तो दिन में दो बार गर्मजल से अच्छी तरह धोना चाहिए। इसका काम तुतई (टूटीदार छोटी घण्टी) में रबर की चूसनी, जो बाजार में मिलती है,लेकर काम चल सकता है, पर इसे भी धोने में साव धानी रखनी चाहिए, क्योंकि दूध बहुत शीघ्र बिगड़ जाता है। परन्तु सबसे अच्छा और सरल उपाय एक यही है कि रुई के फोहे के द्वारा दूध पिलाया जाय।

बाजार में विलायती दूध भी बना-बनाया (Condensed Milk के नाम से) मिलता है, उसे पिलाना ठीक नहीं, क्योंकि वह बहुत दिनों का रक्खा हुआ बिगड़ा हुआ और दूषित होजाता है। अधिकाँश में भेड़ी और गदही का दूध होता है।

ऐसा न करके यदि केवल पानी मिलाकर ही दूध पिलाया जायगा इससे भी उसके पेट में दर्द रहेगा। और बालक रोएगा। बहुधा बालक दूध पीते-पीते स्तनमें सिर मार देते हैं जिससे नाड़ी का मुख मन्द होकर स्तन सूज जाता है और बालक की माता को ज्वर

होजाता है। इसकी यह चिकित्सा करे कि रोटी बनाने के बाद गरम गरम तवा नीचे उतारकर रखदे और पानी (ताजे) से स्तन को इस प्रकार धोना शुरु करे कि सारा पानी टपक-टपककर नीचे तवे पर पड़े और उसकी भाप उठकर स्तन को लगे। दो-तीन दिन में ज्वर उतर जायगा। सूजन भी कम हो जायगी। यदि सूजन अधिक हो तो यह क्रिया करे—

पोस्त के डोडे एक ताले,मकोय सूखी एक छटाँक लेकर एक सेर पानी में पकावे। जब आधा पानी रह जाय उसे एक टूँटीदार लोटे में मुँहबन्द करके टूँटी द्वारा भाप लगावे। शीघ्र आराम होगा। इस ज्वर से भय की कोई बात नहीं है।

सस्ता साहित्य मण्डल की,

'सर्वोदय साहित्य माला' में प्रकाशित पुस्तकें।

[नोट— × निशान वाली पुस्तकें अप्राप्य हैं।]

४५-जीवन-विकास १), १॥)

४६ किसानों का बिगुल × =)

४७-फाँसी ! ।=)

४८-अनासक्तियोग—गीताबोध दे० (नवजीवनमाला)

४९-स्वर्ण विहान × ।=)

५०-मराठों का उत्थान-पतन २॥)

५१-भाई के पत्र १)

५२-स्वगत × ।=)

५३-युगधर्म × १=)

५४-स्त्री-समस्या १॥।)

५५ वि० कपड़े का मुकाबिला × ॥=)

५६-चित्रपट ।=)

५७-राष्ट्रवाणी × ॥=)

५८-इंग्लैंड में महात्माजी ॥।)

५९-रोटी का सवाल १)

६०-दैवी सम्पद् ।=)

६१-जीवन-सूत्र ॥।)

६२-हमारा कलंक ॥=)

६३-बुद्बुद ॥)

६४-संघर्ष या सहयोग ? १॥)

६५-गांधी विचार-दोहन ॥।)

६६-एशिया की क्रांति × १॥।)

६७-हमारे राष्ट्र निर्माता १॥)

६८-स्वतंत्रता की ओर— १॥)

६९ आगे बढ़ो ! ॥)

७०-बुद्ध-वाणी ॥=)

७१-कांग्रेस का इतिहास २॥),।-)

७२-हमारे राष्ट्रपति १)

७३-मेरी कहानी(ज० नेहरू)२॥)

७४ विश्व-इतिहास की झलक (ज० नेहरू) ८), =)

७५-(दे० नवजीवनमाला)

७६-नया शासन विधान १ ॥।)

७७-[१] गाँवों की कहानी ॥)

७८ [२]महाभारत के पात्र ॥)

७९-सुधार और संगठन १)

८०-[३] संतवाणी ॥)

८१-विनाश या इलाज ? ॥।)

८२-[४]अंग्रेज़ी राज्य में हमारी आर्थिक दशा ॥)

८३-[५] लोक-जीवन ॥)

८४-गीता मंथन १॥)

८५-[६] राजनीति प्रवेशिका ॥)

८६ [७]अधिकार और कर्तव्य॥)

८७-गांधीवाद समाजवाद ॥।)

८८-स्वदेशी ग्रामोद्योग ॥)

८९-[८] सुगम-चिकित्सा ॥)

आगे होनेवाले प्रकाशन

१-जीवन शोधन—(किशोरलाल मशरूवाला)
२-हमारी आज़ादी की लड़ाई [२ भाग]—(हरिभाऊ उपाध्याय)
३-फेसिस्टवाद
४-नया शासन विधान—(फेडरेशन)
५-ब्रह्मचर्य—(गाँधीजी)
६-समाजवाद पूँजीवाद—(शोभालाल गुप्त)
७-सरल विज्ञान—१ (चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय)
८-दुनिया की शासन पद्धतियाँ (रामचन्द्र वर्मा)
९-हिन्दुस्तान की ग़रीबी (दादाभाई नौरोजी)
१०-हमारे गाँव (चौ० मुख्तार सिंह)
११-विद्यार्थियों से (म० गाँधी)
१२-लोक साहित्य माला—(इसमें भिन्न भिन्न विषयोंपर २०० पृष्ठों की पुस्तकें निकलेंगी । मूल्य प्रत्येक का ।।) होगा ।
१३-गाँधी साहित्य माला—(इसमें गाँधीजी के चुने हुए लेखों का संग्रह होगा—प्रत्येक का दाम ।।) होगा ।
१४-टाल्स्टाय ग्रंथावली—(टाल्स्टाय के चुने हुए निबंधों,लेखों और कहानियों का संग्रह । प्रत्येक का मूल्य ।।),
१५-बाल साहित्य माला—(बालोपयोगी पुस्तकें)
१६-नवराष्ट्र माला—इसमें संसार के प्रत्येक स्वतंत्र राष्ट्र-निर्माताओं और राष्ट्रों का परिचय होगा और पुस्तकें सचित्र होंगी । मूल्य ।।।)
१७-नवजीवनमाला—छोटी-छोटी नवजीवन दायी पुस्तकें ।
१८ सामयिक साहित्य माला—सामयिक विषयों और घटनाओं पर देश के नेताओं के विचार ।